इकाई- 1

आधुनिक काल व हिन्दी कविता का विकास

संरचना

1.0 प्रस्तावना

1.1 उद्देश्य

1.2 आधुनिक हिन्दी कविता

1.3 आधुनिक हिन्दी कविता की विकास-यात्रा

1.3.1 भारतेन्दु युग

1.3.2 द्विवेदी युग

1.3.3 छायावाद

1.3.4 प्रगतिवाद

1.3.5 प्रयोगवाद

1.3.6 नवगीत

1.3.7 समकालीन कविता

1.3.8 दीर्घ कविता परम्परा व रचना-विधान

1.4 सारांश

1.5 अभ्यास प्रश्नावली

1.0 प्रस्तावना

किसी भी काल का सीमांकन और उसका प्रारम्भ निर्धारण करना अत्यन्त कठिन कार्य है, क्योंकि एक काल दूसरे काल से कब पृथक् हुआ, किस मोड़ पर आकर पार्थक्य हुआ इसका निर्णय वैज्ञानिक सत्य के रूप में नहीं किया जा सकता है। परिवर्तन की प्रक्रिया जितनी अनिवार्य और अहम् होती है, उतनी ही मन्द गति व अलक्षित भी होती है। काफी समय तक एक काल की प्रवृत्तियाँ दूसरे नवीन काल की प्रवृत्तियों के साथ- साथ समानान्तर गति से निरन्तर गतिमान रहती है। आधुनिक काल भी इसका अपवाद नहीं है। रीतिकाल का सूरज एकदम अपनी प्रवृत्तियों के साथ- साथ कब अस्त हो गया तथा नवजागरण की चेतना कब उभर कर सामने आई, इसे ठीक ढंग से बता पाना दुष्कर कार्य है। आधुनिक काल की भाव चेतना का उन्मेष जिस धरातल पर हुआ वह न तो नवीनतम युग था और न अति पुरातन ही। हिन्दी पुरातन के इतिहास में प्रत्येक काल-खण्ड का प्रारम्भ इसी नियम की चोट सहता रहा है।

1.1 उद्देश्य

इस इकाई के अन्तर्गत आधुनिक काल एवं हिन्दी कविता का अध्ययन करेंगे।

1.2 आधुनिक हिन्दी कविता

आधुनिक काल में विकसित भाव संचेतना के बीज तो 19वीं शताब्दी से कुछ पूर्व ही देखे जा सकते हैं, किन्तु परिवर्तन और तत्प्रेरित परिप्रेक्ष्य का स्वरूप पूरी तरह से 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ही सामने आया। इस समय जो आधुनिक दृष्टि विकसित हुई उसके पुरोधा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ही बने। यही कारण है कि भारतेन्दु के आविर्भाव से ही आधुनिक काल का प्रारम्भ मान लिया गया। भारतेन्दु का जन्म वर्ष सन् 1850 है, किन्तु तब से ही आधुनिक काल का आरम्भ माना जाता है, यह उचित नहीं है क्योंकि इस समय की नवीनता और परिवर्तित स्थितियों की न तो कोई मूल्यवत्ता है और न अर्थवत्ता ही। फिर यह समय वह नहीं, जबकि दो विभिन्न प्रवृत्तियों में से एक- दूसरे से अपना पार्थक्य घोषित करती हो। कुछ मनीषी 1857 से आधुनिक काल का प्रारम्भ मानते हैं। इस मत के समर्थकों का मानना है कि नवीन सामाजिक, राजनैतिक चेतना के संवहन के कारण सन् 1857 को यह गौरव प्रदान किया गया है और दिया भी

Uttarakhand Open University (Deemed University) Lachhiwala

जा सकता है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 1868 से काव्य-सर्जना का श्रीगणेश किया था। यह वह समय था जबकि समुचा समाज रूढ़ियों, अन्धविश्वासों और मृतपरम्पराओं की श्रृंखला में निरन्तर जकड़ा हुआ होने के कारण मुक्ति और नव जागरण के लिये कसमसा रहा था। आचार्य शुक्ल ने रीतिकालीन कविता की अन्त्येष्टी सन् 1843 में की गई मान तो ली, किन्तु उसके तुरन्त पश्चात् से लगभग बीस वर्षों तक नवजागरण का कोई स्वर और स्वरूप उभर कर सामने नहीं आया। ऐसी स्थिति और नव-जागरण की भूमिका सन् 1870 के आस-पास दिखाई देती है। तब से आज तक वह निरन्तर गतिमान रही है। उसके अनेक सोपानों व पड़ावों के गुजरते हुए व युगबोध को आत्मसात् करते हुए नितनवीन स्थितियों को स्वीकार किया है अत: आधुनिक काल का प्रारम्भ सन् 1868 या 1870 से मानना ही समीचीन है। लगभग बीस वर्षों के समय (1843 से 1868) को आधुनिक काल की पीठिका में रखना चाहिये। यही वह पीठिका है, जिस पर आधुनिक युग की नींव का पहला पत्थर रखा गया। सन् 1857 में दो विरोधी शक्तियों—सामन्तवादी और पूँजीवादी शक्ति के मध्य टकराहट हुई। जब सामन्तवाद की समग्र संभावनाएँ समाप्त हो गई तो प्रबुद्ध वर्ग के मानस में हलचल मच गई। परिणामस्वरूप अंग्रेज शासकों के मन में भी भारत की आजादी व उसकी नवीनता का अर्थ समझ में आने लगा। स्थिति बदली तो मान्यताएँ भी परिवर्तित होती चली गई।

1.3 आधुनिक हिन्दी कविता की विकास-यात्रा

मानव ही एक ऐसा प्राणी है जिसमें अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति की क्षमता है और जब यह आखेट अवस्था में था, तब से ही उसकी प्रवृत्ति कहने-सुनने की रही है। मानव ने जब भी कुछ अनुभव किया उसे अभिव्यक्त करने की बेचैनी बनी रही। मानव का मस्तिष्क एक ऐसा केनवास है जिस पर खिंची अनुभवों की रेखाएँ जैसे-जैसे गहरी होती हैं, वैसे-वैसे अभिव्यंजना का मार्ग स्वत: प्रशस्त होता चला जाता है। यह प्रमुख मार्ग पद्य का है, कविता का है। मानवीय भावों, विचारों और अनुभवों की अभिव्यक्ति कविता या कला की जन्मदात्री है। हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल अपनी विविधता में अकेला है। इस काल में साहित्य की जितनी विविध रेखाएँ दिखाई देती हैं उतनी पहले कभी दिखाई नहीं दीं। कथ्य, शिल्प तथा विचार तीनों ही दृष्टियों से आधुनिक काल का साहित्य विविधता और विचित्रता को लेकर लिखा गया है।

आधुनिक कविता के विकास की कहानी को ही लें तो वह सीधी और सपाट नहीं है। उसमें समय-समय पर अनेक परिवर्तन हुए हैं। ये परिवर्तन क्रमिक तो हैं, किन्तु आकस्मिक नहीं हैं। अत: यह कविता अनेक शीर्षकों, उपशीर्षकों, आधुनिक कविता के उन्नायक हैं, जिनकी प्रेरणा पाकर मैथिलीशरण की राष्ट्रीय और मानवीय हित की कविता विकसित हुई। हिन्दी कविता के आधुनिक काल की कहानी काफी पुरानी और दीर्घ नहीं है, किन्तु इस अल्प अवधि में कविता की विविधता अनेक रंगों में दिखाई देती है। कविता वैचारिक दृष्टि से अपने उत्कर्ष तक पहुँची है। आधुनिक काल में दूरसंचार के साधनों का तीव्र गति से विकास हुआ, आवागमन के साधन विकसित हुए, देश-विदेश की सीमाएँ समाप्त हुई। पारस्परिक रूप से भावों व विचारों का अदान-प्रदान होने लगा। इस स्थिति में कविता ने भी अपना विस्तार बढ़ाया। वह विदेशी भाषाओं की श्रेष्ठ साहित्य से प्रभावित भी हुई। कहीं उसने अन्य भाषाओं पर भी अपनी श्रेष्ठता का प्रभाव छोड़ा तो कहीं वह स्वतंत्र रूप से अपना स्थान बनाने लगी।

1.3.1 भारतेन्दु युग

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल का प्रथम चरण जागरण की भावना से आन्दोलित था। 1707 ई. में औरंगजेब की मृत्यु के बाद पतनोन्मुख मुगल शासन को जबरदस्त धक्का देकर अंग्रेजी राज्य स्थापित हो गया था। इस नवस्थापित शासन का शिकंजा केवल मजबूत ही नहीं था अपितु क्रूर और कठोर भी था। यह वह समय था, जिसे हिन्दी कविता में रीतिकाल की भूमिका प्राप्त है। परम्परा से प्रचलित, आदर्श, प्रतिमान, धारणाएँ और जीवन सूत्र जीवित तो थे किन्तु अपनी विशिष्टता और मौलिकता का रंग खो चुके थे। कोई भी ऐसी शक्ति, धारणा और विश्वासमयी सत्ता उभर नहीं पा रही थी जो तत्कालीन जीवन के प्रवाह का रूख मोड़ सके। परिणाम यह हुआ कि जीवन और साहित्य यथावत चलते रहे और रीति का आग्रह प्रबल से प्रबलत्तर होता चला गया। 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक समस्त जीवन जड़ और अधिक निष्प्राण हो गया। जनता व शासकों के मध्य जो अन्तराल बना वह दुर्लंघ्य हो गया था और सामाजिक इकाई लुप्त हो गई थी किन्तु दुर्भाग्य यह रहा कि जनता ने इसे दैवीय प्रकोप और प्रताड़ना समझ कर अपनी विवशता और परवशता को

अपने जीवन का तत्त्व स्वीकार कर लिया था। परिणाम-स्वरूप जीवन में विफलता अधिक होती चली गई तथा शनैः-शनैः वह रूढ़िवादिता में पर्यवसित होकर भारतीय जीवन का कवच बनती चली गई। स्थिति और परिस्थितियों और बदली अंग्रेजी व उनके प्रतिनिधियों का जाल पूरी तरह विकसित होता चला गया। मुगलों और मराठों की शेष शक्ति अंग्रेजों के दमनचक्र का मुक़ाबला नहीं कर सकी। सामन्तवर्ग झुकता चला गया। एक-एक करके राजाओं के ताज उतरते चले गये। ऐसी स्थित में देश अपनी सत्ता तो खो ही बैठा, उसकी सांस्कृतिक विरासत भी छिन्न-भिन्न होती चली गई। भारतीय अपने ही घर में बेघर व आत्मपीड़ित तथा निर्वासित अनुभव करने लगे। अचानक एक भावना जागृत हुई और वह भावना थी व्यापक बन्धुत्व एवं आज़ादी की। परिणामस्वरूप सन् 1857 में विद्रोह की आग भड़क उठी। आज़ादी की यह पहली जंग एक महत्त्वपूर्ण घटना बनी जो लगभग एक वर्ष तक चली। अंग्रेजों के दमनचक्र और राजाओं के विश्वासघात ने मिलकर आज़ादी के इस यज्ञ को असफल बना दिया। भारतीय इतिहास में इतनी बड़ी घटना हो तो गई किन्तु आश्चर्य इस बात का है कि भारतेन्दु युग के कवियों के कण्ठ से इस सन्दर्भ में एक भी बोल नहीं फूटा। स्थिति कुछ और बदली। सामाजिक चेतना प्रबुद्ध हुई। विक्टोरिया का शासनकाल आया। अंग्रेज सभ्यता, भाषा और साहित्य के प्रचार-प्रसार को बढ़ावा मिला। भारतीय समाज अंग्रेजों के रंग में रंगने लगा। ठीक उसी समय कतिपय प्रबुद्ध मनीषियों की सुप्त आत्मा ने अँगड़ाई ली। अग्नि की लपटों में अपने सतीत्व और यौवन को झौंकने की प्रथा का विरोध हुआ। राजाराम मोहनराय ने सती प्रथा के लोमहर्षक दृश्यों से क्षुब्ध होकर उसे अवैध करार दिया और जागरण का मंत्र फूँका। इसी क्रम में अनेक बाह्याचारों का खण्डन किया गया। धर्म और दर्शन के क्षितिज पर क्रान्ति और आन्दोलनों के विभिन्न रंग सामने आने लगे। अंग्रेजों ने भारतीयता के समूल नाश का जो सामान जुटाया था, वह छिन्न-भिन्न होने लगा था। देशवासी कमर कसकर ब्रिटिश शासन की जड़ें उखाड़ने के लिए संघर्ष और क्रान्ति की आग में कूद पड़े। इस सन्दर्भ में प्रकाश चन्द्र गुप्त ने ठीक ही लिखा है कि ''आधुनिक युग का आरम्भ उत्पादन यातायात और वितरण के नवीन साधनों के साथ हुआ। अंग्रेजों ने एक ओर तो देशी उद्योग-धन्धों का समूल नाश किया और दूसरी ओर विदेशी पूंजी से नवीन उद्योग प्रारम्भ किये। रेल, डाक, तार आदि का प्रारम्भ उन्होंने अपनी और आर्थिक सत्ता स्थापित करने के लिए किया। वे एक नवीन सभ्यता-संस्कृति के दूत बन गये, किन्तु उनका चक्र सुदर्शन चक्र की भाँति उलट कर उन्हीं के मर्मस्थल पर प्रहार करने लगा।'' अंग्रेजों के कुचक्र को तोड़ने के लिये सभी भारतीय प्राणपण से जुट गये। अनेक भारतीय संस्थाओं ने भी जागरण के इस संघर्ष में अपने-अपने ढंग से भूमिका का निर्वाह किया।

'इण्डियन एसोसियेशन', 'इण्डियन नेशनल कॉंग्रेस', 'ब्रह्म समाज', 'आर्य समाज', 'प्रार्थना समाज', 'थियोसोफिकल सोसायटी' और 'रामकृष्ण मिशन' व 'सनातन धर्म सभा' आदि संस्थाओं के माध्यम से भी सामान्य जन-जीवन में व्याप्त जड़ता को समूल नष्ट करने का कार्यक्रम तैयार किया गया। इन सभी के प्रयत्नों से नवीन बोध विकसित हुए।

1.3.1.1 महत्त्वपूर्ण प्रवृत्तियाँ

1. शृंगार की सरिता में निगमन रीति युगीन काव्य में राष्ट्रीय प्रेम और पौरुष का अलख जगाने वाले भूषण का काव्य क्षेत्रीय भावना से आगे नहीं जा सका था। भारतेन्दु युगीन कवियों ने भारतीय अतीत के गौरव को तो शब्दबद्ध कर ही दिया था, साथ ही वे क्षेत्रीय सीमाओं को पार करके समूचे राष्ट्र की धमनियों के प्रवाहित रक्त में राष्ट्रीयता का रंग घोलने में भी समर्थ हुए। भारतेन्दु युग की राष्ट्रीयता दो बिन्दुओं पर खड़ी दिखाई देती है। प्रथम तो विदेशी शासन को समूल नष्ट करने, उसे उखाड़ फैंकने के लिए उसकी आर्थिक, धार्मिक और राजनैतिक नीतियों पर प्रहार करती है तथा दूसरी देश को नव-जागरण का संदेश देकर चिर निद्रा से जगाने का मंत्र फूँकती है।

2. जो सामाजिक जीवन रीतिकाल में उपेक्षित बन गया था, वही अपनी समस्याओं के साथ पहली बार काव्य-क्षितिज पर अवतरित हुआ। भारतेन्दु युगीन कविता अपने समय की उस काल के जीवन की झाँकी प्रस्तुत करती है। उस समय आर्थिक और राजनैतिक प्रभाव से जनता जो कष्टमय जीवन बिता रही थी, उसका मार्मिक बिन्दु यथार्थ चित्रण इस युग के सर्जक बाल मुकुन्द गुप्त और प्रेमघन की कविताओं से मिलता है।

3. भारतेन्दु युग में बाह्याडम्बरों, बाल विवाह और विधवा-विवाह का खण्डन किया गया। इतना ही नहीं, बल्कि नारी शिक्षा, विधवाओं की दुर्दशा और अस्पृष्यता को लेकर अनेक सहानुभूतिपूर्ण कविताओं का प्रणयन किया गया।

4. आर्थिक पराजय का चित्रण भी इस काल में कवियों ने बड़ी ईमानदारी से किया था। भारतीय अर्थ-व्यवस्था के बिखरे हुए और कमजोर पक्ष को सुदृढ़ आधार प्रदान करने के लिये इस काल खण्ड के कवियों ने स्वदेशी उद्योगों और स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग पर आग्रह पूर्वक बल दिया है। भारतेन्दु की प्रबोधिनी कविता में विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का स्वर है तो प्रताप नारायण मिश्र की होली

कविता के सहारे भारतीय समाज की करुण वेदना का अति मार्मिक चित्रण किया गया है।

5. भारतेन्दु युग की कविताओं में जहाँ एक ओर नवीन जागरण परिलक्षित होता है, वहीं दूसरी ओर उनमें समसामियिकी जीवन स्वर भी स्पष्ट सुनाई देता है। एक विशेष बात तो यह है कि इस युग की कविताओं में भक्तिकालीन भक्ति एवं रीतिकालीन का गंगा-यमुना जैसा मेल भी देखा जा सकता है। धर्म तथा भक्ति की भावाभिव्यंजना में ये कवि पूर्णत: पारम्परित रहे हैं। इन कवियों की भक्ति के तीन रूप हैं—वैष्णव भक्ति, निर्गुण भक्ति और देश भक्ति युक्त ईश्वर भक्ति। ठीक-सी बात तो यह है कि निर्गुण भक्ति और वैष्णव भक्ति का पारस्परिक स्वरूप देखने को ही यहाँ पर मिलता है। भक्ति और देश प्रेम को एक ही बिन्दु पर लाकर अभिव्यक्त करने की शैली निश्चित ही मौलिक तथा नवीन कही जायेगी।

6. भारतेन्दु युगीन कविता में प्रकृति का स्वरूप भी पारम्परिक ही है। कहीं-कहीं ऋतु वर्णन की अपेक्षा ऋतु नायक-नायिका की मनोभावनाओं का वर्णन अवश्य मिल जाता है। जहाँ तक प्रकृति के स्वत: चित्रण का प्रश्न है वह कवि बालमुकुन्द गुप्त, प्रतापनारायण मिश्र और भारतेन्दु में ही परिलक्षित होता है।

7. वैसे इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं है कि भारतेन्दु युग प्रेम संयत और स्वाभाविक है। अपवाद स्वरूप कृष्ण राधा की लीलाओं का वर्णन कहीं-कहीं रीति-युगीन काव्य से मेल अवश्य रखता है।

8. भाषाई चेतना की दृष्टि से यह काव्य धारा पर्याप्त महत्त्व रखती है। जहाँ एक ओर ब्रज भाषा का ललित प्रयोग तथा दूसरी ओर खड़ी बोली का प्रयोग इस काल में दो किनारे हैं। यद्यपि इस युग में उर्दू भाषा का प्रयोग जोरों पर था किन्तु यह भी सही है कि लोक परक चेतना के कारण भारतेन्दु युग के कवि भी इस चिन्ता में थे कि किसी भी प्रकार से कोई ऐसी भाषा प्राप्त हो जिसे व्यापक भूमिका प्रदान की जा सके। उन्हें यह भाषा मिली और वह थी खड़ी बोली, जिसका प्रयोग भले ही कम किया गया हो परन्तु प्रयोग अवश्य किया है। इसमें भी एक विशेष बात यह रही कि पुनर्जागरण के ये कवि भाषा की शुद्धता के उतने पक्षपाती नहीं थे, जितने कि हिन्दी या खड़ी बोली के महत्त्वांकन के प्रति जागरूक रहे। राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त जैसे कवियों ने खड़ी बोली को जो गरिमा प्रदान की है, इसकी भूमिका भारतेन्दु युग में ही तैयार हो गई थी। इस युग के प्रमुख कवियों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रेमघन, प्रताप नारायण मिश्र, जगमोहन सिंह, अम्बिकादत्त व्यास, राधाकृष्ण दास आदि थे।

भारतेन्दु युग के सन्दर्भ में कहा जा सकता है कि सन् 1857 का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम उस काल की स्थितियों, अंग्रेजी शासन के उत्पीड़न और अत्याचार का परिणाम था जो एक ओर से जन-विद्रोह था, जिससे भारतीय जनता देशी राजाओं के साथ-साथ स्वाधीनता की जंग में भाग लेने के लिये उठ खड़ी हुई। मध्यकाल की सामाजिक और सांस्कृतिक जर्जर परम्पराओं और रूढ़ियों का विरोध तीव्रतम हो गया। जिसमें राजा रामोहन राय, स्वामी दयानन्द जैसे समाज सुधारक आगे आये जिन्होंने जन-जागरण का कार्य परवान चढ़ाया था।

भारतेन्दु कवि होने के साथ-साथ एक समाज सुधारक व जन-जागरण के कार्य के अग्रणी बने और उन्होंने इस कार्य के लिए कविता तथा साहित्य की अन्य विधाओं को अपने ''भारतेन्दु मण्डल'' के कवि मित्रों के साथ आगे बढ़ाया। भातरेन्दु युग के सम्बन्ध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है कि, ''अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा के बल पर एक ओर वे पद्माकर और द्विजदेव की परम्परा में दिखाई देते हैं, तो दूसरी ओर नए देश के माइकेल और हेमचन्द्र की श्रेणी में। एक ओर राधाकृष्ण की भक्ति में झूमते हुए नई भक्तिमाल गूँथते हुए दिखाई देते हैं तो दूसरी ओर मन्दिरों के अधिकारियों तथा टीकाधारी भक्तों के चरित्र की हँसी उड़ाते और स्त्री शिक्षा, समाज-सुधार आदि पर व्याख्यान देते हुए भी दिखाई देते थे। प्राचीन और नवीन का यही सुन्दर सामन्जस्य भारतेन्दु काल की कला का विशेष माधुर्य है। प्राचीन नवीन के उस संधिकाल में जैसी शीतल छाया का संचार अपेक्षित था, वैसी ही शीतल कला के साथ भारतेन्दु का उदय हुआ। इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं है।'' भारतेन्दु की ''विजयिनी विनय वैजन्ती'', प्रतापनारायण मिश्र की ''महापर्व'' और ''नया संवत्'', राधाकृष्णदास की ''विनय'' तथा ''भारत बारह-मासा'' तथा प्रेमघन की ''आनन्द अरुणोदय'' आदि रचनाएँ देशभक्ति की प्रेरणा से युक्त है। इन कवियों ने भारत के प्राचीन ऐश्वर्य और तत्कालीन राष्ट्रीय स्थिति को तुलनात्मक रूप में प्रस्तुत भारतीयों के मन में राष्ट्रीय चेतना उभारने का प्रयास किया है। प्रतापनारायण मिश्र ने अपनी मातृभाषा हिन्दी एवं स्वदेशी वस्तुओं की जगह विलायती भाषा और वस्तुओं को अपनाने वालों पर व्यंग्य किया है—

''छोड़ि नागरी सुगुन आगरी उर्दू के रंग रातें।
देसी वस्तु बिहाय बिदेसिन को सर्वस्व ठगातें॥
मूरख हिन्दु का न लहैं दुःख जित कर यह ढंग दीठा।
घर का खाँड करकरी लागे चोरी का गुड़ मीठा॥''

भारतेन्दु जी ने भी भाषा-प्रेम को देश-प्रेम से जोड़ा—

निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल।
बिन स्वभाषा ज्ञान के मिटै न हिय को शूल॥

प्रारम्भिक भारतेन्दु व उनके मण्डल के कवियों में राज्यभक्ति सम्बन्धी कविताओं में अंग्रेजी शासन के अन्तर्गत भारत की उन्नति की सराहना की गई है जिनमें भारतेन्दु की 'भारत-दुर्दशा', 'विजय वल्लरी', प्रेमघन की 'हार्दिक हर्षादर्श' और 'स्वागत' तथा राधाकृष्णदास की 'विजयिनी विला' आदि। किन्तु शीघ्र ही इन कवियों का राजभक्ति से मोह भी भंग हुआ और ये अंग्रेजों के प्रतिगामी कानूनों, आर्थिक शोषण, पुलिस आदि के अत्याचारों की आलोचना करने लगे। इस संदर्भ में भारतेन्दु ने एक मुकरी इस प्रकार से व्यक्त की है—

''भीतर भीतर सब रस चूँसे, हँसि-हँसि के तन-मन-धन मूसै।
जाहिर बातन में अति तेज, क्यों सखि साजन नहि अंगरेज॥''

साथ ही इस बात का भी क्षोभ व्यक्त करते हुए लिखा है कि हमारे देश का धन विदेशों में जा रहा है।

''अंगरेज राज सुख साज सजै सब भारी।
पै धन बिदेस चलि जात इहै अति ख्वारी॥''

शिक्षा, बरोजगारी, सरकारी अमलों, पुलिस पर भी भारतेन्दु ने अनेक पहेलियाँ लिखकर उनको बे-नक़ाब किया है। इन्होंने उस काल में निहित सामाजिक कुरीतियों पर भी अनेक प्रहार किये। भारतेन्दु युगीन काव्यगत प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित मानी जाती हैं—

1. सामाजिक पतन पर क्षोभ,
2. सामाजिक कुरीतियों के निवारण का संकल्प,
3. राष्ट्रीयता,
4. परतन्त्रता के दुःखों का प्रकाशन,
5. सामाजिक सुधार,
6. काव्य में अधिकतर ब्रज भाषा का प्रयोग।

प्रताप नारायण मिश्र, अम्बिका दत्त व्यास, राधाकृष्ण दत्त एवं बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमधन' आदि। भारतेन्दु ने साहित्यिक पत्रिका 'कविवचन सुधा' प्रकाशित करके साहित्यिक पत्रकारिता का सूत्रपात किया।

1.3.2 द्विवेदी युग

भारतेन्दु युगीन काव्य रीति और भक्ति की पृष्ठभूमि पर खड़ा होकर भी जन-जागृति का स्वर देने में असफल रहा। वह उस स्वर को प्रस्फुटित नहीं कर सका जो जीवन को मर्मज्ञ बना सके और इस अधूरे कार्य को पूरा किया द्विवेदी युग ने। जागृति के नवोन्मेष, सुधार परिष्कार और अनुकरणीय जीवन के आदर्शों की नियामिका रही। यह कविता पावनता, संयमशीलता, सदाचार और त्याग की कविता है। इसके कवियों ने त्याग किये हैं किन्तु बिरागी नहीं अपितु अनुरागी बने हैं, साथ ही वे भोगी नहीं थे। स्वामी विवेकानन्द के मुख से कर्मठ वेदान्त और लोकमान्य तिलक के मुख से कर्मयोग का संदेश सुनकर ये जीवन की ओर गये, उससे भागने का प्रयास नहीं किया। अतः इस युग का काव्य वैरागियों या आसक्तों का काव्य नहीं अपितु जिम्मेदार गृहस्थों का काव्य रहा है इसीलिए इनकी कविताओं में प्रवृत्ति, कर्मयोग और नारी सम्मान की भावना समाहित है। इसी का परिणाम है कि इस युग में नवीन मानवतावादी दृष्टि विकसित हुई। सामान्य मानव को गौरव प्राप्त हुआ।

(1903 ई. से 1920 ई.) इसे परिष्कार युग का नाम मिला। इस काल का नेतृत्व बहुत श्रेष्ठ रचनाकार न होते हुए भी 'सरस्वती' के मूर्धन्य सम्पादक एवं विद्वान महावीर प्रसाद द्विवेदी ने किया। उन्होंने अछूते विषयों पर लिखने की प्रेरणा दी। दूसरी भाषाओं, विशेषकर

अंग्रेजी साहित्य के श्रेष्ठ लेखन को स्वयं ने अनूदित किया और अन्य कवियों को अनुवाद के लिए प्रेरित भी किया। परिणाम यह हुआ कि विभिन्न भाषाओं के साहित्य के बीच आदान-प्रदान की समृद्ध परम्परा का श्रीगणेश हुआ और उनका विकास हुआ। भारतेन्दु व उनके सहयोगी साथियों द्वारा काव्यधारा को नवीनतम विषयों की ओर मोड़ने की जो प्रवृत्ति पूर्व में ही सामने आई थी उसका इस युग में पल्लवन व विकास हुआ। इसी युग में राष्ट्रीय काव्यधारा अधिक दृढ़ता पा सकी। खड़ी बोली को गद्य के साथ-साथ पद्य की भी भाषा बनाया गया। भाव व विचारों के साथ-साथ हिन्दी में परम्परा के व्यवहृत छन्दों के स्थान पर संस्कृत छन्दों का प्रचलन हुआ, जिसके कारण संस्कृत पदावली का समावेश बढ़ा। इस क्रम में अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' के योगदान को नहीं भुलाया जा सकता है। 'प्रियप्रवास' में उन्होंने ऐसे छन्दों का प्रयोग बाहुल्यता में किया है। जहाँ एक ओर तो तत्सम और संस्कृत के क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग किया गया, वहीं दूसरी ओर सरल व आम भाषा को भी काम में बड़ी कुशलता के साथ लिया गया, जैसे—

रूपोद्यान प्रफुल्लप्राय,
कलिका राकेन्दु बिम्बावना।
तन्वंगी कलहासिनी
सुरसिका क्रीड़ा कला पुत्तली।
श्री राधा मृदु भाषिणी
मृग दृणी माधुर्य सन्मूर्ति थी।

सरल भाषा में लिखी उनकी काव्य पंक्तियाँ भी दृष्टव्य हैं—

मैं घमण्डों में भरा ऐंठा हुआ,
एक दिन जब था मुण्डेर पर खड़ा।
आ अचानक दूर से उड़ता हुआ,
एक तिनका मेरी आँख में पड़ा।

द्विवेदी युग वह युग था जब जन-जन में मनमानी थी। भाषा और भाव के क्षेत्र में अराजकता फैली हुई थी और कुछ शुद्धतावादी और सुधारक व्यक्तित्व भारतीय जीवन को सही दिशा प्रदान कर रहे थे। ऐसी स्थिति में द्विवेदी जी ने अपने साहित्य और संस्कारी व्यक्तित्व के द्वारा तत्कालीन काव्य एवं साहित्य को सुनिश्चित व सुदृढ़ आधार प्रदान किया। भारतेन्दु युग की समस्या पूर्तियों और तुकबंदियों से लोग ऊब चुके थे, भक्ति और नीति की सीमाओं में बँधी हुई अभिव्यंजना शैली एवं भावधारा अब रुचि को अपने में अधिक समय तक नहीं बाँध सकी। ब्रज भाषा अपना आकर्षण खो चुकी थी। आचार्य द्विवेदी ने अपने परिष्कारी प्रयासों से हिन्दी कविता को विषय-वैविध्य, छंद-वैविध्य और काव्य रूपों के वैविध्य की ओर मोड़ दिया था। यही कारण है कि द्विवेदी जी की प्रेरक एवं प्रोत्साहित करने वाली मनोवृत्ति के कारण मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय ''हरिऔध'', नाथूराम शर्मा तथा सियाराम शरण गुप्त आदि कवियों ने सुधारवादी दृष्टिकोण को अपना कर काव्य रचना की। इस युग की कविता में ये सभी भाव देखे जा सकते हैं।

भाषा का परिष्कार, शैली की विविधता, प्रबन्ध और मुक्तक काव्य सृजन तथा पौराणिक प्रसंगों के आधार पर नवोन्मेष एवं सामाजिक परिष्कार इस सम्पूर्ण काव्यधारा में परिलक्षित होती है। इसकी प्रवृत्तिपरक विवेचना करते हुए डॉ. शिवदानसिंह चौहान ने लिखा है कि—''इन कवियों की दृष्टि मूलतः बहिर्मुखी है इसलिये यह राष्ट्र और जीवन की समसामयिक हलचलों में निरन्तर समाती चली गई है। वह अन्तर्मुखी होकर व्यक्ति चेतना की गहराइयों में नहीं उतर सकी। विशेषकर लोकप्रचलित पौराणिक आख्यानों, इतिहासवृत्तों और देश की राजनैतिक घटनाओं के इस काल के कवियों ने अपने काव्य की विषयवस्तु को सजाया है। इन आख्यानों, वृत्तों और इन घटनाओं के चयन में उपेक्षितों के प्रति सहानुभूति, देशानुराग तथा सत्ता के प्रति विद्रोह का स्वर व्यक्त हुआ। यह एक प्रकार से राजनीति में राष्ट्रीय आन्दोलन और काव्य में स्वच्छन्दतावाद की प्रवृत्ति के बीच बहने वाली कविता की बहिर्मुखी धारा है, जिसने हिन्दी भाषी जनता को आधुनिक युग के व्यक्ति-समाज-सम्बन्धी गहरे तात्विक प्रश्नों के प्रति ही नहीं बल्कि राजनैतिक पराधीनता और राष्ट्रीय संघर्ष की आवश्यकता के प्रति सचेत बनाने में भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

द्विवेदीयुग में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति का भी सूत्रपात हुआ जिसके कारण इस प्रवृत्ति के कवियों ने प्रकृतिप्रेम व मानव प्रेम को भी अपनी रचनाओं में स्थान प्रदान किया। इसप्रवृत्ति को पंडित रामनरेश त्रिपाठी, पं. रूपनारायण पाण्डेय तथा मुकुटधर पाण्डेय ने पुष्ट

किया। इन कवियों ने कविताओं में नवीनता का संचार कर एक नई ताज़गी भर दी। इस सन्दर्भ में आचार्य शुक्ल ने कहा कि ''ये कवि प्रकृति के साधारण, असाधारण सब रूपों का प्रेममयी दृष्टि डालकर, उसके रहस्य भरे सच्चे संकेतों को परख कर भाषा को अधिक चित्रमय, सजीव और मार्मिक रूप देकर कविता को अधिक सहज, स्नेहिल व अकृत्रिम बना रहे थे।'' कवियों के सम्मिलित प्रयासों का परिणाम यह हुआ कि इस युग में नवीन मानवतावादी दृष्टि विकसित हुई, सामान्य मानव को गौरव मिला और कविता केवल अद्वितीय ही नहीं बल्कि क्षुद्रता का विषय भी बनी।

विषयों की विविधता पर ही नहीं बल्कि परिष्कार व शैली की विविधता पर भी आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की पैनी दृष्टि रही। परिणाम यह हुआ कि प्रसंगों के आधार पर नवोन्मेष एवं सामाजिक परिष्कार इस समुची काव्य धारा में परिलक्षित होता है। इसकी विवेचना करते हुए मार्क्सवादी आलोचक डॉ. शिवदान सिंह चौहान ने लिखा है कि—''इन कवियों की दृष्टिमूलता बहिर्मुखी है, इसलिये इस राष्ट्र और जीवन की सामयिकी हलचलों में रमती चली गई है।''

1. 3. 2. 1 प्रमुख प्रवृत्तियाँ

द्विवेदी युगीन कविता की प्रमुख प्रवृत्तियों को हम निम्नलिखित रूपों में स्पष्ट कर सकते हैं—

1. द्विवेदीयुगीन कविता के क्षेत्र में ब्रजभाषा के स्थान पर खड़ी बोली को विशेष महत्त्व दिया गया।

2. भाषा का व्याकरण सम्मत परिष्कार भी द्विवेदी युग में ही हुआ।

3. द्विवेदी युग में प्रबन्ध काव्यों के निर्माण का कार्य प्रारम्भ हुआ और पौराणिक प्रसंगों को युगीन परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया गया। इससे एक नवीन मानवतावाद का मार्ग प्रशस्त हुआ।

4. इस युग में शृंगाररस का बहिष्कार करके आदर्श प्रेम को स्थान दिया गया और नैतिकता का मूल्य उत्तरोत्तर बढ़ता गया।

5. द्विवेदी युग में सामाजिक चेतना की भी अभिव्यक्ति प्रारम्भ हुई। देशभक्ति और राष्ट्रीयता को विकसित होने का अवसर मिला।

6. मानव व्यक्तित्व में आस्था का स्वर प्रबल हुआ और कविता के विषय विस्तृत और विविधात्मक हुए।

7. द्विवेदी युग में प्रयुक्त काव्य-शैलियों में गद्यात्मकता तथा भाव-निर्वहन में इतिवृत्तात्मकता को पर्याप्त महत्त्व मिला।

8. कविता में विविध छन्दों का प्रयोग हुआ और छन्द के प्रति कवियों का ध्यान गया।

9. विद्रोह युग में ही नवीनतम भाषायी प्रयोग सम्पन्न किये गये।

10. कहानी और उपन्यास का यथेष्ठ विकास हुआ, नाटकों का निर्माण कम हुआ। आलोचना और निबन्ध साहित्य के द्वारा गद्य के विकास का मार्ग प्रशस्त होता हुआ चला गया।

11. यद्यपि प्रकृति का स्वतंत्र निरूपण भारतेन्दु युग के प्रारम्भ में हो गया था किन्तु वह परम्परा की परतों में लिपटा होने के कारण आकर्षण का केन्द्र नहीं बन सका।

12. द्विवेदी युग में रामनरेश त्रिपाठी, मुकुटधर पाण्डेय और श्रीधर पाठक ने प्रकृति के आलम्बन रूप को प्रोत्साहित किया। मैथिलीशरण गुप्त और हरिऔध ने मौलिक प्रकृति चित्रण प्रस्तुत किये।

अत: इस युग में सांस्कृतिक पुनरुत्थान, राष्ट्रीयता, सामाजिकता, बौद्धिकता और उच्चादर्शों की प्रतिष्ठा हुई। भाषा के परिष्कार के साथ-साथ विभिन्न शैलियों का सूत्रपात हुआ। इस युग के प्रमुख कवियों में नाथूराम शर्मा 'शंकर', श्रीधर पाठक, महावीर प्रसाद द्विवेदी, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', जगन्नाथदास रत्नाकर, मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, रायदेवी प्रसाद, रामचरित उपाध्याय आदि।

1. 3. 3 छायावाद

आधुनिक कविता के इतिहास में छायावाद एक ऐसा नाम है जो अनेक आरोपों-प्रत्यारोपों की प्रहारक भाषा की चोट सहकर भी अपनी निजता को सुरक्षित रख सका है। सामान्यत: इसे दो महायुद्धों के मध्य प्रवाहित कविता की सर्वाधिक चेतना और कलात्मक धारा कहा जाता है। इसका आविर्भाव आकस्मिक नहीं है। यह अपने पूर्ववर्ती साहित्य की प्रतिक्रिया और तत्कालीन जीवन मूल्यों की शक्ति, क्रांति और सीमाओं से प्रेरित स्वातन्त्र्यबोध के परिणामस्वरूप विकसित काव्यधारा है। शृंगार, भक्ति और राष्ट्रीय की त्रिवेणी में

स्नात होकर भारतेन्दु का काव्य भले ही पूरी तरह रीतियुगीन चेतना से मुक्ति न पा सका हो, किन्तु महावीरप्रसाद द्विवेदी का युग जागृति, परिष्कार और अनुशासनप्रियता के कारण क्रांतिकारी बदलाव लेकर आया। शृंगार का साम्राज्य लुट गया और जब कुंजों के सरस प्रेमालिंगन नैतिकता और सदाशयता के वृत्त में घिरते गये तब साहित्य सर्जक का द्विविधाग्रस्त मानस न केवल प्रश्निल हो उठा, बल्कि भविष्य के प्रति सशंकित भी हो उठा। उसने एक नजर अतीत पर डाली तो वह मुस्करा उठा, वर्तमान को देखा तो चौंक गया और भविष्य पर नजर जमाई तो वह अपने मन में भी अकुला उठा। मुस्कुराने, चौंकने और अकुलाने की स्थितियों को एक साथ अनुभव करने के कारण संवेदनशील कवि का हृदय चीत्कार कर उठा। वह बाहर से क्षुब्ध होकर अंतर्यात्रा पर निकल पड़ा और इस यात्रा में उसने जो पाया वही कविता में छायावाद कहलाया। छायावाद के अंतस् में राग- सौन्दर्य था, मस्तिष्क में प्रश्न थे और वाणी में अभिव्यंजना की क्षमता थी। स्थूल सोपानों को छोड़कर सूक्ष्म शिखरों पर जाकर विश्व मानवता का अलख जगाने वाली यह कविता शिल्प में भी नवीन और मौलिक रही है।

1.3.3.1 सीमांकन और नामकरण

छायावाद का प्रारम्भ और सीमांकन वर्षों के हिसाब से सन् 1918 से 1938 तक किया जा सकता है। बीस वर्ष का यह समय कोई लक्ष्मण- रेखा नहीं है कि इससे दो- चार वर्ष पहले और बाद में न जाया जा सके। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी इस काव्यधारा का प्रारम्भ सन् 1918 ही स्वीकार किया है। छायावाद के रंग- ढंग की कविताओं का सृजन- वर्ष भी यही है। निराला, पंत और प्रसाद ने लगभग इन्हीं वर्षों में लिखना प्रारम्भ किया था। सन् 1916 में निराला की 'जूही की कली' और पंत के पल्लव की कुछ कविताएँ प्रकाश में आ चुकी थीं। ये वर्ष न केवल उथल- पुथल के द्योतक हैं, अपितु सामाजिक परिवर्तन के भी प्रतीक रहे हैं। यही कारण है कि छायावाद का आविर्भाव अपनी अनेक नवीनताएँ लेकर आया। यों भी ये वर्ष (1918 से 1938) आधुनिक भारतीय इतिहास में एक नये और उल्लेख्य मोड़ के कारण युगान्तर के गवाह हैं। समाज, धर्म, राजनीति, विज्ञान और साहित्य सभी इस कालावधि में परिवर्तित और नवीनीकृत हुए हैं। 1918 में 'झरना' का प्रकाशन हो चुका था। उसमें छायावादी चेतना के रंगों को देखकर ही आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने उसे छायावाद की प्रयोगशाला का प्रथम आविष्कार कहा था। तब से लेकर 1935- 36 तक छायावाद का वैभवकाल माना जा सकता है। एक प्रकार से 'झरना' से कामायनी तक के वर्षों को छायावादी कविता की सीमा स्वीकारा जा सकता है। कामायनी 1935 में प्रकाशित हुई और 1936 में प्रांतों में कॉंग्रेसी मंत्रिमण्डल स्थापित हुए। इसके साथ ही एक घटना और घटी और वह यह थी कि ब्रिटिश शासकों ने भारतीय प्रतिनिधियों का बिना विश्वास प्राप्त किये भारत के विश्वयुद्ध में शामिल होने की घोषणा कर दी। परिणामत: कॉंग्रेसी मंत्रियों ने त्यागपत्र दे दिये। इससे भी यही जाहिर होता है कि 1936 से 1939 तक के वर्षों में आधुनिक भारतीय इतिहास एक नये मोड़ पर आ गया था। उधर स्वयं छायावादी कवि भी यह अनुभव कर रहे थे कि अब भावुकता, रंगीनी और छायावादी चेतना से काम नहीं चल पायेगा। सुमित्रानन्दन पंत का युगांत (1936) और 'निराला' की 'अनामिका' में अनेक ऐसी कविताएँ हैं जो छायावादी जमीन से हटकर लिखी गई हैं। इन बातों से स्पष्ट है कि छायावाद की सीमा सन् 1938 तक मानना ही श्रेयस्कर है।

छायावाद की सीमा रेखा के निर्णय के बाद यह प्रश्न सामने आया है कि आखिर इसे छायावाद ही क्यों कहा गया है? बीस वर्ष की अवधि में प्रचुर साहित्य लिखा गया है। अनेक पत्र- पत्रिकाओं के प्रकाशन ने साहित्य को विकसित होने का अवसर दिया। साहित्य सामाजिक उद्देश्य का वाहक बना। इस अवधि में पंत, प्रसाद और निराला ने भी विपुल साहित्य लिखा और माखनलाल चतुर्वेदी, रामनरेश त्रिपाठी व बालकृष्ण शर्मा नवीन ने भी युग सापेक्ष रचनाएँ लिखीं। छायावादियों का लक्ष्य मात्र काव्य साधना था और चतुर्वेदी, त्रिपाठी व नवीन जी युगीन आन्दोलनों से अधिक प्रभावित थे। इसके अतिरिक्त बच्चन, नरेन्द्र शर्मा और अंचल भी प्रणय की लौकिक अनुभूतियों को कविताबद्ध कर रहे थे। जब कविता त्रिमुखी थी तो फिर ऐसा कौनसा कारण है जो इस कालखंड को छायावादी काव्य कहने को प्रेरित करता है। हमारी समझ में इसका प्रमुख कारण यह है कि छायावादी चेतना ही इस अवधि में सब पर हावी रही है। छायावादी काव्य में ही अपने युग जीवन की समग्रता को अभिव्यक्ति मिली है। इसमें ही जीवन के अनुकरणीय आदर्श और अविस्मरणीय प्रसंग नियोजित हुए हैं। हमारे इस मत का प्रमाणीकरण अकेली 'कामायनी' से हो सकता है। बिखरी हुई शक्तियों को एकीकृत करके 'विजयिनी मानवता' का संदेश देने वाली, नारी को वासना पंक से निकालकर अर्चना के आसन पर बिठाने वाली, कल्पना के रंगमहल में ले जाकर आशा के पालने में झुलाने वाली, भाषिक शक्तियों के सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्तरों का उद्घाटन करने वाली, मनुष्य को अकर्मण्यता के माहौल से निकालकर लोक भूमि पर लाकर प्रवृत्ति मार्ग का रास्ता दिखाने वाली और सांस्कृतिक आयामों का अन्वेषण करने की

प्रेरणा देने वाली छायावादी कविता ही है। अत: इस कालखंड को छायावादी कविता कहना सार्थक भी है और औचित्यपूर्ण भी।

1.3.3.2 अर्थ और परिभाषा

द्विवेदी युग की इतिवृत्त प्रधान, गद्याभास देने वाली और बहिर्मुखी स्थूल कविताओं की प्रतिक्रिया स्वरूप छायावाद का आविर्भाव हुआ। इसके जन्म के मूल में तत्कालीन सांस्कृतिक चेतना और नवीन मानवीय चेतना का भी विशेष हाथ रहा है। तत्कालीन साहित्य-समीक्षकों ने छायावाद को जितना समझा नहीं था, उससे कहीं अधिक उनके मनोजगत् में छायावाद नाम छा गया था। यही वजह है कि सन् 1929 के आसपास के वर्षों तक छायावाद की व्याख्या अस्पष्ट ही रही। ऐसी स्थिति में छायावाद को कतिपय समीक्षकों ने 'निर्मल ब्रह्म की विशद छाया' माना तो कुछ के द्वारा उसे 'अन्योक्ति-पद्धति', 'अस्पष्टता और संगीत का अपूर्ण एकीकरण' की संज्ञा से भी अभिहित किया गया। अत: परिभाषा की दृष्टि से देखें तो छायावाद पर्याप्त धनी दिखाई देता है। अनेक विद्वानों ने इसे अपने-अपने ढंग से समझाया है। परिभाषीकरण की यह प्रक्रिया प्रमुखत: आचार्य रामचन्द्र शुक्ल से प्रारम्भ होती है। कतिपय प्रमुख मत एवं परिभाषाएँ यहाँ दी जा रही हैं—

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—'छायावाद शब्द का प्रयोग दो अर्थों में समझना चाहिए। एक तो रहस्यवाद के अर्थ में, जहाँ उसका सम्बन्ध काव्यवस्तु से होता है। .....छायावाद का दूसरा प्रयोग काव्य-शैली या पद्धति विशेष के व्यापक अर्थ में है। .....छायावाद का सामान्यत: अर्थ हुआ प्रस्तुत के स्थान पर उसकी व्यंजना करने वाली छाया के रूप में अप्रस्तुत का कथन।'

उपर्युक्त कथन के सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि आचार्य शुक्ल ने 'छायावाद' को अभिव्यंजना की एक शैली विशेष स्वीकार किया है। साथ ही वे छायावाद और रहस्यवाद को अभिन्न भी मानते थे।

2. आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र—'अभिव्यंजना का नूतन विधान छायावाद का प्रमुख लक्षण रहा है।' निश्चय ही आचार्य मिश्र ने सामाजिक रूढ़ियों के विरोध को स्वच्छंदतावाद और काव्य-शैली के प्रति किये गये विरोध को छायावाद स्वीकार किया है। इससे स्पष्ट संकेतित है कि ये भी अभिव्यंजना की पद्धति विशेष को ही छायावाद मानते हैं। मेरी धारणा है कि अभिव्यंजना और विषय-वस्तु पृथक् होकर भी अविभाज्य एवं अन्योन्याश्रित हैं। अत: छायावाद को मात्र एक अभिव्यंजना-शैली मानना अनौचित्यपूर्ण है।

3. डॉ. रामकुमार वर्मा—'परमात्मा की छाया आत्मा में, आत्मा की छाया परमात्मा में पड़ने लगती है, तभी छायावाद की सृष्टि होती है।'

4. शांतिप्रिय द्विवेदी—'छायावाद एक दार्शनिक अनुभूति है।'

डॉ. वर्मा और शांतिप्रिय जी की परिभाषाओं में छायावाद को रहस्यवाद का ही पार्श्ववर्ती स्वीकार किया गया है। यह स्वीकृति भ्रमजनित है और संकीर्णता को प्रस्तुत करती है।

5. डॉ. केसरीनारायण शुक्ल—डॉ. शुक्ल ने आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के मत का ही अनुमोदन किया है। उनके मूल शब्द इस प्रकार हैं—''छायावाद का अपना ही रहस्य है। इसका मूल बंगला साहित्य के 'छायासदृश' पद में मिलता है। ब्रह्म समाज की उपासना का ढंग रहस्यात्मक है। इसके उपासना के गीतों में उस प्रियतम की झलक का वर्णन होता है जिसका उपासक को कभी-कभी आंशिक आभास मात्र मिलता है। उपासक के लिए प्रतीकों का प्रयोग आवश्यक हो जाता है क्योंकि इस माध्यम द्वारा वह 'दिव्य ज्योति' को धूमिल बनाकर आत्मा के साक्षात्कार के उपयुक्त बनाता है। उस प्रियतम की अपूर्व प्रतिकृति होने के कारण इन प्रतीकों (छाया सदृश) से युक्त कविता का नाम छायावादी कविता पड़ा।'

6. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी—आचार्य द्विवेदी का मत है, ''छायावाद के मूल में पाश्चात्य रहस्यवादी भावना अवश्य थी। इस श्रेणी की (छायावाद) मूल प्रेरणा अंग्रेजी की रोमांटिक भावधारा की कविता से प्राप्त हुई थी और इसमें संदेह नहीं कि उक्त भावधारा की पृष्ठभूमि में ईसाई संतों की रहस्यवादी साधना अवश्य थी।''

7. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी—वाजपेयीजी के मतानुसार, ''मानव तथा प्रकृति के सूक्ष्म, किन्तु व्यक्त सौन्दर्य में आध्यात्मिक छाया का भाव छायावाद की सर्वमान्य व्याख्या हो सकती है।''

8. डॉ. नगेन्द्र—''छायावाद स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह है। यह एक विशेष प्रकार की भाव-पद्धति है और जीवन के प्रति एक विशेष प्रकार का भावात्मक दृष्टिकोण है।''

9. डॉ. रामविलास शर्मा—''छायावाद स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह नहीं रहा है, वरन् थोथी नैतिकता, रूढ़िवाद और सामंती साम्राज्यवादी बंधनों के प्रति विद्रोह रहा है, परन्तु यह विद्रोह मध्यवर्ग के तत्त्वावधान में हुआ था, इसलिए उसके साथ मध्यवर्गीय असंगति, पराजय और पलायन की भावना भी जुड़ी हुई है।''

10. गंगाप्रसाद पाण्डेय—''छायावाद वस्तुवाद और रहस्यवाद के बीच की कड़ी है।''

11. महादेवी वर्मा—''छायावाद स्थूल की प्रतिक्रिया में उत्पन्न हुआ है। अतः स्थूल को उसी रूप में स्वीकार करना उसके लिए सम्भव न हुआ। उसके जीवन के इतिवृत्तात्मक अप्रत्यक्ष सूक्ष्म के प्रति उपेक्षित यथार्थ की नहीं, जो आज भी वस्तु है। .....उसका मूल दर्शन सर्वात्मवाद है। .....छायावाद तत्त्वतः प्रकृति के बीच जीवन का उद्गीत है।''

12. जयशंकर प्रसाद—''जब वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति होने लगी तब हिन्दी में उसे छायावाद के नाम से अभिहित किया गया। .....ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौन्दर्यमय प्रतीक विधान तथा उपचार के साथ स्वानुभूति की विवृत्ति छायावाद की विशेषताएँ हैं।''

13. सुमित्रानन्दन पंत—''छायावाद भावबोध की दृष्टि से जहाँ विगत वस्तुबोध की भूमिका को छोड़कर एक ओर नवीन चैतन्य के शिखरों की ओर बढ़ा, वहाँ कलाबोध की दृष्टि से वह काव्य शास्त्री जड़, अलंकार-युग की सौन्दर्य-धारणा से अपने को मुक्त कर, सीधा-प्रकृति के मुक्त-पंख-प्रसारों में विचरण कर नये सौन्दर्य-उपादानों की खोज में निकल गया। .....छायावाद ने अपना सौन्दर्य बोध विगत युगों के संचय स्वरूप जीर्ण खलिहानों एवं भण्डारों से उधार न लेकर, उसे स्वयं नये रूप से प्रकृति के उर्वर आँगन में उगाया और उसकी प्राणमयी सुनहरी बालियों से अपनी नवमुग्धा काव्य-चेतना का शृंगार किया।''

छायावादी काव्य को अनेक आलोचकों ने अपने ढंग से जाँचा परखा है और अपना अभिमत सामने रखा है। उनके विवेचन, अभिमत से इस महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति को समझने में हिन्दी साहित्य के अध्येता को भरपूर सहायता मिलती है। डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा है—''रोमांटिक कविता व्यक्तिवाद की ओर झुकी होती है। कवि अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं की ओर अधिक ध्यान देता है, समाज की आवश्यकताओं की ओर कम। व्यक्ति और समाज व्यवस्था के संघर्ष से रोमांटिक कविता का जन्म होता है। समाज की रूढ़ियों से अपना मेल न कर सकने के कारण कवि कभी अपना स्वप्न लोक बसाता है, कभी प्रकृति की गोद में शरण लेता है, कभी भविष्य के सुनहरे सपनों के गीत गाता है।'' छायावादी काव्य रोमांटिक काव्य है, इसे सभी ने स्वीकारा है। डॉ. नामवरसिंह ने छायावाद के सम्बन्ध में लिखा है—''छायावादी कवियों के लिए कल्पना बुनियादी चीज थी। कल्पना उनके व्यक्तित्व का अभिन्न अंग थी, उनकी कल्पना शक्ति को दबाने का अर्थ था स्वयं उनके व्यक्तित्व को दबाना। कल्पना ही उनकी वह शक्ति है जिसके द्वारा वे अपने बन्धनों की सीमा में रहते हुए भी उन्मुक्त आकाश में विचरण करने का सुख लेते थे। कल्पना-छायावादी कवि के मन की पंख थी। वह उनकी स्वतंत्रता, मुक्ति, विद्रोह, आनन्द आदि की आकांक्षाओं का प्रतीक थी।''

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि छायावादी कवियों ने छन्द के सम्बन्ध में काफी स्वतंत्रता ली है। कविता का छन्द के बन्धन से छायावाद के शीर्ष कवि महाप्राण निराला ने ही मुक्त किया। उन्होंने 'परिमल' की भूमिका में अपनी बात इस प्रकार की—''मुक्त छंद तो वह है जो छंद की भूमि में रहकर भी मुक्त है। .....उसमें नियम कोई नहीं, केवल प्रवाह कवित्त छन्द का-सा जान पड़ता है। कहीं-कहीं आठ अक्षर आप ही आप आ जाते हैं। मुक्त छन्द का समर्थक उसका प्रवाह ही है। वही उसे छन्द सिद्ध करता है और उसका नियम साहित्य उसकी मुक्ति।''

छायावादी कवियों में प्रमुख हैं—जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पंत, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' और महादेवी वर्मा किन्तु डॉ. रामकुमार वर्मा व पंडित माखनलाल चतुर्वेदी का योगदान भी महत्त्वपूर्ण है।

छायावाद के संध्याकाल के समानान्तर कुछ सशक्त कवि समस्त मतवादों और काव्य आन्दोलनों से अलग होकर उन्मुक्त स्वच्छंद, काव्य सृजन करते रहे, जिनमें उल्लेखनीय हैं—हरिवंशराय बच्चन, रामधारीसिंह 'दिनकर', रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', नरेन्द्र शर्मा इत्यादि। प्रारम्भ में ये कवि छायावादी संस्कारों के कलेवर के साथ ही उदित हुए, किन्तु इनकी काव्य चेतना मुख्यतः सभी समकालीन और परवर्ती मतवादों के कूल कगारों का संस्पर्श करती हुई जिन्दगी की जमीन पर खुद अपना रास्ता बनाती रही। इतना ही नहीं, व्यक्तिवादी गीत-कविता के समानान्तर राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता भी लिखी जा रही थी। यह प्रवृत्ति भारतेन्दु युग में प्रारम्भ हुई, द्विवेदी युग में अधिक प्रखर व मुखर हुई। छायावादी युग की रचनाओं में भी 'अमर्त्य' वीर पुत्र हो, दृढ़ प्रतिज्ञ सोच लो। प्रशस्त पुण्य पथ है बढ़े चलो, बढ़े चलो, जैसी पंक्तिया लिखी गईं। ऐसे कवियों में दिनकर, अंचल, भगवतीचरण वर्मा, बालकृष्ण शर्मा, 'नवीन', सुभद्राकुमारी 'चौहान'

इत्यादि की रचनाओं में राष्ट्रीयता का नया स्वर उभर कर आया।

1.3.3.3 छायावाद : प्रवर्तक का प्रश्न

'छायावाद' के प्रवर्तक के सम्बन्ध में पर्याप्त विवाद रहा है। अस्तु एक ओर जहाँ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने प्रवर्तन का श्रेय 'मुकुटधर पांडे' और मैथिलीशरण गुप्त को प्रदान किया है तो कुछ लोग पंत की 'उच्छ्वास' नामक कविता से छायावाद का प्रारम्भ मानकर पंत को यह श्रेय देना चाहते हैं। इस मत के प्रमुख समर्थक आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी रहे हैं। ध्यान से देखें तो प्रसाद पंत से पहले काव्य-क्षेत्र में आये। सन् 1913-14 में ही 'इन्दु' नामक पत्रिका के माध्यम से 'प्रसाद' की जो कविताएँ सामने आयीं वे छायावाद की प्रारम्भिक कविताएँ मानी जानी चाहिए। ये कविताएँ 'कानन-कुसुम' में संगृहीत हैं। इसके पश्चात् सन् 1919 में 'झरना' का प्रकाशन हुआ। इसकी भूमिका में प्रकाशकीय वक्तव्य के माध्यम से कहा गया है, ''जिस शैली की कविता को हिन्दी साहित्य में आज छायावाद नाम मिल रहा है उसका प्रारम्भ प्रस्तुत संग्रह द्वारा ही हुआ है।'' प्रभाकर माचवे और आचार्य विनयमोहन शर्मा ने भी छायावाद का प्रारम्भ तो सन् 1913 से स्वीकार किया है, किन्तु इसके प्रवर्तन का श्रेय उन्होंने भारतीय आत्मा माखनलाल चतुर्वेदी को प्रदान किया है। मेरी धारणा है कि छायावाद का प्रवर्तक प्रसाद को ही माना जाना चाहिए क्योंकि प्रसाद ने अपनी प्रारम्भिक कविताओं में ही छायावादी पद्धति की रचनाएँ प्रस्तुत कर दी थीं और अपनी कालजयी कृति 'कामायनी' तब वे इसी भावधारा और शिल्प संचेतना की कविताएँ लिखते रहे। पंत का काव्य विकास विविध सोपानों से गुजरा है जबकि प्रसाद की काव्य-चेतना का पथ पूर्णतः छायावादी रहा है। अंतस् में सौन्दर्य, मस्तिष्क में प्रश्नों का अम्बार और वाणी में सूक्ष्म अभिव्यंजना की क्षमता के लिए प्रसाद अपने प्रभावी व्यक्तित्व के साथ छायावादी कविता के दिशा-निर्देशक भी बने और बदलते परिप्रेक्ष्य के वाहक भी। उन्होंने शुभ्रवसना और संन्यासिनी बनी कविता को नये सिरे से सजाया-संवारा। उसके मुख को राग से रंजित किया, अधरों में मधुर कंपन भरा, कपोलों को स्निग्ध किया और केशराशि को न केवल सज्जित किया, अपितु उसमें आक्रामक सौन्दर्य भी भरा। उनके बोल मानवता के प्रचारक बने, प्रवृत्ति पथ के प्रेरक बने और वे बुद्धि और हृदय के संतुलित मार्ग से होते हुए आनन्द के शिखरों पर स्वर्णिम रेखा बनकर फैल गये। उनकी शब्द-व्यवस्था परिष्कृत होकर सूक्ष्म अर्थों की वाहिका बनकर, लाक्षणिक, व्यंजक और वक्रतापूर्ण भंगिमाओं में बदलकर जीवन, समाज और दर्शन की गुत्थियों को सुलझाने का उपयोगी माध्यम बनी। इसके लिए प्रसाद को कड़ी मेहनत तो करनी पड़ी, किन्तु वे छायावाद के प्रवर्तक भी बने और अपने श्रम का सुफल भी देख सके।

1.3.3.4 प्रवृत्तिगत विशेषताएँ

मनुष्य का जीवन चक्रवत् घूमता है। यही कारण है कि कभी तो वह स्वच्छंदता से ऊबकर अनेक बंधनों का निर्माण करता है और कभी उनमें निरन्तर पिसते रहने के कारण अपनी सारी शक्ति से उन्हें तोड़ डालने का श्रम उठाता है। छायावाद के जन्म के मूल में अन्य कारणों के साथ-साथ एक यह भी महत्त्वपूर्ण कारण रहा है। महादेवी वर्मा ने तो स्पष्ट कहा है कि, ''सृष्टि के बाह्याकार पर इतना अधिक लिखा जा चुका था कि मनुष्य का हृदय अपनी अभिव्यक्ति के लिए रो उठा।'' द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मक शैली और पवित्रतावाद व रीतिकालीन स्थूल शृंगार के चरण इतनी तेजी से बढ़े कि छायावादियों को न केवल उनके प्रति विद्रोह करना पड़ा, अपितु वैयक्तिक प्रसार-अस्मिता की खोज का आन्दोलन भी छेड़ना पड़ा। विद्रोह का यह स्वर कला की दृष्टि से पर्याप्त मूल्यवान है, क्योंकि इन कवियों ने वैयक्तिक-स्वतंत्रता को वाणी देने के लिए प्रतीकों का प्रयोग किया, भाषा के ऐसे लाक्षणिक, व्यंजनात्मक और वक्रतापूर्ण प्रयोग किये कि पूर्ववर्ती काव्य स्वतः ही हीन से हीनतर भावना का शिकार होता गया। भाव की दृष्टि से व्यक्ति स्वातन्त्र्य की भावना प्रबल होती गयी। फलतः छायावादी कवि विश्व को अपनी आँखों से देखने का आदी हो गया और सांसारिक सुख-दुःख और विरह मिलन वैयक्तिक संदर्भों में जुड़ते गया।

छायावादी काव्य जीवन में वैसा कोई ठोस कार्य न कर सका जैसा कि छायावादोत्तर काव्य में दिखाई देता है। इतने पर भी यह निर्विवाद है कि उसमें जो सौन्दर्य चेतना विकसित हुई, वह लजीली व नजाकत भरी होने के कारण जीवन के सूक्ष्म से सूक्ष्म राग संवेदनों को उभारने में कामयाब रही। जीवन की ठोस मिट्टी से दूर कल्पना का रंगमहल सजाने वाली यह कविता जीवन को गतिशील नहीं बना सकी। यही कारण है कि उसकी उम्र के वर्ष उंगलियों पर गिने जा सकते हैं। खैर जो भी हो, उसका सौन्दर्य हमारे आकर्षण का प्रमुख केन्द्र रहा है। सौन्दर्य और प्रेम के रंगों से मिलकर जिस छायावादी काव्य का निर्माण हुआ उसकी प्रमुख प्रवृत्तियों को भाव, विचार और

शैली जैसे तीन भागों में विभाजित करके प्रस्तुत किया जा सकता है। इस काव्य धारा की भाव-क्षेत्रीय विशेषताओं में वैयक्तिकता, प्रकृति सौन्दर्य, नारी भावना, प्रेम भावना, कल्पना की व्यापकता और निराशा, अवसाद और वेदना आदि को लिया जा सकता है तो विचारगत विशेषताओं में अद्वैत दर्शन (सर्वात्मवाद) मानवता, विश्वात्मा व विश्वबंधुत्व आदि को लिया जा सकता है। रही शैलीगत विशेषताएँ उनमें कोमलकान्त पदावली, चित्रभाषा, लाक्षणिकता, प्रतीकात्मकता, आलंकारिकता, छंदों की नवीनता और शैली की प्रतीकात्मकता को लिया जा सकता है। समग्रत: छायावाद की प्रमुख प्रवृत्तियों का प्रस्तुतीकरण निम्नांकित रूप में किया जा सकता है—

1. छायावाद के भाव सौन्दर्य में जो तत्त्व आकर मिल गये हैं, उनमें व्यक्तिवादिता का स्थान पहला है। इसी व्यक्तिवादिता से प्रेरित-अनुप्रेरित होकर करुणा, प्रेम, सुख-दु:ख और हर्ष-विषाद की अनुभूतियाँ अभिव्यक्त हुई हैं। द्विवेदी युगीन कविता में बाह्य जगत् की तथ्यात्मक अभिव्यक्ति इतनी अधिक थी कि मानव मन की गहन पर्तों में दबा पड़ा भाव लोक भीतर ही भीतर कसमसाता रहा था। छायावाद में उसे पहली बार बाहर आकर खुलकर रोने का अवसर प्राप्त हुआ। यही कारण है कि छायावाद के भावलोक में सबसे ऊँची और सुरीली तान हृदय की है—उस हृदय की जिसकी गहन गम्भीर वीथियों में मानव मन अब तक अटका हुआ था। यद्यपि यह व्यक्तिवाद एक अर्थ में भक्ति काल और शृंगार काल में भी था, पर दूसरे प्रकार का। वहाँ वैयक्तिकता या तो ईश्वर के प्रति आत्मनिवेदन में अभिव्यक्त हुई है या फिर प्रणय सम्बन्धों की चर्चा में। प्रसाद, पंत, महादेवी और निराला सभी में व्यक्तिवादिता का यह रूप देखा जा सकता है। इनके समक्ष कोई आवरण नहीं रह गया है। यही कारण है कि पूर्ववर्ती कवि जहाँ राम, कृष्ण, सीता और राधा की ओट से अपने मनोभावों को व्यक्त करते थे, वहीं छायावादियों ने सभी माध्यमों को हटाकर सीधे सामने आकर अपनी वैयक्तिक स्थिति-परिस्थिति को प्रकाशित किया है।

2. छायावादी काव्य की दूसरी विशेषता है प्रकृति का चैतन्यीकरण। छायावादी कवियों ने प्रकृति के प्रति विशेष अनुराग प्रदर्शित किया है। ऐसा लगता है कि जैसे इन कवियों ने मानव हृदय और प्रकृति के सम्बन्ध को सौन्दर्य के तार से ऐसा बाँध दिया कि वह चाहने पर भी छूटने का कोई मार्ग न सोच सका। प्रकृति के मृदु और मोहक चित्रों की एक लम्बी शृंखला छायावादी कविता में देखी जा सकती है। आलम्बन, उद्दीपन मानवीकरण आदि कितने ही सन्दर्भों में प्रकृति एक खुली किताब बनकर सामने आयी है। फलत: उल्लास, पीड़ा, उन्माद और रागात्मक संवेदन आदि की लिखावट काफी साफ है। उनमें हरी मेदुर घास पर बिछी ओस की बूँदों, उषा की सुनहरी किरणों, घनी अमराइयों से छन-छनकर आती चाँदनी के अनेक सरस किन्तु यथार्थ वर्णन मिलते हैं। पंत का 'पल्लव', 'प्रसाद' की 'कामायनी', निराला की 'परिमल' और महादेवी वर्मा की 'यामा' प्राकृतिक सुषमा के अक्षय भण्डार हैं जिनमें ऐन्द्रियता भी है और पावनता भी। छायावाद में प्रकृति के जो विविधवर्णी और विराट चित्र मिलते हैं, उनका द्विवेदी युग तक प्राय: अभाव रहा है।

3. छायावादी कविता की तीसरी विशेषता नारी के प्रति पवित्र और पूज्य भावना का संचार है। रीतियुगीन कविता में शृंगार की अभिव्यंजना नायक-नायिका, राधा और कृष्ण या कृष्ण और गोपियों के माध्यम से की गयी है, किन्तु छायावाद में कवि और पाठकीय चेतना के मध्य में केवल अनुभूति रही है अन्य कोई भी उपादान वहाँ नहीं है। छायावादी कविता में नारी पूजा और श्रद्धा की प्रतिमा बनकर आयी है। उसका स्थूल की अपेक्षा सूक्ष्म और सूक्ष्मतर वर्णन ही अधिक हुआ है। प्रसाद ने 'नारी तुम केवल श्रद्धा हो' कहकर तथा पंत ने 'देवि! माँ, सहचरि प्राण' कहकर उसके प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त की है। इतने पर भी यह सच है कि इस काव्य में प्रिय का रूप ही प्रधान है, किन्तु वह एक ऐसा रूप है जिसमें कामुकता की गन्ध नहीं है।

4. छायावादी कविता की एक विशेषता प्रणय भावना है। वास्तव में छायावाद सौन्दर्य सरोवर की तरंगों से युक्त प्रणयानुभूति का काव्य है। इसमें सौन्दर्य की सूक्ष्मातिसूक्ष्म अनुभूतियों का अभिव्यंजना भी है और प्रणयावेग की स्थिति में प्रणय से सम्बद्ध अनेक मानसिक अवस्थाओं—आशा, आकुलता, आवेग, तल्लीनता, निराशा, अतृप्ति, स्मृति और विषाद आदि का चित्रण भी मिलता है। रीतिकाल में जो प्रेम वासना के पंक में फँसकर गँदला हो गया था और प्रिय के अधरों पर जो पान पीक के धब्बे लगे थे, उन्हें छायावादियों की पवित्र अनुभूतियों ने पोंछ दिया है। छायावाद में प्रेम का ऐन्द्रिय और उदात्त रूप अवश्य मिलता है फिर भी यह सच है कि छायावाद में प्रेम तन से मन की ओर गया है।

5. छायावाद की एक अन्य विशेषता सौन्दर्यानुभूति है। छायावादियों को सौन्दर्यानुभूति में नारी-सौन्दर्य और प्रकृति-सौन्दर्य के सूक्ष्म, व्यंजक और मार्मिक चित्र देखने को मिलते हैं। पंत, प्रसाद, निराला और महादेवी सभी की कविताओं में नारी के प्रति एक सूक्ष्म सौन्दर्यदर्शी भाव मिलता है। अपवादस्वरूप कहीं शृंगारिक सन्दर्भ आ गया हो तो वह अलग बात है। छायावादी नारी स्पर्श के मेल से ऊपर है। वह जागरण नहीं चाहती है। जागरण के पश्चात् तो उसे कर्म क्षेत्र में उतरना पड़ेगा और फिर उसकी देहलता कुम्हला जायेगी।

6. कल्पना की विवृत्ति और भावातिरेक भी छायावाद की एक प्रमुख प्रवृत्ति रही है। संपूर्ण छायावादी काव्य को पढ़ने पर यह तथ्य उभरकर सामने आता है कि इसमें कल्पनातिरेक की प्रवृत्ति कहीं-कहीं तो इतनी अधिक बढ़ गयी है कि कल्पना ही कविता का पर्याय बन गयी है। यह कल्पना का अतिरेक प्रसाद, पंत और निराला सभी में देखने को मिलता है। छायावादी कवियों ने बीसवीं शताब्दी के आन्दोलन से प्रभावित होकर स्वच्छंद परिवेश की कल्पना की थी और इसी कल्पना के कारण उसमें ऐसी अनगिनत पंक्तियाँ लिखी गयी हैं जो इन कवियों के मन की यथा, पराधीनता और घुटन के धुएँ से घुटते मन की सशक्त और स्वच्छंद अभिव्यंजनाएँ हैं। कल्पना भक्ति काव्य में भी थी, किन्तु वह वहाँ मर्यादा की डोर से बंधी रही। तुलसी की कविता इसकी गवाही दे सकती है। इसी प्रकार रीतियुग में भी कल्पना की गयी, किन्तु आश्रयदाताओं की इच्छाओं के बंधनों की दीवार वहाँ भी रहीं। जब यही कल्पना छायावादियों तक पहुँची तो वह नये रूप रंग में पुनर्जीवित हो उठी।

7. छायावादी कविता में अवसाद, नैराश्य और वेदना का स्वर भी देखने को मिलता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि छायावाद में यही सब कुछ है। वैयक्तिकता का जो पहलू पंत, प्रसाद, निराला और महादेवी में मिलता है वह भी इसी की एक कड़ी है। मेरी समझ में वेदना, नैराश्य और अवसाद की भावनाएँ आलोच्य काव्य में दो कारणों से आई है—जीवन गत असफलता के कारण और स्थित विशेष की तत्कालीन प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप। जो समीक्षक इसका मूल असहयोग आन्दोलन की विफलता में खोजता है वे ऐतिहासिक भ्रम के शिकार हैं। प्रसाद का 'आँसू' वेदना की स्याही से लिखा गया काव्य है जो पंत की 'ग्रंथि' और 'पल्लव' की अनेक कविताओं में कवि के भग्न हृदय की वेदना और निराशा प्रतिबिम्बित हुई है। महादेवी की वेदना औ नैराश्यजनित अवसाद भावना का सन्दर्भ भी नितान्त वैयक्तिक है। यह अलग बात है कि निराला की वैयक्तिकता में समाज की वेदना भी आकर मिल जाती है। इतने पर भी यह तथ्य विस्मरणीय नहीं कि उनकी शैली फिर भी वैयक्तिक ही बनी रही है।

8. छायावादी कविता में अतीत प्रेम और सरल जीवन की ओर लौटने का भाव भी मिलता है अत: इस प्रवृत्ति को भी उपेक्षित नहीं किया जा सकता है। कुछ समीक्षकों ने छायावाद को पलायनवादी भी कहा है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि छायावाद से यदा-कदा ऐसी पंक्तियाँ भी लिखी गयी हैं जो उनकी इस वृत्ति को स्पष्ट करती है। प्रसाद की 'तो चल मुझे भुलावा देकर, मेरे नाविक धीरे-धीरे' में यही भाव प्रतिध्वनित है। मैं समझता हूँ कि यह कथन अपवाद स्वरूप आया है क्योंकि इसी कविता की अंतिम पंक्तियों में जीवन का सन्देश प्रतिध्वनित है। फिर अपवादों के नियम कहाँ बनते हैं? वास्तव में प्रसाद जीवन से कटे हुए नहीं थे। यदि वे सचमुच जीवन से कटे हुए होते तो जीवन सत्य की बोधक निम्नांकित पंक्तियाँ कैसे लिख पाते?

तप नहीं, केवल जीवन सत्य,
करुण यह क्षणिक दीन अवसाद
तरल आकांक्षा से है भरा
सो रहा आशा का आह्लाद।

9. छायावादी कविता में कतिपय वैचारिक प्रवृत्तियाँ भी विकसित हुई हैं। छायावाद की विचारधारा में अद्वैत दर्शन, धर्म के क्षेत्र में मानववाद, राजनीति में विश्वबंधुत्व साहित्य में कलावाद और समाज में समन्वयवाद जैसी प्रवृत्तियाँ भी मिलती हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि दर्शन के क्षेत्र में यह काव्यधारा, अद्वैतवाद अथवा भारतीय सर्वात्मवाद की पक्षधर रही है। निराला, प्रसाद और महादेवी की कविताएँ इसका प्रमाण हैं। दार्शनिक पीठिका पर जहाँ छायावाद सर्वात्मवाद का पोषक रहा है, वही धर्म के क्षेत्र में यह मानव का गुणगान करता हुआ मानवता की ओर बढ़ता चला गया है। इन कवियों का मानवतावाद भारतीय नवजागरण अथवा सांस्कृतिक नवोत्थान से प्रभावित है। विश्वव्यापी मानवता की गूँज भी छायावादियों में मिलती हैं। निराला के 'बादल राग' में भारतीयों की आत्मा में जागृति का मंत्र फूँका गया है जो 'जागो फिर एक बार' में समग्र राष्ट्र के प्रति आह्वान किया गया। प्रसाद ने लिखा भी है—

औरों को हँसते देखो मनु हँसो और सुख पाओ।
अपने सुख को विस्तृत कर लो सबको सुखी बनाओ।

10. शिल्प की दृष्टि से यह कविता में प्रतीकात्मकता, कोमलकान्त पदावली, चित्रभाषा का प्रयोग, लाक्षणिकता, प्रतीकात्मकता आलंकारिकता और छंदों की नवीनता आदि को विशेष महत्त्व प्राप्त है। छायावादी कवियों का शब्द विधान केवल हिन्दी पर ही आश्रित नहीं रहा है। इन्होंने संस्कृत, उर्दू, फारसी और लोकभाषा सभी ओर अपने हाथ फैलाये हैं। हाँ, इन कवियों ने अपने शब्द भण्डार की वृद्धि के लिए शब्दों का निर्माण भी खूब किया है। भले ही इस कार्य में वे व्याकरण के नियमों की अवहेलना कर गये हैं। लक्षणा और व्यंजना दोनों के सफल प्रयोग छायावादी काव्य की विशेषता कहे जा सकते हैं। जहाँ तक अलंकार प्रयोग का प्रश्न है, उसके विषय में

यही कहना उचित लगता है कि छायावादी कविता एक ऐसी नारी के रूप में हमारे सामने आयी है जो आधुनिकता है—ऐसी आधुनिकता जिसे अलंकारों का बोझ अपने शरीर पर लादे चलना तो रुचिकर नहीं है, किन्तु अनिवार्य सौन्दर्य प्रसाधन के सहचर बनकर आने वाले अलंकार अप्रिय भी नहीं हैं। यही कारण है कि इन कवियों के काव्य में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा और दृष्टान्त जैसे अलंकारों का प्रयोग भी बहुलता से किया गया है। छायावादी कवियों ने प्रतीक प्रयोग में भी अपनी गहरी रुचि दिखलाई है। इस कविता में प्राचीन और नवीन दोनों ही प्रकार के प्रतीकों का प्रयोग किया गया। छायावाद में प्राप्त बिम्ब मानवीय संवदेना की पृष्ठभूमि सहित काव्य में अवतरित हुए हैं। प्राकृतिक क्षेत्र के लिए जाने के कारण छायावादी काव्य के बिम्ब या तो भाव बिम्ब हैं या अलंकृत बिम्ब। यों ऐन्द्रिय बिम्बों का प्रयोग भी छायावादी कविता में कम नहीं हुआ है। जहाँ तक छंदविधान का प्रश्न है, इस विषय में यही कहा जा सकता है कि इस कविता में मात्रिक और मुक्तक छंद—दोनों का प्रयोग हुआ है, किन्तु उर्दू और अंग्रेजी से प्रभावित छंदों की भी कमी नहीं रही है।

1.3.4 प्रगतिवाद

छायावाद और प्रगतिवाद के मध्य सेतु रूप में जो काव्य प्रयत्न सामने आये वे राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता और प्रणयमूलक वैयक्तिक कविता की संज्ञा से अभिसिक्त किए जा सकते हैं। राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता जिस कलम से लिखी गयी वह राग और उत्साह के स्वरों की साधना में अधिक रत रही है। इन कवियों के हृदय में विदेशी शासक के प्रति जितना गहरा आक्रोश था उससे कहीं अधिक प्रेम अपने देश के लिए था। इनका आक्रोश अपेक्षाकृत उग्र था और इस उग्रता का कारण अंग्रेजों की साम्राज्यवादी नीति और शोषक वृत्ति थी। आग की लपटें जैसे-जैसे तेज होती गयीं, वैसे-वैसे कवियों का संवेदनशील हृदय आक्रोश से भरता गया। यही कारण है कि आजादी के दीवाने और स्वतन्त्र अस्तित्व के आकांक्षी इन कवियों ने देश-प्रेम, नवनिर्माण, विद्रोह, अतीत व संस्तुतिपरक गान और असहयोग व आत्मबलिदान के गीत अधिक गाये हैं। ये वे कवि थे जो राष्ट्रीय प्रेम के प्रसारक भी थे और आजादी के लड़ाई का एक हिस्सा भी थे। वैयक्तिक प्रणयमूलक कविता आदर्शवादी और भौतिकवादी मूल्यों एवं मान्यताओं की मध्यवर्ती काव्यधारा है। यह वह कविताधारा है जिसने छायावाद की अंगुली पकड़कर चलना सीखा पर किंचित भिन्न मार्ग अपनाकर प्रगतिशील कविता के लिए भूमिका भी तैयार की। ऐसी स्थिति में इसे छायावाद की अनुजा और प्रगतिवाद की अग्रजा कहा जा सकता है।

छायावाद ने जीवन-सौन्दर्य के संगमरमरी ताज को बना तो दिया, किन्तु वह आँखों को ही लुभा नहीं सका। उसके झरोखों से मन्दिर बयार तो आ सकी, किन्तु उसका स्पर्श मात्र सिरहन पैदा कर सका, जीवन की अदृश्य शक्तियों को जाग्रत कर यथार्थ को झेलने की हिम्मत न दे सका। जीवन मात्र स्वप्न नहीं है, सत्य भी है। अतः उसके लिए केवल सपने काफी नहीं हैं। यही कारण है कि छायावादियों का स्वप्न सत्य के ताप से झुलसने लगा और धीरे-धीरे भीतर ही भीतर जनमानस में एक सुगबुगाहट हुई। जीवन चेतना ने करवट ली। एक नया मानवतावाद जन्मा, जीवन यथार्थ की ठोस धरती पर आ खड़ा हुआ और इसे अभिव्यक्ति देने वाला काव्य प्रगतिवाद कहलाया। प्रगतिवादी काव्य के जन्म और विकास में राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश तो सहायक हुआ ही है, मार्क्सवादी दर्शन, फ्रायडीय चेतना और छायावाद की जीवन शून्य व्यक्तिवादी कविता के प्रति प्रतिक्रियाभाव भी रहा है। प्रगतिवाद मूलतः रचना और आलोचना के क्षेत्र में नये दृष्टिकोण का वाहक बनकर आया था। उसकी दृष्टि धरती और समाज की ओर रही। उसने उपयोगितावादी मूल्यों को न केवल कविता से जोड़ दिया, अपितु अनिवार्यता के रूप में भी प्रस्तुत किया। प्रगतिवाद ने वर्ग भेद की खाई को पाटने का काम तो किया ही, मनुष्य को सामाजिक और राजनैतिक भूमिका भी प्रदान की। वस्तुतः जो मानवीय चेतना अंतर्जगत् के गहन गह्वरों में जाकर भ्रमित हो गयी थी और भटकन के प्रवेग में बाह्य जगत् की पद्धति, रीति नीति और मानवीय समस्याओं को विस्मृति के गर्त में डाल चुकी थी, उसे सही अर्थ में समाजोन्मुखी करने का काम प्रगतिवाद ने ही किया।

प्रगतिवाद साहित्य का वह रूप है जो जीवन को स्वस्थ एवं हितकारी दिशा प्रदान करता है। यों यह सामान्य अर्थ है। इसका विशिष्ट अर्थ तो मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद पर आधारित है। अतः प्रगतिवाद वह साहित्यधारा है जो एक विशेष पद्धति से और विशेष दिशा में आगे बढ़ती है और उसी ओर जीवन को भी ले जाती है। निश्चय ही यह विशेष पद्धति और विशेष दिशा द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की ही दिशा है।

'प्रगतिवाद' के साथ ही 'प्रगतिशील' शब्द भी निरन्तर व्यवहार में आता रहता है। कुछ समीक्षक प्रगतिवाद और प्रगतिशील को एक-दूसरे का पर्याय व समानार्थक शब्द समझते हैं जो उनका भ्रम मात्र है। प्रगतिवाद एक खास किस्म के साहित्य के लिए व्यवहार में आया शब्द है। इसके विपरीत प्रगतिशील शब्द की परिधि में पर्याप्त व्याप्ति और विस्तृति है। फिर प्रगतिशीलता कब नहीं रही? वह

तो युगानुरूप सन्दर्भों में प्रत्येक काल में रही और रहेगी। कारण, परिवर्तनशीलता जीवन, समाज और साहित्य का शाश्वत धर्म है। अत: प्रगतिशीलता युग धर्म की व्याख्या का नाम है। जब प्रगति शब्द में वाद जुड़ जाता है तो वह एक देश-काल विशेष और समाज की मन:स्थित के प्रकर्ष को तो निरूपित करता है पर अपनी सीमाओं के घेरे में कैद भी हो जाता है। छायावाद की कोख के जन्मा हिन्दी का नया साहित्य प्रगतिशील तो है, किन्तु एक विशिष्ट सिद्धान्त और दर्शन के वादात्मक वृत्त में घिर जाने से संकीर्ण और निश्चय धर्म का द्योतक भी हो जाता है। अत: प्रगतिवाद और प्रगतिशील में वही अंतर है जो वाद और शील में है। प्रगति दोनों में विद्यमान है, परन्तु एक ही प्रगति 'वाद' युक्त है और दूसरे की 'शील' संयुक्त। 'शील' एक आचरणिक प्रक्रिया है और युगानुरूप साँचे में ढलकर निरन्तरता का बोध कराती है। इसके विपरीत 'वाद' का घेरा अधिक जड़, निर्जीव और अतिरिक्त विचारात्मक है। यही कारण है कि प्रगतिवाद साहित्य में इतिहास बन गया और तत्कालीन परिस्थितियों से आक्रान्त होकर वात्याचक्र की तरह उठा और कुछ ही वर्षों में विलीन हो गया। 'प्रगतिशीलता' इस दौर से कभी नहीं गुजरती है।

1.3.4.1 प्रगतिवाद का अर्थ

अब प्रश्न यह है कि 'प्रगतिवाद' क्या है? 'प्रगति' और वाद के मेल से बने इस शब्द का सामान्य अर्थ ऊपर बताया जा चुका है। हिन्दी के कवि समीक्षकों और विचारकों ने प्रगतिवाद की परिभाषा अपने-अपने ढंग से दी है, किन्तु सभी परिभाषाओं में मार्क्सीय दर्शन की ही साहित्यिक अभिव्यंजना को प्रगतिवाद कहा गया है। श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा ने लिखा है, 'प्रगतिवाद' सामाजिक यथार्थवाद के नाम पर चला गया वह साहित्यिक आन्दोलन है जिसमें जीवन और यथार्थ के वस्तु-सत्य को लेकर छायावाद काल में प्रश्रय मिला और जिसने सर्वप्रथम यथार्थवाद की ओर समस्त साहित्यिक चेतना को अग्रसर होने की प्रेरणा दी। 'शिवदानसिंह चौहान' ने प्रगतिवाद की व्याख्या और परिभाषा में लिखा है, ''प्रगतिवाद'' साहित्य की धारा नहीं, साहित्य का मार्क्सवादीय दृष्टिकोण है, जैसे रस सिद्धान्त साहित्य की धारा नहीं, साहित्य का प्राचीन आध्यात्मिक दृष्टिकोण है। अत: प्रगतिवाद को सौन्दर्यशास्त्र सम्बन्धी मार्क्सीय दृष्टिकोण का हिन्दी नामकरण समझना चाहिए।'' इन कथनों से स्पष्ट है कि प्रगतिवाद कोई साहित्यिक दृष्टिकोण या धारा नहीं है। वह तो मार्क्सीय दृष्टिकोण और लक्ष्यों की संपूर्ति के लिए लिखा गया प्रचारात्मक साहित्य है। गांधी जी के सिद्धान्तों पर आधारित साहित्य जैसे गाँधीवादी या अहिंसावादी साहित्य कहा जाता है, वैसे ही मार्क्सीय सिद्धान्तों के प्रचारार्थ निर्मित साहित्य को ही प्रगतिवादी या मार्क्सवादी कहलाने का अधिकार है। हाँ, जब हम इन सिद्धान्तों को पूरी तरह पचाकर या सर्जक के व्यक्तित्व का अविभाज्य अंग बनाकर कलात्मक रीति से प्रस्तुत करें और वह प्रस्तुति समग्र मानवता की हितसाधिका या संरक्षिका हो तब उसे साहित्य की व्यापक परम्परा में स्थान दिया जा सकता है, अन्यथा नहीं।

डॉ. नगेन्द्र ने भी प्रगतिवाद को इसी भूमिका पर समझाया है। उनके अनुसार ''प्रगतिवाद साम्यवाद का पोषक है और पूँजीवाद का शत्रु है, बल्कि यों कहना चाहिए कि प्रगतिवाद साम्यवाद की ही साहित्यिक अभिव्यक्ति है।'' वह जीवन के प्रति एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण का नाम है जिसके प्रमुख अंग द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद, साम्यवाद और राष्ट्रीय भावना है। हाँ, उसकी राष्ट्रीय सर्वहारावाद और जनवाद का ही पर्याय है। यही कारण है कि प्रगतिवाद मार्क्सवादी दर्शन के आलोक में सामाजिक चेतना और भावबोध को लक्ष्य मानकर चलता है। अत: उपुर्यक्त विवेचन के सन्दर्भ में मुझे यही कहना अधिक उचित और प्रीतिकर प्रतीत होता है कि 'छायावाद' की तो एक निश्चित अवधि है, निश्चित सीमा रेखा है और साहित्यिक धारा स्वीकार नहीं की जानी चाहिए क्योंकि साहित्य को वाद के घेरे से अलग करके ही परीक्षित और परिभाषित किया जा सकता है। जिसे प्रगतिवाद कहा जाता है वह छायावादोत्तर प्रगतिशील काव्य धारा है। प्रगतिवाद की चर्चा छायावादोत्तर काव्य के अंतर्गत ही की जानी चाहिए। यदि कभी प्रगतिवाद रहा भी है तो उसे साहित्यिक धारा के रूप में पृथक न मानकर छायावादोत्तर या प्रगतिशील कविता शीर्षक के अंतर्गत सीमित व संकीर्ण काव्य प्रयत्न माना जाना चाहिए। कारण प्रगतिवाद कोई साहित्यिक धारा नहीं है, अपितु मार्क्सवादी जीवन दर्शन का सौन्दर्य-शास्त्रीय दृष्टिकोण भर है।

अतिशय कल्पनाशीलता, भावुकता, वायवीयता, अन्तर्मुखी प्रवृत्ति की प्रधानता और अभिव्यक्ति शिल्प की सूक्ष्मता उसके अपकर्ष का कारण कालान्तर में बनती चली गई। ये कविताएँ जन-जीवन से दूर होती गईं। इस प्रवृत्ति में भविष्य के लिए नवीन आदर्श-भावना, विचार व सौन्दर्यबोध भी नहीं था। अतएव धीरे-धीरे यह प्रवृत्ति लुप्त होने लगी। इसके प्रमुख कवि भी इसे त्याग कर मार्क्सवादी चेतना से जुड़ने लगे जिसे प्रगतिवाद का नाम दिया गया। पंत ने अपने कविता संग्रह ''ग्राम्या'' में निराला ने 'नये पत्ते व कुकुरमुत्ता' में नई करवट ली। पंत की ''द्रुत झरो जगत् के जीर्ण पत्र'' और निराला की 'भिक्षुक', 'विधवा' और 'वह तोड़ती पत्थर' कविताएँ प्रगतिवाद

का उद्घोष करती हैं।

प्रगतिवाद के उद्भव और विकास में राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ भी सहायक हुईं। मार्क्स के दर्शन ने विश्व के धरातल पर उथल-पुथल मचा दी। रूस की क्रांति और वहाँ मजदूरों व किसानों की सत्ता कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में बनने से बड़ा बदलाव आया। कविता भी मजदूर-किसानों व दलित वर्ग के हित चिन्तन में लग गई। प्रगतिवाद में समाज की ओर विशेष ध्यान देकर पीड़ित शोषित समाज का चित्रण किया गया और उनके प्रति भरपूर सहानुभूति प्रदर्शित हुई। प्रगतिवाद ने वर्ग भेद की खाई को पाटने का काम तो किया ही, साथ ही मनुष्य को सामाजिक और राजनीतिक भूमिका भी प्रदान की। इसके मूल में कार्ल मार्क्स की विचारधारा व दर्शन रहा। प्रगतिवाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ रहीं—सामाजिक सुधारों व जीवन के प्रति आग्रह, रूढ़ियों के प्रति विरोध और विद्रोह, शोषितों और पीड़ितों के प्रति सहानुभूति की भावना। यथार्थवादी दृष्टि के साथ प्रगतिवादी कवियों ने नारी, प्रकृति-प्रेम, ईश्वर व धर्म को देखा व चित्रित किया। रूस में सर्वहारा वर्ग का शासन व वहाँ की उत्तम व्यवस्था के कारण इन कवियों को रूस में पृथ्वी का स्वर्ग नजर आया। कवियों ने पूंजीपति वर्ग का विरोध और वर्ग संघर्ष का चित्रण किया। प्रगतिवादी कवियों के संगठन बने। ऐसा ही एक संगठन 'प्रगतिशील लेखक संघ' बना, जिसका लखनऊ में सन् 1936 ई. में पहला अधिवेशन हुआ, जिसमें अध्यक्ष पद से बोलते हुए प्रख्यात् उपन्यासकार व विचारक मुंशी प्रेमचन्द ने कहा—हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा, जिसमें उच्च चिन्तन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौन्दर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो, जो हम में गति, संघर्ष और बेचैनी पैदा करे, सोये नहीं क्योंकि और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है। ''हमारे लिये कविता के वे भाव निरर्थक हैं, जिनमें संसार की नश्वरता का आधिपत्य हमारे हृदय पर छा जाए और दृढ़ हो जाए, जिनसे संसार-हृदयों पर नैराश्य छा जाए। हमें उस काल की आवश्यकता है, जिसमें कर्म का सन्देश हो। प्रतिक्रियावादी तत्त्वों के विरोध में भी ये कवि खड़े नजर आते हैं। प्रगतिवादी को गति देने प्रचारित प्रसारित करने में पंत की ''रूपाभ'', प्रेमचन्द जी के ''हंस'', यशपाल के ''विप्लव'' व ''प्रभा'', ''जनता'', ''संघर्ष'', नया साहित्य जैसी पत्रिकाओं का भी योगदान रहा। इन कवियों ने साम्राज्यवादी शक्तियों का विरोध कर विदेशी दासता से मुक्ति का भी वातावरण बनाया। पंत ने शोषित वर्ग का चित्रण कर सहानुभूति जताई—

'विश्व विवर्तन शील, अपरिवर्तित, वह निश्चल
वही खेत, गृहद्वार, वही वृष, हँसिया औ हल।'

शिव मंगलसिंह 'सुमन' ने श्रमिक वर्ग को हमदर्दी जताते हुए लिखा—

''पर मैंने कल पथ पर देखी
एक दलित मानवों की टोली
थी जिनकी आह कराहों में
मेरी परवशता की बोली
उनकी भी हाहाकारों पर
देता था कोई ध्यान नहीं
अपने सूखे जर्जर तन में
लगाते थे मेरे हमजोली।''

शोषितों के प्रति सहानुभूति शोषक के प्रति घृणा का भाव भी प्रगतिवादी कवियों में मिलता है। केदारनाथ अग्रवाल ने लिखा—

'ये कामचोर
आराम तलब
मोटे तोंदियल भारी भरकम
हट्टे-कट्टे सब डांगर ऊँधा करते हैं।'

पूंजीवाद व व्यक्तिवाद के विरोध में गोपालसिंह नेपाली ने लिखा—

'होंगे भस्म अग्नि में जलकर
धरम करम औ पोथी पत्रा।'

Jain Vishva Bharati Institute Ladnun

और पुतेगा व्यक्तिवाद के,
चिकने चेहरे पर अलकतरा।
सड़ी गली प्राचीन रूढ़ि के
भवन गिरेंगे, दुर्ग ढहेंगे।
पतित दलित मस्तक ऊँचा कर,
संघर्षों की कथा कहेंगे।
और मनुज के लिए मनुज के,
द्वार खुले के खुले रहेंगे।

इस प्रकार इस युग की कविता में भाषा की लाक्षणिकता तथा कोमल कल्पनाशीलता समाप्त हो गई एवं उसका स्थान सीधी, तेज सहज तथा व्यंग्य प्रधान भाषा ने ले ली। उपमान भी बदलकर यथार्थ की भूमि पर आ गये तथा भाषा का मुहावरा भी यथार्थवादी हो गया।

प्रगतिवादी कवियों में प्रमुख हैं—रामनिवास शर्मा, त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, गजानन माधव 'मुक्तिबोध', शिव मंगलसिंह 'सुमन', रांगेय राघव व शील इत्यादि।

1.3.4.2 प्रवृत्तिगत विश्लेषण

प्रगतिवाद मूलत: रचना और आलोचना के क्षेत्र में नये दृष्टिकोण का वाहक बनकर आया है। उसकी दृष्टि समाज की ओर रही है। उसने उपयोगितावादी मूल्यों को न केवल कविता से जोड़ दिया, अपितु अनिवार्य बनाकर भी प्रस्तुत किया। वस्तुत: प्रगतिवाद और छायावाद की दृष्टि में दो ध्रुवों का अंतर है। एक समाज से कटकर कल्पना कानन में विचरता हुआ निजी सुख-दु:ख से पीड़ित रहा और दूसरा वर्ग-वैषम्य और ऊँच-नीच आदि के खानों में बटे इन्सान के दर्द को सहानुभूतिपरक शब्दावली में व्यक्त करता रहा। छायावादी कवियों की दृष्टि आकर्षण के तार से इस तरह बिंधी रही कि वे जनमानस और उसकी सामाजिक अभिव्यक्ति की ओर झुक ही नहीं सके। अत: किसी स्वस्थ सामाजिक दर्शन की अनुपस्थिति में जनमानस क्षुब्ध हो उठा। इसी क्षुब्ध मानस की प्रतिक्रिया है प्रगतिवादी कविता। यही कारण है कि प्रगतिवाद में समाज की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। इसमें उस समाज की तस्वीर है जो पीड़ित है और शोषित है। प्रगतिवाद ने वर्ग-भेद की खाई को पाटने का काम तो किया ही, साथ ही मनुष्य को सामाजिक और राजनीतिक भूमिका भी प्रदान की। इसके मूल में कार्ल मार्क्स की विचारधारा का प्रमुख हाथ है। मार्क्सवाद की प्राय: सभी प्रवृत्तियों और मान्यताओं को प्रगतिवाद काव्य में देखा जा सकता है। हाँ, कुछ विशेषताएँ ऐसी भी हैं जो प्रगतिवाद की प्रगतिशील चेतना को व्यक्त करती हैं। प्रगतिवाद की कुछ प्रमुख प्रवृत्तियों को इस प्रकार विवेचित विश्लेषित किया जा सकता है—सामाजिक जीवन के प्रति आग्रह, रूढ़ियों के प्रति विरोध और विद्रोह, शोषितों और पीड़ितों के प्रति सहानुभूति की भावना। यथार्थपरक दृष्टि के वाहक इन कवियों ने प्रकृति, प्रेम, नारी, ईश्वर और धर्म को जिस नजरिये से देखा है वह प्रगतिशीलता का ही एक आयाम है। इस काव्यधारा में एक ओर तो मार्क्स व रूस का प्रशस्ति वाचन है तो दूसरी ओर पूँजीपति वर्ग का विरोध है, एक ओर वर्ग-संघर्ष का चित्रण है तो दूसरी ओर ग्राम्य संस्कृति की प्रतिष्ठापना का प्रयास भी है।

1. प्रगतिवादी कवियों ने जन-जीवन को देखा, हृदयंगम किया और कविताबद्ध किया। इस प्रक्रिया में जन-जीवन की भीतरी और बाहरी दोनों ही तस्वीरें उभरकर सामने आयी हैं। सामाजिक उन्नति और नव-निर्माण के दौरान सबसे पहले रूढ़ियों पर प्रहार किया गया। वे धार्मिक और नैतिक मान्यताएँ ताक में रख दी गयीं जो युगों से चली आ रही थीं। शोषितों और पीड़ितों के करुण गायक इन कवियों ने एक ओर मानवतावादी भावना का प्रसार किया तो दूसरी ओर शोषक वर्ग के प्रति उपेक्षा भाव भी दिखलाया। इन्होंने किसान, मजदूर और मध्यवर्ग के लोगों की सामाजिक स्थिति को बड़ी सदाशयता के साथ देखा और उनके प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करते हुए अपनी काव्य सर्जना की। सामाजिक चेतना के पक्षधर और यथार्थ बोध के वाहक कवि मुक्तिबोध, सुमन और नागार्जुन की संवेदना का प्रसार उन लघु मानवों तक है जो दलित, शोषित और जीवनहीन हैं। मुक्तिबोध का कवि सभी दलितों-पतितों और उपेक्षितों के भीतर तक की यात्रा पर आया है और उसने अपनी इस अंतर्यात्रा की सहानुभूतियों को जो निष्कर्ष दिया है, वह यथार्थ है, काव्यात्मक है और वे संवेदनात्मक—

''मुझे भ्रम होता है कि प्रत्येक पत्थर में चमकता हीरा है,
हर एक छाती में आत्मा अधीरा है,

प्रत्येक सुस्मित में विमल सदानीरा है,
मुझे भ्रम होता है कि प्रत्येक वाणी में महाकाव्य पीड़ा है,
पल भर में सब में से गुजरना चाहता हूँ,
प्रत्येक उर में से तिर आना चाहता हूँ
इस तरह खुद को ही दिये- दिये फिरता हूँ।''

2. सामाजिक यथार्थ की दृष्टि से प्रगतिवादी कविता, आशा, आस्था और निष्ठा की किरणें प्रसारित करती हैं। यद्यपि प्रगतिवादी कवि वर्तमान जीवन की विषमता, दुख दैन्य और त्रासद स्थितियों से भली- भाँति परिचित रहा है, किन्तु फिर भी वह विचलित नहीं होता है। कारण, उसकी प्रचेता बुद्धि उसे भविष्य के प्रति आश्वस्त करती है और कवि विश्वास का सम्बल लिए जीवन की कुरूपताओं, विकृतियों और आर्थिक वैषम्य- जनित पीड़ा को भी सहता जाता है। आस्था की इस डोर को थामकर ही प्रगतिवादी कवि घुटन, निराशा और पराजय की अनुभूतियों पर विजय पाता रहा है। एकाकीपन का बोध यदि उसे उदासी के खाई खन्दक में कभी ढकेलता भी है तो वह व्यापक सामाजिकता की भूमिका पर खड़ा होकर उस खन्दक से निकल आता है। इसी भूमिका पर खड़े होकर त्रिलोचन का कवि सोचता है कि ''मैं न अकेला कोटि- कोटि हैं मुझ जैसे तो''। यही भावना प्रगतिवादी कवि को आशा, विश्वास और दृढ़ता की ओर ले जाती हैं। केदार, रामविलास और नागार्जुन सभी में इस आस्था प्रेरित भाव और तज्जनित मानवतावादी दृष्टि को देखा जा सकता है।

3. प्रगतिवाद कविता की एक उल्लेखनीय विशेषता, अंतर्राष्ट्रीय संवेदनाओं की अभिव्यक्ति है। इस अभिव्यंजना की इमारत प्रगतिवाद के उस जीवन दर्शन पर खड़ी है जो इस धारा के कवियों में धरती प्रेम से उद्भव हुआ है। यही कारण है कि भारत की दलित- शोषित जनता के प्रति सहानुभूति का राग अलापने वाले ये कवि राष्ट्रीय से अंतर्राष्ट्रीय की ओर भी बढ़े हैं। अंतर्राष्ट्रीय संवेदनाओं की जो अभिव्यक्ति प्रगतिवाद में मिलती है वह बड़ी सशक्त है। रूस हो या अमेरिका, अफ्रीका हो या वियतनाम जनता के संघर्षों तथा अभियानों में प्रगतिवादी कवियों ने पूरी मानवीय आस्था व दृढ़ता प्रेरित निष्ठा को व्यक्त किया है। ''लुमुम्बा'' की हत्या पर भी नागार्जुन उतने ही दु:खी हैं, जितने कि गाँधी की हत्या पर। वे कहते हैं कि—

''मैं सुनता हूँ अफ्रीका की आत्मा का अक्रोश,
मैं सुनता हूँ काली धरती के कण- कण का रोष''

शमशेर की 'अमन का राग' कविता भी व्यापक अंतर्राष्ट्रीय बोध की जमीन पर लिखी गयी है।

4. यदि प्रगतिवादी कविता का वस्तुपरक विश्लेषण करें तो राष्ट्रीयता और देश प्रेम की भावनाएँ उसकी उल्लेख्य प्रवृत्तियों में शामिल करनी होंगी। राष्ट्र के प्रति प्रेम, देश की धरती के प्रति प्रेम और सम्मान तथा इस धरती की हर साँस से सम्पृक्ति का भाव प्राय: सभी प्रगतिवादियों में मिलता है। उल्लेख्य बात यह है कि राष्ट्रीय चेतना का अर्थ देश की जड़ भौगोलिक सीमाओं की प्रशस्ति मात्र नहीं है। उसमें वह सभी अंतर्भावित है जो इस देश और इसकी मिट्टी से जुड़ा है। धरती के जर्रे- जर्रे के प्रति ममत्व है, हर उस जीवधारी के प्रति ममत्व जो यहाँ की मिट्टी से पैदा हुआ है और हरेक मनुष्य की आशा- आकांक्षाओं, विवश- अवश स्थितियों और पीड़ित- मर्दित जनानुभूतियों से प्रेम आदि शामिल हैं जो मनुष्य की जिन्दगी का अहम हिस्सा है। यह राष्ट्रीयता प्रगतिवादी कविता में अनेक रूपों में अभिव्यक्त हुई है। इसके कुछेक रूप ये हैं—1. विदेशी दासता के प्रति विरोध प्रदर्शन में, 2. पूँजीवादी और सामंतवादी शक्तियों के विरोध में, 3. शांति प्रसार की कामना में, 4. सामाजिक सुधारों की भूमिका पर किये गये नव- निर्माण की व्यंजना के रूप में, 5. लोक जीवन की यथार्थ स्थितियों के अंकन में।

5. प्रगतिवादी कविता में धरती प्रेम का एक छोर लोक- जीवन से मिला हुआ है। उसमें ग्राम्य- परिवेश साकार हो उठा है। अत: लोक जीवन की मार्मिक और मधुर छवियाँ भी प्रगतिवादी कविता की विशेषता के रूप में ली जा सकती हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि दीर्घकाल के बाद प्रगतिवादी कविता में लोक जीवन की विविध छवियाँ उभरी हैं। रामविलास, केदार, नागार्जुन और त्रिलोचन की कविताओं में हिन्दी जनपद के विविध अंचलों की सांस्कृतिक छवियों को आसानी से देखा जा सकता। इन अंचलों के निवासी ''बरसात की रिमझिम में चौपालों में बैठकर ढोलक की थाप पर आल्हा अवश्य सुनेंगे, रामायण का सस्वर पाठक जरूर करेंगे, तिथि- त्यौहारों में उत्सव तथा समारोह अवश्य मनायेंगे तथा कार्तिक या सक्रांति पर गोल के गोल बाँधकर गंगा स्नान को जरूर जायेंगे। साँझ सवेरे हथेलियों में धूले- पुँछे जलपात्र रखे कन्याओं तथा गृह- बन्धुओं का मन्दिरों में जल चढ़ाने जाना तो रोज की बात है। दंगल और कुश्तियाँ

तो यहाँ की अपनी चीज हैं। तात्पर्य यह है कि प्रगतिवादी कविता में ग्राम्य जीवन के दुख, दैन्य, पूजन, आराधना, रास-विलास और उत्सव समारोह आदि सभी का चित्रांकन किया गया है।

6. प्रगतिवादी कविता का व्यंग्य भी तीखा है। नागार्जुन, केदार व मुक्तिबोध में व्यंग्य का नया रूप मिलता है। केदार और नागार्जुन भी अच्छे व्यंग्यकार हैं। केदार ने निकम्मे व्यक्तियों पर अच्छा व्यंग्य किया है—

धोबी गया घाट पर राही गया बाट पर
मैं न गया घाट और बाट पर
बैठा रहा टाट पर
जीता रहा ओस- चाट- चाट कर।

नागार्जुन के व्यंग्य भी अप्रतिम हैं। राजनैतिक नेताओं, सरकारी-गैर सरकारी भ्रष्टाचार, घूसखोरी, बेईमानी, रईसों के ऐशो आराम, मंत्रियों और मठाधीशों की वासना लोलुपता, सभी नागार्जुन की व्यंग्य चेतना में समा गये हैं। प्रगतिवादियों में नागार्जुन का व्यंग्य अलग ही पहचाना जा सकता है। उनकी 'पैसा चहक रहा है', 'जयति नखरंजिनी', 'बजट कार्तिक', 'दुखरनझा', 'प्रेम का बयान', 'तालाब की मछलियाँ' और 'विजयी के वंशधर' कविताएँ इसका प्रमाण हैं।

7. प्रगतिवादियों की प्रगतिशील चेतना ने ईश्वर और धर्म के प्रति उदासीनता ही व्यक्त की है। इसके मूल में भौतिकवादी दृष्टि ही प्रमुख है। मार्क्सवादियों ने अपनी विचारधारा में ईश्वर और धर्म दोनों के आगे प्रश्न चिह्न लगा दिया है। प्रगतिवादियों ने इसी दृष्टि को अपनाया है अत: इनके काव्य में दोनों का ही खुलकर विरोध हुआ है। यह विरोध उन प्राचीन मान्यताओं के प्रति है जो रूढ़ियाँ बन गयी हैं और हमारा समाज जिन्हें थाती समझकर जाने- अनजाने ढो रहा है। केदार की 'चित्रकूट के बौड़म यात्री' रामविलास की 'मूर्तियाँ' और पंतजी की 'ग्रामवेदना' आदि कविताओं में यही विरोध-भाव अभिव्यक्ति पा सका है।

8. प्रगतिवादियों के अनुसार कविता में वर्ग संघर्ष को वाणी देना अनिवार्य है। इन्होंने वर्ग- संघर्ष के साथ ही सामाजिक और आर्थिक क्रांति को भी आवश्यक माना है। 'नॉवल एण्ड द पीपुल' के रचयिता 'राल्फ फॉक्स', 'ऑन आर्ट एण्ड लिटरेचर' के सर्जक लेनिन और 'इल्यूजन एण्ड रियेलिटी' के लेखक कॉडवेल ने साहित्य में उक्त दृष्टिकोण की अभिव्यंजना पर जोर दिया है। दिनकर, अंचल और नागार्जुन की कविताओं में वर्ग- संघर्ष के अंकन के साथ ही सर्वहारा वर्ग के प्रति सहानुभूति अभिव्यक्त की गयी है। ये कवि क्रांति के द्वारा समाज व्यापी रूढ़ियों के गलित- दलित कुष्ठ को क्रांति के नश्तर से 'आपरेट' करना चाहते थे। यही कारण है कि वे कवि ''हो यह समाज चिथड़े- चिथड़े, शोषण पर जिसकी नींव पड़ी'' कहकर 'इन्कलाब जिन्दाबाद' का नारा लगाते हैं। दिनकर ने क्रांति का उद्घोष करते हुए लिखा है—

श्वानों को मिलता दूध वस्त्र, भूखे बालक अकुलाते हैं।
माँ की हड्डी से चिपक, ठिठुर जाड़े की रात बिताते हैं।
युवती के लज्जा वसन बेच जब ब्याज चुकाये जाते हैं।
मालिक जब तेल- फुलेलों पर पानी सा द्रव्य बहाते हैं।
पापी महलों का अंधकार, देता मुझको तब आमंत्रण।

9. छायावादी कविता में प्रकृति की अभिनव सुषमा मिलती है। प्रकृति के प्रति जो दृष्टिकोण छायावादियों का था, ठीक वही प्रगतिवादियों का नहीं था। राजनैतिक और मार्क्सीय प्रभाववश वातावरण में अपेक्षाकृत कठोरता आ गयी थी। इससे यह स्वाभाविक भी नहीं था कि ये प्रकृति की रूप-छवियों का चित्रांकन करते। यों कुछ अच्छी प्रकृति कविताएँ नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल और शिवमंगलसिंह सुमन आदि की रचनाओं में मिल जाती हैं। किन्तु प्रगतिवादी काव्य उस अर्थ में प्रकृति काव्य नहीं रहा जिस अर्थ में छायावादी काव्य। अत:प्रकृति की कोमल छवियों के अभाव से काव्य में वह रसात्मकता भी नहीं आ सकी जिसकी अपेक्षा रसिकों को रहती है।

10. प्रेम प्रगतिवाद का प्रमुख विषय नहीं है, हाँ बहुत से विषयों में से एक अवश्य है। यही कारण है कि उसमें प्रेम का विस्तृत वर्णन प्राय: नहीं के बराबर है। जहाँ कहीं भी इन कवियों ने प्रेम की बात की है, वहाँ से उसे समाज और जन-जीवन के जोड़ते जान पड़ते हैं। प्रणयानुभूति, वेदना और निराशा के चित्र भी अपवादस्वरूप ही मिलते हैं, जहाँ मिलते हैं वहाँ आस्था के साथ। प्रगतिवादी प्रेम में सामाजिकता है, वह समाज से अलग कोई अस्तित्व नहीं रखता है। प्रत्युत् सामाजिक संघर्षों को बल प्रदान करता है।

11. छायावादी कवियों ने नारी को आराध्य, पूज्या और महिमामयी रूप में प्रस्तुत किया तो प्रगतिवादियों ने उसकी सामाजिक स्थिति पर बल दिया। उन्होंने शोषितों के साथ नारी को भी बिठा दिया और उसके स्वतन्त्र व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा का प्रयास किया। कहने की आवश्यकता नहीं कि प्रगतिवादी कवियों ने नारी को पुरुष के दैनिक कार्य में सहयोगिनी का स्थान दिया और साथ ही उसे शयन कक्ष से बाहर निकाल कर वहाँ खड़ा कर दिया जहाँ वह मजदूरिन और शोषित बन गयी। वह सती साध्वी न बनकर पुरुष की सहकर्मिणी और सहभागिनी बन गयी। छायावादियों ने नारी का जो पवित्रीकरण किया था वह व्यावहारिक धरातल से दूर का सम्बन्ध रखता था। अत: प्रगतिवादियों ने उसे जो व्यावहारिकता प्रदान की, वह सहज ही विश्वसनीय बन गयी।

12. प्रगतिवादी कविता के सम्बन्ध में जब कभी शिल्प की चर्चा की जाती है तो यह बात बार-बार उठाई जाती है कि वह शिल्प के प्रति उदासीन है, उसकी भाषा ऊबड़-खाबड़ है तथा उसकी छंद योजना बासी और उखड़ी हुई है। साथ ही प्रतीकों का तो एकदम अभाव है। इस आरोप में सत्य का अंश है तो सही, किन्तु इतना नहीं जितना बताया जाता है। प्रगतिवादियों की सबसे बड़ी उपलब्धि भाषा को जन-जीवन के स्तर पर लाने की है। यों इन कवियों ने वस्तु के समान शिल्प को महत्त्व नहीं दिया है, किन्तु भाषा में उसका झुकाव जन-साधारण की शब्दावली की ओर है। यदि प्रगतिवादियों के शब्द विधान पर विचार करें तो तीन बातें सामने आती हैं—1. इनकी काव्य भाषा जनभाषा के निकट है। उसमें तत्सम शब्द तो यदा-कदा ही आये हैं। 2. प्रगतिवादी कविता की भाषा में आडम्बर नहीं है, जान-बूझकर भाषा को वैयक्तिक और जटिल बनाने की प्रवृत्ति नहीं है। 3. शब्दों में सांकेतिकता, लाक्षणिकता और विकृति नहीं है। इनकी भाषा में एक ओर उर्दू, फारसी के शब्द हैं तो दूसरी ओर जनपदीय और आँचलिक शब्द भी पर्याप्त हैं।

13. प्रगतिवादी कविता रूढ़ संस्कृति की विरोधिनी होने के कारण सांस्कृतिक प्रतीकों के भी दो रूप प्रस्तुत करती हैं—पहले प्रकार के प्रतीक परम्परागत संस्कृति के तत्त्वों का प्रतिनिधित्व करते हैं और दूसरे नवीन सामाजिक संस्कृति के पक्षधर हैं। प्रगतिवादी कवियों के काव्य में उन प्रतीकों की संख्या ही अधिक है जो सांस्कृतिक वर्ग के हैं, किन्तु वे यथार्थ की नवीनता से सम्बन्धित हैं। प्राकृत प्रतीक भी हैं, किन्तु वे कोमल पक्ष को दबाकर कठोर पक्ष को ही प्रस्तुत कर सके हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि प्रगतिवादी कवि मर्ज और मरीज का कवि है, तन्दुरुस्ती और तंदुरुस्त का नहीं।

14. प्रगतिवादियो की उपमान योजना नैसर्गिक अधिक है क्योंकि उसका स्रोत जनजीवन है। प्रकृति के हरे-भरे आँचल की ओर ताकते हुए भी इस कविता में आये अधिकांश उपमान सामाजिक हैं। यही कारण है कि इन्हें 'रात कोयले की खान-सी' और मजदूरनी सी प्रतीत हुई तो जनता का जीवन 'रद्दी की टोकरी' और मानवता 'फूटे बर्तन से' उपमित की गयी है। यहाँ प्राकृतिक उपमान भी छायावाद जैसे नहीं हैं।

15. प्रगतिवादी कवियों ने वस्तु बिम्बों को प्रोत्साहन दिया है और वे भी अधिकांश स्थलों पर निष्प्रभ और कल्पनाहीन अधिक हैं। हमारी समझ में प्रगतिवादियों की बिम्बगत असफलता का रहस्य संवेदना का अभाव ही है क्योंकि जहाँ संवेदना का ताप नहीं होता, कल्पना का रंग नहीं होता वहाँ बिम्ब प्राय: नीरस हो जाते हैं। इतने पर भी यह तो कहा ही जा सकता है कि प्रगतिवादियों ने नयी जमीन तैयार की और अभिव्यक्ति से अधिक वस्तु प्रतिपादन को महत्त्व दिया।

16. छंदों में परम्परागत और मुक्तछंद दोनों का प्रयोग प्रगतिवादियों ने किया है, किन्तु इस क्षेत्र में इनकी कोई विशेष उपलब्धि नहीं दिखाई देती। वास्तविकता यह है कि प्रगतिवादियों ने अपनी बात को कहना भर चाहा है, भले ही उसकी पद्धति कितनी ही बढ़ेगी और विशृंखलित क्यों न रही हो। हाँ, लोकगीतों की शैली में लिखे गये कुछ गीत अच्छे बन पड़े हैं।

प्रगतिवाद के प्रमुख कवियों में केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, शिवमंगलसिंह 'सुमन', रामविलास शर्मा, त्रिलोचन, रांगेय राघव तथा मुक्तिबोध आदि हैं। इनके अतिरिक्त अज्ञेय, भारतभूषण अग्रवाल, भवानी प्रसाद मिश्र, नरेश मेहता, शमशेर बहादुर सिंह, धर्मवीर भारती में भी प्रगतिवाद किसी-न-किसी रूप में है, किन्तु मूलत: इन्हें प्रगतिवाद के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता।

1.3.5 प्रयोगवाद

'प्रयोगवाद' शब्द दो शब्दों के संयोग का परिणाम है—प्रयोग और वाद। इसमें पहला शब्द 'प्रयोग' विज्ञान से सम्बन्धित है तो दूसरा 'वाद' सिद्धान्त अथवा मताग्रह के घेरे से। घेरे को तोड़ना आवश्यक है। अत: उसे छोड़ दिया जाये तो ठीक होगा। प्रयोग का अर्थ है किसी वस्तु की पूर्वमान्य प्रकृति का पुनर्ज्ञान प्राप्त करना। प्रयोग का उद्देश्य सत्यान्वेषण और उससे पाये सत्य का ग्रहण है। इस आधार पर प्रयोग एक प्रक्रिया है, कोई उद्देश्य नहीं है। प्रयोग की प्रक्रिया के आधार पर हम पारम्परिक मान्यताओं का पुन: अन्वेषण

और पुनर्परीक्षण भी करते हैं और नये उपलब्ध सत्यों के आलोक में नयी दिशा भी प्राप्त करते हैं। वस्तुत: प्रयोग जीवन को यथार्थ के पार्श्व से देखने की प्रेरणा प्रदान करता है। युग करवट लेता है तो अनेक पुरानी मान्यताएँ उसकी करवट तले चूर हो जाती हैं और कुछ नयी मान्यताएँ उभरने लगती हैं। कभी-कभी ऐसा भी हो जाता है कि नये उभरते मान मूल्यों के वाहक पुरानों को प्रयोग की तुला पर तौलते हैं। इस परीक्षण में यदि वे खरे उतरते हैं तो किंचित परिवर्तन के साथ स्वीकार कर लिए जाते हैं, किन्तु जब ऐसा नहीं होता तब नयी मर्यादाएँ, नयी सम्भावनाओं के द्वार खटखटाती हैं। यही वह भूमिका है, जहाँ से प्रयोगों की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। प्रयोग की यह प्रक्रिया प्रत्येक काल में विद्यमान रहती है। कारण, प्रयोग निर्धारण सत्य को अंतिम सत्य नहीं मानते हैं। वे उसका पुर्नपरीक्षण करते हैं, सम्भावनाओं के नये क्षितिजों को उद्घाटित करते हैं और नवीनता के पक्षधर होने के कारण पूर्णता का दावा नहीं करते हैं। प्रयोग की यह प्रवृत्ति जीवन और साहित्य दोनों में बखूबी देखी जा सकती है। आधुनिक हिन्दी कविता की विकास यात्रा का यह मोड़ तो विशेषकर इसी प्रयोग-प्रक्रिया का परिणाम है। प्रयोग प्रत्येक काल में होते हैं और होते रहेंगे, किन्तु 'प्रयोगवादियों' ने प्रयोगों को ग्रहण करते हुए यह आग्रह भी किया है कि उनके प्रयोग सर्वथा नवीन हैं तथा कविता के अन्तर्गत वर्षों से चली आ रही जड़ता और नियमों की शृंखला को झटके से तोड़ते हैं।

हिन्दी कविता में प्रयोगवाद उक्त नियमों और उनसे बनी भूमिका पर ही विकसित हुआ है। नवीनता और अपनी पहचान अलग से कराने का मोह ही प्रयोगवाद के मूल में दिखलाई देता है। अत: 'प्रयोगवाद' शब्द उन कविताओं का रूढ़-संकेतक बनकर आया है जिनमें नया भाव-बोध व नयी संवेदनाएँ और इनकी अभिव्यंजना के लिए प्रयुक्त नया शैल्पिक चमत्कार है। 'तारसप्तक' हिन्दी कविता में प्रयोगवाद लेकर आया। इसमें 'टेकनीक' के जो नये प्रयोग उपलब्ध होते हैं, उनका सूत्रपात तो पहले ही हो गया था, किन्तु प्रयोगवाद का प्रारम्भ उस समय से नहीं माना जा सकता। प्रयोग तो माखनलाल चतुर्वेदी, बच्चन, पंत और निराला के काव्य में भी देखे जा सकते हैं। नलिन विलोचन के प्रयोग भी अपना महत्त्व रखते हैं जो तारसप्तक के प्रकाशन काल से पहले ही सामने थे। आचार्य वाजपेयी जी की मान्यता है कि 'निराला' की अपेक्षा बच्चन को नवीनतम कविता शैली के अधिक निकट कहा जा सकता है—शैली की दृष्टि से नये काव्य का आरम्भ बच्चन से होता है। ध्यान देने की बात यह है कि शिल्प-विषयक प्रयोग बच्चन, पंत और निराला में मिलते अवश्यक हैं, किन्तु वे ऐसे नहीं जो प्रयोगवाद के शिल्प की भाँति एक विशेष आन्दोलन का रूप लेकर आये हों। पंत और बच्चन ने प्रयोग किए अवश्य हैं, किन्तु प्रयोग उनका लक्ष्य न था या यों कहें कि प्रयोग करते हुए भी इनके प्रति सतर्क न थे। इनकी दृष्टि वस्तु की ओर जितनी लगी थी, शिल्प की ओर उतनी नहीं थी। हाँ, निराला का काव्य अवश्य प्रयोग की भूमि का स्पर्श करता-सा जान पड़ता है।

'तारसप्तक' के पूर्व के कवियों में यदि किसी को नयी कविता के पूर्व रूप प्रयोगवाद के निकट माना जा सकता है तो वे निराला ही हो सकते हैं, किन्तु नयी कविता की प्रयोगशील प्रवृत्ति का व्यवस्थित रूप तो तारसप्तक से ही मानना होगा। कारण, 'तारसप्तक' के सातों कवियों का सारा ध्यान शिल्पगत प्रयोगों और नयी संवेदनाओं के प्रकाशन की ओर था। इसके सभी कवि शिल्प के प्रति आग्रही रहे हैं। प्रयोगों के प्रति आकर्षण और तदनुरूप नये मार्गों का अन्वेषण सभी प्रयोगवादी कवियों का लक्ष्य रहा है। इस सम्बन्ध में अज्ञेय ने अपना मत प्रस्तुत करते हुए लिखा है, "प्रयोग का कोई वाद नहीं होता। प्रयोग अपने आप में इष्ट नहीं है। वह साधन है, दोहरा साधन है, क्योंकि एक तो वह उस सत्य को जानने का साधन है जिसे कवि प्रेरित करता है, दूसरे वह उस प्रेषण की प्रक्रिया को और उसके साधनों को जानने का साधन है। .....प्रयोगवादी कवि किसी स्कूल के नहीं हैं। अभी राही हैं, राही भी नहीं, वरन् राहों के अन्वेषी हैं।" स्पष्ट है कि प्रयोगवाद एक ऐसी साहित्यिक धारा को दिया गया नाम है जिसने स्थापित मान्यताओं को पुनर्परीक्षित करके नये प्रयोग किये। वस्तुत: नये प्रयोगों के माध्यम से प्रयोगवाद साहित्य में क्रांति लेकर आया।

प्रयोग निरन्तर होते हैं, सदा से होते आये हैं। प्रयोग के लिए आग्रह नवीनता व ताजगी लाने के लिए होता है। साहित्य में भी ऐसा होता आया है और अन्य कलाओं में भी किन्तु हिन्दी की आधुनिक कविता में प्रयोगवाद का एक निश्चित अर्थ एक विशेष प्रकार की कविताओं से लिया गया है जो कुछ नये बोधों, संवेदनाओं तथा उन्हें प्रेरित करने वाले शिल्पगत चमत्कारों को लेकर शुरु-शुरु में सात कवियों के साथ अज्ञेय के संपादन में 1943 में सामने आई। ये सात कवि थे—गजानन माधव मुक्तिबोध, नेमिचन्द्र जैन, भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर, रामविलास शर्मा और अज्ञेय स्वयं। ये कवि जीवन के सीमित दायरे को तोड़कर, युगीन सामाजिक यथार्थ को अभिव्यक्त करने के लिये नये कथ्य, शिल्प, प्रतीक, छन्द, उपमान तलाशने के लिये बेचैन थे। ये कवि विषय तथा अभिव्यक्ति व शिल्प के विभिन्न प्रयोग कर नये ढंग की काव्य-रचना की प्रयोगात्मक शुरुआत करना चाहते थे। 'तार-सप्तमक' की

भूमिका में अज्ञेय ने कवियों के मंतव्य को स्पष्ट करते हुए लिखा—प्रयोग सभी काल के कवियों ने किये हैं.....किन्तु कवि क्रमशः अनुभव करता आया है कि जिन क्षेत्रों में प्रयोग हुए हैं, उनसे आगे बढ़कर अब उन क्षेत्रों का अन्वेषण करना चाहिए जिन्हें अभी तक नहीं छुआ गया है या जिन्हें अभेद्य मान लिया गया है। ये (कवि) किसी मंजिल पर पहुँचे हुए नहीं हैं, अभी राही हैं, राही ही नहीं राहों के अन्वेषी हैं।'

'तार सप्तक' का हिंदी-जगत् में अप्रत्याशित स्वागत हुआ, इसके कवियों को भी काव्य-जगत् में आदर के साथ समादृत किया गया। ये शीघ्र ही सुधिजन पाठकों व विद्वानों द्वारा चर्चित हुए और चौथा सप्तक (1979) तक चला। अज्ञेय को प्रयोगवाद नाम 'दूसरा सप्तक' प्रकाशित होते-होते अनुपयुक्त लगने लगा और इसे 'नयी कविता' नाम देना अधिक पसन्द आया। सन् 1951 के 'प्रतीक' में प्रकाशित एक परिसंवाद में कहा—'मैं आग्रहपूर्वक यह कहना चाहता हूँ कि नयी कविता को जिसके लिये मुझे 'प्रयोगवादी' शब्द अपूर्ण, अपर्याप्त और पूर्वाग्रहयुक्त जान पड़ता है।

इस प्रकार प्रयोगवाद को 'नयी कविता की ओर मोड़ देने, नामकरण करने का कार्य भी अज्ञेय ने किया।' अज्ञेय अत्यन्त प्रतिभाशाली व योजनाबद्ध कार्य करने व नेतृत्व देने की क्षमता रखते थे। 'तार सप्तक' के कवियों की कविताएँ अपने अस्तित्व के प्रति अधिक सजग प्रतीत होती हैं व कवि के वैयक्तिक जीवन और उसकी वैयक्तिक अनुभूतियों पर अधिक ध्यान देती हैं—मसलन उनकी निजी कुंठाएँ किन्तु राष्ट्र का सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक जीवन उसकी अभिव्यक्ति का लक्ष्य गौण होता चला गया। 1953 में प्रकाशित 'दूसरा सप्तक' के कवि भवानी प्रसाद मिश्र, शमशेर बहादुर सिंह, धर्मवीर भारती, शकुन्तला माथुर, हरिनारायण व्यास, नरेश मेहता व रघुवीर सहाय थे, जिनमें प्रथम दो प्रगतिशील थे और विचार की दृष्टि से उनका चिन्तन वामपंथी था किन्तु शेष पाँच व्यक्तिवादी चेतना का काव्य लिख रहे थे। नयी कविता के कवियों में व्यंग्य विधा का विकास बखूबी देखा जा सकता है। यह प्रवृत्ति मुक्तिबोध रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, भवानी प्रसाद मिश्र की कविताओं में लक्ष्य की जा सकती हैं। भवानीप्रसाद मिश्र ने अपनी प्रसिद्ध व लोकप्रिय कविता 'गीत फरोश' में पूंजीवादी समाज में कवि की स्थिति को नये लहजे में कहा—

'जी हाँ हुजूर मैं गीत बेचता हूँ
जी, पहले कुछ दिन शर्म लगी मुझको
पर पीछे-पीछे अक्ल जगी मुझको
जी लोगों ने तो बेच दिया इमान
जी, आप रहें सुनकर हैरान
मैं सोच समझ आखिर
अपने गीत बेचता हूँ

'दूसरा सप्तक' के प्रकाशन के तुरन्त बाद 1954 में डॉ. जगदीश गुप्त, रामस्वरूप चतुर्वेदी व डॉ. विजयदेव नारायण साही के संपादन में इलाहाबाद के अर्ध वार्षिक पत्रिका 'नयी कविता' का प्रकाशन होने लगा। इस पत्रिका ने नयी कविता के आन्दोलन को सम्बल प्रदान किया। इसी प्रकार, हैदराबाद से प्रकाशित होने वाली 'कल्पना' (जिसका संपादन कुछ समय के लिए दूसरा सप्तक के कवि भवानीप्रसाद मिश्र ने भी किया) ने इस प्रकार की कविताओं को मंच देकर आगे बढ़ाया।

अलवर से प्रकाशित 'कविता' का पहला अंक 1961 ई. में आया और अनेक वर्षों तक प्रकाशित होकर इस पत्रिका ने राष्ट्रीय स्तर पर राजस्थान के कवियों को मंच दिया। 'इन कविताओं' (जयपुर) का भी स्थायी महत्त्व है।

''तीसरा सप्तक'' में और नये सात कवि परिचय, अपने वक्तव्य कविताओं के साथ प्रकाशित हुए। ये थे प्रयाग नारायण त्रिपाठी, कीर्ति चौधरी, मदन वात्स्यायन, केदारनाथसिंह, कुँवर नारायण, विजयदेव नारायण साही और सर्वेश्वर दयाल सक्सेना। इनमें कुछ कवि तो काल-प्रवाह में कहीं खो गये किन्तु केदारनाथसिंह, कुँवरनारायण आज भी हैं और लगातार लिख रहे हैं। कुँवर नारायण को हाल ही में के.के. बिड़ला फाउंडेशन का 'व्यास सम्मान' मिला है। सर्वेश्वर व साही आज दिवंगत हैं किन्तु उनका योगदान भी महत्त्वपूर्ण रहा। इनके साथ अन्य नयी कविता के कवियों ने सामान्य या लघु जीवन की प्रतिष्ठा, युग-जीवन की साहसिक अभिव्यक्ति, समस्याओं के आँकलन का आग्रह, जीवन के विविध क्षेत्रों की स्थितियों का यथार्थ चित्रण, व्यंग्य व मानवतावादी दृष्टि की प्रवृत्तियाँ नयी कविता में मिलती हैं। नयी कविता में जिस लघु मानव और उसकी प्रतिष्ठा पर बल दिया गया है वह लघु मानव अपने लघु परिवेश, स्वतंत्रता,

विवेक और जीवन- पद्धति के प्रति पूर्णत: सजग है तथा अपने चारों ओर बिखरे परिवेश से किसी प्रकार की आत्महीनता का अनुभव नहीं करता। उसके लिए आत्म- अस्तित्व का प्रश्न सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। सम- सामयिक जीवन यथार्थ को व्यंग्य के माध्यम से मुक्तिबोध ने उजागर किया, उन्होंने तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों पर व्यंग्य किया है और अपने को भी नहीं छोड़ा है। कविता 'ब्रह्मराक्षस'' में उनका आत्मसंघर्ष व्यक्त हुआ है।

नयी कविता के कुछ कवियों में रुमानियत भी है। अज्ञेय, गिरिजा कुमार माथुर, शमशेर में प्रेम और सौन्दर्य की भी तीव्र अनुभूति है। इनकी कविताओं में प्रकृति का वस्तुनिष्ठ रूप चित्रित करने के स्थान पर आत्मनिष्ठ सौन्दर्य ही सामने आया है। नयी कविता में नारी- सौन्दर्य का चित्रण भी हुआ है। नारी- सौन्दर्य के चित्रण में रुमानियत का रंग और भी गहरा है। उदाहरण के लिए अज्ञेय की कुछ कविताओं और धर्मवीर भारती की ''कनुप्रिया'' को लिया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त नयी कविता में व्यक्ति और समाज का एकीकरण है, आशा- निराशा, निश्चय- अनिश्चय की झाँकियाँ हैं। इतना ही नहीं, उसमें मनुष्य- मनुष्य के बीच आई बाधक दीवारों को हटाने तथा मुक्त परिवेश की ओर बढ़ने की कामना भी उपलब्ध है। सच्चाई और ईमानदारी, यथार्थ के प्रति निष्पक्ष दृष्टि, चेतन- अचेतन के भावों के प्रति स्वीकारोक्ति, जीवन व्यापी रिक्तता, विसंगति और दमघोंटू स्थितियों व हाड़- हाड़ को चटखा देने वाली दर्द की सशक्त अभिव्यक्ति के साथ जिजीविषा और लोक- संस्कृति का भाव नयी कविता में सहजता के साथ अभिव्यक्त हुआ है। नयी कविता के समर्थ कवियों ने प्रत्येक क्षण को पकड़ा है और अपनी नितान्त वैयक्तिकता में भी ये अस्तित्व के प्रति सतर्क व आस्थावान दिखाई देते हैं।

नयी कविता में जन- साधारण की बोलचाल की भाषा को भी कविताओं ने पकड़ा है। भवानी प्रसाद मिश्र की सरल अभिव्यक्ति बेजोड़ है, जो गहरी आत्मीयता से जुड़ी है। शिल्प के प्रति ये आग्रही रहे हैं और इनका सर्वाधिक ध्यान बिम्ब- निर्माण की ओर रहा है। नई कविता के बिम्ब यथार्थ होने के साथ- साथ स्पर्शी भी बन गये हैं। इन्होंने छंद- विधान का अधिकांशत: अतिक्रमण किया है और मुक्त छंद में ही लिखा है।

अज्ञेय के ही संपादन में सन् 1979 में ''चौथा सप्तक'' प्रकाशित हुआ और उसमें भी सात कवि प्रस्तुत किए गये किन्तु जब तक अज्ञेय का नेतृत्व समाप्त हो चुका था, वे अपनी पसन्द के सात कवि अवश्य पेश कर सके किन्तु उन्हें तबका प्रतिनिधि कवि नहीं माना गया। सौभाग्य से अज्ञेय....ने सप्तकों की शृंखला में 'चौथा सप्तक' में राजस्थान के कवि नंदकिशोर आचार्य को अवश्य सम्मिलित किया। अब कविता के नेतृत्व की डोर अज्ञेय से छूट गई थी। युवा कवियों में मुक्तिबोध मृत्यु के बाद भी छाये रहे और नई ऊर्जा वाले कुछ अन्य कवि सामने आये जिनका उल्लेख साठोत्तरी कविता अथवा समकालीन कविता के अन्तर्गत करेंगे।

1.3.5.1 प्रवृत्तिगत विश्लेषण

प्रयोगवाद के अर्थ, स्वर और महत्त्व के प्रेरक तत्त्वों के इस निरूपण में उसकी कतिपय विशेषताएँ भी स्वत: ही आ गयीं हैं फिर भी कुछ अन्य विशेषताएँ भी ऐसी हैं जो अलग से विवचन की अपेक्षा रखती हैं। उन्हीं का संक्षिप्त विवेचन यहाँ किया जा रहा है। विशेष बात यह है कि प्रयोगवाद विदेशी कविता से प्रभावित और प्रेरित तो है, किन्तु वह अनुकरण भर नहीं है। इसमें आई बौद्धिकता, दुरुहता, रसहीनता, अतियथार्थवादिता, चमत्कृति, अतिवैयक्तिकता, गद्याभास की प्रवृत्ति, नवीनता के नाम पर किये गये अनर्गल और बेमानी प्रयोग व मन की दमित भावनाओं का प्रकटीकरण आदि ऐसी विशेषताएँ हैं जिनके लिए भारतीय परिवेश की जटिलता भी जिम्मेदार है। हाँ, शिल्पाग्रह जनित वैचित्र्य प्रदर्शन को पाश्चात्य प्रभाव मान सकते हैं।

1. प्रयोगवादी कविता ह्रासोन्मुख मध्यवर्गीय समाज के जीवन के चित्र प्रस्तुत करती है। उसमें जिस व्यक्ति- सत्य के संप्रेषण का व्रत लिया गया है, वह इसी समाज का अनुभूत एवं कटु यथार्थ है। यथार्थ का यह अभिव्यंजन धुएँ के कड़वे घूंटों के पीने के समान है।

2. प्रयोगवाद में व्यापक जीवनानुभूतियों का अंकन न होकर व्यक्ति की दैनन्दिनी के वे पृष्ठ चित्रित हुए हैं जिनकी लिखावट तो साफ और बेलाग है, किन्तु उनका सम्बन्ध कवियों के 'स्व' से है। 'स्व' के प्रति ममत्व की घनिष्टता ने ही इन कवियों के काव्य को सीमितार्थी बना दिया है।

3. जीवन की जटिलताओं को भोगने के कारण प्राय: सभी प्रयोगवादियों ने बौद्धिकता का वरण किया है। इनकी बौद्धिकता राग-

प्रेरित नहीं है। उसमें बौद्धिक चमत्कार का अंश इतना अधिक है कि यह अनुभव ही नहीं होता कि कविता का सम्बन्ध राग से भी हो सकता है। बौद्धिकता की आँच में पिघलकर इनका राग दीप्त हृदय और उसकी आर्द्र संवेदनाएँ सूख गयी हैं। फलत: कविता दुरुहता और अस्पष्ट अभिव्यक्तियों का गोदाम बन गयी है। यह ठीक है कि युग बदल रहा था और बदलते हुए युग में बुद्धि का प्रभाव बढ़ रहा था, किन्तु यह इतना नहीं था कि कविता कविता न रहकर बौद्धिक व्यायाम हो जाए तथा उसका रूप ही कुरूप हो जाए।

4. जीवन की जटिलताएँ कब नहीं रहीं और कब वे कविता में आकार नहीं पा सकी हैं? प्राय: सदैव ही। हाँ, मात्रा का अंतर हो सकता है, किन्तु प्रयोगवाद में अभिव्यक्त जटिलताओं ने तो कविता को न केवल दुरुह बनाया है, अपितु उसकी संप्रेषणीयता को भी बाधित कर दिया है। फलत: साधारणीकरण की अपेक्षा विशेषीकरण को महत्त्व मिला गया और कविता तथा पाठक के बीच एक दुर्लंघ्य खाई बढ़ती गयी।

5. प्रयोगवाद ने प्रयोगातिशयता के कारण वर्ज्य विषयों व निषिद्ध कक्ष के वार्ता-प्रसंगों को भी यथार्थवाद के नाम पर अभिव्यक्त किया। इसी अतियथार्थवादी प्रवृत्ति के कारण पंत ने लिखा है कि ''प्रयोगवाद की निर्झरिणी कल-कल छल-छल करती हुई फ्रायडवाद से प्रभावित होकर स्वप्निल, फेनिल, स्वर संगीतहीन भावनाओं की लहरियों से मुखरित उपचेतन- अवचेतन की रुद्ध-कुद्ध ग्रंथियों को मुक्त करती हुई, दमित कुंठित वासनाओं को वाणी देती हुई लोक-चेतना के स्रोत में नदी के द्वीप की तरह प्रकट होकर अपने पृथक् अस्तित्व पर अड़ गयी है।''

6. वैयक्तिकता छायावाद में भी थी, किन्तु प्रयोगवाद में यह चरम सीमा पर है और इसका कारण विशेषीकरण की प्रक्रिया है। यही कारण है कि कविता ''एक्स्ट्रा पर्सनल'' हो गयी है और उसमें व्यक्ति के जीवन की समस्त जड़ता, अनास्था, पराजय और मन:संघर्ष के सत्य को पूरी बौद्धिकता के साथ वाणी दी गयी है। छायावादियों की वैयक्तिकता जितनी रंगीन, स्वप्निल और मनोहर भावुकता से रंजित थी, वहीं प्रयोगवादियों की वैयक्तिकता एकदम शुष्क, पत्रडंठलहीन और नंगी है। उसमें भद्दापन है, शालीन रमणीयता नहीं।

7. प्रयोगवादी कविता में दमित वासना की ही अधिक अभिव्यंजना हुई है। काम संवेदनाओं को तीव्रता से व्यक्त करने वाली यह कविता यौन-वर्जनाओं को खुले मन से ग्रहण करती हैं। अज्ञेय जैसे कवि का श्वास कामावेग से उत्तप्त रहा है और उनकी धमनियों में लहू की धार उमड़कर नारी को पुकारती हुई दिखाई दे रही है तो भारती नारी के फीरोजी होठों, चम्पई वक्ष और शरीर की नरमाई की गरमाई पर ही अपनी जिन्दगी वार बैठे थे।

8. प्रयोगवादी कविता भावहीनता का शिकार के कारण गद्यात्मक तो हो ही गयी है, वैचित्र्य की भी हिमायती हो गयी है। इसी के कारण उपमानगत नवीनता, छंद और प्रतीक व भाषागत नवीनता भी चरम सीमा पर दिखाई देती है। कहीं ''कोकाकोला जैसा हुस्न'' है तो कहीं अंतिम जलती तीली सी हँसी है और कहीं ''कैमरे के लैन्स सी बुझी हुई आँखों'' का वर्णन है जो उपमानगत विचित्रता को प्रकट करता है। नवीनता के नाम पर किये गये ऐसे सैकड़ों प्रयोग मिलते हैं जो अर्थगर्भित कम, व्यर्थ अधिक हैं। प्रयोगातिशयता के कारण ही चाय की प्याली, चूड़ी का टुकड़ा, बाथरूम, क्रोशिए, मूत्रसिंचित मृत्तिका के वृत्त में तीन टांगों पर खड़ा नतग्रीवा धैर्य धन गदहा भी कविता के विषय बनकर बेखटके चला आया है। मुक्त छंद का प्रयोग तो समझ में आता है, किन्तु तुकाग्रह के कारण आये बेतुके प्रयोग की क्या तुक है? समझ में नहीं आता है।

9. शब्द गढ़ने की प्रवृत्ति भी प्रयोगवादी कविता में पर्याप्त रही है तथा भाषायी प्रयोगों में आड़ी-तिरछी, लकीरों, त्रिभुजों, विरामचिह्नों और शब्दलोपी वाक्य विन्यास आदि के कारण भाषा नितान्त वैयक्तिक व प्रभावहीन हो गयी है। जो भाषा आद्यन्त एक सामाजिक क्रिया रही है और जिसका रूप-स्वरूप सदैव सामाजिक और संप्रेषणीयता से जुड़ा रहा है वही प्रयोगवादिता के हाथों अपनी गरिमा खो बैठी है। यह सब प्रयोगों को ही साध्य मानने के कारण हुआ है।

उपरसंकेतित विशेषताओं के आलोक में प्रयोगवाद, वैचित्र्य प्रदर्शन, बौद्धिकता, स्वानुभूतियों की कच्ची चिट्ठी और शिल्पाग्रह की कविता प्रतीत होती है। उसमें न तो व्यापक जीवन के चित्र हैं, न विस्तृत फलक पर विडम्बनाओं व विसंगतियों के जीवन सापेक्ष बिम्ब हैं। वह तो जरूरी गैर जरूरी चीजों का गोदाम भर प्रतीत होती है। ऐसी स्थिति में उपलब्धि के नाम पर तो हमें खाली हाथ लौटने को ही विवश होना पड़ेगा, किन्तु उसकी कतिपय भंगिमाओं से प्राप्त सत्योपलब्धियों से इन्कार नहीं किया जा सकता है। हमारी धारणा है कि प्रयोगवाद ने कविता को बंधी बाँधी पद्धति के घेरे से निकाला है, सीमित जीवानुभूतियों के अभिव्यंजना से काव्य के मूल्यांकन की एक दिशा दी है और वृहत् मानव के स्थान पर आम आदमी (लघु मानव) की महत्ता प्रतिपादित की है। इतना ही नहीं, प्रयोगवाद ने प्रमाणित किया है कि कविता का जीवन नियमबद्ध नहीं हो सकता है। वह कोई यांत्रिक पद्धति या साधनों से निष्पन्न गढी-गढ़ाई चीज

नहीं है। प्रयोगवाद प्रयोगों का प्रारम्भ था, चरम परिणति नहीं। अत: जब ये प्रयोग संतुलित हुए और इनकी बाढ़ का पानी उतरा तो कविता में संतुलन भी आया, परिष्कार भी आया और वह राग प्रेरित होकर जीवन के व्यापक फलक पर भी प्रस्तुत हुई। जब ऐसा हुआ तभी उसे नयी कविता का नाम दे दिया गया।

1.3.6 नवगीत

कविता छंद के बन्धन से मुक्त तो हो गई किन्तु अनेक कवि मुक्त छंद के समान्तर छंद बद्ध रचनाएँ लिखते रहे, जिनमें नाद सौन्दर्य अधिक विद्यमान रहा। परम्परा से चले आ रहे गीतों में अवश्य परिवर्तन हुआ। अब गीत प्रेम, सौन्दर्य और वायवी कल्पना से हटकर जीवन के यथार्थ की कठोर भूमि पर जन-जीवन से जुड़ी रोजमर्रा की जिन्दगी और एक बड़े शोषित वर्ग की समस्याओं को लेकर भी लिखे जाने लगे। ये गीत परम्परा से कट कर विशिष्ट थे, इन्हें नवगीत की संज्ञा दी गई।

आधुनिक कविता के इतिहास में जो-जो काव्य-धाराएँ समय की कोख से जन्मी हैं उनमें सबसे अधिक मान नयी कविता को मिला और उससे कुछ ही कम छायावाद को। छायावाद को कुछ कम इसलिए कि कल्पना की कतार में अधिक संशय तक नहीं भटका जा सकता है। हमें उससे निकलकर यथार्थ की ठोस धरती पर आना ही होता है। नयी कविता हमें इसी जमीन पर ले आई है। फिर ठोस जमीन पर न तो फिसलने का भय रहता है और न नीचे धँसने का। अत: वहाँ अपेक्षाकृत अधिक देर तक खड़ा रहा जा सकता है। जहाँ हम सबसे कम ठहरे हैं, वह जमीन प्रगतिवाद और प्रयोगवाद की है या फिर छायावाद की। पीठ पर उतरने वाली मस्ती की वह जमीन है जिसे कुछ समीक्षकों ने 'हालावाद' का नाम भी दिया है। प्रगतिवाद की धरती जीवन के बीच की धरती होते हुए भी विज्ञापनी-वृत्ति और मार्क्सीय सिद्धान्तों से पटी पड़ी थी तो प्रयोगवाद के वैचित्र्यवाद की चौंकाने वाली छलियों से। रही मस्ती, खुमार और नशे की उस धरती की बात जहाँ प्रणय का रंग मस्ती के 'एलकोहल' से मिलकर नारी-शरीर के उत्तरी-दक्षिणी ध्रुवों को सौन्दर्य के शराबी पैमाने से नाप रहा था, उसके सम्बन्ध में इतना कहना काफी होगा कि मस्ती का नशा यथार्थ के ताबड़तोड़ झटकों से पल मात्र में ही उतर जाता है। निश्चय ही हमें ऐसी धरती चाहिये जिसका आकार विशाल हो, नींव मजबूत हो तथा जिस पर सौन्दर्य का काश्मीर भी चहकता हो और जीवन के कटु-तिक्त अनुभवों के अभ्रभेदी शिलाखंड जीवन की कठोरता, भयंकरता, विडम्बना और विसंगतियों का अहसास भी कराते हों। यही यथार्थ की जमीन है और इसी पर अधिक समय तक रुका जा सकता है। जाहिर है कि हम यहीं अधिक रुके हैं और आज जब पाँच दशक बीत गये हैं तब भी हम इसके आस-पास ही चक्कर लगा रहे हैं—कभी कुछ दाएँ तो कभी कुछ बाएँ या कुछ आगे। यही नयी कविता की भूमि है जहाँ कुछेक साठोत्तर कवियों ने उत्खनन करके कतिपय नये मूल्य और प्राप्त कर लिए हैं। विश्वास किया जा सकता है कि आगे इस जमीन के गर्भ में छिपी शक्तियों और उनसे प्रेरित भावानुभूतियों का अधिकाधिक विस्तार किया जाता रहेगा।

महाप्राण निराला ने कविता को छंद के बंधन से मुक्ति अवश्य दी किन्तु वे संगीत व छन्द शास्त्र के बेजोड़ जानकार थे अतएव जीवन के अंतिम क्षणों तक श्रेष्ठ गीत लिखते रहे। नवगीतकारों के लिए निराला के ये गीत प्रेरक बनें। गीत की अपनी सीमाएँ होने के बावजूद उसकी रागात्मकता, गेयता उसे लोकप्रिय व स्थायी बनाती है। गीतों की विषय वस्तु और उसकी आंतरिक संरचना देने वालों में सर्वश्री गिरिजाकुमार माथुर, ठाकुर प्रसाद सिंह, धर्मवीर भारती, उमाकान्त मालवीय, शलभ, श्रीरामसिंह नईम, ओम प्रभाकर, नरेश, सक्सेना, रवीन्द्र भ्रमर, शम्भुनाथसिंह, रमेश कुन्तल मेघ, श्यामसुन्दर घोष, वीरेन्द्र मिश्र, सोम ठाकुर इत्यादि प्रमुख हैं। राजस्थान के हरीश भादानी, ताराप्रकाश जोशी, कुमार शिव, वीर सक्सेना जुगमंदिर तायल, हरिराम आचार्य, तारादत्त निर्विरोध ने श्रेष्ठ नवगीत लिखे हैं।

नवगीत की धारा निरन्तर गतिशील है।

1.3.7 समकालीन कविता

आज की कविता को समकालीन कविता का नाम दिया गया है। आज की कविता की अपने समय के साथ जितनी सीधी और उग्र मुलाकात होती है उतनी पहले की कविता नहीं होती। पूर्व की कविता में 'सामान्य' या 'शाश्वत' तत्त्वों और रूझानों के प्रति जितना लगाव मिलता है उतना समकालीन कविता में नहीं मिलता।

समकालीन कविता अपने समय में मुख्य अंतर्विरोधों की कविता है। उसमें प्राथमिकताओं के ज्ञान की शक्ति है और इन प्राथमिकताओं को अपने जीवनानुभवों से पहचान कर उनके लिये लड़ने का संकल्प है। कविता को यह पता है कि कष्ट का वास्तविक

रूप क्या है, वह दूर कैसे हो? इस बिन्दु पर दृष्टि हीनता के बावजूद आज का कवि, कल्पित और अद्वितीय अस्तित्व के लिए संघर्ष न कर, साधारण मानवता के लिए संघर्ष कर रहा है। भूख और सामाजिक अन्याय के स्तरों पर क्षुब्ध आज का कवि उस लफ्फाजी को अप्रासंगिक मानता है जो जीवन की मुख्य आवश्यकताओं को भुलाकर कल्पित अस्तित्व की जरूरतों को तरजीह देती हैं। समकालीन कविता में 'जो हो रहा है' का सीधा खुलासा है। इसे पढ़कर वर्तमान काल का बोध हो सकता है क्योंकि उसमें जीते, संघर्ष करते, लड़ते, बौखलाते, तड़पते-गरजते तथा ठोकर खाकर सोचते वास्तविक आदमी का परिदृश्य है। उसमें चित्रित आदमी की शक्ल है, जिसे आप पहचान सकते हैं, जान भी सकते हैं।

समकालीन कविता को अपनी रचनात्मक ऊर्जा से पुष्ट बनाने वाले कवि हैं कुमारेन्द्र पारसनाथसिंह, लीलाधर जगूड़ी, आग्नेय, रमेश गौड़, चन्द्रकांत देवताले, ज्ञानेन्द्र पति, बलदेव वंशी, शलभ श्रीरामसिंह, गौरख पाण्डेय, डॉ. जयसिंह नीरज इत्यादि। समकालीन कविता, आधुनिक कविता का अगला और ताजगी से भरा सोपान है।

1.3.7.1 प्रवृत्तिगत विश्लेषण—साठोत्तरी कविता समकालीन जीवन का भूगोल है। उसमें वर्तमान परिवेश की निर्मम वास्तविकताएँ, उनसे उत्पन्न दबाव, तनाव के साथ मानवीय सम्बन्धों की कृत्रिमता निरूपित हुई है। इसी से यह कविता अपने पारम्परिक रूप-स्वरूप और अर्थ से च्युत हो गयी है। इस कविता की पहचान का कुछ-कुछ अंदाज दूधनाथसिंह के इस कथन से हो सकता है, ''यह वह कविता नहीं है/ यह केवल खून सनी चमड़ी उतार लेने के लिए है/ यह केवल रस नहीं है/ जहर है जहर।'' जाहिर है कि साठोत्तरी कविता निर्मम वास्तविकताओं की क्रूर व्यंजना है। भयावह परिवेश से उपजी चीख है। लगता है कि पारम्परिक अर्थ में कविता स्थागित हो गयी है और एक नयी कविता-धारणा का स्वर साठोत्तरी परिवेश की कविता में सुना जा सकता है। यह वह कविता है जो अन्याय के विरुद्ध खड़ी है, शासन द्वारा की जाने वाली चिकनी बातों पर आक्रोशी स्वर में जल रही है और अपनी समूची शब्दावली से आदमी और उसके परिवेश की हर परत को उघाड़ रही है। ऐसी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियों को निम्नांकित प्रकार से विश्लेषित किया जा सकता है—

1. सन् साठ के बाद की कविता में जो पहली प्रवृत्ति उभरी है, वह रोमानी या छायावादी अभिरुचि या संस्कारों से मुक्ति है। नयी कविता नवीन तो थी, यथार्थ तो थी और परिवेश से सम्बद्ध-प्रतिबद्ध तो थी, किन्तु एक सीमा तक छायावादी सौन्दर्य से भी सिक्त थी। साठोत्तरी कविता में रोमानी संस्कारों से मुक्ति का प्रयत्न किया गया है। जो कवि इस प्रयत्न में रहे हैं, उनमें दूधनाथसिंह, श्रीकांत वर्मा, लीलाधर जगूड़ी, धूमिल, कैलाश वाजपेयी, श्रीराम वर्मा और बलदेव वंशी आदि के नाम प्रमुख हैं। ये कवि वे हैं जो रोमानी संस्कारों से मुक्ति पाने में काफी हद तक सफल हुए हैं। इतना ही क्यों, जब कवि को ऋतुओं में सौन्दर्य नहीं दिखाई देता और लगता है कि उनमें भी बदलाव का असर आ गया है तो उसका मानस यह अनुभव करने लगता है, ''हम जानते हैं ऋतुएँ बहुत गरीब हैं/ हमारे लिए/ हम जानते हैं कि नरक के दरवाजे पर जाकर/ हमारी यातनाएँ एक बार तो लौटेंगी ही।''

2. समकालीन कविता समाज की मृत मान्यताओं, टूटती हुई परम्पराओं और मोह-भंग की कविता है। उसमें आज की विकृत जिन्दगी और सम्बन्धों की खींच अभिव्यक्त हुई है। मोह-भंग की जो प्रवृत्ति इस कविता में मिलती है, उसे समकालीन परिवेश की तल्खी से उत्पन्न प्रतिक्रिया माना जा सकता है। आजादी के बाद ठोस उपलब्धि के नाम पर केवल आजादी शब्द ही मिला है, जिसे तीन थके हुए रंगों से जाना जा सकता है। चीन का आक्रमण, कच्छ न्यायाधिकरण का दुर्भावनापूर्ण निर्णय, ताशकंद घोषणा, कॉंग्रेस सरकार की निष्क्रियता, जड़ता, राजनीतिक अव्यवस्था, भ्रष्टाचार, नेताओं द्वारा प्रदत्त झूठे आश्वासन, निरंतर बढ़ती हुई कमरतोड़ महँगाई, अकाल, बेरोजगारी, भुखमरी, जातिवाद और भ्रष्ट प्रशासन आदि ऐसे अनेक तत्त्व थे जिनसे मोहभंग की स्थिति पैदा हुई। यह मोहभंग साठोत्तरी कविता की प्रमुख प्रवृत्ति है। आजादी के बाद हर बार लाल किले की प्राचीर से तिरंगा तो फहराया जाता रहा, किन्तु देश के निर्माण के और आत्मनिर्भर बनाने का स्वप्न अधर में झूलता रहा। समृद्धि के स्थान पर विपन्नता, भूख व नंगापन बढ़ता गया और मानव मोहभंग की स्थिति से गुजरने लगा। मोहभंग की इस स्थिति को धूमिल, लीलाधर जगूड़ी और बलदेव वंशी ने न केवल कविताओं में कहा है, बल्कि उसे एक साफ जुबान में एक ऐसे रूप में कहा कि पाठक तिलमिला उठता है। व्यवस्था, व्यवस्था में जीने वाला आदमी और वह मजदूर जो रोटी पैदा करता है, तीनों धूमिल की निगाह में हैं, किन्तु कवि का मोह-भंग तब साफ होता है जब वह कहता है, ''एक आदमी रोटी बेलता है एक आदमी रोटी खाता है/ एक तीसरा आदमी भी है/ जो न रोटी बेलता है, न रोटी खाता है/ वह सिर्फ रोटी से खेलता है/ मैं पूछता हूँ यह तीसरा आदमी कौन है? मेरे देश की संसद मौन है।''

3. साठोत्तरी कविता परिवेश के प्रति प्रतिबद्ध है। उसमें जीवन की यथार्थ स्थितियों से सीधा साक्षात्कार चित्रित हुआ है। पिछले दशक की कविता संघर्ष केन्द्रित थी। उसमें जीवन का सही, निर्मम और सीधा साक्षात्कार करके उपलब्ध अनुभूतियों का अनुभवांकन हुआ है। इसमें उत्तेजना, खीझ, असंतोष, कड़वाहट और निराशा है। नयी कविता ने पारंपरिक आदर्शों, मूल्यों और स्थापित मान्यताओं का विरोध भर किया, किन्तु आज का कवि समाज की विकृतियों में खुद हिस्सा ले रहा है। आज का कवि जब मनुष्य को दोहरी जिन्दगी जीते देखता है तो वह साक्षात्कृत परिवेश के प्रति अपनी प्रतिबद्धता सूचित करता है। यह प्रतिबद्धता और कुछ नहीं, कवि की सचेत दृष्टि द्वारा परिवेश का सही ग्रहण ही है और यही समकालीन सन्दर्भों और स्थितियों से सीधा साक्षात्कार है। 'पटकथा' का परिदृश्य भी ऐसा ही है जिसमें समूचा राजनैतिक परिवेश आ गया है। संसद, संविधान, प्रजातंत्र और जनता सभी का खुलना कच्चा चिट्ठा कविता में देखा जा सकता है—

अपने यहाँ संसद, तेली की वह घानी है,
जिसमें आधा तेल है और आधा पानी है।

4. साठोत्तरी कविता जिस परिवेश की देन है, वह काफी भयावह, थोथा और विसंगतिपूर्ण है। उसमें मिथ्या आदर्श व कृत्रिम और पोच मान्यताएँ इतनी अधिक हैं कि आज का कवि उनके प्रति एक अस्वीकार का भाव लिए हुए हैं। उसके माथे, चेहरे और जुबान पर सब कहीं अस्वीकार ही अस्वीकार है। कविता की 'मिथ' के टूटने और उसे नये रूप में प्रस्तुत करने की पृष्ठभूमि में अस्वीकार तेवर साफ झलकते हैं। ध्यान रहे कि अस्वीकार आधे या अधूरे मन से नहीं, संपूर्ण बौद्धिक और भावात्मक शक्ति से किया जाता है। इसी से साठोत्तरी कविता के प्रमुख कवियों में यह अस्वीकार की मुद्रा रचनात्मक है, कोरी भावात्मक नहीं।

5. साठोत्तरी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियों में आक्रोश व विद्रोह की भावना भी यथोप्त अहमियत रखती है। इस कविता में जो आक्रोशपूर्ण विद्रोह भरा है, वह भारतीय परिवेश से ही उपजा है। भारतीय समाज में व्याप्त जड़ता, निष्क्रियता और विसंगति व विडम्बनों के कारण साठोत्तरी कविता आक्रोशमूलक और विद्रोहपरक हो गयी है। विद्रोह और आक्रोश की यह प्रवृत्ति आद्यंत इस कविता में व्याप्त है और यह मोहभंग की आत्मजा तथा अस्वीकार की सहोदरा है। कवि धूमिल का मानस बेपर्दगी के साथ कहता है, ''मैं देखता रहा/ हर तरफ ऊब थी/ संशय था/ नफरत थी/ मगर हर आदमी अपनी जरूरतों के आगे असहाय था/ उसमें सारी चीजों को नये सिरे से बदलने की/ बेचैनी थी, रोष था/ लेकिन उसका गुस्सा/ एक तथ्यहीन मिश्रण था, आग, आँसू और हाथ का/ और इसी स्थिति में श्रीकांत वर्मा का कथन, ''न मैं आत्महत्या कर सकता हूँ और न औरों का खून'' कहकर अपने आक्रोश को निराश और विवश शैली में अभिव्यक्ति देता दिखाई देता है।

6. वर्तमान परिवेश में जो स्वार्थान्धता, भ्रष्टाचारिता और जो आपाधापी व्याप्त है, उसको अनुभव के दायरे में बाँधते हुए साठोत्तर कवि ऐसा व्यंग्य करते हैं कि उससे अंतस् की एक-एक परत छिल जाती है। इस व्यंग्य की पृष्ठभूमि नयी कविता में ही तैयार हो गयी थी, किन्तु वहाँ व्यंग्यशालीन था। यहाँ आकर व्यंग्य तीखा, मर्मान्तक और आक्रामक हो गया है क्योंकि यथास्थिति का स्वीकार यहाँ नहीं है, बल्कि उसके प्रति व्यंग्य है, गहरी छटपटाहट है और है आक्रोश एवं विद्रोह का स्वर।

संसद एक मंदिर है/ जहाँ किसी को द्रोही नहीं कहा जा सकता/ दूध पिये मुँह पोंछे आ बैठे/ जीवनदानी गोंददानी सदस्य तोंद सम्मुख धर/ बोले कविता में देश प्रेमलाना, हरियान प्रेम लाना/ आईसक्रीम लाना है।

7. साठोत्तरी कविता की एक प्रवृत्ति राजनैतिक सन्दर्भों के साक्षात्कार की है। इसमें राजनीतिक कविता के निकट और कविता राजनीति के निकट और कविता राजनीति के निकट आ गयी है। कुछ समीक्षकों ने राजनीति को कविता विषय बनाने में आपत्ति की है। वर्तमान परिस्थितियों में जब देश और उसकी राजनीति प्रत्येक आम आदमी की जिन्दगी का हिस्सा हो गयी है तो उसे कविता से बहिष्कृत कैसे किया जा सकता है। हाँ, दल विशेष की पक्षधरता की आड़ में लिखी गयी कविता अवश्य ही आलोचना का शिकार होनी चाहिए। अत: कविता और राजनीति का सम्बन्ध काव्यात्मक और रचनात्मक स्तर पर होना चाहिए। साठोत्तरी कविता में यही स्थिति है। मुक्तिबोध, श्रीराम वर्मा, मत्स्येन्द्र शुक्ल, चन्द्रकांत देवताले, रमेश गौड़, धूमिल, रघुवीर सहाय, श्रीकांत वर्मा और लीलाधर जगूड़ी आदि अनेक कवियों की कविताओं में राजनीतिक सन्दर्भों और उनसे जुड़े प्रश्नों को उठाया गया है। रघुवीर सहाय की 'आत्महत्या के विरुद्ध' कृति में जो समूचा शासनतंत्र नंगा होकर सामने आया है। धूमिल की 'पटकथा' में राजनैतिक सन्दर्भ हैं, देश का बिखरा हुआ चेहरा है और प्रजातंत्र की थोथी उपलब्धियों पर व्यंग्य है।

8. साठोत्तरी कविता वर्तमान परिवेश की विसंगतियों, यंत्रणाओं और विविध भयावहताओं की बेपर्द अभिव्यंजना कर रही है। जिन्दगी में जो यंत्रणा व्याप्त है, गहरा असंतोष व निराशा है और जो अनिश्चयग्रस्त मानस है उसकी सही व रचनात्मक स्तर पर व्यंजना अनेक साठोत्तर कवियों ने पूरी ईमानदारी से की है। कैलाश वाजपेयी, केदारनाथसिंह, मलयज, धूमिल, दूधनाथसिंह, नीलाभ, राजकमल चौधरी और श्याम विमल आदि कवियों की कविताओं में निर्मम वास्तविकताओं की रचनात्मक स्तर पर अभिव्यक्ति हुई है।

इस प्रकार कह सकते हैं कि साठोत्तरी कविता समकालीन जीवन का पूरा भूगोल प्रस्तुत करने वाली कविता है। उसमें साठोत्तर भारत का सही मानचित्र सही रेखाओं द्वारा प्रकट किया गया है। परिवेश का इतना सच्चा, निर्मम यथार्थ और साक्षात्कृत जीवन किसी दूसरी कविता में कहाँ है? वस्तुत: ये कवि आज के परिवेश और प्रशासन में व्याप्त झूठी भाषा को सही शब्द दे रहे हैं। इन्होंने चौराहे पर खड़े होकर झूठी शक्लें देखी हैं, नकली नकाब देखे हैं, बदलते दृश्य देखे हैं। दुनिया के नक्शे में अपनी, अपने देश की और अपने नक्शे में दुनिया की बदलती स्थितियों को पढ़ा है, गरीबों की आह देखी है, धनवानों के ठहाके देखे हैं, शासकों का दंभ देखा है, शोषितों की विवशता पहचानी है, आदमी को कागज, चीज और मुहर बनते देखा है और जाना है वह सब कि कैसे एक आदमी दूसरे आदमियों की गर्दनों पर पैर रखते हुए ऊँची कुर्सी पा जाता है। कैसे एक ईमानदार रात भर में बेईमान, निकम्मा और अपराधी हो जाता है और कैसे पलभर में छद्मी ईमानदारी का प्रमाण-पत्र पा जाता है? धूल, गर्द, गुबार और कीचड़ और कीचड़ को फाँकते नापते आदमी की जिन्दगी की समूची दैनन्दिनी साठोत्तरी कविता के पृष्ठों पर अंकित हुई है। इस कविता में आदमी का पूरा चेहरा है, पूरी जिन्दगी है और वह सब है जो उसे यह शक्ल दे रहा है। कुल मिलाकर यही कि साठोत्तरी कविता मोहभंग, आक्रोश, अस्वीकार, तनाव और विद्रोह की कविता है। उसका मुहावरा नया है, शैली बेपर्द है और इसके साथ ही उसमें जिजीविषा का रंग गहरा है।

इसमें प्रमुख कवियों में धूमिल, लीलाधर जगूड़ी, बलदेव वंशी, चंद्रकान्त देवताले, डॉ. विनय, नरेन्द्र मोहन, जगदीश चतुर्वेदी, रामदरश मिश्र व अन्य कवियों में प्रताप सहगल, राजकुमार कुम्भज, राजीव सक्सैना, गोरख पाण्डे, अरुण कमल, वेणुगोपाल, नचिकेता, कुमारेन्द्र, पारसनाथसिंह, ज्ञानेन्द्रपति, सुरेन्द्र तिवारी, ललित शुक्ल, बसंत देव, कुंतल कुमार जैन, प्राणकुमार बंद्योपाध्याय, उदयप्रकाश, मंगलेश, डबराल, राजेश जोशी, कुमार विकल, महेन्द्र कार्तिकेय आदि के नाम लिए जा सकते हैं।

1.3.8 दीर्घ कविता परम्परा व रचना-विधान

इसमें कोई संदेह नहीं कि कविता बहुत पुराने समय से लिखी जा रही है किन्तु दीर्घ कविताओं का सृजन, प्रचलन आधुनिक युग की ही देन है। दीर्घ कविता ने अब काव्य की एक नयी विधा के रूप में आकार ही ग्रहण नहीं किया है बल्कि वह प्रतिष्ठित भी हो गई है। सन् 60 के बाद तो इस नयी काव्य-विधा ने नयी पहचान भी बनाली है। दीर्घ कविता आधुनिक काव्य माध्यम है जो वर्तमान परिवेश और उसमें पनप रही स्थितियों की अभिव्यक्ति के लिये अनिवार्य है। लम्बी कविता समसामयिक परिवेश, जटिल संदर्भों और तनाव के बिन्दु से उभरकर सामने आती है। बाह्य धरातल पर आज परिवेश में जो संघर्ष देखे जाते हैं, झेलने पड़ते हैं, उनके मूल में व्यवस्था की अराजकता मूल कारण है। अनचाही असंजानी परिस्थितियों के उत्पन्न हो जाने और उनसे जूझने की विवशता से व्यक्ति मानस में द्वन्द्व गहराने लगता है, इस द्वन्द्व से स्वाभाविक तनाव उत्पन्न होता है जो लम्बी कविता को जन्म देता है।

डॉ. नरेन्द्र मोहन सृजनात्मक तनाव को लम्बी कविताओं की अनिवार्य सृजन के लिये बाध्य करने वाला प्रमुख तत्त्व मानते हैं। उनका कथन है—''यह तनाव व्यक्ति और व्यक्ति के बीच का, व्यक्ति समाज के बीच का, आत्मिक संदर्भों और परिवेश परिस्थिति के बीच का, सांस्कृतिक, भाषा और राजनीतिक शक्तियों के बीच का तो है ही बुनियादी तौर पर और सृजनात्मक स्तरों पर यह सामाजिक स्थिति से प्रेरित विचार और लहू के बीच के रिश्तों का तनाव है। एक क्रूर परिस्थिति में जिन्दा रह पाने की तीव्र बेचैनी, गहरी वेदना हर जोखिम उठाकर मानवीय प्रेम के धरातल को पुष्ट करते रहने की बलवती इच्छा से पैदा हुआ तनाव.....। तनाव के इन्हीं संदर्भों, धरातलों, आयामों, रंगों और आशयों से निर्मित होती है लम्बी कविता। तनाव की इस विविध धर्मिता का नाम है लम्बी कविता। लम्बी महज वैचारिकता के सध नहीं सकती है, न कोरे संवेग आवेग और उत्तेजना से निभ सकती है।

डॉ. बलदेव वंशी ने लम्बी कविता को समकालीन बोध की प्रदीर्घ परिणति स्वीकार किया है। 'लम्बी कविताएँ : वैचारिक सरोकार' शीर्षक कृति में उन्होंने लिखा है—लम्बी कविता अपनी प्रकृति, रूप और चरित्रगत विशिष्टता में संयत, बहुआयामी, व्यापक, दृश्यफलक लिए हुई ऐसी प्रदीर्घ रचना है जो विचार दृष्टि एवं संवेदनात्मक धरातल पर परिवेश से बृहत्तर सरोकार रखती है। गुम्फित यथार्थ के

गतिशील रूपों को वैचारिक अनुभूति की संश्लिष्ट बनावटों को, उनकी उत्कृष्टता में पकड़ने की छटपटाहट है।'' आकारगत प्रदीर्घता, तनाव का बिन्दु, नाटकीयता, अन्विति, कसावट, बिम्बधर्मिता और यथार्थ की ठोस अभिव्यक्ति, व्यंग्यचेतना आदि उसके प्रमुख तत्त्व माने जाते हैं।

दीर्घ कविता महाकाव्य और खण्डकाव्य से अलग होती है। महाकाव्य और खण्डकाव्य में कथानक, चरित्र और शिल्प की उत्कृष्टता, अपेक्षित है जबकि दीर्घ कविता में इनके लिये कोई स्थान नहीं है। डॉ. वीरेन्द्र सिंह ने दीर्घ कविताओं को महाकाव्य और खण्ड काव्य के बीच की विधा के रूप में स्वीकार किया है। उनकी यह भी धारणा है कि ऐसी कविताओं में कमोवेश रूप में नाटक, उपन्यास और कहानी के तत्त्व भी आकर मिल जाते हैं। उनका कथन है—'लम्बी कविता में एक ऐसा वैचारिक एवं संवेदनात्मक संयोजन होता है जो नाटकीयता, व्यंग्यात्मकता, घटनात्मकता।' (इतिवृत्त नहीं) कवि नायक की उपस्थित (पृष्ठभूमि में) विचारों की टकराहट अनुभूतियों की विखंडित अभिव्यक्ति और सपाट गद्यात्मकता के तत्त्वों को लेकर एक संश्लिष्ट भावभूमि को प्रस्तुत करता है। इस भावभूमि में विस्तार तो होता है, पर इतिवृत्त नहीं, घटनात्मकता होती है पर कथानक नहीं, व्यक्ति तो होता है पर चरित्र नहीं और इन सबसे ऊपर एक ऐसा वैचारिक एवं संवेदनात्मक संयोजन होता है जो पूरी कविता को बाँधे रखता है।''

दीर्घ कविताओं की शुरुआत छायावाद युग में हो गयी थी पर छायावाद युग में लिखी गई दीर्घ कविताओं और समकालीन दीर्घ कविताओं की रचना प्रक्रिया में पर्याप्त अन्तर है। पंत की 'परिवर्तन', निराला की 'राम की शक्तिपूजा', 'पंचवटी प्रसंग', 'यमुना के प्रति', 'सरोज स्मृति', 'कुकुरमुत्ता' तथा प्रसाद की 'प्रलय की छाया' जैसी कविताओं में दीर्घ कविता के सूत्र विद्यमान हैं। प्रसाद की 'प्रलय की छाया' दीर्घ कविता के तत्त्वों के अधिक निकट है। इस कविता में ऐतिहासिक आधार लेकर नाट्यात्मक शैली में कमला के मानसिक द्वन्द्व की अभिव्यक्ति हुई है। निराला की 'सरोज स्मृति' को छोड़कर सभी दीर्घ कविताएँ आख्यान परक है। सभी कविताओं में किसी-न-किसी रूप में दूरवर्ती या निकट अतीत को कोई-न-कोई पौराणिक ऐतिहासिक या लोक- आख्यान विद्यमान है। निराला की दीर्घ कविताएँ आख्यानपरक भले ही हो किन्तु उनमें ऐसे बिन्दु भी हैं जो आख्यान को तोड़ते हैं। 'तुलसी दास' और 'राम की शक्तिपूजा' में अनेक प्रसंगों में द्वन्द्व और संघर्षों को नाटकीयता से तोड़ने की कोशिश है। निराला की लम्बी कथात्मक कविताओं में एकान्विति के सूत्र विद्यमान है। 'राम की शक्तिपूजा' रामकथा कम है, निराला के रचनात्मक संघर्ष, संशय और आत्मबलिदान की कहानी अधिक है। पंत की 'परिवर्तन' छायावादी दौर की एक ऐसी लम्बी कविता है जिसमें किसी आख्यान या इतिवृत्त का सहारा लिए बिना परिवर्तन सम्बन्धी धारणा को आवेश पूर्ण ढंग से बिम्बात्मक रूप में अभिव्यक्त किया गया है। डॉ. नरेन्द्र मोहन ने अपनी कृति 'कहीं भी खत्म कविता नहीं होती' में लिखा है—'यह कविता कालक्रम की दृष्टि से ही नहीं, अपने विन्यास की दृष्टि से भी हिन्दी की पहली लम्बी कविता मानी जा सकती है।'

छायावादी लम्बी कविताओं के बाद कविता के दौर में जो दीर्घ कविताएँ लिखी गई हैं, उनमें नरेश-मेहता की 'समय देवता' धर्मवीर भारती की 'प्रमथ्यु गाथा' अज्ञेय की 'असाध्यवीणा' मुक्तिबोध की 'अंधेरे में' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। 'समय देवता' कविता में कोई आख्यान नहीं है। कविता समय को मानवीकृत करता है और अपनी अनुभूतियों को क्रमशः विस्तृत करता हुआ बिम्बों की शृंखला प्रस्तुत करता है। कविता को पढ़कर ऐसा लगता है कि कवि की कल्पना में समूचा विश्व आकर सिमट गया है। विश्व का कोई ऐसा प्रमुख देश नहीं है जिसकी ओर उसकी दृष्टि न गई हो। नरेश मेहता ने इस कविता के माध्यम से यह संकेत दिया है कि समय की शक्ति अमोघ है। वही सबसे बड़ा देवता है। उसके समक्ष कोई नहीं टिक सकता है। समय का परिवर्तन व्यक्तियों के सोच और उनकी मानसिकता को बदल देता है। हम अब तक जिस संस्कृति और उससे जुड़े हुए तत्त्वों को जीवन का सर्वस्व समझते थे उन्हीं को अब विस्मृत करते जा रहे हैं। वास्तव में यह सांस्कृतिक विघटन है। इससे बचना चाहिए। कवि की धारणा है कि संस्कृति का विघटन न केवल व्यक्ति को बल्कि समाज और समूचे विश्व को विध्वंस की ओर ले जा रहा है। विभिन्न देशों का परिचयात्मक वृत्तान्त कलात्मक शैली में प्रस्तुत करते समय कवि का ध्यान बराबर इस बात पर केन्द्रित रहा है कि आज सर्वत्र विनाश ही विनाश, विध्वंस ही विध्वंस दिखाई दे रहा है। इस कविता में विविध देशों की स्थिति को निरूपित करते समय कवि ने यह संकेत किया है मनुष्य की महिमा सर्वोपरि है और उसके साथ धरती का महत्त्व भी कम नहीं है। इन दोनों तत्त्वों को समझकर मनुष्य विनाश से बच सकता है। इस कविता में समकालीन दीर्घ कविताओं जैसा तनाव और द्वन्द्व नहीं है पर उन स्थितियों का बिम्बांकन है जो मनुष्य से मनुष्यता छीन रही है। धर्मवीर भारती की 'प्रमथ्युगाथा' और अज्ञेय की 'असाध्य वीणा' दोनों ही आख्यान मिश्रित लम्बी कविताएँ हैं और दोनों में नाटकीयता का

समावेश हुआ है। प्रमध्युगाथा संवादों के सहारे आगे बढ़ती जाती है और 'असाध्य वीणा' में नाटकीयता के विधान ने कथ्य को आगे बढ़ाया है। 'असाध्य वीणा' अज्ञेय के 'आंगन के पार द्वार' संग्रह में संकलित है। इस संग्रह में 1959 से 1961 तक की रचनाएँ संकलित हैं। 1964 में अज्ञेय को इस संग्रह पर साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला था। 'असाध्य वीणा' में एक छोटी-सी कथा का प्रयोग एक अवधारणा की अभिव्यक्ति के लिये हुआ है। जो प्रतीकात्मक होने के कारण लौकिक और अलौकिक दो स्तरों पर चरितार्थ हुई है। लौकिक स्तर पर किटी तरू समष्टि का प्रतीक है। अलौकिक स्तर पर वह ब्रह्म है, महामौन है जिसमें संगीत सोता है, विराट है जो आकाश से लेकर पाताल तक व्याप्त है जो नाना ध्वनियों और गतियों का साक्षी और गृहीता है। उसी से वीणा बनी है। अत: वीणा में भी वे सारी गतियाँ व ध्वनियाँ हैं। वीणा व्यक्ति के भौतिक अस्तित्व का प्रतीक है। उसे वही बजा सकता है जो महामौन या ब्रह्म का साधक हो। अहंकार लेकर उसे नहीं बजाया जा सकता। पूर्ण समर्पण से ही उसे पाया जा सकता है।

'असाध्य वीणा' अज्ञेय जैसे शिल्पी के रचना कौशल का ही परिणाम है। यह एक लम्बी कविता है किन्तु अभिप्रेत को व्यक्त करने में कहीं भी शिथिल नहीं लगती। इसमें आये वर्णन चरित्रांकन भाव राशि और शिल्प के क्षेत्र में प्रयुक्त सही शब्दों के द्वारा प्रस्तुत ध्वन्यात्मकता बेजोड़ है। कवि ने कई स्थलों पर किटी तरू के संश्लिष्ट बिम्ब उभारे हैं। एक ही बिम्ब में विराटता और गहराई, कठोरता और कोमलता आदि के छोटे-छोटे चित्र संगृहीत हैं। इस कविता में बिम्बों की बड़ी भूमिका है। भाषा प्राय: बिम्बात्मक ही है। संवेदना के अनुसार भाषा अपनी शब्द योजना में वाक्य विन्यास में अलग हो उठती है।

नयी कविता के दौर में मुक्तिबोध ने सफल दीर्घ कविताओं का सृजन किया है। उनकी प्रमुख दीर्घ कविताओं में 'चांद का मुँह टेढ़ा है', 'मेरे सहचर मित्र', 'ओ काव्यात्मन फणिधर', 'चकमक की चिनगारियाँ', 'इस चौड़े ऊँचे टीले पर', 'एक स्वप्न कथा', 'चम्बल की घाटी में' और 'अँधेरे में' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। 'अंधेरे में' उनकी सर्वाधिक चर्चित दीर्घ-कविता है। यह कविता मुक्ति बोध की चेतना और अनुभूतियों का सफल सम्प्रेषण है। डॉ. रामदरश मिश्र के शब्दों में—'इसमें कोई शक नहीं है कि हिन्दी की प्रतिष्ठित लम्बी कविताओं की कतार में 'अंधेरे में' का अपना विशेष स्थान है। नयी कविता की लम्बी कविताओं में वह सर्वाधिक ऊर्जामयी कविता है। वह स्वप्न कथा होने के बावजूद हमारी समकालीन जिन्दगी की विषम वास्तविकताओं के विभिन्न स्तरों और पहलुओं से सर्वाधिक तीव्रता और समीपता से टकराती है और इस कविता में तनावपूर्ण स्थितियों में उद्भूत संक्रान्त गहन अनुभवों तथा इन्द्रिय बोधों के अनेक सुन्दर बिम्ब हैं।'' इस कविता में कवि ने फैन्टेसी अर्थात् स्वप्न कथा का सहारा लेकर बाहरी तथा भीतरी संघर्ष को उभारने की चेष्टा की है।

'अंधेरे में' कविता ऊपरी तौर पर घटनाओं और विवरणों से भरी पड़ी है। यहाँ हर घटना और हर लम्बा विवरण एक बिम्ब है। मुक्ति बोध पूरे वर्णन को एक समग्र बिम्ब बना देते हैं। उसके अन्दर शब्दों के छोटे-छोटे लयात्मक बिम्ब होते हैं। जो एक तरह से पूरक बिम्बों का काम करते हैं।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की 'कुआनो नदी' विजयदेव नारायण साही की 'घाटी का आखिरी आदमी', रघुवीर सहाय की 'आत्महत्या के विरूद्ध', राजकमल चौधरी की 'मुक्तिप्रसंग' धूमिल की 'पटकथा' लीला धर जगूड़ी की 'नाटक जारी है' तथा 'बलदेव खटिक' नागार्जुन की 'हरिजन गाथा' समकालीन दीर्घ कविता परम्परा में विशेष महत्त्व रखती है। 'पटकथा' अपने नाटकीय विधान में ऐतिहासिक तथ्यों और स्थितियों का बयान करती है। इस कविता में आजादी के मोहक स्वप्न के टूटने, देश, जनता, जनतंत्र, देशभक्ति जैसी धारणाओं के भ्रष्ट और विघटित होने के परिणामस्वरूप पैदा हुई स्थिति के परिप्रेक्ष्य को ग्रहण किया गया है। लीलाधर जगूड़ी की 'बलदेव खटिक' एक ऐसी दीर्घ कविता है जिसमें किसी आख्यान फैंटेसी, बिम्ब का सहारा नहीं लिया गया है। इसके केन्द्र में एक ऐसा विचार है जो एक क्रूर समकालीन स्थिति को धीरे-धीरे उघाड़ना है और उसे संघर्ष चेतना से सम्बद्ध कर देता है। 'बलदेव खटिक' जगूड़ी के 'बची हुई पृथ्वी' कविता संग्रह की सशक्त कविता है। इस कविता के केन्द्र में एक ऐसा पात्र है जो पुलिस-व्यवस्था की अमानवीय भ्रष्ट और विसंगत स्थितियों को उजागर करता है। कविता की रंगत कवि की चेतना में आई एक ऐसा चरित्र है जो मानवीय दुर्घटना को मूर्तित करता है। एक पात्र एक ऐसी व्यवस्था से जुड़ा हुआ है, जो भ्रष्ट, अमानवीय और अत्याचार का प्रतीक बन गई है। बलदेव खटिक के मन का विद्रोह तब उजागर होता है जब वह पूरी वफादारी से नौकरी करने के बाद भी अपनी बीमार माँ को देखने जाने, उसे अस्पताल ले जाने में असमर्थ है। उसकी चेतना से आवरण हट जाता है। आक्रोश के चरम क्षणों में वह धड़ाधड़ फायर करता हुआ सड़क पर मरे कौवों को लांघकर फरार हो जाता है। बलदेव खटिक की इस स्थिति को निरूपित करने के पीछे कवि का उद्देश्य परिवेश की भ्रष्टता, क्रूरता और ओछी राजनीति के स्वरूप को प्रस्तुत करना रहा है। कविता के बीच-बीच में ग्राम्य परिवेश का यथार्थ, सरकारी कर्मचारियों की दिखावटी

व्यस्तता और पुलिस विभाग की हरामखोरी और भ्रष्ट आदतों पर भी रोशनी डाली गई है। लीलाधर जगूड़ी की यह कविता, यथार्थ का सही दस्तावेज है।

दीर्घ कविता की परम्परा में राजकमल चौधरी की 'मुक्तिप्रसंग' भी उल्लेखनीय कविता है। इस कविता के अन्तर्गत स्थितियाँ पतनशील राजनीति तक ही रुकी हुई नहीं है। बल्कि कवि की शारीरिक और मानसिक स्थितियों से भी जुड़ी हुई है। इस कविता में तनावों के कितने ही आयाम क्रमशः खुलते चले गये हैं। व्यंग्य की धार ने इन्हें और भी प्रभावी और तीखा बना दिया है। सातवें और आठवें दशक में लिखी गई ये कविताएँ दीर्घ कविताओं की शृंखला में विशेष महत्व रखती है। आठवें दशक के बाद समकालीन बोध से प्रेरित होकर जो दीर्घ कविताएँ लिखी गयी वे वर्तमान परिवेश के संकट-बोध, उससे जुड़े हुए प्रश्नों और स्थितियों के बिम्ब प्रस्तुत करती है। ये कविताएँ आम आदमी और उसके संघर्ष की पहचान कराती है। नरेन्द्र मोहन की दीर्घ कविता 'एक अग्निकांड जगह बदलता' विभाजन की त्रासदी पर आधारित है। यह कविता समाज की विसंगतियों और राजनीति टुच्चेपन व भारतीय इतिहास के काले अध्याय की अब तक चली आ रही वेदना को अभिव्यक्ति करती है। समकालीन दीर्घ कविताओं में शैलेश जैदी की 'सूरज एक सलीब' और जगदीश चतुर्वेदी की 'अतीत से गुजरते हुये' भी रेखांकित करने योग्य हैं।

गंगाप्रसाद विमल और प्रताप सहगल के सम्पादन में प्रकाशित 'एक दूसरे से अलग' में प्रताप सहगल की एक लम्बी कविता 'मोती लाल' है। कवि ने मोतीलाल के माध्यम से देश की विसंगतियों को उजागर किया है। रमेश गौड़ की लम्बी कविता 'पतन गाथा' स्वातंत्र्योत्तर राजनीतिक के बदलते, बिकते और नीलाम होते मूल्यों को उजागर करती है। वर्तमान में व्याप्त मूल्य हीनता को इस कविता में बड़ी खूबी के साथ चित्रित किया गया है। विनय की लम्बी कविता 'यात्रा के बीच' सुरेश धींगड़ा की दीर्घ कविता 'अपना शव ढोती हुई संस्कृति की यात्रा सुखवीर सिंह की बयान बहार' अनिल कालिया की 'बयान बयासी' भी उल्लेखनीय है। इन कविताओं में तनाव के विविध रूप, विचार और बिम्ब का समायोजन और संतुलन देखा जा सकता है। समकालीन दीर्घ कविताओं के विषय में डॉ. नरेन्द्र मोहन का वक्तव्य समत्त्वपूर्ण है। उन्होंने लिखा है—''लम्बी कविता के रचना विधान में वैचारिक सक्रियता बढ़ी है जिससे मानवीय विडम्बना और संघर्षशीलता से निष्पन्न तनाव के विविध रूप इधर की लम्बी कविताओं में अभिव्यक्त हो सके हैं। विचार और बिम्ब का समायोजन और संतुलन इन समकालीन लम्बी कविताओं के एक खास पहलू के रूप में उभरा है।''

1.3.9 सारांश

अस्तु आधुनिक हिन्दी कविता के विविध आयाम हैं।

1.3.10 अभ्यास प्रश्नावली

1. प्रगतिवाद की विवेचना कीजिए।
2. छायावाद की प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई- 2

रामधारी सिंह से दिनकर तक

(सामान्य परिचय)

संरचना

2.0 प्रस्तावना

2.1 उद्देश्य

2.2 शिक्षा

2.3 व्यवसाय

2.4 व्यक्तित्व

2.5 विदेशों में भ्रमण

2.6 साहित्य सम्मान

2.7 गाँधीवादी का प्रभाव

2.8 रश्मिरथी कथावस्तु

2.9 रश्मिरथी और दिनकर का दृष्टिकोण

2.10 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

2.11 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

2.11.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

2.11.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

2.11.3 निबंधात्मक प्रश्न

2.12 सारांश

2.13 अभ्यास प्रश्नावली

2.0 प्रस्तावना

दिनकर जी का जन्म बिहार प्रदेश में सिमरिया ग्राम में एक कृषक परिवार में 23 सितम्बर सन् 1908 में हुआ था। उनके पिता का नाम रविसिंह और माता का नाम मनरूप देवी था। दिनकर जी के बड़े भाई का नाम श्री बसन्तसिंह और छोटे भाई का नाम सत्यनारायणसिंह है। दो वर्ष की अल्पायु में दिनकर अपने माता-पिता की स्नेह छाँव से हमेशा-हमेशा के लिए वंचित हो गए। काल के क्रूर हाथों ने इनके माता-पिता को हमेशा-हमेशा के लिए छीन लिया। भाइयों के द्वारा इनका पालन-पोषण किया गया। जो गुण एक आदर्श माँ में होते हैं, वे सभी गुण दिनकर जी की माँ में थे। वे त्याग और संघर्ष की साक्षात् प्रतिमा थीं। इसमें सन्देह नहीं कि जीवन-साथी यदि उच्च आदर्श के मार्ग पर चलने का साथ दे तो व्यक्तित्व का बहुमुखी विकास जीवन से कहीं दूर नहीं रहता है। दिनकर जी के व्यक्तित्व के निर्माण में उनकी पत्नी का विशेष योगदान रहा। वे वास्तव में सुगृहिणी और पति की सच्ची सहचरी सिद्ध हुईं। स्वयं दिनकर जी के काव्य में नारी भावना का स्वस्थ विकास उनकी पत्नी का ही आदर्श चरित्र है। वह अपने को मिटाकर जीवन भर दिनकर जी को बनाती रही। 'रसवंती' व 'मानवती' में दिनकर ने अपनी सुखद गृहस्थी का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है, जिसे हम निम्नलिखित पंक्तियों के माध्यम से जान सकते हैं—

तुम सखि इन्द्रपुरी के वन में सावित्री का मनलाई।
ताप तप्त मरू में मेरे हित शीत-स्निग्ध जीवन लाई

Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

तुम्हें न जाने क्या मिलता है लिपटे रहने में पत्रों से।

सुस्थिर हो दो बात करें, यह भी बाकी अरदास मुझे।
ऐसा क्या दे रखी है चाँदी सोने की खान मुझे।

कवि-जाया ने स्वर्ग न देखा बसता जो प्रियतम के उर में
अन्तर्दीप रूप निज प्रिय का ग्राम वधू कैसे पहचाने॥

जिसके मूर्ख स्वप्न भूखे हों, वह गायन कैसे गाये।
मानवती चुप रही, दृगों में करुणा के बादल छाये॥

दिनकर एक सम्पन्न और सुखी परिवार के गृहपति रहे। 19 वर्ष की अवस्था में उनके प्रथम पुत्र श्री रामसेवक सिंह का जन्म हुआ। सन् 1934 में उनकी बड़ी पुत्री विनिता का तथा सन् 1936 में छोटे पुत्र श्री केदारनाथ सिंह का जन्म हुआ।उनकी छोटी पुत्री विभा है।

शिक्षा—गंगा-तट पर स्थित सिमरिया गाँव की प्रकृति ने दिनकर जी को बहुत अधिक प्रभावित किया। दिनकर लगभग नित्य ही गंगा पार करके मोकामाघाट के स्कूल जाया करते थे। मध्यावकाश में ही वे स्कूल से चल पड़ने पर 6 या 7 बजे संध्या को घर पहुँचते थे। वर्षा के दिनों में उन्होंने गंगा का सागर के समान भयानक और ग्रीष्म में रेगिस्तान जैसी मीलों फैली हुई बालू देखी। इस प्रकार दिनकर जी की शिक्षा का प्रारम्भ एक तपस्वी की साधना से कम नहीं है। 'रेणुका' में संकलित 'मिथिला' में शरत शीर्षक कविता में दिनकर जी ने अपनी जन्म भूमि का वर्णन निम्न प्रकार किया है—

हे जन्मभूमि! शत बार धन्य,
तुम सा न 'समिरिण घाट' अन्य
तेरे खेतों की छवि महान,
अनियन्त्रित आ उर में अजान,
भावुकता बन लहराती है,
फिर उमड़ गीत बन जाती है।

दिनकर जी ने प्रारम्भिक शिक्षा गाँव की राष्ट्रीय पाठशाला में प्राप्त की। सन् 1921 में असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ होने पर राष्ट्रीय पाठशाला टूट गयी। इन राष्ट्रीय पाठशाला की राष्ट्रीय शिक्षा ने दिनकर जी को राष्ट्रीय व्यक्तित्व के निर्माण में महत्त्वपूर्ण योग दिया इसके पश्चात् दिनकर जी ने राष्ट्रीय स्कूल में मिडिल और मोकामाघाट के ए.ई. स्कूल में सन् 1928 में मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण की। इसके पश्चात् पटना विश्वविद्यालय में बी.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। कविता की ओर दिनकर जी की रुचि आरम्भ से ही थी। वे सादा जीवन और उच्च विचार लेकर चले। राष्ट्रीय कार्यों में बचपन में उनका योग बना रहा।

व्यवसाय—अर्थाभाव के कारण बी.ए. उत्तीर्ण करने पर दिनकर जी को नौकरी की खोज करनी पड़ी। सन् 1933 में एक नये हाई स्कूल में प्रधानाध्यापक की नौकरी कर ली, परन्तु यहाँ बहुत दिनों तक आप न रह सके। यहाँ की परिस्थितियों से ऊबकर सन् 1934 में बिहार-सरकार के अधीन सब-रजिस्ट्रार का पद स्वीकार किया। इस पद पर आप सन् 1943 तक रहे। द्वितीय महासमर के प्रारम्भ होने पर दिनकर जी को मानसिक द्वन्द्व ने घेर लिया। उन जैसा राष्ट्रीयता का गायक सरकार की युद्ध-नीति का समर्थन नहीं कर सकता था। सन् 1943 में आपका तबादला युद्ध-प्रचार विभाग में कर दिया गया। सन् 1947 में बिहार सरकार में प्रचार विभाग के उपनिदेशक और 1950 में मुज़फ्फरपुर के लंगट सिंह कॉलेज में हिन्दी प्राध्यापक हुए। इस क्रम 1952 की मार्च तक चलता रहा। 11 मार्च, 1952 को उन्होंने सरकारी नौकरी से त्यागपत्र देकर भागलपुर विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर बने। परन्तु यहाँ भी आपका मन नहीं लगा। वहाँ से त्यागपत्र देकर आप भारत सरकार के स्वराज्य-मन्त्रालय में हिन्दी सलाहकार के रूप में रहे। 23 अप्रैल सन् 1974 को

आपकी मृत्यु से हिन्दी-काव्य जगत् को जो क्षति हुई उसकी पूर्ति सम्भव नहीं है।

व्यक्तित्व—दिनकर जी का व्यक्तित्व आत्म-विश्वास, दृढ़ता, साहित्यकार की अनुभूति-प्रवणता, दार्शनिक तत्त्व चिन्तन का ओज से युक्त है। उनके वक्ष व्यक्तित्व में क्षत्रियों का तेज, ब्राह्मण का अहं, परशुराम की गर्जना और कालिदास की कलात्मकता है। उनके इसी व्यक्तित्व के कारण निराला जी उन्हें 'ईरानी' कहा करते थे। गौर-वर्ण, उन्नत मस्तक, तेजपूर्ण नेत्र, ऊँचे कद और लम्बी पतली उंगलियों से युक्त जब वे कविता में पाठ करते, ऐसा लगता था, मानो परशुराम गरज रहे हों। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् दिनकर जी पार्लियामेंट गये परन्तु 'प्रथम दर्शन' के गहरे आतंक के कारण उनके साहित्य के प्रशंसकों की भी उनके निकट जाने की हिम्मत मुश्किल से पड़ती थी। दिनकर जी का सर्वोन्नत मस्तिष्क बोलता हुआ जान पड़ता था। 'कुरुक्षेत्र' के भीष्म, 'रश्मिरथी के कर्ण' और 'परशुराम की प्रतीक्षा' के परशुराम दिनकर के व्यक्तित्व के ही अंश हैं।

विदेशों में भ्रमण—दिनकर जी ने सन् 1945 में वारसा (पोलैण्ड) के अन्तर्राष्ट्रीय काव्य-समारोह में भाग लिया, वहाँ की जनता ने आपका जोरदार स्वागत किया। पोलैण्ड से लौटते हुए वे इंग्लैण्ड, फ्रांस, स्विट्जरलैण्ड और मिस्र भी गये। सन् 1957 में दिनकर जी ने चीन के लेखक संघ के निमन्त्रण पर चीन का भ्रमण किया। वहाँ अनेक नगरों में गये। अनेक कवियों, उपन्यासों और नाटककारों से भेंट की। इसी दौरान उन्होंने बर्मा और थाइलैण्ड के साहित्यकारों से भेंट की। सन् 1961 में दिनकर जी ने विविध भारतीय भाषाओं के साहित्यिक प्रतिनिधि-मण्डल के साथ रूस का भ्रमण किया। दिनकर जी की अनेक कविताओं का अनुवाद रूसी भाषा में हो चुका है।

साहित्य सम्मान—दिनकर जी को सन् 1959 में राष्ट्रपति ने 'पद्मभूषण' की उपाधि प्रदान की। सन् 1953 में उनका ग्रन्थ 'संस्कृत के चार अध्याय' पर साहित्य अकादमी ने राष्ट्रीय पुरस्कार दिया। सन् 1932 में भागलपुर विश्वविद्यालय ने आपको 'डॉक्टर ऑफ लिटरेचर' की उपाधि दी, सन् 1946 में साहित्य-संसद प्रयाग ने अपने कुरुक्षेत्र पर पुरस्कार दिया। इस अवसर पर मैथिलीशरण गुप्त के सभापतित्व में पन्त, 'महादेवी वर्मा', डॉ. रामकुमार वर्मा आदि ने आपका अभिनन्दन किया। इसी अवसर पर इलाहाबाद की 'परिमिल' की ओर से आपको मानपत्र दिया गया। दिनकर जी को समय-समय पर भारत सरकार, उत्तरप्रदेश सरकार, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, साहित्यकार संसद इलाहाबाद तथा बिसर-राष्ट्रभाषा-परिषद् पटना द्वारा अनेक पुरस्कार प्राप्त हुए। 'नागरी प्रचारिणी सभा' का द्विवेदी-पदक आपको दो बार मिला।

दिनकर जी की कृतियाँ विदेशों में भी सम्मानित हुईं। जापान के अंग्रेजी पत्र ''शिशि शिंशि'' में आपकी ''कलिंग विजय'' का अनुवाद प्रकाशित हुआ। णिलिंशव ओलर में उनकी आठ कविताओं का अनुवाद प्रकाशित हुआ। रूस के 'द्विवेदी-साहित्य ग्रन्थ-माला' के अन्तर्गत उनकी कविताओं के संकलन का रूसी अनुवाद सन् 1963 में प्रकाशित होना आरम्भ हुआ। 'कुरुक्षेत्र' का अनुवाद विभिन्न भारतीय भाषाओं में हो चुका है।

गाँधीवादी का प्रभाव—32 वर्ष की आयु में गाँव की पाठशाला से दिनकर के हृदय में राष्ट्रीयता के अंकुर फूटने लगे थे। सन् 1930 में नमक सत्याग्रह में उन्होंने 3-4 माह काम भी किया। आप राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत कविताएँ लिखने लगे। सन् 1947 से पूर्व तक दिनकर ने गाँधी जी को कविता में लाने का प्रयास नहीं किया। गाँधी जी की शुद्ध अहिंसा को दिनकर जी ने मान्यता नहीं दी। जब सन् 1937 में काँग्रेस मन्त्रिमण्डल बना, तब दिनकर जी ने 'अनल किरीटि' नामक कविता लिखी।

ओ मदहोश बुरा फल है, सूरों का शोणित पीने का।
देना होगा तुम्हें एक दिन गिन-गिन मोल पसीने का॥

राजनीति में दिनकर जी वीरता और बाहुबल रहित अहिंसा को महत्त्व नहीं देते। उनकी मान्यता है कि शक्ति के बिना देश की रक्षा नहीं हो सकती।

दिनकर जी के व्यक्तित्व और परिस्थितियों का उनके काव्य पर प्रभाव—कविता लिखने की प्रेरणा दिनकर जी को गाँव की रामलीला, रामायण पाठ और नौटंकियों से मिली। बचपन में उनके घर के दरवाजे पर लगभग नित्य ही रामायण का पाठ होता था। आठ-दस वर्ष की उम्र में ही दिनकर जी नाटक में प्रयुक्त गीतों की तर्जों पर नये गीत लिख लेते थे। दिनकर जी पत्र-पत्रिकाएँ बराबर पढ़ते रहे। छायावादी कविताएँ उनको रुचिकर नहीं लगती थीं। छायावाद के प्रति निश्चल श्रद्धा कभी भी उनके हृदय में जागृत न हो पाई। उनकी रुचिगत आत्मीयता भगवती चरण-वर्मा, नरेन्द्र बच्चन, नेपाली और नागार्जुन से अधिक रही। कविता लिखने के लिए दिनकर जी ने छन्द, रस, अलंकार और व्याकरण का कभी अभ्यास नहीं किया। यही कारण है कि 'रेणुका' और 'हुंकार' में आलोचकों को शिल्प-तत्त्व का अभाव लगा।

अपनी समस्त काव्य- प्रेरणा और पृष्ठभूमि के सम्बन्ध में दिनकर जी ने लिखा है।

''दोनों को हम जिस रूप में प्राप्त करते हैं उन्हें जिस शीतलता या तप के साथ जिस धूमिलता या स्पष्टता के साथ अथवा जिस उद्वेलित या संयमित मनोदशा में ग्रहण करते हैं वहीं मनोदशा हमारी शैली बन जाती है और चूँकि मेरी कल्पना रस्से के समान इंच- इंच तनी होती थी, इसलिए शब्द भी मुझे वे ही पसन्द आते थे तो इस तनाव को अभिव्यक्त कर सकें। कविता लिखने के समय मेरी मनोवृत्ति कैसी होती थी, इसका कुछ अनुमान सहृदय इस बात से लगा सकते हैं कि प्राय: ही रचना के समय मुझमें सात्विक भाव हैं (रोमांच, अश्रु, वैवर्ण्य, स्वेद आदि) जाग उठते और एक रचना पूरी करते- करते उनकी नई- नई आकृतियाँ हो जाती थीं और यह भी सत्य है कि मेरी जिन कविताओं में पाठक और श्रोता सबसे अधिक आन्दोलित हुए, वे ठीक वे ही कविताएँ हैं, जिनकी रचना के समय मैंने सात्विक भावों का सबसे अधिक अनुभव किया।''

दिनकर जी का विश्वास है कि 'उर्वशी' के कवि की अपेक्षा 'कुरुक्षेत्र' के कवि के रूप में वे अधिक याद किये जायेंगे। चीन के आक्रमण के पश्चात् 'उर्वशी' सुनना ही उन्होंने बन्द कर दिया है। अब वह 'परशुराम की प्रतीक्षा' को समय की माँग समझने लगे। उनका कहना है—''मेरी प्रिय रचना अभी लिखी ही नहीं गई—जब मैं 'रिल्के' के भाव को तुलसी की भाषा में लिख सकूँगा तभी अपने को सिद्ध कवि मान सकूँगा।''

रश्मिरथी कथावस्तु

इस पुस्तक का नाम ''रश्मिरथी'' है, जिसका अर्थ होता है वह व्यक्ति, जिसका रथ रश्मि अर्थात् पुण्य का हो। इस काव्य में रश्मिरथी नाम कर्ण का है क्योंकि उसका चरित्र अत्यन्त पुण्यतम और प्रोज्ज्वल है।

कर्ण महाभारत महाकाव्य का अत्यन्त यशस्वी पात्र है। उसका जन्म पाण्डवों की माता कुन्ती के गर्भ से उस समय हुआ जब कुन्ती अविवाहिता थीं, अतएव कुन्ती ने लोकलज्जा से बचने के लिए अपने नवजात शिशु को एक मंजूषा में बन्द करके नदी में बहा दिया। वह मंजूषा अधिरथ नाम के सूत को मिली। अधिरथ के कोई सन्तान नहीं थी इसलिए उन्होंने इस बच्चे को अपना पुत्र मान लिया। उनकी धर्मपत्नी का नाम राधा था। राधा से पालित होने के कारण ही कर्ण का एक नाम राधेय भी है।

कौरव- पाण्डव—दोनों महाराज शान्तनु के कुल में उत्पन्न हुए। शान्तनु से कई पीढ़ी ऊपर महाराज कुरु हुए थे। इसलिए कौरव- पाण्डव दोनों कुरुवंशी कहलाते हैं। शान्तनु का विवाह गंगाजी से हुआ था, जिनसे कुमार देवव्रत उत्पन्न हुए। यही देवव्रत भीष्म कहलाये, क्योंकि चढ़ती जवानी में ही इन्होंने आजीवन ब्रह्मचारी रहने की भीष्म अथवा भयानक प्रतिज्ञा की थी। महाराज शान्तनु ने निषाद- कन्या सत्यवती से भी विवाह किया था, जिससे उन्हें चित्रांगद और विचित्रवीर्य दो पुत्र हुए। चित्रांगद कुमारावस्था में ही एक युद्ध में मारे गये। विचित्रवीर्य के अम्बिका और अम्बालिका नाम की दो पत्नियाँ थीं, किन्तु क्षय रोग हो जाने के कारण विचित्रवीर्य भी नि:सन्तान ही मरे।

ऐसी अवस्था में वंश चलाने के लिए सत्यवती ने व्यासजी को आमन्त्रित किया। व्यासजी ने नियोग- पद्धति से विचित्रवीर्य की दोनों विधवा पत्नियों से पुत्र उत्पन्न किये। अम्बिका से धृतराष्ट्र और अम्बालिका से पाण्डु जन्मे। मातृ- दोष से धृतराष्ट्र जन्म से ही अन्धे और पाण्डु पीलिया के रोगी थे। अतएव, अम्बिका की प्रेरणा से व्यासजी ने उसकी दासी से तीसरा पुत्र उत्पन्न किया जिसका नाम विदुर हुआ।

राजा धृतराष्ट्र के सौ पुत्र एक ही पत्नी महारानी गन्धारी से हुए थे। महाराज पाण्डु के दो पत्नियाँ थीं, एक कुन्ती, दूसरी माद्री। परन्तु ऋषि से मिले शाप के कारण वे स्त्री- समागम से विरत थे। अतएव कुन्ती ने अपनी पति की आज्ञा से तीन पुत्र तीन देवताओं से प्राप्त किये। जैसे कुमारावस्था में कुन्ती ने सूर्य- समागम से कर्ण को उत्पन्न किया था, उसी प्रकार विवाह होने पर उसने धर्मराज से युधिष्ठिर, पवनदेव से भीम और इन्द्र से अर्जुन को उत्पन्न किया। माद्री के एक ही गर्भ से दो पुत्र उत्पन्न हुए, एक नकुल, दूसरे सहदेव—ये दोनों भाई भी महाराज पाण्डु के अंश से नहीं, दो अश्विनीकुमारों के अंश से थे। पाण्डु के मरने पर माद्री सती हो गयीं और पाँचों पुत्रों के पालन का भार कुन्ती पर पड़ा। माद्री महाराज शल्य की बहन थीं।

प्रथम सर्ग

कौरण और पाण्डव जब छात्रावस्था में थे, तब उन्हें शस्त्रास्त्र की शिक्षा देने के लिए द्रोणाचार्य नियुक्त किये गये। जब कुमारों की शिक्षा पूर्ण हो गयी, तब उनके रण- कौशल का जनता के समक्ष प्रदर्शन करने को एक सार्वजनिक आयोजन किया गया। इसी आयोजन

में अचानक कर्ण प्रकट हुआ और चूँकि उस दिन सभा में सबसे अधिक प्रशंसा अर्जुन के अस्त्र-चालन की हुई थी, इसलिए कर्ण ने अपने साथ भिड़ने की चुनौती भी उसे ही दी। किन्तु, कृपाचार्य ने कहा कि जब तक यह विदित नहीं हो जाय कि कर्ण की जाति क्या है तथा वह राजपुत्र है या नहीं, तब तक अर्जुन उसके साथ लड़कर उसे सम्मान नहीं देगा। दुर्योधन को अर्जुन से द्वेष तो था ही उसने सभा के समक्ष ही कर्ण को अंग देश का राजा बना दिया। फिर भीम और दुर्योधन में गाली-गलौज होने लगी, जिसे कृपाचार्य ने रोक दिया।

जब सभा विसर्जित हुई और लोग अपने-अपने घर जाने लगे, तब रास्ते में द्रोणाचार्य ने अर्जुन से कहा कि 'अर्जुन, कर्ण तुम्हारा वैरी और प्रतिबल होगा। मैंने एकलव्य का अँगूठा तो इसलिए कटवा लिया कि तुम्हारे समान धनुर्धर और कोई न हो किन्तु इस कर्ण के साथ क्या बर्ताव करें? एक बात तो ठीक है कि मैं उसे अपना शिष्य नहीं बनाऊँगा।'

जब कृपाचार्य ने सभा में कर्ण की जाति पूछी थी, उस समय कुन्ती परदे के पीछे रनिवास में बैठी हुई थीं। किन्तु उन्हें इतना साहस नहीं हुआ कि बढ़कर कृपाचार्य से यह कह दें कि कर्ण की माता मैं ही हूँ। फिर भी शोक के कारण वे मूर्च्छित हो गयीं और जब घर लौटने लगीं, तब रथ तक जाने में भी उनके पाँव डगमगाने लगे।

द्वितीय सर्ग

रंग-ढंग से कर्ण को यह ज्ञात हो चुका था कि द्रोणाचार्य निश्छल होकर उसे धनुर्विद्या नहीं सिखायेंगे। इसलिए शस्त्रास्त्र सीखने को वह उस समय के महा-प्रतापी वीर परशुराम जी की सेवा में पहुँचे। परशुराम संसार से अलग होकर उन दिनों महेन्द्रगिरि पर रहते थे। उनका प्रण था कि 'ब्राह्मणेतर जाति के युवकों को शस्त्रास्त्र की शिक्षा नहीं दूँगा।' किन्तु, जब उन्होंने कर्ण का तेजोद्दीप्त शरीर और उसके कवच-कुण्डल देखे, तब उन्हें स्वयं भासित हुआ कि यह ब्राह्मण का बेटा होगा। कर्ण ने गुरु की इस भ्रान्ति का खण्डन नहीं किया। वह माँ के पेट ही से सुवर्ण के कवच और कुण्डल पहने जनमा था। शस्त्रास्त्र की शिक्षा तो परशुराम जी ने उसे खूब दी, लेकिन एक दुर्भाग्यपूर्ण घटना ने भण्डाफोड़ कर दिया। बात यह हुई कि एक दिन परशुराम कर्ण की जाँघ पर सिर रखकर सोये हुए थे, इतने में एक कीड़ा उड़ता हुआ आया और कर्ण की जाँघ के नीचे घुसकर घाव करने लगा। कर्ण इस भाव से निश्चल बैठा रहा कि हिलने-डुलने से गुरु की नींद उचट जायेगी। किन्तु कीड़े ने उसकी जाँघ में ऐसा गहरा घाव कर दिया था कि उससे लहू बह चला। पीठ में गर्म लहू का स्पर्श पाते ही परशुराम जग पड़े और सारी स्थिति समझते ही विस्मित हो गये। उन्हें लगा कि इतना धैर्य ब्राह्मण में कहाँ से आ सकता है? अवश्य ही कर्ण क्षत्रिय अथवा किसी अन्य जाति का युवक है। कर्ण सत्य को और छिपा नहीं सका तथा उसने गुरु के समक्ष सारी बातें स्वीकार कर लीं। इस पर भी परशुराम शान्त न हुए और उन्होंने यह शाप दे डाला कि ब्रह्मास्त्र चलाने की जो शिक्षा मैंने दी है, उसे तू अन्तकाल में भूल जायेगा।

तृतीय सर्ग

कौरवों ने द्यूत के छल से पाण्डवों को तेरह वर्षों तक वनवास झेलने को विवश किया था। इन तेरह वर्षों में से बारह वर्षों तक पाण्डव वनों में खुलकर रह सकते थे किन्तु तेरहवें वर्ष उन्हें अज्ञातवास करना था, जिसमें कोई पहचान न सके। जब अज्ञातवास भी पूरा हो गया, तब पाण्डव इन्द्रप्रस्थ वापस आये और कौरवों तथा पाण्डवों के बीच सन्धि कराने को भगवान् कृष्ण हस्तिनापुर गये, जो कौरवों की राजधानी थी। लेकिन सन्धि को कौन कहे, दुर्योधन ने उल्टे भगवान् कृष्ण को गिरफ्तार करना चाहा। उस पर भगवान् को क्रोध आ गया और भरी सभा में उन्होंने अपना विराट् रूप प्रकट किया। कहते हैं, उनका क्रुद्ध विराट् रूप देखते ही लोग मूर्च्छित हो गये। केवल विदुरजी की चेतना ठीक रही। उन्होंने धृतराष्ट्र से कहा, 'महाराज आश्चर्य की बात है कि भगवान् अपने विराट रूप में विराज रहे हैं। इस पर धृतराष्ट्र ने अपने अन्धे होने पर पश्चाताप किया। कहते हैं कि पश्चाताप करते ही विराट् रूप देखने तक के लिए उनको दृष्टि मिल गयी।

विराट् रूप समेटकर जब भगवान् कृष्ण कौरवों की सभा छोड़कर चले, तब उन्हें आदरपूर्वक नगर से कुछ दूर पहुँचाने के लिए उनके साथ कर्ण गया था। भगवान् को गिरफ्तार करने की दुरभिसन्धि में कर्ण का भी हाथ था। अतएव वह लज्जित होकर ही भगवान् के सामने आया था। किन्तु, राजनीति-विशारद कृष्ण ने बाँह पकड़ कर उसे अपने रथ में बिठा लिया और रास्ते में वे उसे समझाने लगे कि 'तू वास्तव में कुन्ती का पुत्र है। अतएव, तुझे चाहिए कि कौरवों को छोड़कर पाण्डवों के पक्ष में आ जाये। तू तो कुन्ती का पहला ही पुत्र है, अतएव पाण्डवों की ओर से राज्याभिषेक हम तेरा ही करेंगे। सभी पाण्डव तेरे पीछे-पीछे चलेंगे और मैं भी तेरे पीछे ही चलूँगा।'

किन्तु कर्ण इससे विचलित नहीं हुआ। उसने कहा कि 'जो रहस्य आप बतला रहे हैं, उसकी सूचना मुझे सूर्यदेव से पहले ही मिल चुकी है। किन्तु कुन्ती ने मेरे साथ माता का बर्ताव नहीं किया। जो बात आप आज कह रहे हैं, उसे कुन्ती को उस दिन बतला देना

चाहिए था, जिस दिन सबके सामने कृपाचार्य ने मेरी जाति पूछी थी। अब भला कौन विश्वास करेगा कि मैं कुन्ती का ही पुत्र हूँ? इससे तो मुझे और अर्जुन दोनों को कलंक लगने वाला है। इसके सिवा, जरा यह भी तो सोचिये कि दुर्योधन ने मेरे प्रति कैसा निश्छल व्यवहार किया है? अब आज जब उस पर आपदाएँ आयी हैं, मैं उसे कैसे छोड़ सकता हूँ? वह मेरा परम मित्र है और विपत्ति में मित्र का साथ न देना सबसे बड़ा पाप है। मैं राजा बनना नहीं चाहता, न यही चाहता हूँ कि संसार मुझे युधिष्ठिर के अग्रज रूप में जानकर मेरा सम्मान करे। मैं तो युद्ध के निमित्त तत्पर हूँ, यह इसलिए कि दुर्योधन का मेरे रोम-रोम पर ऋण है और मैं प्राण देकर भी उस ऋण को चुकाना चाहता हूँ। अतएव, अब युद्ध को रोक रखने का प्रयत्न व्यर्थ है। अब तो कोई शुभ दिन देखकर लड़ाई शुरु करा दीजिए।'

चतुर्थ सर्ग

पाण्डवों को बराबर यह भय लगा था कि जब तक कर्ण प्रकृतिप्रदत्त काञ्चन कवच और कुण्डल से सुरक्षित है तब तक युद्ध में उसे कोई मार नहीं सकेगा। इसलिए भगवान् ने अर्जुन के देव-पिता इन्द्र से कहा कि किसी प्रकार कर्ण के शरीर से कवच-कुण्डल अलग कर दो। किन्तु, इन्द्र यह काम कैसे करता? निदान उसने कर्ण की उदारता को अपने आक्रमण का माध्यम बनाया और उसके पुण्य के द्वार पर ही उसे लूट लिया।

कर्ण अपने समय का अप्रतिम दानवीर था। वह नित्य प्रति एक पहर तक सूर्य की पूजा करता था और उस समय याचक उससे जो माँगते, कर्ण खुशी-खुशी दे देता था। इन्द्र स्थिति का लाभ उठाकर उससे कवच और कुण्डल का दान माँगने आया। सूर्य उसके पूर्व कर्ण को सावधान कर चुके थे कि आज इन्द्र ब्राह्मण का रूप धारकर तुमसे कवच-कुण्डल माँगने आयेगा, तुम देना नहीं। किन्तु इस चेतावनी का कोई परिणाम नहीं निकला। इन्द्र जब भिक्षुक ब्राह्मण का वेश बनाकर कर्ण के सामने आया और उससे कवच और कुण्डल की याचना की, कर्ण 'ना' न कर सका और सारे षड्यन्त्र से अवगत होते हुए भी उसने कवच-कुण्डल के रूप में अपनी विजय तथा अपने जीवन का दान कर दिया। यह कर्ण के जीवन का सबसे बड़ा दान था।

अपनी लज्जा छिपाने को इन्द्र ने भी कर्ण को एकघ्नी नामक अस्त्र दिया और कहा कि जिस किसी व्यक्ति पर तुम इसे चलाओगे, वह अवश्य मारा जायेगा। किन्तु एक बार से अधिक तुम इसे नहीं चला सकोगे। यही अस्त्र कर्ण ने दुर्योधन के हठ के कारण घटोत्कच पर चलाया। घटोत्कच तो मर गया, किन्तु एकघ्नी वापस इन्द्र के पास चली गयी।

पंचम सर्ग

जब कृष्ण के समझाने पर कर्ण नहीं माना और वह पाण्डवों के पक्ष में आने को तैयार नहीं हुआ, तब वही प्रस्ताव लेकर कुन्ती उसके पास गयी। कुन्ती को कर्ण के समक्ष जाकर उसे पुत्र कहकर पुकारने का साहस नहीं था। वह प्रतिदिन सोचती थी कि अब कर्ण को सब कुछ बताये बिना काम नहीं चलेगा, किन्तु कर्ण की ओर जाने का उसे साहस नहीं होता था। आखिरकार जब युद्धारम्भ को मात्र एक दिन रह गया, तब वह सारी शक्ति समेट कर कर्ण के पास गयी और बोली कि 'तू मेरा बेटा और पाण्डवों का भाई है, अतएव इस युद्ध में इन्हीं का नेता बन।' कर्ण ने कुन्ती को उससे भी कड़ा उत्तर दिया, जैसा उसने भगवान् कृष्ण को दिया था। कुन्ती बेचारी निरुत्तर हो गयी और यह कहकर जाने लगी कि 'सुनती थी कि तू बड़ा ही दानी है, किन्तु आज माता को ही भीख नहीं मिली।' यह सुनते ही कर्ण का वीर-हृदय द्रवित हो गया और उसने कहा कि 'यदि मेरे द्वार से कोई खाली हाथ नहीं जाता है, तो तुम भी निराश नहीं जाओगी। लो, मैं तुम्हें वचन देता हूँ कि अर्जुन के सिवा अन्य पाण्डवों को हाथ आया पाकर भी मैं उनका वध नहीं करूँगा। हाँ, अर्जुन हाथ आया तो उसे जीवित छोड़ना मेरे वश की बात नहीं है।'

कुन्ती बोली 'यह दान भी कोई दान है? मैं छह बेटों की माता बनने को आयी थी, सो अब पाँच भी नहीं रहे, केवल चार बेटों की माता बनकर वापस जा रही हूँ।'

इस पर कर्ण भावुकता में आ गया और बोला, 'छह और चार का हिसाब गलत है माँ, तुम जब तक जिओगी, पाँच बेटों की माता बनी रहोगी। इस युद्ध में यदि अर्जुन ने मुझे मार डाला तो पाँचों पाण्डव ज्यों-के-त्यों बने ही रहेंगे। हाँ, यदि अर्जुन मरा और विजय दुर्योधन की हुई, तो मैं दुर्योधन का पक्ष छोड़कर तुम्हारे पास आ जाऊँगा, जिससे पाण्डवों की संख्या पाँच-की-पाँच ही रह जाय। .....किन्तु मैं यह व्यर्थ कह रहा हूँ। जिसके रक्षक स्वयं कृष्ण हैं, उसका विनाश क्यों होगा?'

षष्ठ सर्ग

भीष्म कर्ण से, प्रत्यक्षत: घृणा करते थे, जिसका कारण यह था कि दुर्योधन अधिकतर कर्ण के कहने में था। एक प्रकार से दुर्योधन के प्रेम और विश्वास को लेकर भीष्म और कर्ण में भीतर-भीतर प्रतिस्पर्धा चलती थी। अतएव भीष्म कभी भी कर्ण से मीठी बात नहीं बोलते थे। युद्धारम्भ के पूर्व उन्होंने कर्ण के बेटे को तो रथी कहा, कर्ण को 'अर्धरथी' कह दिया। इसका कर्ण बुरा मान गया और उसने कहा कि 'अब यह नहीं हो सकता कि आप और मैं एक साथ रण में प्रवेश करें, क्योंकि महारथी के रहते अर्धरथी की वीरता का सुयश नहीं मिलेगा। अतएव, उचित यही है कि अकेले आप लड़ लें या मैं युद्ध करूँ। निश्चित हुआ कि पहले भीष्म लड़ेंगे। और भीष्म जब तक लड़ते रहे, कर्ण ने शस्त्र नहीं उठाया। दस दिनों बाद जब भीष्म शरशय्या पर गिरे, तब द्रोणाचार्य के सेनापतित्व में कर्ण ने संग्राम में प्रवेश किया।

षष्ठ सर्ग का आरम्भ इसी प्रसंग से होता है, जब कर्ण युद्धारम्भ से पूर्व पितामह से आज्ञा लेने को उनके समीप जाता है। भीष्म कहते हैं कि अब युद्ध समाप्त हो जाना चाहिए। किन्तु रणोन्मत्त कर्ण उनका उपदेश नहीं मानता। वह युद्ध में प्रवेश करता और पाण्डवी सेना को तहस-नहस कर डालता है।

इसी प्रसंग में इस बात की विचिकित्सा हो गयी है कि महाभारत का युद्ध धर्मयुद्ध था या नहीं, उपसंहार यह निकलता है कि कोई भी युद्ध धर्मयुद्ध नहीं हो सकता। युद्ध के आदि, मध्य और अन्त सब पापयुक्त होते हैं। जब हिंसा आरम्भ हो गयी तब धर्म कहाँ रहा? युद्ध मनुष्य इसलिए करता है कि वह जल्दी से अपना लक्ष्य प्राप्त करले। किन्तु लक्ष्य की प्राप्ति को धर्म नहीं कहते। धर्म तो लक्ष्य की ओर सन्मार्ग से चलने का नाम है, धर्म साध्य नहीं रहता, वह किसी भी प्रकार विजय चाहने लगता है और यही आतुरता उसे पाप के पंक में ले जाती है, फिर क्या आश्चर्य की युद्ध में प्रवृत्त होने पर कौरव और पाण्डव दोनों ने पाप किये, दोनों ने विजय-बिन्दु तक पहले पहुँच जाने के लिए सन्मार्ग का त्याग किया।

इसके बाद घटोत्कच-वध की कथा आती है। कर्ण का पाण्डव-सेना पर भयानक कोप देखकर कृष्ण घटोत्कच को बुलाते हैं। उसके युद्ध में प्रवेश करते ही कौरवों की सेना में हाहाकार मच जाता है और दुर्योधन कर्ण से कहने लगता है कि अर्जुन का मस्तक तो अभी दूर है, एकघ्नी चलाकर तुमने घटोत्कच का तुरन्त वध नहीं किया तो हार तो अभी हुई जाती है।

निदान, कर्ण एकघ्नी का प्रयोग करता है। घटोत्कच की मृत्यु होती है, कौरवों के बीच हर्षोल्लास छा जाता है और पाण्डव रोने लगते हैं। परन्तु दो व्यक्ति हैं, जिनका हँसना और रोना विशेष अर्थ रखता है। पाण्डवों की सेना में आर्तनाद है, किन्तु भगवान् कृष्ण जी खोलकर हँस रहे हैं। कौरवों की सेना में उल्लास है, परन्तु उनका प्रधान वीर कर्ण ऐसा दिखता है, मानो उसका सर्वस्व लुट गया हो।

सप्तम सर्ग

घटोत्कच वध के बाद द्रोणाचार्य का निधन हुआ। द्रोणाचार्य के बाद कर्ण के सेनापतित्व की बारी आयी।

कर्ण विपरीत परिस्थितियों में लड़ा। कवच-कुण्डल तो वह पहले ही इन्द्र को दे चुका था। इन्द्र से एकघ्नी नामक जो अस्त्र उसे मिला था, वह भी घटोत्कच को मारकर उसके पास से चला गया था। फिर कुन्ती को उसने वचन दिया था कि अर्जुन के सिवा और पाण्डवों का वध मैं नहीं करूँगा। इस पर, शल्य को उसने सारथी बनाया। शल्य युधिष्ठिर का मामा था और पाण्डवों ने शल्य को सिखा रखा था कि जब आप कर्ण का रथ हाँके तब उसे दुर्वचन कहते रहिये जिससे उसका तेज मन्द होता जाए।

तब भी कर्ण का पाण्डवी सेना पर भयानक आक्रमण हुआ और पाण्डव पक्ष के वीर जवाब नहीं दे सकते। कर्ण आज प्राणपण से लड़ रहा था। उसकी इच्छा थी कि अर्जुन और कृष्ण दोनों को बन्दी बनाकर समरभूमि में ही दुर्योधन का जय-तिलक सजा दिया जाए। वह उत्साह से लड़ रहा था। उसी समय धर्मराज युधिष्ठिर उसके सामने पड़ गये। युधिष्ठिर को उसने पकड़ तो लिया, किन्तु कुन्ती को दिये गये वचन को याद करके उसने उन्हें छोड़ दिया। उस दिन, इसी प्रकार भीम, नकुल और सहदेव भी उसके वश में आ गये। कर्ण उन्हें मार सकता था किन्तु कुन्ती के कारण उसने चारों को जीवित छोड़ दिया।

इस स्थिति से किंचित कुपित होकर, किन्तु वास्तव में कर्ण का अपमान करने के लिए शल्य कहता है कि 'तू जो इस प्रकार पाण्डवों को छोड़े जा रहा है, इससे मालूम होता है तू अर्जुन के बाणों से डरकर कायर हो रहा है।' कर्ण कहता है कि 'मैंने चारों पाण्डवों को छोड़ दिया, यह भेद बताने लायक नहीं है। यह तो व्रत की वेदना है जिसे मैं भीतर-भीतर सहूँगा। मैंने इन चारों वीरों को नहीं छोड़ा है, प्रत्युत, पुण्य के चार फूल भगवान् पर चढ़ा दिये हैं।'

इतने में अर्जुन से उसका सामना होता है। अर्जुन को एक बार वह मूर्च्छित कर देता है। किन्तु, अर्जुन मूर्च्छा से जगकर फिर

भयानक पराक्रम में प्रवृत्त हो जाता है। कर्ण और अर्जुन का यह संग्राम ऐसा घनघोर है कि दोनों पक्षों के वीर लड़ना छोड़कर इन्हीं का युद्ध देखने लग जाते हैं।

इसी बीच अश्वसेन सर्प आता है और कर्ण से प्रार्थना करता है कि 'मुझे तू अपने बाण पर चढ़ाकर अर्जुन पर फेंक तो सही, मैं अभी उसका खात्मा किये देता हूँ और तुझे विजय अनायास मिल जाती है।' महाभारत में लिखा है कि कर्ण ने अश्वसेन की सहायता यह कहकर अस्वीकृत कर दी कि 'साँप की सहायता से यदि एक सौ अर्जुनों का वध होता हो, तो भी मैं यह सहायता स्वीकार नहीं करूँगा। जो पतित, पामर, अनाचारी और मानवता का शत्रु है वह तो मेरा भी शत्रु ठहरा, फिर उसकी सहायता लेकर मैं अपने पुण्य को नष्ट क्यों करूँ?'

इसके बाद भगवान् कृष्ण कर्ण के शौर्य की प्रशंसा करते हैं और साथ ही साथ अर्जुन को कर्ण के विरुद्ध उत्तेजित भी। इतने में कर्ण को अपनी मृत्यु का पूर्वाभास होता है और वह काल को धमकाकर शल्य से कहता है कि 'अब मेरा रथ वहाँ ले चलो जहाँ कृष्ण और अर्जुन के साथ पाण्डव पक्ष के सभी नामी वीर वर्तमान हों। आज साकार प्रलय के बीच घमासान मचाता हुआ मैं मृत्यु का वरण करूँगा।'

शल्य रथ को भगवान् के सामने ले जाता है। यहीं अभिशाप के कारण कर्ण के रथ के पहिये धरती में धँस जाते हैं और किसी प्रकार निकाले निकलते ही नहीं। कर्ण रथ के नीचे उतरकर उसे निकालने में तत्पर होता है किन्तु भगवान् कृष्ण का संकेत पाकर अर्जुन उसे नि:शस्त्र अवस्था में ही, बाणों के बींधने लगता है। यहाँ कर्ण और कृष्ण का थोड़ा संवाद होता है, जिसमें दोनों पक्ष दोनों पक्षों पर दोषारोपण करते हैं। संवाद समाप्त होते-होते कर्ण अपने पुण्यबल का आह्वान करता है और सूर्य की ओर दृष्टि करके वह मृत्यु के लिए तैयार हो जाता है। अर्जुन के लिए यह अच्छा अवसर है। उसका एक बाण आकर कर्ण के गले में लगता है और कर्ण के प्राण तेजोमय रूप में उड़कर सूर्य में समा जाते हैं।

सर्ग का अन्त युधिष्ठिर और कृष्ण के संवाद में होता है। युधिष्ठिर कर्ण की मृत्यु पर हर्ष प्रकट करते हैं किन्तु भगवान उदास हो जाते हैं। उनका कहना है कि ''यह विजय चरित्र खोकर हुई है। जीत असल में कर्ण की हुई। यह भूल जाइये कि कर्ण हमारा शत्रु था। वह द्रोण और भीष्म के समान आदर का पात्र है।''

रश्मिरथी और दिनकर का दृष्टिकोण

दिनकर ने 'महाभारत' की कथा का वही भाग 'रश्मिरथी' में ग्रहण किया है जो उनके जीवन दर्शन की उपस्थापना में सहायक हो सके। 'रश्मिरथी' की कथा का प्रारम्भ वीर की प्रशस्ति और कर्ण के जीवन-परिचय से होता है। रंगभूमि के प्रसंग में 'महाभारत' का कर्ण अर्जुन को ललकारता है—

पार्थ यत् दे कृतं कर्म विशेष वदहं वत:,
करिष्ये पश्यतां नृणां भाऽऽत्मना विस्मये गम: ।

'रश्मिरथी' का कर्ण उसी व्यंग्य में कहता है—

तूने जो-जो किया, उसे मैं भी दिखला सकता हूँ,
चाहे तो कुछ नई कलायें भी सिखला सकता हूँ।

कवि ने 'महाभारत' के कर्ण के मानसिक औदात्य को पूर्ण शक्तिमत्ता के साथ व्यक्त किया है—कर्ण-अर्जुन के द्वन्द्व की स्थिति में, कृपाचार्य जाति की आड़ लेकर कर्ण को हतप्रभ करने की चेष्टा करते हैं। मूल ग्रन्थ में दुर्योधन आचार्य के प्रश्न का उत्तर देता है किन्तु वैज्ञानिक युग के कवि का कर्ण ऐसे किसी माध्यम को स्वीकार न करता हुआ अपने अहं का विस्फोट स्वयं करता है—

जाति-जाति रटते, जिनकी पूँजी केवल पाषंड
मैं क्या जानूँ जाति? जाति है ये मेरे भुजदण्ड

पढ़ो उसे जो झलक रहा है मुझमें तेज प्रकाश,
मेरे रोम-रोम में अंकित है मेरा इतिहास।

कर्ण के माध्यम से दिनकर आज के मानव के कर्म-दीप्त पौरुष का आख्यान करते हुए जाति के 'लेबल' को निरर्थक सिद्ध करते

हैं। आज का मानव उस एकान्त स्थिति में बहुत आगे आ चुका है, जहाँ उसका प्रत्येक कार्य उसी वैयक्तिक आशा-निराशा लाभ-हानि का द्योतक था। आज वह सम्पूर्ण जीर्ण बन्धनों पर पदाघात करता हुआ स्वअर्जित सम्पत्ति का स्वामी है और उसका यह निश्चय भी दृढ़ है कि सामाजिक प्रतिष्ठा भी अन्ततः मानव की स्वयं अर्जित सिद्धि है।

'रश्मिरथी' के आचार्य द्रोण आधुनिक कुल-गोत्र सम्पन्न मठाधीश के प्रतीक हैं क्योंकि उच्च गति किसी रूप में तथाकथित निम्न वर्ग को उभरने नहीं देना चाहती। द्रोण की प्रतीज्ञा है कि ''मैं शिष्य बनाऊँगा न कर्ण को यह निश्चय है बात।''

उक्त प्रसंग के उपरान्त दिनकर ने शान्ति पर्व के नारदोक्त उपाख्यान को ग्रहण किया है। यहाँ पर कवि परशुराम के व्यक्तित्व में शक्ति और शील के समन्वय पर बल देता है। केवल शील दुर्बलता का परिचायक और आत्म प्रवंचना है, केवल शक्ति पशुबल है। अतः जीवन का कल्याण शक्ति शील के सामंजस्य में है। दिनकर ने जिस प्रकार 'कुरुक्षेत्र' में 'ज्वलित प्रतिशोध' को आपद्धर्म के रूप में मान्यता दी है तद्वत् 'रश्मिरथी' में कवि शील को शस्त्र ग्रहण करने की प्रेरणा देता है। 'कुरुक्षेत्र' का सैद्धान्तिक पक्ष 'रश्मिरथी' में आकर व्यावहारिक उपचर्या की उपस्थापना करता है। परशुराम के व्यक्तित्व में क्षात्र धर्म और ब्राह्मण धर्म के संयोग से आततायी को समूल नष्ट करने की भावना का प्रतिपादन किया है। धर्म और जीवन की रक्षा हेतु यह समन्वय आवश्यक है, क्योंकि उद्धत राजत्व को केवल मंत्रोच्चारण से नहीं रोका जा सकता, उसके लिए गंगा जल की कोई कीमत नहीं, उसे रोकने के लिए ब्रह्मण का शरग उठाना परम धर्म है, इसी प्रसंग में कवि असत्य और छल से प्राप्त सिद्धि की व्यर्थता परशुराम के शाप में सिद्ध करता है। परशुराम शाप देते हैं कर्ण लौट आता है।

'रश्मिरथी' के तृतीय सर्ग में कृष्ण और कर्ण का संवाद वर्णित है। कृष्ण सामरिक नीति के आवश्यकतानुसार कर्ण को पाण्डव पक्ष में करने का प्रयास करते हैं किन्तु असफल होते हैं।

'रश्मिरथी' का कर्ण दुर्योधन के पक्ष को छोड़ना अस्वीकार करता है। वह मित्र धर्म की स्थापना करता हुआ मित्र-मोह को मानव का पातक बताता है। दिनकर ने 'महाभारत' की कथा के दिव्य अंशों को छोड़ दिया है क्योंकि आज का बुद्धिवादी मानव उन्हें स्वीकार करने में असमर्थ है। इसके साथ उस कथांश के दिव्य रूप को सामाजिक-जीवन-पद्धति के अनुरूप ग्रहण कर नवीन परिवर्तन किया है। मूलकथा का प्रत्येक परिवर्तन युग सापेक्ष चिन्तन प्रक्रिया पर आधारित है। जिन बातों को उस युग ने मानव की वैयक्तिक सिद्धि मानकर व्यक्त किया, आज वे ही सारी बातें सामाजिक सिद्धि की परिचायक बनकर व्यक्त हुई हैं।

कवच-कुण्डल का प्रसंग एक राजनीतिक दाव-पेंच के रूप में माना जा सकता है। दिनकर ने उसे राजनीति तक ही सीमित नहीं देखा अपितु मानव धर्म के अंग रूप में चित्रित किया है। कवि दानधर्म की व्यापक महत्ता का आलेख करता है और दान को मानव का प्रकृतधर्म उद्घोषित करता है। इस प्रसंग में कवि भारत-धर्म का आख्यान करते हुए दान को जीवन का सर्वोच्च समर्पण बताता है और उसी में उदात्त चरित्र की प्रतिष्ठापक परिणति मानता है।

मूलग्रन्थ में इन्द्र सीधे कवच-कुण्डल की याचना करते हैं। कर्ण कुछ और देने के लिए कहता है किन्तु देवराज अपनी याचना पर अडिग है। इस पर कर्ण देवराज से उनकी शक्ति की याचना करता है और यह आदान-प्रदान एक राजनीतिक समझौते का रूप धारण कर लेता है।

यदि दास्यमि ते देव कुण्डले कवचं तथा।
वध्यतामुपयास्यमि त्वं च शक्रा वहास्यताम्॥
यस्माद् विनिमय कृत्वा कुण्डले वर्म चोत्तमम्।
हरस्व शक्र कामंद्वे न दद्यामहमन्यथा॥

दिनकर ने इस राजनीतिक समझौते की प्रकृति को परिवर्तित करके मानवीय संवेदना को उभारा है। इससे कर्ण का चरित्र और भी उज्ज्वल रूप में अंकित होता है। कर्ण बार-बार इन्द्र के द्वारा संकोच प्रकट करनेपर कहता है—

विप्रदेव मांगिए छोड़ संकोच वस्तु मन चाही।
मरूँ अयश मृत्यु करूँ यदि एक बार भी नाही॥

इतनी उत्कंठा-उद्वेलन और इतनी निर्मम याचना। 'रश्मिरथी' के लेखक ने यह प्रसंग मानवता के चैतन्य-शिखर को

मंडित करके लिखा है। इन्द्र उस छली-कपटी आततायी का प्रतीक है जो अवसर पड़ने पर भिक्षुक बनकर सत्य का हरण करने को तत्पर है और कर्ण दानव्रत के उस प्रकाश से आलोकित है, जहाँ मानव यह जानकर भी कि वह छला जा रहा है अपने प्रण को नहीं छोड़ता।

वस्तुत: 'रश्मिरथी' में 'महाभारत' के सभी प्रसंगों को मनुष्यत्व के प्रतिपादन के लिए ग्रहण किया गया है। दिनकर की दृष्टि में मनुष्यत्व दान में है और ऐसा दान जो व्यक्ति को क्षुद्र अहं की सीमा से उठाकर परार्थ के लिए संचालित करता है मानव का चरम रूप है। दिनकर ने इस स्थल पर इन्द्र के हृदय का परिवर्तन मानवीय गुणों की प्रतिष्ठा के लिए किया है। दिनकर के कर्ण के कवच-कर्त्तव्य दृश्य को देखकर आत्म-ग्लानि अनुभव करते हैं। कवि ने यहाँ भी कथा को वैज्ञानिक मोड़ दिया है और चरित्र में अन्त:संघर्ष की स्थापना करके भाव को संवेद्य बनाया है। कुरुक्षेत्र में यदि विजेता की आत्मग्लानि मानवता को क्षेय है तो 'रश्मिरथी' के छली इन्द्र की आत्मग्लानि भी मानवीय गुणों की सशक्त स्वीकृति है। इस पश्चाताप में अनेक पापकर्म दग्ध होकर साधुतत्त्व की भभूति बनने योग्य हो जाते हैं।

कर्ण-कुन्ती का प्रसंग करुणा की लेखनी से लिखा गया है। इस प्रसंग में भावना, तर्क, विवशता के मूर्त, अमूर्त चित्र पाठक के मन पर गहरा प्रभाव डालने में समर्थ हुए हैं। यदि करुणा मानव जीवन का सर्वाधिक प्रभावशाली भाव है, तो इस कथन पर कवि अपने पाठक को भाव की अन्तिम गहराई तक ले जाता है। माँग और दान एक राजनीतिक चाल ही नहीं मानवीय आकांक्षा भी है और 'रश्मिरथी' में इस आकांक्षा का प्रबलतम रूप उपस्थित होता है। 'रश्मिरथी' में कुन्ती का आत्म-संघर्ष कितना सकारण और मनोवैज्ञानिक है—

एक ही गोद के लाल, कोख के भाई,
सत्य ही लड़ेंगे हो दो ओर लड़ाई,

दो में जिसका उर फटे फटूँगी मैं ही,
जिसकी भी गर्दन कटे कटूँगी मैं ही?

एक ओर माता का विह्वल हृदय, दूसरी ओर पुत्र की संचित घृणा। कर्ण अपने उपेक्षित जीवन के समस्त दु:ख बटोर कर आवेश में कहता है—

अब तक न स्नेह से कभी किसी ने हेरा
सौभाग्य किन्तु जग पड़ा अचानक मेरा

इसी प्रवाह में वह यहाँ तक कह डालता है—

जोड़ने नहीं बिछुड़े, वियुक्त कुलजन से
फोड़ने मुझे आई हो दुर्योधन से।

परिस्थिति के इस संघर्ष में कवि अन्तर और बाह्य रेखाओं को शक्ति से उभारता हुआ पाठक की अनुभूति को सरल करने में समर्थ हुआ है। पाठक न तो कुन्ती को दोष दे पाता है, न कर्ण को और केवल आहत मातृत्व के प्रति सहानुभूति अर्पित करता है।

इस प्रसंग के उपरान्त कर्ण और भीष्म के संवाद में कवि अनुभूति और चिन्तन दोनों को समानान्तर रूप में व्यक्त करता है। भाव का अनुभव व्यक्ति की सहानुभूति है और दर्शन की दृष्टि वैचारिक संकल्प विकल्प की क्रीड़ा है। 'रश्मिरथी' का कवि भाव के आवेग को वैचारिक परिणति में परिवर्तित करता है और सिद्धान्त को सामान्य ज्ञान के स्तर पर व्यक्त करके, पाठक की अनुभूति का विषय बना देता है। भीष्म युद्ध की भयंकरता बता कर कर्ण को युद्ध विरत करना चाहते हैं किन्तु कर्ण भी समय-सापेक्ष युद्धधर्म पर अडिग रहकर कर्त्तव्य का पालन करता है।

कवि अपने मूल विचार के अनुसार युद्ध-धर्म के औचित्य पर प्रकाश डालता है। युद्ध में रत दोनों पक्ष विजय-हेतु अनैतिक साधनों को अपनाते हैं, अत: युद्ध इसलिए भी निद्य है कि मानव अपने स्वाभाविक विवेक को खो बैठता है।

कर्णार्जुन का युद्ध प्रसंग 'महाभारत' से यथावत् ग्रहण किया गया है। इस प्रसंग में कवि अनेक मूर्त, प्रत्यक्ष और अनुभवगम्य बिम्बों की अवतारणा करके पाठक के हृदय में वीर रस का संचार करता है। मानवीय गुणों का उद्घाटन करने वाला कवि इस गर्हित युद्ध-प्रसंग में भी कर्ण के द्वारा उदात्त गुणों का निर्वचन कराता है। कर्ण इस बात का पश्चाताप करता है कि उसने द्रोपदी के अपमान के

समय दुर्योधन को क्यों नहीं रोका। इससे स्पष्ट है कि कवि मानव के आभ्यान्तर सत् तत्त्व को उसकी प्राणधारा मानता है। स्थिति से विवश मानव अपकर्म कर सकता है। पर आत्मा की पुकार किसी-न-किसी समय उसे आचार-अनाचार पर विचार करने के लिए विवश करती है। यही कारण है कि कर्ण की मृत्यु के बाद कृष्ण उसके गुणों का वर्णन करते हैं।

महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

(प्रथम-सर्ग)

(1)

''जय हो जग में जले जहाँ भी, नमन पुनीत अनल को,
जिस नर में भी बसे, हमारा नमन तेज को, बल को।
किसी वृन्त पर खिले विपिन में, पर, नमस्य है फूल,
सुधी खोजते नहीं गुणों का आदि, शक्ति का मूल।
ऊँच-नीच का भेद न माने, वही श्रेष्ठ ज्ञानी है,
दया-धर्म जिसमें हो, सबसे वही पूज्य प्राणी है।
क्षत्रिय वही, भरी हो जिसमें, निर्भयता की आग,
सबसे श्रेष्ठ वही ब्राह्मण है, हो जिसमें तप-त्याग।''

शब्दार्थ—पुनीत=पावन। वृन्त=डाली, प्रसव बन्धन। विपिन=जंगल। नमस्य=नमन करने योग्य। सुधी=विद्वजन। मूल=जड़।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक रामधारीसिंह 'दिनकर' द्वारा विरचित खण्ड-काव्य 'रश्मिरथी' से अवतरित है, इसे प्रथम सर्ग से लिया गया है। कवि ने स्पष्ट किया है कि इस संसार में मानव के स्वाभाविक गुणों का पूर्णतः सम्मान होना चाहिए। संसार के सभी तेजस्वी व्यक्तियों के प्रति पूर्ण श्रद्धा होनी चाहिए।

व्याख्या—कविवर दिनकर तेजस्वी व्यक्तियों के प्रति पूर्ण श्रद्धाभाव ज्ञापित करते हुए कहते हैं कि इस संसार में जहाँ पर भी तेज और सत्य की प्रतीक अग्नि प्रज्ज्वलित हो वहीं पर उसकी जय हो तथा जहाँ-जहाँ भी तेजस्वी पुरुष हो, वहीं पर उनको हमारा सादर वन्दन स्वीकार हो। चाहे वह तेज और बल किसी भी वर्ग अथवा किसी भी जाति के पुरुष में हो। जिस प्रकार पुष्प वन के मध्य किसी भी डाली पर अथवा किसी भी पेड़ पर क्यों न खिला हो, वह सदैव ही आदर और प्रशंसा के योग्य होता है। उसी प्रकार विद्वान व विवेकपूर्ण व्यक्ति सदैव ही गुणों और शक्ति का आदर करते हैं। वे कभी भी इस बात पर विचार नहीं करते हैं कि गुण एवं शक्ति के मध्य ऊँच या नीच जाति का है। आरम्भ व मूल स्थल की इच्छा किये बिना जिस प्रकार प्रत्येक सुगन्धित पुष्प आदर प्राप्त किया करता है, उसी प्रकार गुणवान व्यक्ति भी पूर्ण सम्मान के योग्य होते हैं। उनके सम्मान के लिये किसी जाति विशेष का बन्धन नहीं होता है। अर्थात् इस संसार में विद्यमान प्रत्येक गुणवान व्यक्ति सम्मान की दृष्टि से देखा करते हैं, उसी प्रकार वे प्रत्येक गुणवान व्यक्ति को भी उसी दृष्टि से देखा करते हैं।

कविवर दिनकर संसार में ज्ञानी और आदर योग्य व्यक्तियों के प्रति अपनी भावना व्यक्त करते हुए कहते हैं कि इस संसार में जो मनुष्य किसी भी जाति में जन्म लेने के कारण किसी अन्य व्यक्ति को अपने से छोटा अथवा बड़ा नहीं मानता है बल्कि सभी के प्रति समान भाव रखता है वही व्यक्ति इस संसार में सच्चा ज्ञानी हो सकता है। जो व्यक्ति छोटे-बड़े सभी के प्रति समान दया रूपी धर्म का पालन कर समानता का व्यवहार करता है, वही व्यक्ति इस संसार में पूज्य होता है। कवि अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए निडरता से तथा पौरुष से युक्त हो। इसी प्रकार इस संसार में तपस्या एवं त्याग के मार्ग पर चलने वाला व्यक्ति ही सच्चा ब्राह्मण माना जा सकता है। मात्र ब्राह्मण कुल में जन्म लेने से व्यक्ति सच्चा ब्राह्मण नहीं हो सकता है।

विशेष— 1. किसी भी व्यक्ति का सम्मान किसी जाति विशेष की उच्चता अथवा निम्नता से प्रभावित नहीं होता है अपितु उसमें निहित गुण अथवा शक्ति के आधार पर ही होता है। प्रस्तुत कथन के माध्यम से कवि का संकेत महारथी कर्ण की ओर है।

2. प्रस्तुत अंश के माध्यम से कवि ने अपना दृष्टिकोण स्पष्ट किया है कि किसी व्यक्ति की जाति जन्म से नहीं हुआ करती है, बल्कि उसकी जाति उसके कर्मों एवं गुणों से ही बना करती है। जो समाज इसी आधार पर गुणी व्यक्तियों को आदर देता है वही आदर्श समाज है।

(2)

''अलग नगर के कोलाहल से, अलगपुरी पुरजन से,
कठिन साधना में उद्योगी, लगा हुआ तन-मन से।
निज समाधि में निरत, सदा निज कर्मठता में चूर,
वन्य कुसुम-सा खिला कर्ण, जग की आँखों से दूर।
नहीं फूलते कुसुम मात्र, राजाओं के उपवन में,
अमित बार वे खिलते पुर से, दूर कुञ्ज-कानन में।
समझे कौन रहस्य? प्रकृति का बड़ा अनोखा हाल,
गुदड़ी में रखती चुन-चुनकर, बड़े कीमती लाल॥''

शब्दार्थ—कोलाहल=शोर। पुरी=नगर। उद्योगी=परिश्रमी। वन्य=वन। कुसुम=पुष्प। उपवन=बगीचा। अमित बार=कई बार। हाल=स्थिति। गुदड़ी=कथड़ी (गद्दी)। कीमती=बहु मूल्य।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक कविवर रामधारीसिंह दिनकर द्वारा विरचित खण्ड काव्य 'रश्मिरथी' के प्रथम सर्ग से उद्धृत है, जिसमें कवि महावीर कर्ण की पुरुषार्थी साधना की ओर संकेत करते हुए कहते हैं कि कर्ण सूत वंश में पलने व बड़े होने के कारण उच्च जाति के लोगों में उपेक्षित था। कदाचित् यही कारण था कि वह नगर के कोलाहल से परे तथा नगरवासियों की दृष्टि से दूर होकर अपने व्यक्तित्व के विकास हेतु लोहे के चने चबाता रहा और वह अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के वास्ते अकेला ही तन-मन को कठोर बनाकर जी-जान से कर्मरत रहा। वह इस काल में सदैव अपने कठोर कर्मों के द्वारा तन व मन की साधना में लीन रहने लगा। जिस प्रकार एक सुन्दर पुष्प संसार की आँखों से कहीं दूर अकेले ही अपना विकास पाता रहता है, ठीक वैसे ही कर्ण सभी की दृष्टियों से दूर रहकर अपने जीवन का विकास कठोर साधना के मार्ग पर चलकर करता रहा।

कवि दिनकर कहते हैं कि छोटी अथवा निम्न जाति में भी महान् व्यक्तित्व का जन्म होता है। जिस प्रकार मनमोहक और मनमुग्ध कर देने वाली सुगन्ध से युक्त पुष्प केवल राजाओं-महाराजाओं के महलों में बने बाग-बगीचों में ही नहीं खिला करते हैं अपितु ऐसे मोहक व सुगन्धित पुष्प वियवान जंगलों की झुरमुटों में भी खिल कर अपने अस्तित्व की महक सर्वत्र बिखेरते हैं। प्रकृति की स्थिति विचित्र है जिसे आज तक कोई भी नहीं समझ पाया। पता नहीं कि इस पृथ्वी पर कितने ही बेशकीमती लाल छुपे हुए हैं। अर्थात् सुन्दर सुरभित पुष्पों के समान महान् गुणवान व्यक्ति साधारण कुलों में भी जन्म लिया करते हैं।

विशेष— 1. प्रस्तुत अंश में महावीर कर्ण की सच्ची लगन एवं आत्मविश्वास द्वारा प्राप्त सफलताओं की ओर संकेत किया है।
2. प्रस्तुत अंश में उपमा अलंकार का सुन्दर प्रयोग किया गया है।
3. पुष्प के माध्यम से कवि ने स्पष्ट किया है कि छोटी-से-छोटी अथवा नीची वे नीची समझी जाने वाली जाति में भी महानतम व्यक्तित्व के गुण रखने वाले व्यक्तियों का जन्म हो जाता है।
4. गुदड़ी का लाल होना मुहावरा का प्रयोग कर काव्यांश की भाषा में मौलिकता का आभास कराया गया है।

(3)

''द्वन्द्व युद्ध के लिये पार्थ को, फिर उसने ललकारा,
अर्जुन को चुप ही रहने का, गुरु ने किया इशारा।
कृपाचार्य ने कहा—'सुनो हे वीर युवक अनजान,
भरत-वंश-अवतंस पाण्डु की अर्जुन है संतान।
क्षत्रिय है, यह राजपुत्र है, यों ही नहीं लड़ेगा,
जिस-तिस से हाथा पाई में, कैसे कूद पड़ेगा?
अर्जुन से लड़ना हो तो मत गहो सभा में मौन,

नाम-धाम कुछ कहो, बताओ कि तुम जाति हो कौन?''

शब्दार्थ—द्वन्द्वयुद्ध=दो व्यक्तियों में होने वाला युद्ध। पार्थ=कुन्ती पुत्र अर्जुन। वंश- अवतंश=कुल के राजमुकुट श्रेष्ठ। हाथापाई=लड़ाई (बिना अस्त्र-शस्त्र के)।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक रामधारीसिंह दिनकर द्वारा विरचित खण्ड-काव्य 'रश्मिरथी' के प्रथम सर्ग से अवतरित है। जिसमें स्पष्ट किया है कि जब रणभूमि में कर्ण ने अपनी युद्ध कला तथा धनुर्विद्या की प्रस्तुति दी तो वहाँ पर उपस्थित सभी जन आश्चर्यचकित होकर दाँतों तले उँगलियाँ दबाने लगे तथा राजवंशियों व उपस्थित वीर क्षत्रियों के मन में उदासी छा गई। उसी समय महावीर कर्ण ने अपनी चुनौती भरी तेजस्वी वाणी में ललकारा।

व्याख्या—उसी प्रतिक्रिया का वर्णन करते हुए कवि दिनकर कहते हैं कि वीर कर्ण ने अर्जुन को द्वन्द्वयुद्ध के लिए ललकारा, किन्तु गुरु द्रोणाचार्य ने अर्जुन की ओर संकेत किया और उसके मन में उत्पन्न कर्ण के प्रति उत्पन्न प्रतिक्रिया को शान्त करने का प्रयास किया। तत्पश्चात् कृपाचार्य ने कर्ण को सम्बोधित करते हुए कहा कि हे अनजान वीर युवक! सुनो, यह अर्जुन कोई साधारण मानव योद्धा नहीं है अपितु महाराज भरतवंश के किरीट मणि पाण्डु की प्रिय संतान है। ऐसी स्थिति में तुम्हारे जैसे अनजान तथा निम्न जाति के साधारण तथा राजविहीन व्यक्ति से द्वन्द्वयुग नहीं किया जा सकता है क्योंकि यह नियम राजनियम के विरुद्ध है। तुम अर्जुन के साथ किसी प्रकार की बराबरी नहीं करते हो।

यद्यपि कर्ण की विद्रोह भरी ललकार को अर्जुन ने स्वीकार कर लिया था किन्तु आचार्य द्रोण के मौन संकेत के कारण अर्जुन ने अपने आप को रोके रखा। उधर कृपाचार्य ने कर्ण को अर्जुन के समान न बताकर अयोग्य घोषित कर दिया और यह कहकर द्वन्द्व युद्ध रोक दिया गया कि अर्जुन उच्च स्तरीय कुल के राजकुमार हैं और सच्चे क्षत्रिय राजकुमार ऐसे ही हर किसी अनजान व निम्न जाति में जन्मे साधारण व्यक्ति से युद्ध नहीं कर सकते हैं। उन्होंने कहा कि हे अनजान युवक! यदि तुम अर्जुन के साथ द्वन्द्व युद्ध करना चाहते हो तो अपना मौन भंग करो और अपने बारे में, अपने वंश के सन्दर्भ में सभा के समक्ष स्पष्ट करिये। तुम इस बात का स्पष्टीकरण दो कि तुम्हारा जन्म किस जाति में हुआ है? यह सब जानने के पश्चात् ही निर्णय लिया जायेगा कि तुम अर्जुन जैसे श्रेष्ठ राजकुमार के साथ द्वन्द्वयुद्ध के अधिकारी बन सकते हो अथवा नहीं।

विशेष—
1. प्रस्तुत अंश के माध्यम से समाज में व्याप्त जातिगत ऊँच-नीच की दुर्भावना को स्पष्ट किया गया है।
2. अंश में वर्णित भाव के अनुसार एक वीर से दूसरा वीर पुरुष तब ही द्वन्द्व युद्ध कर सकता है, जब वह समकक्ष जाति एवं कुल में जन्मा हो।
3. प्रस्तुत अंश की भाषा सरल, सुबोध और प्रभावशाली है।

(4)

''अर्जुन बड़ा वीर क्षत्रिय है तो आगे वह आवे,
क्षत्रियत्व का तेज जरा मुझको भी तो दिखलावे।
अभी छीन इस राजपुत्र के, कर से तीर-कमान,
अपनी महाजाति की दूँगा, मैं तुमको पहचान॥
कृपाचार्य ने कहा वृथा तुम क्रुद्ध हुए जाते हो,
साधारण-सी बात, उसे भी समझ नहीं पाते हो।
राजपुत्र से लड़े बिना होता हो अगर अकाज,
अर्जित करना तुम्हें चाहिये, पहले कोई राज॥''

शब्दार्थ—क्षत्रियत्व=क्षत्रिय होने के गुण। कर से=हाथ से। तीर-कमान=धनुषबाण। महाजाति=महामानव जाति। वृथा=व्यर्थ। अकाज=बुरा, विनाकारण, बिना काम। अर्जित=कमाना अथवा प्राप्त करना।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक कविवर रामधारीसिंह दिनकर द्वारा विरचित 'खण्ड-काव्य', 'रश्मिरथी' के प्रथम सर्ग से अवतरित है जिनमें महावीर कर्ण की मन:स्थिति का सुन्दर चित्रण किया गया है।

व्याख्या—कर्ण अपने भाव व्यक्त करते हुए कहते हैं कि व्यक्ति के व्यक्तित्व में समाहित गुण ही उसकी सच्ची जाति होती है। कर्ण पुन: ललकारते हुए कहते हैं कि यदि अर्जुन उपस्थित जनों की भावनाओं के अनुसार उच्च वंशीय क्षत्रिय है और सच्चे अर्थों में वीर भाव

से पूरित है तो वह आगे बढ़े और मेरे सामने आये तथा द्वन्द्वयुद्ध के माध्यम से अपने क्षत्रियत्व का परिचय दे। मैं उसी समय सबके समक्ष अर्जुन के हाथों से धनुष-बाण छीनकर अपनी महान् मानव जाति का प्रमाण और अपनी पहचान सभी को करा दूँगा, जिससे उपस्थित जनों को मेरे वंश और मेरी जाति का प्रमाण मिल जायेगा।

रंगभूमि में उपस्थित सभी जनों द्वारा जाति और वंश की श्रेष्ठता की बात को सुनकर जब वीर कर्ण का मन विक्षोभ से पूरित हो गया तब कर्ण ने अर्जुन को पुन: चुनौती देकर उससे धनुषबाण छीन लेने की बात कहीं तो कृपाचार्य ने अर्जुन का पक्ष लेते हुए तथा उसका बचाव करते हुए अपनी ऐसी भावना व्यक्त की कि कर्ण की वह उपेक्षा थी। उसी स्थिति का वर्णन करते हुए कविवर दिनकर कहते हैं कि कृपाचार्य ने कर्ण की ओर सम्बोधित करते हुए कहा कि हे युवक! तुम व्यर्थ ही क्रोधाग्नि को भड़का कर अपने आप को परेशान कर रहे हो। यह बात तो बिल्कुल सामान्य है कि यह युद्ध राजा अथवा किसी राजकुमार के साथ ही संभव हो सकता है। यही नियम है और यही युद्ध की मर्यादा है। किन्तु तुम इस छोटी-सी बात को भी समझने का प्रयास नहीं कर रहे हो। यदि वास्तव में तुम इस बात को उचित समझते हो कि अर्जुन से युद्ध किये बिना तुम्हारा कोई काम बिगड़ रहा है तो इसके लिये यह आवश्यक है कि कहीं जाकर तुम अपनी वीरता के बल पर किसी राज्य की स्थापना करो और किसी राज्य के राजा बनो, तत्पश्चात् ही तुम राजपुत्र अर्जुन के साथ युद्ध करने का अधिकार प्राप्त कर सकते हो अर्थात् समकक्ष होने पर ही तुम अर्जुन के साथ युद्ध के अधिकारी हो। इसके लिये सर्वप्रथम तुम्हें राज्य प्राप्त करना होगा।

विशेष— 1. प्रस्तुत अंश के माध्यम से महावीर कर्ण की मन:स्थिति तथा वीरत्व के प्रति समाहित भावों की व्यंजना की गई है।
2. उच्च समाज के लोग जातिगत श्रेष्ठता व उच्चता को महत्त्व देते रहे हैं, की पुष्टि की गई है।
3. कोई भी व्यक्ति जाति से श्रेष्ठ व उच्च नहीं होता है अपितु गुणों और शक्ति से ही महान होता है, संकेत दिया गया है।
4. कवि ने यह भी संकेत किया है कि युद्ध की परम्परा में समानता अनिवार्य है।
5. भाषा सरल, प्रभावशाली एवं आकर्षण से युक्त है।

(5)

''करना क्या अपमान ठीक है, इस अनमोल रतन का,
मानवता की इस विभूति का, धरती के इस धन का।
बिना राज्य यदि नहीं वीरता, का इसको अधिकार,
तो मेरी यह खुली घोषणा, सुने सकल संसार॥
अंग देश का मुकुट कर्ण के मस्तक पर धरता हूँ,
एक राज्य इस महावीर के हित अर्पित करता हूँ।
रखा कर्ण के सिर पर उसने, अपना मुकुट उतार,
गूँजा रंगभूमि में दुर्योधन का जय-जयकार॥''

शब्दार्थ—विभूति=ऐश्वर्य। सकल=सम्पूर्ण। अर्पित=भेंट। गूँजा=फैल गया।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक कविवर रामधारी सिंह दिनकर द्वारा विरचित खण्डकाव्य 'रश्मिरथी' के प्रथम सर्ग से लिया गया है, जिसमें कवि ने स्पष्ट किया है कि जब आचार्य द्रोण और कृपाचार्य ने राजसी युद्ध के नियमों एवं मर्यादाओं की ओट में अर्जुन को सुरक्षित कर लिया और महावीर कर्ण को जनसमूह के समक्ष अपमानित-सा कर दिया तो युवराज दुर्योधन ने तत्काल कर्ण की बात को सँभाल लिया।

व्याख्या—दुर्योधन ने कर्ण की मन:स्थिति और वीरता को देखकर उसकी बात को संभालते हुए कहा कि इस प्रकार से वीरता से युक्त गुणवान तेजस्वी कर्ण रूपी अमूल्य रत्न को अपमानित करना न्यायोचित नहीं है। यह तो मानवता की महान् विभूति और इस धरती का अनमोल रत्न है। इस प्रकार के गुणी व्यक्तित्व का सबके सामने अपमान करना क्षत्रियत्व की गरिमा के विरुद्ध है और हमें यह सब शोभनीय नहीं है, अत: यदि कर्ण को बिना राज्य प्राप्त किये हुए अपनी वीरता प्रदर्शित करने का अधिकार नहीं है तो जो मैं अब घोषणा

करने जा रहा हूँ, उसे सारा संसार और उपस्थित प्रबुद्धजन सभी सुन लें।

''मैं दुर्योधन आज इसी समय आप सभी को साक्षी मानकर यह घोषणा करता हूँ कि वीर कर्ण अब अंग देश के सम्माननीय राजा होंगे। आज से और अभी से अंग राज्य वीर कर्ण का होगा और हमेशा-हमेशा के लिये रहेगा।''

कृपाचार्य की बात को सुनकर और कर्ण के मन में व्याप्त अपमान की अनुभूति कर रंगभूमि में उपस्थित सभी राजवंशीय क्षत्रिय जनों के समक्ष दुर्योधन ने कर्ण को अंगदेश का राजा घोषित करते हुए पुन: कहा कि ''मैं आज अंग देश का राजमुकुट कर्ण के मस्तक पर सुशोभित करते हुए इन्हें राजा बनाता हूँ। इस महान वीर की रक्षा के लिए मैं इसे एक राज्य अर्पित करता हूँ।'' उसी समय दुर्योधन ने अपने सिर पर से राजमुकुट उतारकर कर्ण के सिर पर रख दिया। इस दृश्य को देखकर रंगभूमि में सर्वत्र दुर्योधन की जय-जयकार गूँज उठी।

विशेष— 1. प्रस्तुत अंश में कवि ने दुर्योधन के मन में समाहित (वीर कर्ण के प्रति) भावों का जीवन्त चित्रण किया है।

2. दुर्योधन के हृदय की विशालता और सच्चे वीर के प्रति प्रदर्शित श्रद्धा तथा उसके सम्मान की रक्षा के भावों की सुन्दर अभिव्यंजना की है।

(6)

''भरी सभा के बीच आज तूने जो मान दिया है,
पहले-पहल मुझे जीवन में जो उत्थान दिया है।
उऋण भला होऊँगा उससे चुका कौन-सा दाम?
कृपा करें दिनमान कि आऊँ तेरे कोई काम।
घेर खड़े हो गए कर्ण को मुदित मुग्ध पुरवासी,
होते ही हैं लोग शूरता-पूजन के अभिलाषी।
चाहे जो भी कहे द्वेश, ईर्ष्या, मिथ्या अभिमान,
जनता निज आराध्य वीर को, पर लेती पहचान॥''

शब्दार्थ—उत्थान=उच्चता। उऋण=ऋणमुक्त। दिनगोर=ग्रह-गोचर। मुदित=प्रसन्न। पुरवासी=नगर जन। शूरता=वीरता। अभिलाषी=इच्छावान। मिथ्या=झूँठ।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक कविवर रामधारी सिंह दिनकर द्वारा विरचित खण्डकाव्य 'रश्मिरथी' के प्रथम सर्ग से लिया गया है, जिसमें कवि ने स्पष्ट किया है कि जिस समय रंगभूमि में उपस्थित प्रबुद्ध जन-समूह के समक्ष कृपाचार्य ने कर्ण को जाति व राज्य की उच्चता की ओट लेकर अपमानित किया तो दुर्योधन ने उनके सम्मान की रक्षा के लक्ष्य से अंग राज्य का राजा उन्हें घोषित कर दिया और उनके मस्तक पर अपना ताज सुशोभित कर उन्हें युद्ध हेतु योग्यताधारी बना दिया। उस पर कर्ण दुर्योधन के प्रति कृतज्ञ होते हुए उनके प्रति अपने पावन हृदय में समाहित उद्गारों को भाव विभोर होकर प्रकट करने लगते हैं।

व्याख्या—कर्ण कहते हैं कि हे मित्र दुर्योधन! आज इस रंगभूमि की भरी सभा में जहाँ मेरा असहनीय अपमान और उपेक्षा हो रही थी, उसी सभा में तुमने मुझे आकस्मिक और अकाल्पनिक सम्मान दिया है, उसके लिये मैं कृतज्ञ हूँ। इतना ही नहीं, पहली बार मुझे इस उच्चता और सम्मान का गौरव प्राप्त हुआ है, जिसके निमित्त तुम हो। हे मित्र! मुझे समझ में नहीं आता है कि इन उपकारों के बदले में कौन-सा मूल्य चुका कर मैं ऋणमुक्त हो सकूँगा। अब तो भगवान् भास्कर से मेरी यही प्रार्थना है कि वे मुझ पर अपनी कृपा बनाये रखें। मेरा जीवन तुम्हारे किसी काम में आकर तुमसे की गई मित्रता तथा तुम्हारे द्वारा दिये गये इस विपुल सम्मान का ऋण चुकाने में समर्थ हो सके।

दुर्योधन के प्रति कर्ण की विचारधारा को सुनकर सभा में उपस्थित गणमान्यजन कर्ण के प्रशंसक बन गये। इसी तथ्य को प्रकट करते हुए कविवर दिनकर कहते हैं कि रंगभूमि में कर्ण के आत्मीय भाव से परिपूर्ण उद्गारों को सुनकर सारा जनसमूह कर्ण को घेर कर खड़ा हो गया, क्योंकि लोग स्वभाव से ही वीर पुरुषों के प्रशंसक और पुजारी होते हैं अत: इसी प्रवृत्ति के कारण सभी लोग कर्ण की उन्मुक्त भाव से प्रशंसा करने लगे। किसी वीर और महान् व्यक्ति से ईर्ष्या अथवा द्वेष भाव रखने वाले झूँठे और अहंकारी लोग चाहे कुछ भी कहें, परन्तु जन-सामान्य अपने आदर्श और आराध्य वीर को एक-न-एक दिन पहचान कर उसे उचित मान-सम्मान देते ही हैं।

विशेष—1. प्रस्तुत अंश में कर्ण के हृदय की विशालता तथा मित्रता के प्रति सहज अनुराग अति प्रशंसनीय है।

2. श्रेष्ठ मनुष्य दूसरों के द्वारा किये गये उपकार को ऋण स्वरूप मानकर उनसे उऋण होने का सदैव प्रयास करते हैं।

3. कवि ने जन- साधारण और विशिष्ट जनों की मानसिकता को सहज ढंग से स्पष्ट किया है।

4. भाषा सरल, सुबोध और प्रभावशाली है।

(7)

" 'महाराज अंगेश!' तीर- सा लगा हृदय में जाके।
विफल क्रोध में कहा भीम ने और नहीं कुछ पा के।
हय की झाड़े पूँछ, आज तक रहा यही तो काज,
सूत- पुत्र किस तरह चला पायेगा कोई राज॥
दुर्योधन ने कहा—भीम! झूँठे बक- बक करते हो,
कहलाते धर्मज्ञ, द्वेष का विष मन में धरते हो।
बड़े वंश से क्या होता है, खोटे हों यदि काम,
नर का गुण उज्ज्वल चरित्र है, नहीं वंश- धन- धान॥"

शब्दार्थ—अंगेश= अंग देश के राजा। विफल=व्यर्थ। हय=घोड़ा। बकबक=बकवास। धर्मज्ञ=धर्मात्मा। धाम=घर। खोटे=निन्दनीय।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य- पुस्तक कविवर रामधारीसिंह दिनकर द्वारा विरचित 'रश्मिरथी' से उद्धृत है। यह प्रथम सर्ग से लिया गया है। उसमें बताया है कि दुर्योधन के द्वारा वीर युवक कर्ण को जब अंग देश का राजा घोषित कर दिया गया था तब राजा के रूप में कर्ण को जय- जयकार से समूचा वातावरण गूँज उठा, जिसे सुनकर भीम के मन में कर्ण व दुर्योधन के प्रति अनेक प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न होने लगीं।

व्याख्या—कवि दिनकर भीम की मन:स्थिति का वर्णन करते हुए कहते हैं कि रंगभूमि में उपस्थित जन- समूह ने जैसे ही अंग देश के महाराज कर्ण की जय- जयकार प्रारम्भ की, वैसे ही भीम के मन में उद्वेग का तूफान उठने लगा और उनके मन में यह जयघोष नुकीली कील की भाँति चुभन देने लगा। उस समय आवेश के कारण भीम को कोई महत्त्वपूर्ण तथ्य तो दिखाई नहीं दिया और अपने मन का आवेग यह कहकर निकालना प्रारम्भ किया कि कर्ण जिस जाति व कुल में जन्मा है वहाँ के घुड़साल में घोड़ों की पूँछ झाड़ने के अतिरिक्त और कोई काम नहीं होता है। ऐसी स्थिति में यह सूत- पुत्र कर्ण राज्य का कार्यभार भला कैसे सँभाल पायेगा? अर्थात् राज्य का संचालन करना कर्ण जैसे सूत- पुत्र के वश की बात नहीं है।

रंगभूमि में उपस्थित संभ्रान्त जन- समूह के द्वारा जब कर्ण की जय- जयकार अंगदेश के राजा के रूप में होने लगी तो भीम अपने आक्रोश को नहीं रोक पाये और उन्होंने कर्ण को घोड़े की पूँछ साफ करने वाला कहकर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की। भीम के इन भद्दे शब्दों व मन की इस व्यर्थ प्रतिक्रिया को सुनकर दुर्योधन से भी रहा न गया और उन्होंने भीम से कहा कि हे अहंकारी भीम! तुम व्यर्थ में इस प्रकार की बक- बक करके कर्ण जैसे महावीर को अपमानित करने और उनके महत्त्व को कम करने का प्रयास कर रहे हो, यह उचित नहीं है। वैसे भी तुम्हारे इन महत्त्वहीन शब्दों से कर्ण का महत्त्व किसी भी प्रकार से कम नहीं हो सकता है। वैसे तो तुम सभी पाण्डव बड़े धर्मात्मा कहलाते हो, किन्तु तुम्हारे द्वारा प्रयुक्त शब्दों से तो ऐसा प्रतीत होता है कि तुम लोग तो कदाचित् धर्म के मर्म को नहीं जानते हो, यहाँ तक कि धर्म की परिभाषा से भी अनभिज्ञ लगते हो। तुम अपने मन में ईर्ष्या और द्वेष का विष भरे हुए हो, इसी लिये व्यर्थ की बातें करने लगे हो। सुनो भीम! यदि मनुष्य के काम ही खोटे अथवा निम्न कोटि के हों तो बड़े या ऊँचे कुल में जन्म लेना भी व्यर्थ है। सच तो यह है कि किसी भी व्यक्ति की महानता की पहचान उसके व्यक्तित्व में समाहित सद्गुणों तथा उसके उज्ज्वल चरित्र से ही हुआ करती है। ऊँचे कुल या अपार धन- सम्पदा अथवा श्रेष्ठ घराने से नहीं।

विशेष— 1. प्रस्तुत अंश में भीम की मन:स्थिति व उनके मन में कर्ण के प्रति समाहित हीनभावना और ईर्ष्यात्मक दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया है।

2. स्पष्ट किया है कि तत्कालीन उच्च कुलीन मानसिकता में निम्न जातियों के मनुष्यों के प्रति पनपी हीन भावना गुणों को व्यर्थ करने वाली थी।

3. भीम की भावधारा का सुन्दर स्पष्टीकरण किया है।

4. कवि ने दुर्योधन के माध्यम से मानवतावादी दृष्टिकोण को प्रस्तुत कर मनुष्य की श्रेष्ठता का आधार धन या वंश को नहीं अपितु सद्गुणों व चरित्र की उज्ज्वलता को बताया है।
5. यह भी स्पष्ट किया गया है कि मनुष्य की भावना ही जीवन में सर्वोच्च होती है।
6. भाषा प्रभावशाली, सरल एवं उपदेशात्मक है।

(8)

''रंगभूमि से चले सभी पुरवासी मोद मनाते,
कोई कर्ण, पार्थ का कोई गुण आपस में गाते।
सबसे अलग चले अर्जुन को लिये हुए गुरु द्रोण
कहते हुए—पार्थ! पहुँचा यह राहु नया फिर कौन?
जनमें नहीं जगत् में अर्जुन! कोई प्रतिबल तेरा,
टँगा रहा है एक इसी पर ध्यान आज तक मेरा॥
एकलव्य से लिया अँगूठा, कढ़ी न मुख से आह,
रखा चाहता हूँ निष्कंटक बेटा! तेरी राह।''

शब्दार्थ—मोद=प्रसन्नता। पुरवासी=नागरिक। पार्थ=कुन्ती पुत्र अर्जुन। प्रतिबल=प्रतिद्वन्द्वी। कढ़ी=निकली। निष्कंटक=बाधा रहित।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक कविवर रामधारीसिंह दिनकर द्वारा विरचित खण्ड-काव्य 'रश्मिरथी' के प्रथम सर्ग से अनूदित है। जिसमें कवि ने स्पष्ट किया है कि रंगभूमि में भीम और दुर्योधन के बीच विवाद होने लगता है और उस विवाद के कारण कई अनुचित संभावनाएँ मन में जन्म ले लेती हैं। कृपाचार्य के द्वारा सभी को अपने-अपने घर पर चलने का प्रस्ताव रखा जाता है। इन्हीं प्रतिक्रियाओं का प्रस्तुत अंश में स्पष्टीकरण किया गया है।

व्याख्या—कवि दिनकर कहते हैं कि कृपाचार्य के वचनों को सुनकर सभा में उपस्थित जन आनन्दभाव से पूरित होकर रंगभूमि से नगर की ओर प्रस्थान करने लगे। चलते हुए सभी लोग समभाव की दृष्टि से पृथक्-पृथक् समूह में बँट गये थे तथा अर्जुन तथा कर्ण के गुणों का वर्णन कर रहे थे। उस प्रस्थान बेला में सबसे आगे अर्जुन को लेकर आचार्य द्रोण चल रहे थे। कदम बढ़ाते हुए द्रोणाचार्य ने अर्जुन की ओर देखकर कहा कि हे अर्जुन! तुम्हारे यश रूपी चन्द्रमा को ग्रसित करने के प्रयोजन से यह राहू रूप में कर्ण कौन और कहाँ से आ गया?

जब रंगभूमि से अर्जुन को साथ लेकर आचार्य द्रोण नगर की ओर लौट रहे थे तो उस समय उनके मन में बार-बार, रह-रहकर कर्ण की वीरोचित वाणी गूँज रही थी। वे अर्जुन के भविष्य के प्रति चिन्ता व्यक्त करते हुए कहते हैं कि—हे अर्जुन! मैं आज तक यही बात अच्छी प्रकार से सोचता रहा कि इस संसार में कोई भी तुम्हारा प्रतिद्वन्द्वी पैदा न हो इसी प्रयोजन से मैंने धनुर्विद्या के अचूक निशानेबाज भील बालक एकलव्य से गुरु दक्षिणा के रूप में उसका अँगूठा कटवा लिया था, उस दृश्य को देखकर मेरे मुँह से जरा-सी आह तक नहीं निकली थी। अर्थात् मुझे तुम्हारे हितार्थ एकलव्य का अँगूठा कटवाते समय किंचित् मात्र भी दुःख नहीं हुआ था। हे अर्जुन! मैं हर प्रकार से इस पृथ्वी पर तुम्हारी योग्यता और यश का मार्ग निष्कंटक रखना चाहता हूँ किन्तु इस कर्ण को तुम्हारे बीच आया देखकर मुझे अब ऐसा लगने लगा है कि मेरे सारे प्रयत्न शिथिल होने लगे हैं।

विशेष—
1. गुरु के मन में कर्ण के प्रति ईर्ष्याभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है।
2. आचार्य द्रोण के मन में अपने परम् शिष्य अर्जुन के प्रति मोहभाव अभिव्यंजित हुआ है।
3. अर्जुन के भावी वीरत्वमय जीवन और यश को निष्कंटक बनाने के लिए एकलव्य से गुरु दक्षिणा में अँगूठा कटवाकर गुरु महिमा का स्पष्ट उल्लंघन किया है।
4. रंगभूमि में कर्ण के उपस्थित हो जाने से अर्जुन के प्रति की गई कल्पनाओं में बाधा उनके मन में चिन्ता रेखा के रूप में दृष्टव्य है।

(9)

''रंगभूमि के लिये कर्ण को, कौरव शंख बजाते,

चले झूमते हुए खुशी में गाते, मौज मनाते।
कंचन के युग शैल- शिखर- सम सुगठित सुधर सवर्ण,
गलबाँही दे चले परस्पर दुर्योधन औ कर्ण ॥
बड़ी तृप्ति के साथ सूर्य शीतल अस्ताचल पर से,
चूम रहे थे अंग पुत्र का स्निग्ध- सुकोमल कर से।
आज न था प्रिय उन्हें दिवस का समय सिद्ध अवसान।
बिरम गया क्षण एक क्षितिज पर गति को छोड़ विमान ॥''

शब्दार्थ—शैल=पर्वत। शिखर=चोटि। सुगठित=गठीले बदन। गलबाँही दे=स्नेहपूर्ण, गले में बाहें डाल कर। समयसिद्ध=निश्चित समय पर। विरम गया=रुक गया। क्षितिज=आकाश, जहाँ पर सूर्य अस्त या उदय होता है।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य- पुस्तक कविवर रामधारी सिंह दिनकर द्वारा विरचित खण्ड- काव्य 'रश्मिरथी' के प्रथम सर्ग से विरचित है। जिसमें कवि ने बताया है कि कृपाचार्य के आदेशानुसार रंगभूमि से कौरव और पाण्डव दोनों राजकुमारों के साथ उपस्थित जन- समूह ने भी प्रस्थान किया। रंगभूमि से कर्ण और दुर्योधन के प्रस्थान का कलात्मक चित्रण प्रस्तुत किया है।

व्याख्या—कविवर दिनकर तत्कालीन वर्णन करते हुए कहते हैं कि रंगभूमि से कर्ण को अपने साथ लेकर कौरव समूह शंख ध्वनि करते हुए, मस्ती में झूमते हुए, खुशी में गाते हुए और मौज मनाते हुए नगर की ओर चले। उस भीड़ में दुर्योधन और कर्ण एक- दूसरे के गले में बाँहें डाले हुए चल रहे थे। उस समय वे अपने सुन्दर, सुगठित व आकर्षक रंग रूप में चलते हुए ऐसे प्रतीत हो रहे थे। मानो दो सुनहरे पर्वत परस्पर मिलकर आगे बढ़ रहे हों। अर्थात् कर्ण और दुर्योधन दोनों का व्यक्तित्व अत्यन्त प्रभावशील लग रहा था।

रंगभूमि में आते हुए कर्ण को देखकर तो जैसे सूर्य की अनुभूति करने लगा हो। इसी भाव को स्पष्ट करते हुए दिनकर कहते हैं कि संध्या के समय अस्तांचल पर पहुँचकर शीतल हुआ सूर्य अपने पुत्र कर्ण के अंगों को नम्र किरण रूपी हाथों से स्पर्श कर बड़े ही संतुष्ट भाव से युक्त होकर ऐसे देख रहे थे मानो आज भगवान् भास्कर को अपने निश्चित समय पर दिन की समाप्ति और अपना अस्त होना अच्छा नहीं लग रहा था। उन्हें देखकर ऐसा लग रहा था जैसे अपनी चाल छोड़कर क्षणभर के लिये आकाश मार्ग में उनका रथ भी रूक गया हो।

विशेष—
1. प्रस्तुत अंश में कवि ने युवराज दुर्योधन और कर्ण की मित्रता और शारीरिक सौष्ठव की ओर संकेत किया है।
2. प्रस्तुत अंश में उपमा अलंकार का प्रयोग अत्यन्त प्रशंसनीय है।
3. कर्ण स्वंय भगवान् भास्कर के पुत्र हैं अत: पिता का वात्सल्य भाव सहज ही व्यक्त हुआ है।
4. उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग भी प्रशंसनीय है।

(10)

''और हाय रनिवास चला वापस जब राज भवन को,
सबके पीछे चली एक विकला मसोसती मन को।
उजड़ गये हो स्वप्न कि जैसे हार गई हो दाँव,
नहीं उठाये भी उठ पाते थे कुन्ती के पाँव ॥''

शब्दार्थ—रनिवास=रानियों का निवास भवन। विकला=व्याकुल अथवा व्यथित होती हुई। मसोसती=दु:खी होती हुई, अपने आपको कोसती हुई।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य- पुस्तक कविवर रामधारीसिंह दिनकर द्वारा विरचित सुप्रसिद्ध खण्ड- काव्य 'रश्मिरथी' के प्रथम सर्ग से अवतरित है, जिसमें कवि ने कुन्ती को कुँआरे जीवन की स्थिति के बोझ से व्यथित चित्रित किया है, साथ ही उनकी मन:स्थिति को भी स्पष्ट करने का सफल प्रयास किया है।

व्याख्या—कवि दिनकर कहते हैं कि रंगभूमि से जब कुन्ती सबसे पीछे- पीछे चल रही थी और रानियों का समूह राज भवन की ओर लौट रहा था तो वह अपने मन को मसोसती हुई बेचैनी पूर्वक रास्ता तय कर रही थी। कुन्ती को आज ऐसा अनुभव हो रहा था मानो उनके मन में समाये हुए अपने सारे सुनहरे सपने रवाँ- रवाँ होकर बिखर गये हों। वह कर्ण की जाति और जन्म का भेद प्रकट न कर पाने

के कारण वह जीवन की जीती हुई बाजी हार गई हो। इस दु:खद मन:स्थिति के कारण कर्ण को जन्म देने वाली कुँआरी माँ कुन्ती के पैर उठकर भी आगे नहीं बढ़ पा रहे थे।

विशेष— 1. प्रस्तुत अंश में कर्ण की माँ कुन्ती की विवशता एवं मनोव्यथा का जीवन्त चित्रण प्रस्तुत किया है।
2. भाषा सजीव, सरल एवं मुहावरों से युक्त है।

द्वितीय सर्ग

(11)

''शीतल विरल एक कानन शोभित अधित्यका के ऊपर,
कहीं उत्स-प्रस्रवण चमकते, झरते कहीं शुभ्र निर्झर।
जहाँ भूमि समतल, सुन्दर है, नहीं दीखते हैं पाहन,
हरियाली के बीच खड़ा है, विस्तृत एक उटज पावन॥
आस-पास कुछ कटे हुए पीले धनखेत सुहाते हैं।
शशक, मूस, गिलहरी, कबूतर घूम-घूम कण खाते हैं।
कुछ तन्द्रिल अलसित बैठे हैं, कुछ करते शिशु का लेहन,
कुछ खाते शाकल्य दीखते बड़े तुष्ट सारे गोधन॥
हवन अग्नि बुझ चुकी गन्ध से वायु, अभी, पर, माती है,
भीनी-भीनी महक प्राण में मादकता पहुँचाती है।
धूप-धूम चर्चित लगते हैं तरु के श्याम छदन कैसे?
झपक रहे हों शिशु के अलसित कजरारे लोचन जैसे।''

शब्दार्थ—विरल=अलग। अधित्यका=पहाड़ी के ऊपर की समतल भूमि। पाहन=पत्थर। शुभ्र=स्वच्छ। निर्झर=झरना। शशक=खरगोश। मूस=चूहा। कण=दाने। शाकल्य=यज्ञ की बची हुई सामग्री। गोधन=गाय। माती=मस्त। चर्चित=जड़े हुए। श्याम=हरे। कजरारे=काजल वाले।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक कवि रामधारीसिंह दिनकर द्वारा विरचित खण्ड-काव्य 'रश्मिरथी' के द्वितीय सर्ग से अवतरित है जिसमें कवि ने गुरुवर परशुराम जी के आश्रम का मनोहारी वर्णन किया है।

व्याख्या—कवि दिनकर आचार्यश्री परशुरामजी के भव्य आश्रम का वर्णन करते हुए कहते हैं कि महेन्द्र गिरि पर्वत के ऊपर समतल भूमि पर शीतलता प्रदान करने वाला भिन्न-भिन्न घने वृक्षों से युक्त जंगल अत्यन्त शोभायमान लग रहा है, वहाँ का प्राकृतिक दृश्य अत्यंत मनमोहक और भव्य है, जहाँ कहीं पर कल-कल करते झरने प्रवाहित हो रहे हैं, तो कहीं झरनों के चिह्न परिलक्षित हो रहे हैं। वहीं पर एक समतल भूमि दिखाई दे रही है जिसके आस-पास व उसके ऊपर एक भी पत्थर नहीं है। मनमोहिनी हरियाली से घिरा हुआ वह भव्य आश्रम अत्यंत पवित्र, शान्त और विशालता लिये हुए है।

कवि दिनकर कहते हैं कि आश्रम के आस-पास पीले रंग के धान के खेत और कटे हुए धान अति शोभायमान लग रहे हैं। उन खेतों में घूम-घूम कर खरगोश, चूहे, गिलहरी, कबूतर आदि पशु-पक्षी अनाज के दाने चुग रहे हैं, दूसरी ओर कुछ पशु नींद की खुमारी लिये हुए अलसा रहे हैं और ऊँघ रहे थे और कुछ अपने-अपने बच्चों के शरीर चाट रहे हैं, कुछ पशु यज्ञ की बची हुई सामग्री को खा रहे हैं। इस प्रकार वहाँ की सभी गायें और अन्य जानवर अत्यन्त संतुष्ट दिखाई दे रहे हैं।

कवि दिनकर आचार्य परशुराम जी के आश्रम के मोहक सौन्दर्य का जीवन्त चित्रण करते हुए कहते हैं कि नित्यनियमानुसार आचार्य परशुरामजी ने प्रात: यहाँ पर हवन किया था। यद्यपि उस हवन-कुण्ड की आग तो लगभग शान्त हो चुकी थी किन्तु इसकी खुशबू से सम्पूर्ण वातावरण अभी भी सुरभित हो रहा था। वह महक मन को मदमस्त करने वाली थी। वहाँ के घने वृक्षों के हरे-भरे पत्तों व कोपलों को देखकर तो ऐसा लग रहा था मानो वे सूर्य की धूप और हवनाग्नि के सुगन्धित वातावरण में पगे हुए हैं। हिलते-डुलते हुए

पशु ऐसे लग रहे हैं मानो कोई शिशु अपनी कजरारी आँखों से नींद की खुमारी के कारण झपकियाँ ले रहा हो।

विशेष— 1. कवि ने आचार्यवर परशुराम जी के आश्रम का सहज और स्वाभाविक वर्णन किया है।

2. आश्रम के पशु-पक्षियों का प्रेम दृष्टव्य है।

3. कवि ने यह भी स्पष्ट किया है कि आश्रम का वातावरण सुगन्धित, मनमोहक व पावन है।

(12)

''श्रद्धा बढ़ती अजिन-दर्भ पर, परशु देख मन डरता है,
युद्ध-शिविर या तपोभूमि यह समझ नहीं कुछ पड़ता है।
हवन कुण्ड जिसका यह उसके ही क्या हैं ये धनुष कुठार?
जिस मुनि की यह स्रुवा, उसी की कैसे हो सकती तलवार?
आई है वीरता तपोवन में, क्या पुण्य कमाने को?
या संन्यास साधना में है, दैहिक शक्ति जगाने को?
मन ने तन का सिद्ध-यन्त्र अथवा शस्त्रों में पाया है?
या कि वीर कोई योगी से, युक्ति सीखने आया है?
परशु और तप, ये दोनों वीरों के ही होते शृंगार,
क्लीव न तो तप ही करता है, न तो उठा सकता तलवार।
तप से मनुज दिव्य बनता है, षड् विकार से लड़ता है,
तन की समर भूमि में लेकिन, काम खड्ग ही करता है।''

शब्दार्थ—दर्भ=कुशा। कुठार=फरसा। साधना=तपस्या। सिद्धयन्त्र=साधना का यन्त्र। युक्ति=उपाय। दैहिक=शरीर से सम्बन्धित। क्लीव=नपुंसक। दिव्य=अलौकिक। समर=युद्ध।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक कविवर रामधारी सिंह दिनकर द्वारा विरचित खण्ड-काव्य 'रश्मिरथी' के द्वितीय सर्ग से अवतरित है। जिसमें आचार्यश्री परशुराम के आश्रम में साधना के विरोधी साधनों को देखकर मन की विरोधात्मक स्थिति का सजीव चित्रण किया है।

व्याख्या—कविवर दिनकर आचार्यश्री परशुरामजी के आश्रम का वर्णन करते हुए कहते हैं कि वहाँ पर एक ओर तो मृगछाला और यज्ञ का सामान देखकर मन में उनके प्रति श्रद्धा का भाव जागृत होता है और दूसरी ओर उसी आश्रम में सुशोभित फरसा और तलवारें देखकर मन में भय उत्पन्न होने लगता है। इन दोनों स्थितियों को देखकर ऐसा लगता है कि यह भूमि किसी महानतम तपस्वी से सम्बन्ध रखती है किन्तु निश्चित सिद्धान्तों के बीच कुछ भी समझ में नहीं आता है। इस तपोभूमि को देखकर तो यह भाव सहज ही उत्पन्न हो जाता है कि यह यज्ञशाला जिस तपस्वी महापुरुष की है क्या यह धनुष और फरसा उसी की है, यह स्रुवा जिस मुनि का है तो भला यह तलवार उसी की कैसे हो सकती है?

इस आश्रम में तपस्वियों और वीरों के एक साथ काम में आने वाले वस्तु साधनों को देखकर तो ऐसा प्रतीत होता है, मानो वीरता स्वयं तपोवन में पुण्य कमाने के लिये आकर बस गई हो अथवा ऐसा प्रतीत होता है मानो कि वीर पुरुष अपने शरीर की शक्तियों को जगाने के लिये संन्यास की विशिष्ट साधना कर रहा हो। मन की सिद्धि अर्थात् इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करना तथा तन की सिद्धि अर्थात् शरीर पर विजय प्राप्त करना। ऐसा अनुभव होता है। इस तपोभूमि में तन-मन की सिद्धि का यन्त्र शस्त्रों में पाकर तपस्या कर रहा हो या फिर ऐसा लगता है मानो कोई वीर पुरुष यहाँ पर किसी सिद्ध योगी से विजयश्री प्राप्त करने के उपाय सीखने के लिये आ बैठा हो। अर्थात् आचार्यश्री परशुराम का दिव्य आश्रम का दृश्य वीरता व तपस्या दोनों के एक साथ भाव जगाने वाला है।

कविवर दिनकर तपस्या और अस्त्र-शस्त्रों के बल के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि फरसा रूप में शस्त्र तथा अन्य साधनों से परिचालित तपस्या—ये दोनों ही उच्च-कोटि के वीरों को ही शोभा देती हैं अर्थात् तपस्या भी वीर पुरुष कर सकते हैं और युद्ध भी वीर पुरुष ही कर सकते हैं। ये दोनों कार्य कायरों के द्वारा सम्पन्न नहीं किये जा सकते हैं। नपुंसक व कायर पुरुष न तो तपस्या ही कर सकता

है और न ही अस्त्र-शस्त्र ही उठा सकता है। तपस्या करने से मनुष्य में अलौकिक शक्तियाँ आ जाती हैं, जिन शक्तियों के बल से काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि मनोविकारों से लड़ने व उन पर विजय प्राप्त करने के लिए समर्थ हो जाता है। इसके विपरीत शरीर से लड़े जाने वाले युद्ध तथा युद्धभूमि में केवल तलवार ही काम में आती है। इस आश्रम में दोनों प्रकार के साधनों का संचय है, जो वास्तव में आश्चर्यजनक है।

विशेष— 1. प्रस्तुत अंश में आचार्य परशुरामजी के तपस्वी एवं वीरता से युक्त व्यक्तित्व की ओर संकेत किया है।
2. प्रस्तुत अंश में तपस्या व वीरता के महत्त्व की ओर भी संकेत किया है।
3. तपस्या से मनुष्य अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर सकता है तथा वीरता से शरीर पर विजय प्राप्त कर सकता है।
4. प्रस्तुत अंश में उत्प्रेक्षा एवं संदेह अलंकारों का सुन्दर प्रयोग किया है।

(13)

''हाँ-हाँ, वही, कर्ण की जाँघों पर अपना मस्तक धरकर,
सोये हैं तरुवर के नीचे, आश्रम से किंचित हटकर।
पत्तों से छन-छन कर मीठी धूप माघ की आती है,
पड़ती मुनि की थकी देह पर और थकान मिटाती है।
कर्ण मुग्ध हो भक्ति-भाव में मग्न हुआ-सा जाता है,
कभी जटा पर हाथ फेरता, पीठ कभी सहलाता है।
चढ़ें नहीं चींटियाँ बदन पर, पड़े नहीं तृण-पात कहीं,
कर्ण सजग है उचट जाये, गुरुवर की कच्ची नींद नहीं।''

शब्दार्थ—तरुवर=वृक्ष। किंचित=थोड़ा सा। देह=शरीर। मुग्ध=लीन। तृण=तिनका। पात=पत्ते। सजग=सावधान।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक कविवर रामधारी सिंह दिनकर द्वारा विरचित खण्ड-काव्य 'रश्मिरथी' के द्वितीय सर्ग से अवतरित है, जिसमें कवि ने आचार्यश्री परशुराम के आश्रम के प्राकृतिक सौन्दर्य, उनका व्यक्तित्व का परिचय देने के पश्चात् कथानक को आगे बढ़ाने का प्रयास करते हुए कहा है कि—

व्याख्या—तपस्या एवं वीरता से समन्वित व्यक्तित्व से युक्त आचार्यवर परशुरामजी आश्रम से थोड़ा अलग हटकर एक सघन वृक्ष की छाँव तले वीर कर्ण की जाँघों पर सिर रखकर सोये हुए हैं। पेड़ के पत्रों से छन-छन कर माघ मास की धूप उन पर पड़ रही है। यह धूप मुनिवर की थकान मिटा रही है।

कवि दिनकर कहते हैं कि आचार्यश्री परशुराम कर्ण की बलिष्ठ जाँघों पर अपना सिर रखकर आराम कर रहे हैं और कर्ण पूर्ण सावधानी से उनकी देखभाल कर रहे हैं। इस प्रकार शयन करते हुए अपने गुरुवर परशुराम के तेजोमय व्यक्तित्व को देखकर कर्ण भक्ति-भावना से अत्यन्त मुग्ध हुए जा रहे हैं। वह कभी तो भक्ति-भावना से युक्त होकर होले-होले उनकी जटाओं पर हाथ फेरने लगते हैं तो कभी बड़ी सावधानी से उनकी पीठ को सहलाने लगते हैं। कर्ण इस बात के प्रति पूर्ण सावधान हैं कि कहीं कोई चींटी गुरु के शरीर पर न चढ़ जाये अथवा हवा से उड़ कर कोई तिनका अथवा किसी पेड़का पत्ता उनके शरीर पर पड़कर उनकी कच्ची नींद को न उचाट दे।

विशेष— 1. प्रस्तुत अंश में प्रकृति का चित्रण आलम्बन भाव में किया गया है।
2. कवि ने गुरु परशुरामजी के तेजस्वी व्यक्तित्व का वर्णन किया है।
3. कर्ण के मन में समाहित गुरु भक्ति-भावना का अत्यन्त मार्मिक परिचय मिलता है।
4. भाषा अत्यन्त सरल, रोचक एवं प्रभावशाली है।

(14)

''पत्थर-सी हो माँस-पेशियाँ, लोहे-से भुजदण्ड अभय,
नस-नस में हो लहर आग की, तभी जवानी पाती जय।
विप्र हुआ तो क्या, रखेगा रोक अभी से खाने पर,
कर लेना घनघोर तपस्या, वय चतुर्थ के आने पर॥

ब्राह्मण का है धर्म त्याग, पर, क्या बालक भी त्यागी हो?
जन्म साथ शिलोच्छवृत्ति के ही क्या वे अनुरागी हो?
क्या विचित्र रचना समाज की? गिरा ज्ञान ब्राह्मण घर में,
मोती बरसा वैश्य-वेश्म में, पड़ा खड्ग क्षत्रिय-कर में॥
खड्ग बड़ा उद्धत होता है, उद्धत होते हैं राजे,
इसीलिये तो सदा बजाते रहते वे रण के बाजे।
और करे ज्ञानी ब्राह्मण क्या? असि विहीन मन डरता है,
राजा देता मान, भूप का वह भी आदर करता है।''

शब्दार्थ—भुजदण्ड=बाँहें। अभय=निडर। जय=विजय। वयचतुर्थ=वृद्धावस्था। शीलोच्छवृत्ति=टुकड़े चुनकर जीविका कमाना। वेश्म=घर। उद्धत=उजड्ड। असि=तलवार। विहीन=रहित। भूप=राजा।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक कविवर रामधारी सिंह दिनकर द्वारा विरचित खण्ड-काव्य 'रश्मिरथी' के द्वितीय सर्ग से अवतरित है, जिसमें कवि ने बताया है कि आचार्यवर परशुराम जो कर्ण के जाँघ पर अपना सिर रखकर सोये हुए हैं और कर्ण गुरुदेव की बातों का मन ही मन में स्मरण करते हुए सोच रहे हैं कि युवावस्था में अपनी शारीरिक क्षमता को मजबूत बनाने के लिये खूब खाना चाहिये और उसी के अनुसार पर्याप्त परिश्रम करना चाहिये।

व्याख्या—कर्ण गुरु परशुराम के कथनों का स्मरण करते हुए मन में सोचते हैं कि युवावस्था में पर्याप्त खाना-पीना चाहिये और खूब परिश्रम करना चाहिये। गुरुदेव कहते रहते हैं कि शरीर और माँस-पेशियाँ पत्थर के समान कठोर व मजबूत होनी चाहिये। पुरुष की बाँहें लोहे और दण्ड के समान कठोर होनी चाहिये। युवक चाहे ब्राह्मण वंश का ही क्यों न हो, उसे आम युवकों के समान खाना-पीना और परिश्रम करना चाहिये। केवल ब्राह्मण होने के कारण तपस्वी नहीं बन जाना चाहिये। इसलिए गुरुदेव कहते हैं कि अभी तपस्वियों का जीवन छोड़ो। जब आयु का चौथा चरण आये अर्थात् वृद्धावस्था आये तब जमकर तपस्या करनी चाहिये।

परशुरामजी की बातों का स्मरण कर कर्ण सोचते हैं कि गुरुवर स्वयं ही कहते हैं कि ब्राह्मण का धर्म त्याग-तपस्या करना ही है किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि ब्राह्मणपुत्र बाल्यावस्था में ही तपस्वी बन जायें। जन्म लेने के साथ ही ब्राह्मण बालक टुकड़े चुनकर जीविका चलाने का मार्ग चुन ले, यह ठीक नहीं। इस समाज की रचना कितनी विचित्र है? ब्राह्मण के घर में मात्र ज्ञान का आगमन, वैश्यों के घर में मोती के रूप में धन की वर्षा होती है और शस्त्र द्वारा रक्षा का भार केवल क्षत्रियों को सौंपा गया है।

कर्ण गुरु परशुराम जी की बातों का चिन्तन करते हुए सोचते हैं कि तलवार अथवा शस्त्र का स्वभाव बहुत उजड्डों जैसा होता है। इसे धारण करने वाले राजा अथवा क्षत्रिय शस्त्रों को अपने स्वार्थों की पूर्ति का साधन बना लेते हैं। यही कारण है कि हमेशा ही ब्राह्मण क्या करें? तलवार से रहित होने के कारण उसका मन भी डरता रहता है। इसे अनिष्ट की आशंका सदैव बनी रहती है। राजा ब्राह्मणों को मान तो अवश्य देता है, किन्तु तब जब उसमें तेज हो। तब अच्छे राजाओं का मान-सम्मान ब्राह्मण भी करता है।

विशेष— 1. प्रस्तुत अंश में वर्ण-व्यवस्था के क्रम पर प्रकाश डाला गया है।
2. प्रस्तुत अंश में मानवीकरण अलंकार का प्रयोग किया गया है।

(15)

''जब तक भोगी भूप प्रजाओं के नेता कहलायेंगे,
ज्ञान त्याग तप नहीं श्रेष्ठता का जब तक पद पायेंगे।
असन-बसन से हीन, दीनता में जीवन धरने वाले,
सहकर भी अपमान मनुजता की चिन्ता करने वाले॥
कवि, कोविद, विज्ञान, विशारद, कलाकार, पण्डित, ज्ञानी,
कनक नहीं, कल्पना, ज्ञान, उज्ज्वल चरित्र के अभिमानी।
इन विभूतियों को जब तक, संसार नहीं पहचानेगा,
राजाओं से अधिक पूज्य जब तक न इन्हें वह मानेगा॥

तब तक पड़ी आग में धरती, इसी तरह अकुलायेगी,
चाहे जो भी करे दु:खों से छूट नहीं वह पायेगी।
थकी जीभ समझाकर, गहरी लगी ठेस अभिलाषा को,
भूप समझता नहीं है कुछ, छोड़ खड्ग की भाषा को।''

शब्दार्थ—भोगी=विलासी। असन=भोजन। वसन=वस्त्र। कोविद=ज्ञानी।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य- पुस्तक कविवर रामधारी सिंह दिनकर द्वारा विरचित खण्ड- काव्य 'रश्मिरथी' के द्वितीय सर्ग से अवतरित है, जिसमें कवि ने स्पष्ट किया है कि आचार्यश्री परशुराम कर्ण की जाँघ पर सिर रखकर गहरी नींद में सोये हुए हैं, उस समय कर्ण समाज की बदलती हुई स्थिति पर विचार कर रहे हैं।

व्याख्या—कर्ण सोचते हैं कि जब तक जनता के राजा विलासी रहेंगे और जब तक समाज में व्यक्ति का ज्ञान, त्याग, तपस्या की श्रेष्ठ पदवी प्राप्त नहीं होगी। भूखे, भोजन और वस्त्र से रहित लाचार जीवन व्यतीत करने वाले तथा अपमान को सहकर भी मानव की भलाई करने वाले कवि, ज्ञानी, वैज्ञानिक, कलाकार और विद्वान् आदि को जब तक आदर प्राप्त नहीं होगा तथा जो लोग स्वर्ण अथवा धन की चिन्ता में न पड़ कर ज्ञान की कल्पना और चरित्र की पावनता पर अभिमान करते हैं। उनके प्रति जब तक संसार के मन में राजाओं व शक्तिशालियों से बढ़कर मान- सम्मान नहीं जागेगा जब तक यह पृथ्वी युद्धों की विभीषिकाओं के बीच इसी प्रकार जलती हुई व्यथित होती रहेगी और उत्पीड़ित होती रहेगी। यह पृथ्वी किसी भी प्रकार से दु:खों से रहित नहीं हो सकती है। इस सम्बन्ध में संसार को ज्ञान देते- देते जीभ भी थक गई। शान्ति की इच्छा निराशा में बदलकर व्यथा बन गई क्योंकि आज के भूपति तलवार की भाषा के अतिरिक्त अन्य भाषा तो जानते ही नहीं हैं।

विशेष—
1. प्रस्तुत अंश में स्पष्ट किया गया है कि शासकों के द्वारा ही संसार को मानवता के मार्ग पर लाया जा सकता है।
2. समाज में कवियों, विद्वानों, वैज्ञानिकों, कलाकारों तथा ज्ञानियों को प्रचुर सम्मान आवश्यक है।
3. भाषा सरल, प्रभावशाली और रोचक है।

(16)

''मैं शंकित था, ब्राह्म वीरता मेरे साथ मरेगी क्या?
परशुराम की याद विप्र की जाति न जुगा धरेगी क्या?
पाकर तुम्हें किन्तु, इस वन में, मेरा हृदय हुआ शीतल,
तुम अवश्य होओगे उसको मुझमें है जो तेज, अनल,
जियो, जियो ब्राह्मण कुमार! तुम अक्षय कीर्ति कमाओगे,
एक बार तुम भी धरती को, नि:क्षत्रीय कर जाओगे।
निश्चिय, तुम ब्राह्मण कुमार हो, कवच और कुण्डल- धारी,
तप कर सकते और पिता- माता किसके इतना भारी?''

शब्दार्थ—अनल=आग। जुगा=संभाल कर। अक्षय=अमर। नि:क्षत्रिय=क्षत्रियों से रहित।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य- पुस्तक कविवर रामधारी सिंह दिनकर द्वारा विरचित खण्ड- काव्य 'रश्मिरथी' के द्वितीय सर्ग से अवतरित है, जिसमें कवि ने महावीर कर्ण व उनकी विचारधाराओं से अवगत कराया गया है जो उनके मन में अपने गुरु की इच्छाओं तथा आकांक्षाओं के सन्दर्भ में उत्पन्न हो रही थीं।

व्याख्या—कर्ण सोच रहे हैं कि गुरुदेव परशुराम मुझसे कहते हैं कि मैं इस बात से सदैव सशंकित रहा करता था कि क्या ब्राह्मणों की वीरता मेरे साथ ही इस पृथ्वी पर से समाप्त हो जायेगी? मुझ परशुराम जैसे व्यक्ति की वीरता को ब्राह्मण जाति क्या भविष्य में भी संभाल कर रख पायेगी? इस वन में तुम्हें पाकर वास्तव में मेरा हृदय शान्त हो गया है, क्योंकि मुझे विश्वास है कि ब्राह्मण कुमार होने के नाते तुम अवश्य ही इस तेज और आग को सुरक्षित रख सकोगे जो मेरे व्यक्तित्व में विद्यमान है।

कर्ण सोच रहे हैं कि गुरुदेव मुझे प्रसन्नता पूर्वक कहा करते हैं कि हे ब्राह्मण कुमार! तुम चिरजीवी हो। निश्चय ही तुम अमर यश के भागी बनोगे। मेरी तरह तुम भी निश्चय ही एक बार इस पृथ्वी को क्षत्रियों से रहित कर दोगे। कवच- कुण्डल धारण करने वाले तुम

निश्चय ही ब्राह्मण कुल के तेजस्वी कुमार हो। भला तुम्हारे जैसा कवच-कुण्डल धारी बालक पाने के लिये अन्य जातियों के लोग इतनी कठोर तपस्या कहाँ और कैसे कर सकते हैं?

विशेष— 1. प्रस्तुत अंश में कर्ण के मन में गुरु के विचारों, उनके कथनों के प्रति भावों की अभिव्यक्ति की है।
2. कर्ण के शरीर पर जन्म से ही कवच-कुण्डल थे।

(17)

''हाय कर्ण तू क्यों जन्मा था? जन्मा तो क्यों वीर हुआ?
कवच और कुण्डल-भूषित भी तेरा अधम शरीर हुआ?
धँस जाये वह देश अतल में, गुणकी जहाँ नहीं पहचान?
जाति-गोत्र के बल से ही आदर पाते हैं जहाँ सुजान?
नहीं पूछता है कोई तुम व्रती, वीर या दानी हो?
सभी पूछते मात्र यही, तुम किस कुल के अभिमानी हो?
मगर, मनुज क्या करे? जन्म लेना तो उसके हाथ नहीं,
चुनना जाति और कुल अपने बस की तो है बात नहीं।''

शब्दार्थ—भूषित=शोभित। अधम=नीच। अतल=पाताल। सुजान=सज्जन, चतुर।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक कविवर रामधारीसिंह दिनकर द्वारा विरचित खण्डकाव्य ''रश्मिरथी'' की द्वितीय सर्ग से अवतरित है, जिसमें कवि ने स्पष्ट किया है कि आचार्यश्री परशुराम वीर कर्ण की बलिष्ठ जाघों पर सिर रखकर सो रहे हैं। और कर्ण उनके युद्ध सम्बन्धी विचारों पर मनन कर रहे हैं तथा उनको संसार में व्याप्त जातीय भेद-भावना की स्थित का ध्यान आता है। क्योंकि कर्ण स्वयं सूत जाति में पलकर बड़े हुए हैं। अत: जातिवाद के कारण अत्यन्त दु:खी होकर वे अपने बारे में हीन भावना से युक्त होकर विचार कर रहे हैं।

व्याख्या—कवि दिनकर कहते हैं कि महावीर कर्ण अपनी जातिगत विचारधारा में खोए हुए सोचते हैं कि, ''हाय कर्ण! आखिर तेरा जन्म ही क्यों हुआ? यदि जन्मा ही था तो भगवान ने तुझे वीर ही क्यों बनाया? उस पर भी विधाता ने तेरे शरीर को कवच-कुण्डलधारी क्यों बनाया? इस संसार, जिसमें गुणों के कारण नहीं अपितु जाति के कारण आदमी का मान होता है, अच्छा हो कि यह पाताल में धँस जाय। यहाँ तो कोई व्यक्ति चाहे कितना ही सज्जन और गुणवान क्यों न हो, उसका सम्मान केवल जाति और वंश के कारण ही होता है। यह बात कितने दु:ख और कष्ट की है। व्यक्ति और समाज दोनों ही प्रगति की राह में रोड़े अटकाने वाले हैं।''

कर्ण सोच रहे हैं कि इस संसार में कोई भी किसी के गुणों को, उसके उत्कृष्ट शील और स्वभाव को नहीं देखता है। कौन कितने महान व्रत वाला है, वीर या दानी है, इस बात को भी कोई नहीं पूछता है। बस, सभी यही पूछते हैं कि तुम्हारी जाति और वंश कौन-सा है? किन्तु मनुष्य बेचारा क्या करे? किसी जाति विशेष में जन्म लेना या न लेना उसके वश की बात नहीं है। वंश-जाति को चुनना तो जन्म लेने वाले मनुष्य के हाथ में नहीं होता है। वह तो विधाता उसे जिस वंश-जाति में भेज देता है, वहीं जन्म लेने को विवश होता है।

विशेष— 1. प्रस्तुत पद्य में कवि ने जातिवाद का चित्रण किया है।
2. प्रस्तुत पद्य में कर्ण ने जातिवाद और बुराइयों का वर्णन किया है।
3. कवि ने कहा है कि इस संसार और समाज में अच्छे गुणों की नहीं, वंश जाति की ही पूछ और कद्र होती है।

(18)

''गुरु को लिए कर्ण चिन्तन में था जब मग्न, अचल बैठा,
तभी एक विषकीट कहीं से आसन के नीचे पैठा।
वज्रदंष्ट्र वह लगा कर्ण के उरु को कुतर-कुतर खाने,
और बनाकर छिद्र माँस में मन्द-मन्द भीतर जाने।
कर्ण विकल हो उठा, दुष्ट भौंरे पर हाथ धरे कैसे,
बिना हिलाये अंग कीट को किसी तरह पकड़े कैसे?
पर भीतर उस धँसे कीट तक हाथ नहीं जा सकता था,

बिना उठाये पाँव शत्रु को कर्ण नहीं पा सकता था।
किन्तु, पाँव के हिलते ही गुरुवर की नींद उचट जाती,
सहम गयी यह सोच कर्ण की भक्तिपूर्ण विह्वल छाती।
सोता, उसने अतः, कीट यह पिये रक्त, पीने दूँगा,
गुरु की कच्ची नींद तोड़ने का, पर पाप नहीं लूंगा।''

शब्दार्थ—अचल=स्थिर। पैठा=धँस आया। वज्र=कठोर। दंष्ट्र=दाढ़ें। भँरि=कीड़ा। विकल=व्याकुल। उचट=खुल। विह्वल=विभोर।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य- पुस्तक कविवर रामधारीसिंह दिनकर द्वारा विरचित खण्डकाव्य ''रश्मिरथी'' के द्वितीय सर्ग से अवतरित है, जिसमें कवि ने स्पष्ट किया है कि जब वीर कर्ण की जाँघ पर आचार्यवर परशुराम गहरी निद्रा में सो रहे थे, उस समय कर्ण परशुराम की कही हुई बातों और अपने झुठे परिचय के बारे में चिंतित थे। कवि कहते हैं कि गुरु की बातों तथा अपने सम्बन्धों के बातों में जब कर्ण विचारमग्न थे, तभी अचानक एक विषैला कीट स्थिर बैठे कर्ण के आसन के नीचे घुस आया। इसी स्थिति को स्पष्ट करते हुए—

व्याख्या—कवि दिनकर कहते हैं कि जब कर्ण के आसन के नीचे विषैला कीड़ा कहीं से आकर प्रवेश कर गया था तो उसने अपने कठोर दाँतों से कर्ण की जाँघों में छेद करना प्रारम्भ कर दिया और धीरे- धीरे वह माँसपेशियों में प्रवेश करने लगा।

आसन के नीचे घुसकर जहरीले कीड़े के काट लेने के बाद की दशा का वर्णन करते हुए कवि कह रहे हैं कि कीड़े के काटने की पीड़ा से कर्ण व्याकुल होने लगे। पर वह किस प्रकार काटने वाले उस दुष्ट कीड़े तक हाथ ले जाकर उसे हटाए, उन्हें समझ में नहीं आ रहा है। अपने शरीर को हिलाते है, तो गुरुदेव की नींद टूटती है और बिना हिलाये वह कीड़े को पकड़े भी तो कैसे? कीड़ा क्योंकि काटकर उनकी जाँघ के भीतर घुस रहा था, अब उनका हाथ भी वहाँ तक नहीं पहुँच सकता था। पाँव को उठाये बिना कर्ण अपने उस शत्रु कीड़े को किसी भी प्रकार पकड़ पाने में असमर्थ थे।

पीड़ा से व्याकुल होकर भी कर्ण ने गुरु की नींद न टूटने देने की भावना से वैसे ही बैठे रहने की बात सोची, इस तथ्य का वर्णन करते हुए कवि कह रहे हैं कि कीड़े को हटाने के लिये कर्ण यदि पाँव हटाते हैं तो गुरुदेव की नींद टूटती है। यह बात सोचकर गुरु के स्नेह और गुरु- भक्ति की भावना में विभोर कर्ण का मन सहम गया। उन्होंने सोचा—अब यह कीड़ा मेरा खून पीता है, तो बेशक पीता रहे। परन्तु पाँव हिलाकर गुरु की कच्ची नींद टूटने से पाप का भागी मैं कभी नहीं बनूँगा।

विशेष— 1. कर्ण की मानसिक स्थिरता की ओर संकेत किया गया है।
2. कर्ण की विवशता दृष्टव्य है। 3. कर्ण की गुरु भक्ति से पूरित भावना दृष्टव्य है।

(19)

''तेज- पुंज ब्राह्मण तिल- तिल कर जले, नहीं यह हो सकता,
किसी दशा में भी स्वभाव अपना वह कैसे खो सकता?
कसक भोगता हुआ विप्र निश्चल कैसे रह सकता है?
इस प्रकार की चुभन, वेदना क्षत्रिय ही सह सकता है।
'तू अवश्य क्षत्रिय है, पापी! बता, न तो, फल पायेगा,
परशुराम के कठिन शाप से अभी भस्म हो जायेगा।
'क्षमा, क्षमा, हे देव दयामय!' गिरा कर्ण गुरु केपद पर,
मुख विवर्ण हो गया, अंग काँपने लगे भय से थर- थर!''

शब्दार्थ—कसक=पीड़ा। निश्चल=स्थिर। विवर्ण=सूख गया, रंग उड़ गया।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य- पुस्तक कविवर रामधारीसिंह दिनकर द्वारा विरचित खण्डकाव्य ''रश्मिरथी'' की द्वितीय सर्ग से अवतरित है, जिसमें कवि ने स्पष्ट किया है कि जब आचार्यवर परशुराम जी कर्ण की जाँघ पर लेटे हुए हैं और जहरीले कीड़े ने कर्ण की जंघा को लहुलुहान कर दिया। इसके बावजूद भी कर्ण इस लक्ष्य से टस से मस न हुए कि गुरुवर की निद्रा में किसी प्रकार का व्यवधान उत्पन्न न हो। किन्तु परशुराम इस बात पर विचार करने लगे कि इतना साहस और धैर्य किसी ब्राह्मण पुत्र में नहीं हो सकता है। इसी बात पर मन ही मन परशुराम विचार करते रहे।

व्याख्या—परशुराम की मन:स्थिति तथा उसमें उत्पन्न विचारों के उद्वेग को स्पष्ट करते हुए कवि दिनकर कहते हैं कि एक तो ब्राह्मण, उस पर तेजस्वी, फिर भी वह किसी कारणवश किसी भी हालत में किसी पीड़ा से तिल-तिलकर जलता रहे। यह कभी भी नहीं हो सकता है। एक ब्राह्मण भला अपने स्वभाव को कैसे छोड़ सकता है? स्वभाव को त्याग कर वह इतना गम्भीर और कष्ट भोगने वाला बन ही नहीं सकता है। पीड़ा को सहता हुआ कोई ब्राह्मण भला स्थिर रह ही कहाँ सकता है? जिस प्रकार की चुभन और वेदना इस युवक (कर्ण) ने सही है, वह कोई ब्राह्मण नहीं, बल्कि क्षत्रिय ही सहन कर सकता है। क्योंकि सहनशीलता क्षत्रिय का गुण है।

कर्ण के प्रति संदेह से भरकर, शाप देने को उद्यत हो, परशुराम ने जो कुछ कहा, उसका वर्णन करते हुए कविवर कह रहे हैं कि क्रोध से भरकर परशुराम ने कर्ण से कहा—'' हे पापी! अवश्य ही तू ब्राह्मण नहीं, बल्कि क्षत्रिय कुमार है। अपनी वास्तविकता सच-सच बता दे। अन्यथा तो झूठ का फल तुझे भोगना पड़ेगा। तू मुझ परशुराम के कठोर शाप के प्रभाव से अभी भस्म हो जायेगा।'' परशुराम के ऐसे कठोर वचन सुनकर उनके चरणों पर गिरते हुए कर्ण ने कहा—''हे गुरुदेव। मुझे क्षमा कर दें। आप बड़े ही दयालु हैं। कहते हुए कर्ण का रंग उड़ गया और उसका अंग-अंग भय से थर-थर काँपने लगा।

विशेष— 1. ब्राह्मण स्वभाव से ही सहनशील नहीं होता। कष्ट उसके मन को अवश्य चंचल बना देते हैं।
2. इस पद्यांग में मुहावरे का सफल सार्थक प्रयोग दर्शनीय है।
3. परशुराम के स्वभाव और कर्ण की डरी मानसिकता का वैषम्य दृष्टव्य है।

(20)

''छल से पाना मान जगत् में किल्विष है, मल ही तो है,
ऊँचा बना आपके आगे, सचमुच यह छल ही तो है।
पाता था सम्मान आज तक दानी, व्रती, बली होकर,
अब जाऊँगा कहाँ स्वयं गुरु के सामने छली होकर?
करें भस्म ही मुझे देव! सम्मुख है मस्तक नत मेरा,
एक कसक रह गयी, नहीं पूरा जीवन का व्रत मेरा।
गुरु की कृपा! शाप से जलकर अभी भस्म हो जाऊँगा,
पर, मदान्ध अर्जुन का मस्तक देव! कहाँ मैं पाऊँगा?''

शब्दार्थ—किल्विष=बुरा। व्रती=प्रणपालक। मस्तक नत=झुका सिर। कसक=पीड़ा। मदान्ध=अहंकारी।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक कविवर रामधारीसिंह दिनकर द्वारा विरचित खण्डकाव्य ''रश्मिरथी'' की द्वितीय सर्ग से अवतरित है, जिसमें कवि ने स्पष्ट किया है कि कर्ण अपने अज्ञानवश किये गए कर्म पर पश्चाताप प्रकट करते हुए गुरुदेव से क्षमायाचना करते हैं और अपने आचार्य परशुराम के क्रोध को शान्त करने का प्रयास करते हैं।

व्याख्या—कर्ण अपने किये पर पश्चाताप प्रकट करते हुए कह रहे हैं कि हे गुरुदेव! मैं स्वीकार करता हूँ कि संसार में छल-कपट का सहारा लेकर मान-यश प्राप्त करना घोर पाप और निन्दनीय कार्य है। मैंने आपके सामने अपने को उच्च जाति का बनाये रखा, यह व्यवहार सचमुच गुरु से किया गया छल-कपट ही तो है। आज तक मैं संसार में अपने दान, दृढ़ प्रतिज्ञा और बल के कारण सम्मान प्राप्त कर रहा था, पर अब अपने ही गुरुदेव के सामने कपटी प्रमाणित हो जाने के बाद मेरा वह मान-सम्मान आदि कहाँ स्थिर रह पायेगा। मेरे अपने ही व्यवहार ने आज तक के सब किये कराये को मिट्टी में मिला दिया है।

गुरुदेव परशुराम के सामने अपने किये पर पश्चाताप से भरे कर्ण अर्जुन को परास्त करने की अपनी इच्छा अधूरी रह जाने पर दु:ख व्यक्त करते हुए कह रहे हैं कि हे गुरुदेव! मेरा सिर आपके सामने झुका हुआ है। नि:संकोच आप शाप देकर मुझे भस्म कर दें। ऐसा करने पर मेरी कामना और प्रण अधूरे रह जाएँगे, बस इसी बात की पीड़ा मेरे मन को बेध रही है। यदि अभी-अभी आपके शाप से जलकर मैं भस्म हो जाऊँ, तो भी इसे मैं गुरुदेव की कृपा ही मानूँगा। परन्तु हे गुरुदेव! आपके ऐसा करने पर मैंने जो अर्जुन का माथा झुकाने की प्रतिज्ञा कर रखी है, उसे कैसे पूर्ण कर सकूँगा। कुछ भी तो समझ नहीं आ रहा है। बस, यही मेरी सौगन्ध है।

विशेष— 1. कर्ण की विक्षुब्ध भावना दृष्टव्य है।
2. गुरु के प्रति कर्ण की श्रद्धामय भावना की अभिव्यक्ति हुई है।

(21)

''अब समझा, किसलिए रात- दिन तू वैसा श्रम करता था,
मेरे शब्द- शब्द को मन में क्यों सीपी- सा धरता था।
देखे अगणित शिष्य, द्रोण को भी करतब कुछ सिखलाया,
पर तुझ- सा जिज्ञासु आज तक कभी नहीं मैंने पाया।
तू ने जीत लिया था मुझको निज पवित्रता के बल से,
क्या था पता, लूटने आया है कोई मुझको छल से?
किसी और पर नहीं किया, वैसा स्नेह मैं करता था,
सोने पर भी धनुर्वेद का ज्ञान कान में भरता था।''

शब्दार्थ—अगणित—अनेक। जिज्ञासु=जानने का इच्छुक। धनुर्वेद=धनुर्विद्या।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक कविवर रामधारीसिंह दिनकर द्वारा विरचित खण्डकाव्य ''रश्मिरथी'' की द्वितीय सर्ग से अवतरित है, जिसमें कवि ने स्पष्ट किया है कि जब गुरुवर परशुराम ने कर्ण का वास्तविक परिचय कर्ण के ही द्वारा जान लिया, तब वे अपने शिष्य के प्रति अनुरागित होकर उसके परिश्रम और लगन की प्रशंसा करने लगते हैं। इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुए कवि ने कहा है कि—

व्याख्या—जब गुरु अपने शिष्य के प्रति अत्यधिक अनुरागित होकर उसके परिश्रम और लगन की प्रशंसा करते हुए कहने लगे कि हे कर्ण! आज मैं ये बात अच्छे तरीके से जान पाया हूँ कि तू रात-दिन इतना अधिक कठोर परिश्रम क्यों किया करता था? जिस तरह सीपी में स्वाति बून्द पड़कर सफेद मोदी का रूप धारण कर लेती है, उसी प्रकार की सीपी में तू मेरी बात को आखिर क्यों धारण किया करता था। मैंने अपने जीवन में अनेक शिष्य देखे हैं। यहाँ तक कि द्रोणाचार्य को भी कुछ शिक्षा प्रदान की है, लेकिन तेरे समान जिज्ञासु शिष्य मुझे आज तक देखने को नहीं मिला है, क्योंकि मेरे मुख से जो भी बात निकलती है, उसे तू उसी तरीके से धारण कर लेता है, जिस तरीके से सीपी अपने मुख में बून्द को धारण कर लेती है।

गुरु परशुराम अपने शिष्य कर्ण के प्रति अत्यधिक भावुक होते हुए उसकी पवित्रता और अपने स्नेह के सम्बन्ध में विचार करते हुए कर्ण से कह रहे हैं कि हे कर्ण! तुमने अपने व्यवहार की पवित्रता के बल पर मेरे मन को जीत लिया है, जिसके कारण मैं तुमसे अत्यधिक प्रभावित हुआ हूँ और मेरे मन में तुम्हारे प्रति सहज स्नेह भाव सब कुछ जान लेने के उपरान्त भी पैदा हो गया है। मुझे मालूम नहीं था कि इस पावन व्यवहार में कोई छल करके मुझसे मेरी विद्या और विश्वासों को लूटने के लिए आ पहुँचा है। मेरा तुमसे जितना लगाव है, उतना लगाव मैंने अपने किसी अन्य से नहीं रखा। इसी कारण तेरे सो जाने पर भी मैं धनुष विद्या की ज्ञान सम्बन्धी बातों को सुनाता और समझाता रहा।

विशेष— 1. सीपी के उदाहरण के माध्यम से कवि ने कर्ण के मन की पावनता तथा जिज्ञासा की ओर संकेत कर आदर्श शिष्य के रूप में प्रस्तुत किया है।
2. उपमा अलंकार दृष्टव्य है।
3. योग्य पात्र को ही गुरु द्वारा सहज शिक्षा प्रदान की जाती है, जिसमें स्वाभाविकता के साथ- साथ सब कुछ अपने शिष्य को बता देने का भाव समाहित होता है, यही दृष्टिकोण गुरु परशुराम को अपने सच्चे शिष्य कर्ण के प्रति दिखाई पड़ रहा है।

(22)

''परशुराम ने कहा—'कर्ण! तू बेध नहीं मुझको ऐसे,
तुझे पता क्या सता रहा है मुझको असमंजस कैसे?
पर, तूने छल किया, दण्ड उसका, अवश्य ही पायेगा,
परशुराम का क्रोध भयानक निष्फल कभी न जायेगा।'
मान लिया था पुत्र, इसी से, प्राण- दान तो देता हूँ
पर, अपनी विद्या का अन्तिम चरम तेज हर लेता हूँ।

सिखलाया ब्रह्मास्त्र तुझे जो, काम नहीं वह आयेगा,
है यह मेरा शाप, समय पर उसे भूल तू जायेगा।''

शब्दार्थ—बेध=घायल कर। निष्फल=बेकार।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य- पुस्तक कविवर रामधारीसिंह दिनकर द्वारा विरचित खण्डकाव्य ''रश्मिरथी'' की द्वितीय सर्ग से अवतरित है, जिसमें कवि ने स्पष्ट किया है आचार्य परशुराम अपने शिष्य कर्ण की विनम्र बातों को प्रारम्भ कर असमंजस की स्थिति में आ जाते हैं। साथ ही उससे अपने आपको उबारने का भी प्रयास करते हैं। कवि दिनकर परशुराम की मन:स्थिति को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि कर्ण की नम्र बातों से अपने आपको असमंजस की स्थिति में पाकर भी, उससे उबरने का प्रयत्न करते हुए परशुराम ने जो कुछ कहा, उसी का वर्णन करते हुए कवि कह रहे हैं कि कर्ण की नम्र और दृढ़ वाणी सुन परशुराम कहने लगे—

व्याख्या—हे कर्ण! इस प्रकार की बातें कहकर तू मेरे मन को घायल करने की चेष्टा न कर। तुझे क्या पता कि तेरे सम्बन्ध में सोच- सोच कर मेरा मन- मस्तिष्क किस असमंजस की स्थिति में उलझ कर रह गया है। जो हो, तूने जो छलपूर्ण व्यवहार मेरे साथ किया है, उसकी सजा तो तुझे भोगनी ही होगी। क्योंकि परशुराम का गुस्सा अपनी भयानकता से उभर कर कभी बेकार नहीं जा सकता, उनका प्रतिफलन हुआ करता है।

प्राण- दान के साथ- साथ कर्ण को ब्रह्मास्त्र- ज्ञान भूल जाने का शाप देते हुए गुरु परशुराम कह रहे हैं कि हे कर्ण! मैंने तेरे भुलावे में आकर तुझे अपना पुत्र ही मान लिया था, इस कारण तुझे मृत्यु का शाप न दे, प्राण- दान देता हूँ। पर मैंने तुम्हें जो अनेक प्रकार की विद्याएँ सिखाई हैं, उनके तेज का उत्कर्ष अवश्य समाप्त कर दूँगा। मेरा तुझे यह शाप है कि जो ब्रह्मास्त्र का चलाना मैंने तुम्हें सिखाया है, तू समय पर उसका ज्ञान भूल जायेगा और वह तेरे किसी भी काम नहीं आएगा।

विशेष— 1. परशुराम के हृदय में समाहित भाव दृष्टव्य हैं।
2. गुरु के हृदय की संकीर्णता दृष्टव्य है।

(23)

''अब जाओ, लो विदा वत्स, कुछ कड़ा करो अपने मन को,
रहने देते नहीं यहाँ पर हम अभिशप्त किसी जन को।
हाय छीनना पड़ा मुझी को, दिया हुआ अपना ही धन,
सोच- सोच यह बहुत विकल हो रहा, नहीं जाने क्यों मन?
'व्रत का, पर निर्वाह कभी ऐसे भी करना होता है।
इस कर से जो दिया उसे उस कर से हरना होता है।
अब जाओ तुम कर्ण! कृपा करके मुझको नि:संग करो।
देखो मत यों सजल दृष्टि से, व्रत मेरा मत भंग करो।''

शब्दार्थ—व्रत=नियम। निसंग=अकेला।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य- पुस्तक कविवर रामधारीसिंह दिनकर द्वारा विरचित खण्डकाव्य ''रश्मिरथी'' की द्वितीय सर्ग से अवतरित है, जिसमें कवि ने आचार्यवर परशुरामजी के मन में शाप देने और वरदान देने की स्थिति के बीच होने वाले अन्तर्द्वन्द्व को स्पष्ट किया है तथा कर्ण को आश्रम से चले जाने का निर्देश देने की व्यथित स्थिति को भी स्पष्ट किया है।

व्याख्या—शाप और वरदान की स्थिति के बीच परशुरामजी कर्ण को आश्रम से चले जाने का निर्देश देते हुए कह रहे हैं हे प्रिय शिष्य! अब तुम इस आश्रम से विदा लेकर के जाओ। तुमने अपने मन में समाई हुई समस्त आसक्ति को त्याग कर कठोर बन जाओ और इस आश्रम की पावन भूमि को छोड़कर चले जाओ। क्योंकि तुम्हें मेरे द्वारा शाप दिया जा चुका है और शापित व्यक्ति को इस आश्रम में रहने का कोई अधिकार नहीं है। मुझे इस बात का विशेष दु:ख है कि जो ब्रह्मास्त्र रूपी धन मैंने खुद तुम्हें दिया था, वह आज तुम से छीनना पड़ा है। इस बात को विचार कर मेरा मन अपने आप में ही बहुत अधिक दु:खी हो रहा है। इसलिये तुम्हारे लिये यह अच्छा होगा कि तुम इस आश्रम को ही छोड़कर चले जाओ।

हे कर्ण! जीवन का क्रम नियम बड़ा कठोर है। इसी कारण कई बार मनुष्य को अपने नियमों से बाध्य होकर उक्त नियमों का इस

तरीके से निर्वाह करना पड़ता है कि एक हाथ से जो किसी मनुष्य को दिया जाता है, वही दूसरे हाथ से वापिस लेना पड़ता है। परशुरामजी भाव विह्वल होकर अपने प्रिय शिष्य कर्ण से कहते हैं कि तुम अब चले जाओ और मुझे अकेला मेरी ही स्थिति पर छोड़ दो। तुम इस तरह अपनी आँखों से आँसू भरकर मेरी ओर मत देखो और मेरे इस मन को विचलित मत होने दो।

विशेष— 1. गुरु शिष्य के बीच बहने वाली पावन भावनाओं की स्थिति से उत्पन्न मानसिकता का सहज स्वाभाविक चित्रण दृष्टव्य है।
2. भाषा सरल, सुबोध और प्रवाहमय है।

(24)

''परशुधर के चरण की धूलि लेकर,
उन्हें, अपने हृदय की भक्ति देकर,
निराशा से विकल, टूटा हुआ- सा,
किसी गिरि- श्रृंग से छूटा हुआ- सा,
चला खोया हुआ- सा कर्ण मन में,
कि जैसे चाँद चलता हो गगन में।''

शब्दार्थ—धूलि=रज। विकल=व्याकुल। गिरि श्रृंग=पर्वत शिखर। गगन=आकाश।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य- पुस्तक कविवर रामधारीसिंह दिनकर द्वारा विरचित खण्डकाव्य ''रश्मिरथी'' की द्वितीय सर्ग से अवतरित है, जिसमें कवि ने कर्ण की विदाई का मर्म स्पर्शी वर्णन किया है।

व्याख्या—कवि दिनकर गुरु आश्रम से कर्ण के जाने का वर्णन करते हुए कहते हैं कि गुरु परशुराम के पावन चरणों की धूल को समेट कर शिष्य कर्ण ने प्रस्थान किया। बदले में अपने गुरु को अपने हृदय में सम्मुहित अपार भक्ति भावनाओं को जहाँ उसने अर्पित किया वहीं शाप के कारण उसका हृदय व्यथित हो गया। उस समय उनके टूटे हृदय की स्थिति ऐसी हो गयी जैसे पहाड़ के किसी ऊँचे शिखर से टूटकर नीचे गिर गये हों। इस प्रकार खोये मन से कर्ण उस आश्रम से चल दिये। उस समय कदम रखते हुए कर्ण इस प्रकार दिखाई पड़ रहे थे कि मानो गहन आकाश में आभा से फीका पड़ रहा चन्द्रमा चला जा रहा हो।

विशेष— 1. कर्ण की मन:स्थिति की स्वाभाविकता का चित्रण किया गया है।
2. उपमा तथा रूपक अलंकार दृष्टव्य हैं।

तृतीय सर्ग

(25)

''मुख से न कभी उफ कहते हैं, संकट का चरण न गहते हैं,
जो आ पड़ता सब सहते हैं, उद्योग- निरत नित रहते हैं,
शूलों का मूल नसाने को,
बढ़ खुद विपत्ति पर छाने को।
है कौन विघ्न ऐसा जग में, टिक सके वीर नर के मग में?
खम ठोंक ठेलता है जब नर, पर्वत के, जाते पाँव उखड़।
मानव जब जोर लगाता है,
पत्थर पानी सब जाता है।''

शब्दार्थ—गहते=पकड़ते। मूल=जड़। मग=रास्ता। खमठोंक=चुनौती देकर, विघ्न=विपत्तियाँ।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य- पुस्तक कवि रामधारीसिंह 'दिनकर' द्वारा विरचित खण्ड- काव्य 'रश्मिरथी' के तृतीय सर्ग से अवतरित है, जिसमें कवि ने सच्चे शूरवीरों की दृढ़ता तथा वीरता का रोचक वर्णन किया है।

व्याख्या—कवि दिनकर सच्चे वीरों की दृढ़ता और वीरता का वर्णन करते हुए कहते हैं कि सच्चे शूरवीर व्यक्ति के सामने चाहे कितनी भी मुसीबतें क्यों नहीं आ जायें वे उससे किंचित मात्र भी घबराया नहीं करते हैं और ना घबराकर मुसीबत के सामने झुका करते हैं। उनके सामने जो भी मुसीबत आ जाती है, वे उसे मुस्कराकर और साहस के साथ सहन करते हैं। उससे मुक्ति पाने के लिये वे हमेशा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रयत्नरत रहते हैं। उनका समस्त प्रयत्न केवल इस बात के लिए ही होता है कि वे मुसीबत को जड़ से ही नष्ट कर डालें और खुद आगे बढ़कर विपत्तियों पर छा जावें। कवि आगे कहते हैं कि इस संसार में ऐसा कौन-सा कष्ट या रुकावट है जो वीर पुरुष के रास्ते में टिकी रह सके। वीर पुरुष चुनौती भरे स्वर में जब ललकार कर आगे बढ़ता है तो पहाड़ों के पाँव भी उखड़ जाते हैं, अर्थात् बड़ी-बड़ी मुसीबतें वीर पुरुष के सामने टिक नहीं पाती हैं। कवि कहते हैं कि जब मनुष्य सच्चे मन से किसी काम की सफलता के लिए जोर लगाता है तो पत्थर भी पिघल कर पानी बन जाया करता है अर्थात् सभी मुसीबतें स्वयं ही आसान बन जाया करती हैं।

विशेष— 1. वीर पुरुष के लिये इस संसार में ना तो कोई चीज मुसीबत हुआ करती है और ना ही कोई चीज असम्भव ही हुआ करती है।

2. सच्चे कर्मवीरों की आशावादी भावना को स्पष्ट किया है।

(26)

बढ़कर विपत्तियों पर छा जा, मेरे किशोर! मेरे ताज
जीवन का रस छन जाने दे, तन को पत्थर बन जाने दे
तू स्वयं तेज भयकारी है,
क्या कर सकती चिनगारी है?
वर्षों तक वन में घूम-घूम, बाधा-विघ्नों को चूम-चूम,
सह धूप-घाम, पानी-पत्थर, पांडव आये कुछ और निखर।
सौभाग्य न सब दिन सोता है,
देखें, आगे क्या होता है,

शब्दार्थ—किशोर=तरुण। चिनगारी=आग। घाम=गर्मी।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक कवि रामधारीसिंह 'दिनकर' द्वारा विरचित खण्ड-काव्य 'रश्मिरथी' के तृतीय सर्ग से अवतरित है, जिसमें कवि ने भारत के युवाओं को जीवन पथ पर आने वाली मुसीबतों के प्रती अडिग रहने की प्रेरणा प्रदान की है।

व्याख्या—कवि दिनकर युवाओं को जीवन पथ पर आने वाली मुसीबतों के प्रति अडिग रहने की प्रेरणा देता हुए कहते हैं कि हे मेरे देश के नौजवानों! तुम अपने जीवन में आने वाली मुसीबतों पर आगे बढ़कर छा जाओ अर्थात् अपने पुरुषार्थ को जगा कर उन पर अपना अधिकार जमा लो। अपने इस उद्देश्य को पाने के लिये अपने जीवन के सभी रस्मों को नष्ट हो जाने दो। यदि शरीर कष्ट सहते-सहते पत्थर भी बन जावे तो इसमें घबराने की किंचित मात्र भी जरूरत भी नहीं है। क्योंकि तुम तो स्वयं ही सबको डराने वाले तेज से ही युक्त हो। इसलिये मुसीबतों की आग तुम्हारा क्या बिगाड़ सकती है? कहने का भाव यह है कि जो मुसीबतों के आगे डटकर उनका मुकाबला करता है, वह जीवन में हमेशा ही सफलता प्राप्त कर लेता है।

कवि पाण्डवों के अज्ञात वास से आये जीवन के परिवर्तनों की ओर संकेत करते हुए कहते हैं कि पाण्डव लोग वन में तेरह वर्ष तक घूमते फिरते रहे और इस काल में वे अनेक बाधाओं और मुसीबतों को सहते रहे। वनों की भयानक धूप, सर्दी, गर्मी सहने, कंकर, पत्थरों से भरे रास्ते पर चलने के कारण उनके व्यक्तित्व में अधिक निखार आ गया। कवि कहते हैं कि इस संसार में सौभाग्य के दिन हमेशा सोया नहीं करते हैं। अब देखना है कि इतनी मुसीबतों के सहने के बाद पाण्डवों के जीवन में आगे क्या होता है?

विशेष— 1. सब दिन एक से नहीं होते।

2. मनुष्य जीवन में संघर्ष और मुसीबतों को सहकर निखरा करता है।

(27)

''दुर्योधन वह भी दे न सका, आशिष सामज की ले न सका,
उलटे, हरि को बाँधने चला, जो था असाध्य, साधने चला।
जब नाश मनुज पर छाता है,
पहले विवेक मर जाता है।
हरि ने भीषण हुंकार किया, अपना स्वरूप विस्तार किया,
डगमग-डगमग दिग्गज डोले, भगवान् कुपित होकर बोले—
जंजीर बढ़ा कर साध मुझे,

हाँ, हाँ दुर्योधन! बाँध मुझे।
यह देख, गगन मुझमें लय है, यह देख, पवन मुझमें लय है,
मुझमें विलीन झंकार सकल, मुझमें लय है संसार सकल।
अमरत्व फूलता है मुझमें,
संहार झूलता है मुझमें।''

शब्दार्थ—असाध्य=असम्भव। मनुज=मनुष्य। हुंकार=गर्जना। कुपित=नाराज। आशिष=आशीर्वाद। दिग्गज=दिशाओं के हाथी।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक कविवर रामधारी सिंह दिनकर द्वारा विरचित खण्डकाव्य 'रश्मिरथी' के तृतीय सर्ग से लिया गया है, जिसमें कवि ने स्पष्ट किया है कि जब स्वयं भगवान कृष्ण पाण्डवों के दूत बनकर दूर्योधन के पास गए और उन्होंने दुर्योधन से आधे राज्य के स्थान पर पाण्डवों को केवल पाँच गाँव देने के लिए प्रस्ताव रखा तो अहंकार के वशीभूत होकर दूर्योधन इस बात पर भी सहमत नहीं हुआ।

व्याख्या—कवि दिनकर अहंकारित दुर्योधन की इसी भावना को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि श्रीकृष्ण के द्वारा रखी गयी पाँच गाँव देने की शर्त को दुर्योधन स्वीकार नहीं कर सका और वह मानव समाज को बचा कर उनका आशीर्वाद भी न प्राप्त कर सका। वह अहं भाव में डूबकर सन्धि का सन्देश लाने वाले श्रीकृष्ण को ही बाँधने के लिये तैयार हो गया। अपने इस कृत्य के द्वारा वह शायद असम्भव को भी सम्भव बनाना चाहता था। यह सत्य है कि जब भी मनुष्य पर विपत्ति के बादल आने वाले होते हैं, उसका विवेक पहले ही नष्ट हो जाया करता है।

कवि आगे कहता है कि जैसे ही दुर्योधन श्रीकृष्ण को बाँधने के लिए आगे बढ़ा, भगवान कृष्ण ने भयंकर गर्जना की और अपने स्वरूप का विस्तार कर दिया। इससे दसों दिशाओं के हाथी डगमगाने लगे। उस समय भगवान कृष्ण क्रोधित होकर दुर्योधन से बोले कि हे दुष्ट दुर्योधन! जंजीरें बढ़ाकर मुझे वश में करने का प्रयत्न कर और यदि तू मुझे बाँध सकता है तो बाँध ले। श्रीकृष्ण आगे कहते हैं कि हे दुर्योधन! तू मुझे क्या बन्दी बनायेगा? तू ये बात ध्यान से देख कि ये सारा संसार मुझ में ही समाया हुआ है। यहाँ तक कि ये आकाश, ये पवन मुझ में ही समाई हुई है। इस संसार की समस्त अवाजें मेरे भीतर ही विद्यमान हैं। इस संसार की अमरता और विनाश दोनों ही मेरे अन्दर समाये हुए हैं। मैं ही संसार का कारण-कार्य सब कुछ ही हूँ।

विशेष— 1. कवि ने दुर्योधन के अहंकार और उसके अज्ञान को स्पष्ट किया है।
2. कवि ने श्रीकृष्ण को सर्वशक्तिमान विराट पुरुष के रूप में प्रस्तुत कर सब कुछ उनमें ही समाया हुआ बताया है।

(28)

बाँधने मुझे तो आया है, जंजीर बड़ी क्या लाया है?
यदि मुझे बाँधना चाहे मन, पहले तो बाँध अनन्त गगन।
सूने को साध न सकता है,
वह मुझे बाँध कब सकता है?
हित-वचन नहीं तूने माना, मैत्री का मूल्य न पहचाना,
तो ले, मैं भी अब जाता हूँ, अन्तिम संकल्प सुनाता हूँ।
याचना नहीं, अब रण होगा,
जीवन-जय या कि मरण होगा।
टकरायेंगे नक्षत्र-निकर, बरसेगी भू पर वन्हि प्रखर,
फण शेषनाग का डोलेगा, विकराल काल मुँह खोलेगा।
दुर्योधन! रण ऐसा होगा।
फिर कभी नहीं जैसा होगा।

शब्दार्थ—हितवचन=भलाई की बात। याचना=माँगना। रण=युद्ध। मैत्री=मित्रता। वह्नि=अग्नि। निकर=तारे।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक कविवर रामधारी सिंह दिनकर द्वारा विरचित खण्डकाव्य 'रश्मिरथी' के तृतीय

सर्ग से लिया गया है, जिसमें कवि ने स्पष्ट किया है कि जब अहंकारी दुर्योधन स्वयं त्रिलोकेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण को बाँधने का प्रयास करता है तो सर्वशक्तिमान श्रीकृष्ण ने अपना विराट् रूप प्रकट किया। जिसे देखकर सभा में उपस्थित सभी लोग दंग रह गये।

व्याख्या—विराट् स्वरूप दिखाने वाले भगवान् श्रीकृष्ण दुर्योधन से कहते हैं कि हे दुर्योधन! मुझे बाँधने की इच्छा से तू आगे बढ़ा जरूर है, पर क्या तुम्हारे पास इतनी बड़ी जंजीर है तो तुम मुझे बाँध पाने में समर्थ हो सको। यदि वास्तव में तेरा मन मुझे बाँधना चाहता है तो पहले तो अनन्त आकाश को बाँधने की कोशिश कर। जिस प्रकार इस अनन्त आकाश को बाँध पाना असम्भव है, उसी प्रकार मुझे बाँधना भी सम्भव नहीं है।

श्रीकृष्ण दुर्योधन को समझाते हुए कहते हैं कि हे दुर्योधन! मेरे हितकारी वचनों को तूने नहीं माना। यहाँ तक कि तुमने अहं में भरकर मेरे द्वारा रखे गये पाण्डवों की मैत्री सन्धि को भी स्वीकार नहीं किया। इसलिये मैं तेरे राजदरबार से खाली हाथ लौटकर जाता हूँ, लेकिन जाते-जाते मैं तुझे अन्तिम संकल्प सुना देता हूँ कि पाण्डवों के द्वारा अपने अधिकार की माँग अब नहीं की जायेगी। अब तो केवल युद्ध ही होगा। अब या तो पाण्डव ही युद्ध जीतकर राज्य को प्राप्त करें या वे युद्ध में लड़ते-लड़ते मर जायेंगे।

श्रीकृष्ण दुर्योधन को अपना संकल्प सुनाते हुये कहते हैं कि हे दुर्योधन! तेरे स्वार्थ के कारण ही अब इस पृथ्वी पर भयंकर युद्ध होगा। परिणामस्वरूप तारों के समूह आपस में टकराकर टूटकर इसी धरती पर गिरेंगे। उनकी तरह ही श्रेष्ठ वीर भी इस आपसी युद्ध में नष्ट हो जायेंगे। युद्ध की भयंकरता के रूप में इस पृथ्वी पर अग्नि की वर्षा होगी और इतनी भयंकर प्रलय मच जायेगी कि पृथ्वी को धारण करने वाले शेषनाग का भी फण डोलने लगेगा। भयानक काल अपना मुँह खोलकर सबको निगल जायेगा। हे दुर्योधन! अब इतना भयंकर विनाश होगा, जो इस पृथ्वी पर कभी भी नहीं हुआ होगा।

विशेष—1. श्रीकृष्ण ने होने वाले महाभारत की विषम्यता की ओर जहाँ संकेत किया है, वहीं इस युद्ध का हेतु दुर्योधन के स्वार्थ को बताया है।

(29)

रण अनायास रुक जायेगा, कुरुराज स्वयं झुक जायेगा।
संसार बड़े सुख में होगा, कोई न कहीं दुःख में होगा।
सब गीत खुशी के गायेंगे,
तेरा सौभाग्य मनायेंगे।
'कुरुराज्य समर्पण करता हूँ, साम्राज्य समर्पण करता हूँ।
यश मुकुट मान सिंहासन ले, बस एक भीख मुझको दे दे।
कौरव को तज रण रोक सखे,
भू का हर भावी शोक सखे।'

शब्दार्थ—अनायास=सहजतः। तज=छोड़कर। समर्पण=अर्पित। यश=कीर्ति।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक कविवर रामधारी सिंह दिनकर द्वारा विरचित खण्डकाव्य 'रश्मिरथी' के तृतीय सर्ग से लिया गया है, जिसमें कवि ने बताया है कि जब कृष्ण दुर्योधन के राजदरबार से लौटते हैं तो बड़े धैर्य के साथ वे महाभारत के युद्ध को रोकने के लिए कर्ण को समझाते हैं।

व्याख्या—कृष्ण कर्ण को समझाते हुए कहते हैं कि हे कर्ण! तुम दुर्योधन का साथ छोड़कर अपने पाण्डव भाइयों का साथ दे दो तो यह होने वाला युद्ध अपने आप ही रुक जायेगा। परिणाम स्वरूप दुर्योधन स्वयं तुम्हारे अभाव में विवश हो जायेगा और विवश होकर के झुक जायेगा। उससे यह संसार सुखानुभूति करेगा और कोई कहीं पर भी दुःखी नहीं होगा। सभी प्रसन्नता से पूरित होकर सुख का अनुभव करेंगे और सब तुम्हारे सौभाग्य की दुहाई देंगे।

वे आगे कर्ण को समझाते हुए कहते हैं कि हे राधेय! ऐसा करने पर मैं तुम्हें कुरु राज्य ही नहीं बल्कि सारी धरती का राज्य सौंप रहा हूँ। तुम यश, मान, राजमुकुट और राजसिंहासन सभी कुछ ले लो। उसके बदले में तुम मेरी केवल एक ही बात मान लो कि तुम

कौरवों के प्रति संजोये मोह को छोड़कर इस युद्ध को रोकने में मेरी सहायता करो। युद्ध के कारण इस धरती पर जो दु:ख छाने वाला है, उससे इस पृथ्वीवासियों को बचा लो।

विशेष—1. श्रीकृष्ण ने कर्ण को ही उस मुख्य पात्र के रूप में प्रस्तुत किया है, जिसके कारण महाभारत का होने वाला युद्ध रोका जा सकता है। यदि वह कौरवों को छोड़कर पाण्डवों के साथ आ जाए।

(30)

सहसा क्या हाल विचित्र हुआ? मैं कैसे पुण्य-चरित्र हुआ?
कुन्ती का क्या चाहता हृदय? मेरा सुख या पाण्डव की जय?
यह अभिनन्दन नूतन क्या है?
केशव! यह परिवर्तन क्या है?
मैं हुआ धनुर्धर जब नामी, सब लोग हुए हित के कामी,
पर, ऐसा भी था एक समय, जब यह समाज निष्ठुर निर्दय,
किंचित् न स्नेह दर्शाता था,
विषव्यंग्य सदा बरसाता था।
उस समय सुअंक लगा करके, अंचल के तले छिपा करके,
चुम्बन से कौन मुझे भर कर, ताड़ना-ताप लेती थी हर?
राधा को छोड़ भजूँ किसको?
जननी है वही, तजूँ किसको?

शब्दार्थ—सहसा=अचानक। अभिनन्दन=स्वागत। नूतन=नया। निष्ठुर=कठोर। निर्दय=दयाहीन। किंचित=थोड़ा-सा। तज्=त्यागूँ।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक कविवर रामधारी सिंह दिनकर द्वारा विरचित खण्डकाव्य 'रश्मिरथी' के तृतीय सर्ग से लिया गया है, जिसमें कवि ने बताया है कि कर्ण श्री कृष्ण से अपनी माँ कुन्ती के हृदय परिवर्तन की स्थिति को जानने का प्रयास करता है।

व्याख्या—कुन्ती के हृदय-परिवर्तन को जानने के इच्छुक कर्ण श्रीकृष्ण से पुछते हैं कि हे केशव! एकाएक ऐसी विचित्र स्थिति कैसे बन गई। कल तक का मैं हीन जाति और कलंक का कारण आज एक ही दिन में उच्च और पवित्र चरित्र वाला कैसे और क्यों कर हो गया। इस सम्बन्ध में आप स्पष्ट तौर पर बताइये कि कुन्ती मुझसे क्या चाहती है, उसे मेरा सुख चाहिए या अपने पुत्रों की भावी युद्ध में जीत चाहिए। क्योंकि एकाएक आये परिवर्तन को देखकर मैं सोचता हूँ कि आखिर इस सबका प्रयोजन और रहस्य क्या है?

कर्ण अपने कल और आज के जीवन को लेकर श्रीकृष्ण से कहते हैं कि आज मैं एक श्रेष्ठ धनुर्धारी के रूप में प्रसिद्ध हो गया हूँ। तभी सभी जन मेरे शुभचिन्तक बनकर आ गये हैं। लेकिन आज से पहले यही निर्दय समाज मेरे प्रति किंचित मात्र भी सम्मान भाव प्रदर्शित करने में असमर्थ था। उसके स्थान पर व्यंग्य बाणों की वर्षा करके हमारे हृदय को ही घायल किया करता था। उस समय मुझे अपने हृदय में लगा स्नेह के आँचल की छाया प्रदान करने वाली, अपनी ममता के चुम्बनों से मेरे अपमान के दु:ख ताप को जो हर लिया करती थी, उस माँ राधा को छोड़कर कुन्ती या अन्य किसी नारी का माँ के रूप में भला मैं ध्यान भी कैसे कर सकता हूँ, क्योंकि मेरी माता तो राधा ही है, उसे मैं कभी भी नहीं छोड़ सकता हूँ।

विशेष—कर्ण की मनोव्यथा और समाज की अवसरवादिता की ओर संकेत किया गया है।

(31)

कुन्ती ने केवल जन्म दिया, राधा ने माँ का कर्म दिया,
पर कहते जिसे असल जीवन, देने आया वह दुर्योधन।
वह नहीं भिन्न माता से है,
बढ़कर सोदर भ्राता से है।
राजा रंक से बना करके, यश, मान, मुकुट पहना करके,
बाँहों पर मुझे उठा करके, सामने जगत् के ला करके,
करतब क्या-क्या न किया उसने?

मुझको नव-जन्म दिया उसने।
है ऋणी कर्ण का रोम-रोम, जानते सत्य यह सूर्य-सोम,
तन, मन, धन दुर्योधन का है, यह जीवन दुर्योधन का है।
सुरपुर से भी मुख मोड़ूँगा,
केशव! मैं उसे न छोड़ूँगा।

शब्दार्थ—असल=वास्तविक। भिन्न=अलग। सोदर=छोटा, सगा। भ्राता=भाई। करतब=कार्य। सूर्य-सोम=सूर्य-चन्द्रमा। सुरपुर=देवलोक। केशव=श्रीकृष्ण।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक कविवर रामधारी सिंह दिनकर द्वारा विरचित खण्डकाव्य 'रश्मिरथी' के तृतीय सर्ग से लिया गया है, जिसमें कवि ने कर्ण के मन में उत्पन्न जन्मदात्री माँ कुन्ती तथा पालनकर्ती राधा एवं अपनी प्रिय मित्र दुर्योधन के कार्यों और व्यवहारों का वर्णन किया है।

व्याख्या—कवि दिनकर महावीर कर्ण की मन:स्थिति का वर्णन करते हुए तथा कुन्ती, राधा और दुर्योधन के कार्यों व व्यवहारों के प्रति अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं कि, ''माता कुन्ती ने केवल मुझे जनम दिया और समाज के भय से मुझे नदी की तेज धारा में छोड़ दिया। लेकिन सन्तान पालने का दायित्व माँ बनकर राधा ने पूरा किया। जीवन की वास्तविकता प्रदान करने के लिए केवल दुर्योधन ही आगे बढ़ा। इसलिए वह माता और सगे भाई से भी बढ़कर मेरे लिए है। मैं उसे किसी भी स्थिति में छोड़ नहीं सकता हूँ।

दुर्योधन के प्रति कृतज्ञ होते हुए कर्ण कहते हैं कि दुर्योधन के आगे बढ़कर मुझ जैसे रंक को राजा बना दिया और मुझे यश, मान और राजमुकुट पहनाकर मेरा सम्मान किया। उसने मुझ उपेक्षित को अपनी बाँहों में भरकर संसार के सामने उपस्थित किया। इस प्रकार दुर्योधन के अनोखा कार्य करके वास्तव में मुझे एक नया जीवन प्रदान किया। उसके द्वारा किये गये उपकारों को मैं कैसे भुला सकता हूँ।

कर्ण अपने भाव व्यक्त करते हुए आगे कहते हैं कि हे कृष्ण! मेरा रोम-रोम दुर्योधन का आभारी है। उसके द्वारा प्रदान किये गये सम्मान के कारण आजीवन मैं उसका ऋणी हूँ। इस सत्य को सूर्य, चन्द्रमा के साथ आज सारा संसार अच्छी तरह से जानता है। इसलिए मेरा तन, मन और धन सब दुर्योधन का ही है। दुर्योधन का साथ छोड़ने के बदले यदि मुझे स्वर्ग का राज्य भी मिले तो हे कृष्ण! मित्र दुर्योधन की दोस्ती के आगे उसे भी ठुकरा सकता हूँ।

विशेष—1. कर्ण का रोम-रोम दुर्योधन का ऋणी है। इसलिए वह स्वर्ग का राज्य प्राप्त होने पर भी उसकी मित्रता को त्यागने के लिए तैयार नहीं है।

2. कर्ण के मन में दुर्योधन के प्रति कृतज्ञ भाव को स्पष्ट किया है।

(32)

''विक्रमी पुरुष लेकिन, सिर पर, चलता न छत्र पुरखों का धर,
अपना बल-तेज जगाता है, सम्मान जगत् से पाता है।
सब उसे देख ललचाते हैं,
कर विविध यत्न अपनाते हैं।
कुल-गोत्र नहीं साधन मेरा, पुरुषार्थ एक बस धन मेरा,
कुल ने तो मुझको फेंक दिया, मैंने हिम्मत से काम लिया।
अब वंश चकित भरमाया है,
खुद मुझे खोजने आया है।
लेकिन, मैं लौट चलूँगा क्या? अपने प्रण से विचलूँगा क्या?
रण में कुरुपति का विजय-वरण, या पार्थ हाथ कर्ण का मरण।
हे कृष्ण! यही मति मेरी है,

तीसरी नहीं गति मेरी है।''

शब्दार्थ—विक्रमी=पराक्रमी। पुरखों का=बुज़ुर्गों का। यत्न=प्रयत्न। भरमाया=भ्रमित हुआ। विचलूँगा=विचलित होऊँगा।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक कविवर रामधारी सिंह दिनकर द्वारा विरचित खण्डकाव्य 'रश्मिरथी' के तृतीय सर्ग से लिया गया है, जिसमें कवि ने कर्ण के अपने स्वयं के विचारों को व्यक्त किया है।

व्याख्या—महावीर कर्ण कहते हैं कि विक्रमी पुरुष अपने सिर पर अपने पूर्वजों का छत्र धारण करके नहीं चला करते हैं। वे अपना स्वयं का तेज जगाकर ही इस जग में आदर के पात्र बना करते हैं। उनके पौरुष को देखकर उन्हें अपने साथ मिला लेने की कामना से भरकर सभी ललचाने लगते हैं और उसे हर प्रकार से अपना लेते हैं। कर्ण कहता है कि इससे लोगों की तरह कुल और गोत्र आदि हमारी उन्नति के साधन नहीं रहे हैं। मेरे पास तो केवल पुरुषार्थ का ही धन रहा है। उसी के बल से मैंने उन्नति की है। वंश से हमें कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ। मैंने अपने साहस से ही अपने कदमों को आगे बढ़ाया है। अब मेरी उन्नति को देखकर पाण्डव और उनके पक्ष पर लोग चकित और भ्रम में हैं और मुझे अपने साथ लेना चाहते हैं, लेकिन मैं अपने प्रण के अनुसार पीछे नहीं हट सकता। मैंने प्रण किया है कि युद्ध में या तो दुर्योधन को जीत दिलवाऊँगा या फिर अर्जुन के हाथों मारा जाऊँगा। हे कृष्ण! यह मेरा विचार, यही मेरी सोच और समझ है, इसके अतिरिक्त तीसरी मेरी कोई स्थिति नहीं है।

विशेष—1. कर्ण ने अपने दृढ़ निश्चय की सहज अभिव्यक्ति की है।

2. पराक्रमी शूरवीरों की मन:स्थिति को स्पष्ट किया गया है।

(33)

''धनराशि जोगना लक्ष्य नहीं, साम्राज्य भोगना लक्ष्य नहीं,
भुजबल से कर संसार-विजय, अगणित समृद्धियों का संचय,
दे दिया मित्र दुर्योधन को,
तृष्णा छू भी न सकी मन को।
वैभव-विलास की चाह नहीं, अपनी कोई परवाह नहीं,
बस, यही चाहता हूँ केवल, दान की देव-सरिता निर्मल,
करतल से झरती रहे सदा,
निर्धन को भरती रहे सदा!
तुच्छ है, राज्य क्या है केशव? पाता क्या नर कर प्राप्त विभव?
चिन्ता प्रभूत, अत्यन्त हास, कुछ चाकचिक्य, कुछ क्षण विलास,
पर, वह भी यहीं गँवाना है,
कुछ साथ नहीं ले जाना है।''

शब्दार्थ—जोगना=लुटाना। संचय=इकट्ठा करना। तृष्णा=इच्छा। वैभव=समृद्धि। देव सरिता=गंगा। निर्मल=पवित्र। चाकचिक्य=चकाचौंध।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक कविवर रामधारी सिंह दिनकर द्वारा विरचित खण्डकाव्य 'रश्मिरथी' के तृतीय सर्ग से लिया गया है, जिसमें कवि ने स्पष्ट किया है कि कर्ण दुर्योधन के प्रति आभार व्यक्त करते हैं और अपने आपको धन और साम्राज्य आदि की इच्छाओं से अलग हटकर बताते हैं।

व्याख्या—दुर्योधन के प्रति आभार व्यक्त करते हुए कर्ण अपने आपको धन और साम्राज्य आदि इच्छाओं से ऊपर बताते हुए श्रीकृष्ण से कहते हैं कि मेरे जीवन का लक्ष्य धन और साम्राज्य को प्राप्त करना नहीं है। क्योंकि अब तक मैं अपने बाहुबल से अगणित समृद्धियों का संचय करके अपने मित्र दुर्योधन को दे चुका हूँ। इतना होने पर भी इस धन को अपने पास रखने या पाने की इच्छा मुझे छू भी नहीं सकी। मुझे धन और विलास की यहाँ तक अपनी भी कोई परवाह नहीं है। मैं तो केवल इतना ही चाहता हूँ कि दान रूपी गंगा मेरे हाथों से हमेशा ही झरती रहे और वह झर कर गरीबों के घरों को भरती रहे। हे कृष्ण! इस तुच्छ राज्य का आखिर महत्त्व ही क्या है?

बहुत सारी सम्पत्ति पाकर भी मनुष्य क्या कर लिया करता है? धन संचय से मनुष्य बहुत अधिक चिन्तित होने लगता है, परन्तु सबको हँसी बहुत कम ही मिल पाती है। धन- सम्पत्ति से वह जीवन का क्षणिक सुख ही भोग पाता है, लेकिन अन्त समय पर उसको भी यहीं छोड़ना पड़ता है, फिर उसके मन में इतना मोह क्यों समाया रहता है।

विशेष—1. कर्ण ने अपनी मानसिक स्थिति और संसार में धन- सम्पत्ति के प्रति जागृत मोह की ओर संकेत किया है।

2. कर्ण की नि:स्वार्थ भावना व दानवीरता को स्पष्ट करने का सफल प्रयास है।

(34)

''साम्राज्य न कभी स्वयं लेंगे, सारी सम्पत्ति मुझे देंगे,
मैं भी न उसे रख पाऊँगा, दुर्योधन को दे जाऊँगा।
पाण्डव वंचित रह जायेंगे,
दुख से न छूट वे पायेंगे।
अच्छा, अब चला, प्रणाम आर्य! हों सिद्ध समर के शीघ्र कार्य,
रण में ही अब दर्शन होगा, शर से चरण- स्पर्शन होगा।
जय हो, दिनेश नभ में विहरें,
भूतल में दिव्य प्रकाश भरें।
'रथ से राधेय उतर आया, हरि के मन में विस्मय छाया,
बोले कि 'वीर! शत बार धन्य, तुझ- सा न मित्र कोई अनन्य।'
तू कुरुपति का ही नहीं प्राण,
नरता का है भूषण महान्।''

शब्दार्थ—वंचित=हीन। समर=युद्ध। शर=तीर। दिनेश=सूर्य। विस्मय=आश्चर्य। भूषण=आभूषण।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य- पुस्तक कविवर रामधारी सिंह दिनकर द्वारा विरचित खण्डकाव्य 'रश्मिरथी' के तृतीय सर्ग से लिया गया है, जिसमें कवि ने कर्ण की भावनाओं को व्यक्त किया है।

व्याख्या—हे श्रीकृष्ण! आपसे मेरी एक विनम्र विनती है कि आप मेरे जन्म की कथा धर्मराज युधिष्ठिर से मत कहना क्योंकि यदि वे मेरे बारे में जान जायेंगे तो वे साम्राज्य को कभी भी नहीं ग्रहण करेंगे। वे सारी सम्पत्ति मुझको ही प्रदान कर देंगे, क्योंकि उनकी सत्य और न्याय की दृष्टि से मैं ही पाण्डवों में सबसे बड़ा हूँ। मैं भी अपने स्वभाव के अनुरूप उनके द्वारा प्रदत्त सम्पत्ति को अपने पास नहीं रख सकूँगा, बल्कि मैं भी उसे दुर्योधन को ही देकर के चला जाऊँगा। मेरे इस कृत्य से पाण्डव वंचित रह जायेंगे और उनको इस कारण अत्यधिक दु:ख होगा। इसलिए आप मेरे बारे में युधिष्ठिर को कुछ भी मत बताना।

इतना कहकर कर्ण श्रीकृष्ण को प्रणाम करते हुए इच्छा व्यक्त करने लगे कि युद्ध के सभी कार्य शीघ्र ही पूरे हों। हे श्रीकृष्ण जी! अब युद्ध में ही मैं आपके दर्शन करूँगा और मैं विपक्ष की तरफ से युद्ध में लड़ने आऊँगा। इसलिए बाण के माध्यम से ही मैं आपको युद्ध क्षेत्र में प्रणाम करूँगा। वह श्री कृष्ण की जय-जयकार करता हुआ रथ से उतर आया। कर्ण की बातों को सुनकर श्रीकृष्ण का मन आश्चर्य से भर गया वे कर्ण से कहने लगे कि हे वीर कर्ण! तू एक बार नहीं सैकड़ों बार धन्यवाद का पात्र है। तेरा जैसा कोई भी मित्र कहीं नहीं है। तू केवल दुर्योधन का ही प्राणप्रिय नहीं है, बल्कि मानवता का भी महान् आभूषण है।

विशेष—1. कर्ण की चारित्रिक, महानताओं को वर्णित किया गया है।

2. कर्ण के पावन चरित्र से प्रभावित होकर श्रीकृष्ण ने भी उसे ''नरता का है भूषण महान्'' कहकर गौरवान्वित किया है।

चतुर्थ सर्ग

(35)

''जीवन का अभिमान दान- बल से अजस्र चलता है,
उतनी बढ़ती ज्योति, स्नेह जितना अनल्प जलता है।

और दान में रोकर या हँस कर हम जो देते हैं,
अहंकारवश उसे स्वत्व का त्याग मान लेते हैं।
यह न स्वत्व का त्याग, दान तो जीवन का झरना है,
रखना उसको रोक, मृत्यु के पहले ही मरना है।
किस पर करते कृपा वृक्ष, यदि अपना फल देते हैं?
गिरने से उसको सँभाल, क्यों रोक नहीं लेते हैं।''

शब्दार्थ—अजस्र=निरन्तर। स्वत्व=आत्मा। अनल्प=अधिक।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक कविवर रामधारीसिंह दिनकर द्वारा विरचित 'रश्मिरथी' के चतुर्थ सर्ग से अवतरित है, जिसमें कवि दिनकर ने दानवीरता तथा त्याग के महत्त्व को स्पष्ट किया है।

व्याख्या—कविवर दिनकर दान व त्याग के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि दान और त्याग की शक्ति से ही जीवन का अभिमान हमेशा चलता रहता है। अर्थात् दान के माध्यम से ही व्यक्ति इस संसार में जीवन का सभी प्रकार का सुख और सम्मान प्राप्त कर सफलता हासिल करता है, जिस प्रकार दीपक में जितना अधिक तेल डाला जावेगा उतना ही वह प्रकाश देता है, उसी प्रकार दान में रोकर या हँसकर मनुष्य जो भी देता है, अपने अहंकार के वश यह समझ लेता है कि मैंने अपने किसी बहुत बड़े स्वार्थ या अधिकार का परित्याग कर दिया है। लेकिन ये कोई त्याग नहीं होता, बल्कि जीवन का झरना अर्थात् जैसे झरने से जितना अधिक पानी बहता है, उसमें उतना ही और अधिक आता जाता है, उसी प्रकार मनुष्य अपने जीवन में जितना अधिक दान देता है, उतनी ही अधिक उसकी शक्ति बढ़ती चली जाती है। ये बात बिल्कुल ठीक है कि दान देने की शक्ति को रोककर के रखना मृत्यु के पहले ही मरने के समान हुआ करती है। कहने का भाव यह है कि जो व्यक्ति केवल अपने लिये ही जीता है और सक्षम होते हुए भी दूसरों की सहायता नहीं करता है वह मरे हुए के समान ही हुआ करता है। यदि वृक्ष अपने फल धरती के लोगों को देते हैं तो वे कौनसी किसी पर दया करते हैं, क्योंकि ये तो उनका कर्तव्य है। यदि वे फल नहीं देवें तो वह गिर कर नष्ट हो जायेगा। उसी प्रकार यदि मनुष्य अपने धन का दान के माध्यम से सदुपयोग नहीं करेगा तो वह धन भी उसी वृक्ष के फल की भाँति नष्ट हो जायेगा।

विशेष— 1. कवि ने दान के महत्त्व को वर्णित किया है।
2. समर्थ व्यक्तियों के द्वारा दान देना उनका कर्त्तव्य है ना कि किसी पर किया जाने वाला एहसान।

(36)

''व्रत का अन्तिम मोल राम ने दिया, त्याग सीता को,
जीवन की संगिनी, प्राण की मणि को, सुपुनीता को,
दिया अस्थि देकर दधीचि ने, शिवि ने अंग कतर कर,
हरिश्चन्द्र ने कफन माँगते हुए सत्य पर अड़ कर।
ईसा ने संसार-हेतु शूली पर प्राण गँवा कर,
अन्तिम मूल्य दिया गाँधी ने तीन गोलियाँ खाकर।
सुन अन्तिम ललकार मोल माँगते हुए जीवन की,
सरमद ने हँसकर उतार दी त्वचा समूचे तन की।''

शब्दार्थ—संगिनी=साथी। पुनीत=पवित्र। अस्थि=हड्डियाँ। कफन=शव पर ढाँपने वाला वस्त्र।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक कविवर रामधारीसिंह दिनकर द्वारा विरचित 'रश्मिरथी' के चतुर्थ सर्ग से अवतरित है, जिसमें कवि दिनकर ने मानवता के उद्धारकों की भूरी-भूरी प्रशंसा की है।

व्याख्या—कवि दिनकर मानवता के उद्धारकों की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि राम ने सत्य के व्रत का अन्तिम मोल अपनी प्राण प्रिया सीता को त्याग कर पवित्र आचरण वाली जीवन संगिनी को छोड़कर चुकाया था। उन्होंने यह मोल जन-विश्वास जीतने के लिये और एक सामान्य धोबी के द्वारा व्यंग्य वचन कहने पर किंचित् मात्र भी संकोच ना करते हुए चुकाया था। दधीच ऋषि इन्द्र को वज्र बनाने के लिये अपने शरीर की हड्डियाँ देकर सत्य का मोल चुकाया था। राजा शिवि ने कबूतर को बाज से बचाने के लिये अपने शरीर का माँस काटकर और राजा हरिश्चन्द्र ने अपने ही मरे पुत्र का कफन अपनी बेसहारा पत्नी से माँग कर सत्य के व्रत का अन्तिम मोल चुकाया था।

ईसा मसीह ने सत्य की भलाई के लिये अपने प्राण सूली पर चढ़ाकर गँवा दिये थे। गाँधीजी ने भी तीन गोलियाँ खाकर जीवन के सत्य का अन्तिम मोल चुकाया था। इसी प्रकार सरमद नामक फकीर ने अपने हाथों से अपने शरीर की खाल को उतारकर सत्य के महत्त्व को मानवता के लिये उजागर करने की दृष्टि से अन्तिम मोल चुकाया था।

विशेष—कवि ने विभिन्न महापुरुषों के जीवन से सम्बन्धित उद्धरणों के माध्यम से दान और त्याग के महत्त्व को प्रेरणास्पद रूप में प्रस्तुत किया है।

(37)

''कहा कर्ण ने कौन उधर है? बन्धु, सामने आओ,
मैं प्रस्तुत हो चुका, स्वस्थ हो, निज आदेश सुनाओ।
अपनी पीड़ा कहो, कर्ण सबका विनीत अनुचर है,
यह विपन्न का सखा तुम्हारी सेवा में तत्पर है।
माँगो, माँगो दान, अन्न या वसन, धाम या धन दूँ?
अपना छोटा राज्य या कि यह क्षणिक, क्षुद्र जीवन दूँ?
मेघ भले लौटें उदास हो किसी रोज सागर से,
याचक फिर सकते निराश पर, नहीं कर्ण के घर से।''

शब्दार्थ—प्रस्तुत=उपस्थित। पीड़ा=कष्ट। अनुचर=सेवक। विपन्न=दु:खी। तत्पर=तैयार। वसन=वस्त्र। क्षुद्र=छोटा। मेघ=बादल। याचक=माँगने वाला।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक कविवर रामधारीसिंह दिनकर द्वारा विरचित 'रश्मिरथी' के चतुर्थ सर्ग से अवतरित है, जिसमें कवि दिनकर ने बताया है कि दानवीर कर्ण की अपनी एक विशेषता यह थी कि वे सूर्यदेव की पूजा के बाद किसी भी आगन्तुक को बिना कुछ दिये हुए नहीं लौटने देते थे। जो भी कोई उनसे कुछ माँगता, उसे वह अवश्य मिलता था।

व्याख्या—जब दानवीर कर्ण अपनी पूजा समाप्त करने के बाद ऊपर की ओर देखते हैं तो उन्हें वहाँ किसी के छिपे हुए होने का आभास होता है, तब कर्ण उसे आश्वासन देते हुए कहते हैं कि हे जो भी हैं मेरे सामने आएँ, क्योंकि अब मेरी पूजा समाप्त हो गई है और जो कुछ कहना चाहते हैं, मैं उसे सुनने को तैयार हूँ। अब तुम्हारी जो भी इच्छा हो उसे मेरे सामने आकर कहो। कर्ण सभी का नम्र सेवक है। अपने को दीन-दु:खियों का मित्र मानने वाला कर्ण हर प्रकार से तुम्हारी सेवा करने के लिये तैयार है। इसलिये हे भाई! तुम सामने आकर के अन्न, वस्त्र, धन, भवन आदि जो भी इच्छा हो दान के रूप में कर्ण से माँग लो जो तुम्हारी इच्छा होगी उसे पूरा तुच्छ जीवन भी दे सकता हूँ। समुद्र के पास से जाकर बादल चाहे किसी दिन पानी ना मिलने के कारण निराश होकर लौट सकते हैं लेकिन कर्ण के द्वार पर आकर कोई भी याचक कभी भी निराश होकर नहीं लौट सकता। इसलिये तुम कर्ण के समक्ष उपस्थित होकर अपनी इच्छा के अनुसार वस्तु को माँग लो। **विशेष**—कर्ण की दानवीरता स्पष्ट है।

(38)

'' 'क्षुद्र पात्र हो मग्न कूप में जितना जल लेता है,
उससे अधिक वारि सागर भी उसे नहीं देता है।
अत:, व्यर्थ है देख बड़ों को बड़ी वस्तु की आशा,
किस्मत भी चाहिए, नहीं केवल ऊँची अभिलाषा।'
कहा कर्ण ने, वृथा भाग्य से आप डरे जाते हैं,
जो है सम्मुख खड़ा, उसे पहचान नहीं पाते हैं।
विधि ने था क्या लिखा भाग्य में, खूब जानता हूँ मैं,
बाँहों को, पर, कहीं भाग्य से बली मानता हूँ मैं।''

शब्दार्थ—क्षुद्र पात्र=छोटा बर्तन। कूप=कुआँ। वारि=जल। अभिलाषा=इच्छा। वृथा=व्यर्थ। विधि=विधाता।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक कविवर रामधारीसिंह दिनकर द्वारा विरचित 'रश्मिरथी' के चतुर्थ सर्ग से अवतरित

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

है, जिसमें कवि दिनकर ने बताया है कि दान के लिए पात्र की योग्यता अवश्य होनी चाहिए। क्योंकि पात्र के अनुरूप भी दान का महत्त्व होता है।

व्याख्या—कवि दिनकर कहते हैं कि दान पात्र की योग्यता के अनुसार ही लिया जाता है। इस तथ्य को ब्राह्मण रूप धारण किए इन्द्र कर्ण से कहते हैं कि हे महाराज! एक छोटा सा बर्तन कुए में डुबकर जितना पानी भरकर लाता है, उससे ज्यादा पानी उसे सागर भी नहीं दे सकता। क्योंकि दान शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार ही लिया दिया जाता है। इसलिए किसी महान् दानी को देखकर उससे किसी बड़ी वस्तु की आशा करना बेकार है। दान माँगने वाले का भाग्य भी तो अच्छा होना चाहिये केवल ऊँची अभिलाषा रखने से कोई लाभ नहीं होता है।

ब्राह्मण रूपधारी इन्द्र की बात को सुनकर के कर्ण ने कहा कि आप भाग्य की बात करके व्यर्थ में ही घबरा रहे हो। आपके सामने दान देने का आग्रह करते हुए जो खड़ा है, शायद आप उसे अच्छी तरीके से पहचान नहीं पा रहे हो, विधाता ने मेरे भाग्य में क्या लिखा है? यह मैं सब जानता हूँ। फिर भी जहाँ तक मेरी मान्यता है, मैं मनुष्य के बाहुबल को निश्चय ही भाग्य से कहीं अधिक श्रेष्ठ और बलवान मानता हूँ। **विशेष**—कर्ण की कर्मशीलता की ओर कवि ने संकेत कर बताया है कि भाग्य से कर्म बड़ा हुआ करता है।

(39)

''है सुकर्म, क्या संकट में डालना मनस्वी नर को?
प्रण से डिगा आपको दूँगा क्या उत्तर जग भर को?
सब कोसेंगे मुझे कि मैंने पुण्य मही का लूटा,
मेरे ही कारण अभंग प्रण महाराज का टूटा।
'अत:, विदा दें मुझे, खुशी से मैं वापस जाता हूँ।'
बोल उठा राधेय, आपको मैं अद्भुत पाता हूँ।
सुर हैं, या कि यक्ष है अथवा हरि के मायाचर हैं,
समझ नहीं पाता कि आप नर हैं या योनि इतर हैं।''

शब्दार्थ—सुकर्म= अच्छे कार्य। प्रण=प्रतिज्ञा। मही=पृथ्वी। अभंग=जो खण्डित न हो। सुर=देव। मायाचर=मायावी दूत। इतर=प्राणी।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक कविवर रामधारीसिंह दिनकर द्वारा विरचित 'रश्मिरथी' के चतुर्थ सर्ग से अवतरित है, जिसमें कवि दिनकर कहते हैं कि देवराज इन्द्र एक छद्मी वेष बनाकर दान की अभिलाषा से दानवीर कर्ण के पास पहुँचते हैं और वहाँ भाँति-भाँति प्रशंसाओं के द्वारा वे कर्ण को ऊँचाई की ओर चढ़ाते जाते हैं।

व्याख्या—देवराज इन्द्र ब्राह्मण के रूप में दान प्राप्ति की अभिलाषा से कर्ण की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि किसी दृढ़ हृदय वाले मनुष्य को जान-बूझकर संकट में डालना कोई उचित कार्य नहीं कहा जा सकता। इसलिये मैं भी अपनी इच्छा बता कर तुम्हें संकट में डालना नहीं चाहता हूँ। यदि आप मेरी इच्छा पूरी करने में असमर्थ रहे तो मैं आपका सम्मान करने वाले इस संसार को क्या उत्तर दूँगा। उस समय सभी मुझे ही कोसते हुए कहेंगे कि मैंने आपको प्रण से डिगा कर धरती का पुण्य लूट लिया है। मेरे कारण ही कर्ण को अपना अटल प्रण तोड़ने को विवश होना पड़ा।

अपनी दुविधा स्पष्ट कर ब्राह्मण ने कहा कि अब आप मुझे विदा दीजिये। मैं प्रसन्नता के साथ बिना कुछ माँगे ही वापिस चला जाता हूँ। उसकी इस बात को सुनकर कर्ण बोल उठे कि आप मुझे बहुत विचित्र व्यक्ति लगते हैं। आप कोई देवता हैं या यक्ष हैं या फिर भगवान के कोई मायावी दूत हैं। मनुष्य हैं या फिर आप किसी अन्य योनी के प्राणी हैं। आपको देखकर मेरी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा है।

विशेष—कवि ने इन्द्र द्वारा दान प्राप्त करनेकी चालाकी और कर्णकी भ्रमित मानसिकता का चित्रण किया है।

(40)

''अत: आपने जो माँगा है, दान वही मैं दूँगा,
शिवि- दधीचि की पंक्ति छोड़कर जग में अयश न लूँगा
पर, कहता हूँ, मुझे बना निस्त्राण छोड़ते हैं क्यों?

कवच और कुण्डल ने करके प्राण छोड़ते हैं क्यों ?
यह शायद, इसलिए कि अर्जुन जिये, आप सुख लूटें,
व्यर्थ न उसके शर अमोघ मुझ पर टकरा कर टूटें
उधर करें बहुत भाँति पार्थ की स्वयं कृष्ण रखवाली
और इधर मैं लड़ूँ लिये यह देह कवच से खाली''

शब्दार्थ—अयश=बुराई, अपयश। निरुत्राण=असुरक्षित। शर=बाण। पार्थ=अर्जन। रखवाली=रक्षा। देह=शरीर।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक कविवर रामधारीसिंह दिनकर द्वारा विरचित 'रश्मिरथी' के चतुर्थ सर्ग से अवतरित है, जिसमें कवि दिनकर ने बताया है कि जब देवराज इन्द्र ने ब्राह्मण के छद्म वेष में उपस्थित होकर दानवीर कर्ण से दान देने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध कर दिया, उस समय कर्ण ने इन्द्र की इच्छाओं को भली-भाँति पहचान लिया था।

व्याख्या—दृढ़ प्रतिज्ञा वीर कर्ण देवराज इन्द्र से कहते हैं कि, ''हे देवराज! आपने दानस्वरूप मुझसे जो भी कुछ माँगा है, मैं उसे आपको सहर्ष देने के लिए कृतसंकल्प हूँ। राजा शिवि और ऋषि दधीच जैसे दानियों की श्रेणी में मेरी गणना की जाती है। उस पंक्ति को छोड़कर मैं इस संसार में अपयश कैसे प्राप्त कर लूँगा, लेकिन मैं आपसे एक बात कहना चाहूँगा कि ये मेरे कवच कुण्डल ही मेरी रक्षा के साधन हैं। अत: आप इन्हें माँगकर मुझे रक्षा के साधनों से वंचित करना क्यों चाहते हो ? क्यों नहीं कवच कुण्डल के दान के साथ मेरे प्राणों का भी दान माँग लेते, तब मुझे अपने प्राणों की रक्षा की चिन्ता नहीं रहेगी।

कर्ण आगे कहते हैं कि आप मुझे इसलिये जीवित छोड़े जा रहे हो कि अर्जुन मेरे हाथों मारा न जाकर जीवित बचा रहे और इस प्रकार आप सब लोग सुख प्राप्त कर सको। आप कवच कुण्डल का दान इसलिए माँग रहे हो कि अर्जुन के अचूक समझे जाने वाले बाण मेरे शरीर से टकराकर बेकार ना हो जावें। उस तरफ तो भगवान कृष्ण अनेक प्रकार के उपाय काम में लेकर अर्जुन की रक्षा करने में तत्पर रहें, इधर मैं कवच कुण्डल से रहित शरीर लेकर अर्जुन के साथ युद्ध करूँ और उसके हाथ मारा जाऊँ।

विशेष—वीर कर्ण ने इन्द्र द्वारा माँगे गये कवच कुण्डल में समाहित नीति को स्पष्ट कर दिया है।

(41)

''जीत सकेगा मुझे नहीं वह और किसी विधि रण में,
कर्ण-विजय की आश तड़प कर रह जायेगी मन में।
जीते जूझ समर वीरों ने सदा बाहु के बल से,
मुझे छोड़ रक्षित जनमा था कौन कवच-कुण्डल से ?
मैं ही था अपवाद, आज वह भी विभेद हरता हूँ,
कवच छोड़ अपना शरीर सबके समान करता हूँ।
अच्छा किया कि आप मुझे समतल पर लाने आये,
हर तनुत्र दैवीय, मनुज सामान्य बनाने आये।''

शब्दार्थ—विभेद=अन्तर। समतल=सबके समान। तनुत्र दैवीय=देव शक्ति।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक कविवर रामधारीसिंह दिनकर द्वारा विरचित 'रश्मिरथी' के चतुर्थ सर्ग से अवतरित है, जिसमें कवि दिनकर ने कर्ण की वीरता मूलक मन:स्थिति को स्पष्ट करते हुए बताया है कि महावीर कर्ण ने देवराज इन्द्र के माध्यम से सर्वश्रेष्ठ धुरंधर धनुर्धारी माने जाने वाले अर्जुन को विद्रोह भरी चुनौती दी। इसी स्थिति को प्रस्तुत अंश में स्पष्ट किया है।

व्याख्या—महारथी कर्ण देवराज इन्द्र से कहते हैं कि हे देवराज! आप संसार में श्रेष्ठ धनुर्धर माने जाने वाले अर्जुन से मेरा यह संदेश कह दीजिए कि वह मेरा मौम का पुतला बनाकर ही मुझे जीत ले। क्योंकि कवच कुण्डल रहते हुए बड़े से बड़े समर में वह किसी भी स्थिति में मुझे जीत नहीं पाएगा। परिणामस्वरूप उसके मन में कर्ण विजय की आशा एक तड़प बनकर रह जाएगी। आज तक तो यही सुना है कि वीर अपनी बाँहों के बल से ही युद्ध जीतते रहे हैं ना कि छल-कपट से। केवल मैं तो कवच-कुण्डल में सुरक्षित पैदा हुआ हूँ और कोई दूसरा वीर इस तरह से कभी इस धरती पर नहीं जन्मा है।

कर्ण कहते हैं कि कवच कुण्डल के साथ जन्म लेने वाला अपवाद मात्र मैं ही था। इन कवच और कुण्डल के साथ अन्य मनुष्यों से जो भेद मेरे में आ गया था मैं आज उसको भी दूर किये देता हूँ। कवच कुण्डल देकर मैं अपना शरीर भी सामान्य मनुष्यों की भाँति ही बना लेता हूँ। हे देवराज इन्द्र! आपने ये बहुत अच्छा किया जो मुझे आप आम मनुष्यों जैसा बनाने के लिये स्वर्ग से चलकर मेरे पास आये हैं। भगवान् के द्वारा दिया गया ये कवच कुण्डल उतारकर आपकी इच्छा के अनुसार मैं भी अपने आपको सामान्य मनुष्य बनाये लेता हूँ। इस दृष्टि से आपका धरती पर आना शुभ हुआ है।

विशेष—1. कर्ण के कथनों में व्यंग्य भाव दृष्टव्य है।, 2. कर्ण का आत्मविश्वास, दृढ़ प्रतिज्ञा और वीरता महान् है।

(42)

''और कहें यदि, पूर्व जन्म के पापों का यह फल है,
तो फिर विधि ने दिया मुझे क्यों कवच और कुण्डल है?
समझ नहीं पड़ती विरंचि की बड़ी जटिल है माया,
सब-कुछ पाकर भी मैंने यह भाग्य-दोष क्यों पाया?
जिससे मिलता नहीं सिद्ध फल मुझे किसी भी व्रत का,
उलटा हो जाता प्रभाव मुझ पर आ धर्म सुगत का।
गंगा में ले जन्म, वारि गंगा का पी न सका मैं,
किये सदा सत्कर्म, छोड़ चिन्ता पर, जी न सका मैं।''

शब्दार्थ—विधि=विधाता। विरंचि=बिछाता। वारि=जल।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक कविवर रामधारीसिंह दिनकर द्वारा विरचित 'रश्मिरथी' के चतुर्थ सर्ग से अवतरित है, जिसमें कवि दिनकर ने महावीर कर्ण की मन:स्थिति का वर्णन किया है, जिसमें बताया है कि कर्ण अपने भाग्य को बार-बार यह कहकर कोसते हैं कि उनके जीवन में हमेशा विपत्तियाँ ही बनी रहती हैं। वे इन विपत्तियों को पूर्व जन्म का फल मानते हैं।

व्याख्या—महवीर कर्ण अपने भाग्य को कोसते हुए कहते हैं कि आज मुझे जो बार-बार विपत्तियों का सामना करना पड़ रहा है और मेरे जीवन में सर्वत्र विपत्तियाँ मुझे घेरे खड़ी हुई हैं, मैं यदि इन्हें अपने पूर्व जन्म का फल मानूँ तो फिर यह समझ में नहीं आता कि विधाता ने मुझे कवच-कुण्डल पहनाकर सुरक्षित रखते हुए जन्म ही क्यूँ दिया। यह बात मुझे अभी तक समझ में नहीं आती है। कर्ण कहते हैं कि विधाता की माया भी अपरम्पार है। इस संसार में मैंने सब-कुछ प्राप्त प्राप्त करके भी ये भाग्य का दोष क्यों प्राप्त किया है? कर्ण कहता है कि इस भाग्य-दोष के कारण मुझे अपने किसी भी व्रत का सुफल प्राप्त नहीं होता है। यहाँ तक कि मेरे द्वारा अच्छे किये गये कार्यों का भी फल मेरे पास उल्टा होकर के ही आता है। गंगा में जन्म लेकर मैं गंगा का पानी भी नहीं पी सका। मैंने हमेशा अपनी ओर से अच्छे ही कर्म किये लेकिन मैं अपने दुर्भाग्य के कारण शान्ति का जीवन कभी भी नहीं जी पाया।

विशेष—1. भाग्य विडम्बना से कर्ण के मन में जनहित व्यथा की अभिव्यक्ति की है।
2. कर्ण के द्वारा भाग्य की विडम्बना का स्पष्टीकरण दृष्टव्य है।

(43)

''देवराज! छल, छद्म, स्वार्थ, कुछ भी न साथ लाया हूँ,
मैं केवल आदर्श, एक उनका बनने आया हूँ।
जिन्हें नहीं अवलम्ब दूसरा, छोड़ बाहु के बल को,
धर्म छोड़ भजते न कभी जो किसी लोभ से छल को।
मैं उनका आदर्श जिन्हें कुल का गौरव ताकेगा,
'नीचवंशजन्मा' कहकर जिनको जग धिक्कारेगा।
जो समाज की विषम वह्नि में चारों ओर जलेंगे,
पग-पग पर झेलते हुए बाधा नि:सीम चलेंगे।

शब्दार्थ—छद्म=कपट। अवलम्ब=सहारा। नि:सीम=सीमा रहित।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य- पुस्तक कविवर रामधारीसिंह दिनकर द्वारा विरचित 'रश्मिरथी' के चतुर्थ सर्ग से अवतरित है, जिसमें कवि दिनकर ने महारथी कर्ण के बारे में इन्द्र को परिचय किया है। कर्ण अपने जीवन के बारे में देवराज के सम्मुख सब- कुछ बता देते हैं।

व्याख्या—महारथी कर्ण अपने जीवन के बारे में देवराज इन्द्र को बताते हुए कहते हैं कि हे इन्द्रदेव मैं जन्म से ही छल- कपट, स्वार्थ आदि कुछ भी लेकर अपने साथ पैदा नहीं हुआ हूँ। मैंने तो इस धरती पर लोगों का आदर्श बनने के लिये ही जन्म लिया है। मेरे पास परिश्रम, लगन और पुरुषार्थ के सिवाय दूसरा कोई सहारा नहीं है, जो मनुष्य कभी भी किसी भी लोभ- लालच में पड़कर धर्म को नहीं छोड़ते और अपने आपको ऊँचे कुल का मानकर कुछ लोगों को नीची जाति का समझकर झिड़क देते हैं, मैं उनका ही आदर्श बनकर यहाँ जन्मा हूँ। इस धरती पर जिन्हें नीच वंश में जन्मा कहकर अपमानित किया जाता है, जिनके चारों ओर समाज के भेदभाव की भयानक अग्नि जलती रहती है, जो कदम- कदम पर अनेक बाधाओं को सहते हुए बढ़ते रहते हैं, मैं उनका आदर्श बनने के लिये पैदा हुआ हूं।

विशेष—1. कर्ण ने अपने जीवन लक्ष्य की ओर संकेत कर बेसहारों का मसीहा बताने की ओर संकेत किया है।

2. स्पष्ट किया है कि शक्तिशालियों को निर्बलों की सहायता करनी चाहिए।

(44)

''क्या कह करूँ प्रबोध? जीभ काँपती, प्राण हिलते हैं
माँगूँ क्षमादान, ऐसे तो शब्द नहीं मिलते हैं
दे पावन पद्धूलि कर्ण! दूसरी न मेरी गति है
पहले भी थी भ्रमित, अभी भी फँसी भँवर में मति है
नहीं जानता था कि छद्म इतना संहारक होगा।
दान कवच- कुण्डल का ऐसा हृदय- विदारक होगा
मेरे मन का पाप मुझी पर बनकर वज्र घिरेगा
वज्र भेद का तुझे, तुरन्त मुझ पर भी आन गिरेगा।''

शब्दार्थ—प्रबोध=सम्बोधन। पावन=पवित्र। सहारक=विनाशक। हृदय विदारक=आत्मा को वेधने वाला।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य- पुस्तक कविवर रामधारीसिंह दिनकर द्वारा विरचित 'रश्मिरथी' के चतुर्थ सर्ग से अवतरित है, जिसमें कवि दिनकर ने बताया है कि दानवीर कर्ण की महानता को देखकर स्वयं देवराज इन्द्र लज्जित हो जाते हैं और वे अपनी भावना कर्ण के सम्मुख व्यक्त करने का प्रयास करते हैं।

व्याख्या—देवराज इन्द्र कहते हैं कि हे कर्ण! मैं अब क्या और कौनसे शब्दों का प्रयोग करके तुम्हें समझाऊँ। क्योंकि तुम्हारी महानता के आगे समझाने के लिए मेरे शब्दकोश में शब्द नहीं हैं। जब भी मैं कुछ कहने का प्रयास करता हूँ तो मेरी जीभ काँपने लगती है और हृदय में कम्पन उत्पन्न होने लगती है। मैं तो केवल इतना कह सकता हूँ कि मैंने तुम्हारे साथ जो व्यवहार किया है, उसके लिए शर्मिन्दा हूँ और मैं क्षमा चाहता हूँ किन्तु उस क्षमा के लिए भी मेरे पास शब्द नहीं हैं इसलिए हे महावीर कर्ण! अब तो तुम अपने पैरों की धूल ही मुझे दे दो। क्योंकि इसके अतिरिक्त अन्य कोई गति मेरे लिए असम्भव है। मेरा विवेक और मेरी बुद्धि तो पहले से ही भ्रमित थी पर अब तो वह भ्रम के विकट जाल में फँस चुकी है।

देवराज इन्द्र कहते हैं कि कभी यह सोचा भी नहीं था कि छलपूर्ण व्यवहार का परिणाम इतना संहारक होगा और तुम्हारे द्वारा दिया गया कवच कुण्डल का दान इस सीमा तक हृदय को विदीर्ण करके रख देगा। इस बात को मैं सोच भी नहीं पाया था कि मेरे द्वारा पाप रूप में जो कार्य किया जा रहा है वह मेरे लिए ही दु:ख का हेतु बनेगा। मेरे द्वारा तुम पर छोड़ा गया दान की माँग रूपी वज्र उल्टे मानसिक वेदना के रूप में मुझ पर ही आ गिरेगा। इस बात को मैं कभी सोच भी नहीं पाया था।

विशेष—इन्द्र के मन में समाये पश्चाताप की सहज अभिव्यक्ति हुई है।

(45)

''हाँ, पड़ पुत्र- प्रेम में आया था छल ही करने को,
जान- बूझ कर कवच और कुण्डल तुझसे हरने को।

वह छल हुआ प्रसिद्ध, किसे, क्या मुख अब दिखलाऊँगा,
आया था बन विप्र चोर बनकर वापस जाऊँगा।
वन्दनीय तू कर्ण, देखकर तेज तिग्म अति तेरा,
काँप उठा था आते ही देवत्वपूर्ण मन मेरा।
किन्तु, अभी तो तुझे देख मन और डरा जाता है,
हृदय सिमटता हुआ आप- ही- आप मरा जाता है।''

शब्दार्थ—विप्र=ब्राह्मण। वन्दनीय=वन्दना के योग्य। तिग्म=प्रखर।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य- पुस्तक कविवर रामधारीसिंह दिनकर द्वारा विरचित 'रश्मिरथी' के चतुर्थ सर्ग से अवतरित है, जिसमें कवि दिनकर ने स्पष्ट किया है कि देवराज इन्द्र महावीर कर्ण के सामने अपनी मन:स्थिति को स्पष्ट कर देते हैं कि वे किस प्रयोजन से ब्राह्मण का छद्म वेष धारण कर दान माँगने की इच्छा से वहाँ उपस्थित हुए हैं।

व्याख्या—देवराज इन्द्र पश्चाताप से परिपूर्ण भावना को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि हे कर्ण! मैं इस बात को स्वीकार करता हूँ कि मैं पुत्र प्रेम के वशीभूत होकर वास्तव में तुम्हें छलने के लिए आया था। क्योंकि अर्जुन मेरा पुत्र है। उसी की रक्षा के लिए मैंने तुमसे दान- स्वरूप कवच और कुण्डल माँगे थे।

तुम्हारे साथ मैंने जो छल किया वह सिद्ध हो गया और मेरा षड्यन्त्र अब इस संसार में प्रसिद्ध हो जायेगा।परिणामस्वरूप मैं अब अपना मुख किसी को भी दिखाने में समर्थ नहीं हो पाऊँगा। तुम्हारे पास पवित्र ब्राह्मण के रूप में आया था लेकिन अब चोर प्रमाणित होकर के जा रहा हूँ।

देवराज इन्द्र कर्ण को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे दानवीर कर्ण! तुम्हारा तेज और प्रखर व्यक्तित्व वास्तव में संसार में अति वन्दनीय है। इसे देखकर तो मेरा देवत्व भी कम्पायमान होने लग गया। इतना ही नहीं अपितु अब तुम्हें देख- देख कर मेरा मन और अधिक भयभीत होता जा रहा है, न जाने क्यों मेरा मन अपने आप में सिमटा जा रहा है।

विशेष—देवराज इन्द्र के मन में पनपी हीनता की भावना दृष्टिगत हुई है।

(46)

''एक बार ही शर, काम तू इससे ले पायेगा,
फिर यह तुरत लौटकर मेरे पास चला जायेगा।
अतः वत्स! मत इसे चलाना कभी वृथा चंचल हो,
लेना काम तभी जब तुझको और न कोई बल हो।
'दानवीर! जय हो, महिमा का गान सभी जन गायें,
देव और नर, दोनों ही, तेरा चरित्र अपनायें।'
दे अमोघ शर- दान सिधारे देवराज अम्बर को,
व्रत का अन्तिम मूल्य चुका कर गया कर्ण निज घर को।''

शब्दार्थ—वत्स=पुत्र। वृथा=व्यर्थ। चंचल=आवेश। सिधारे=प्रस्थान किया। अम्बर=आकाश।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य- पुस्तक कविवर रामधारीसिंह दिनकर द्वारा विरचित 'रश्मिरथी' के चतुर्थ सर्ग से अवतरित है, जिसमें कवि दिनकर ने बताया है कि देवराज इन्द्र कर्ण को दान रूप में एकघ्नि नामक अमोघ अस्त्र प्रदान करते हैं तथा उसको प्रयोग और प्रभाव को समझाते हैं।

व्याख्या—देवराज इन्द्र एकघ्नि नामक अमोघ अस्त्र के प्रभाव को समझाते हुए कहते हैं कि—हे कर्ण! इस अस्त्र को तुम मात्र एक ही बार प्रयोग में ले सकोगे। तुम्हारे द्वारा प्रयोग किए जाने के बाद यह अस्त्र स्वयं मेरे पास आ जायेगा। इसलिए मैं तुम्हें सलाह देता हूँ

कि आवेश में आकर इस अस्त्र का तुम कभी भी प्रयोग मत करना। इसको उसी समय काम में लेना जब तुम्हारे पास अपने बचाव का कोई अन्य साधन न रह जाए। इतना कहने के बाद इन्द्र ने कहा कि हे दानवीर कर्ण! तुम्हारी जय हो। तुम्हारी महिमा का गायन हमेशा होता रहे। देवता और मनुष्य तुम्हारे चरित्र के सद्गुणों को अपनाकर तुम्हारे चरित्र जैसा ही बनने का प्रयत्न करें। इस प्रकार कहने के उपरान्त देवराज इन्द्र ने कर्ण को अमोघ अस्त्र प्रदान कर देव लोक को प्रस्थान किया और अपने दान के व्रत का कवच कुण्डल के दान रूप में अन्तिम मूल्य चुकाकर महारथी कर्ण भी अपने घर की ओर चल दिए।

विशेष—देवराज इन्द्र ने अमोघ अस्त्र के प्रयोग के बारे में बताया है।

पंचम सर्ग

(47)

''जन-जन स्वजनों के लिए कुटिल यम होगा,
परिजन, परिजन के हित कृतान्त-सम होगा।
कल से भाई, भाई के प्राण हरेंगे,
नर ही नर के शोणित में स्नान करेंगे।
सुध-बुध खो, बैठी हुई समर-चिन्तन में,
कुन्ती व्याकुल हो उठी सोच कुछ मन में।
हे राम! नहीं क्या यह संयोग हटेगा?
सचमुच ही क्या कुन्ती का हृदय फटेगा?''

शब्दार्थ—कुटिल=भयानक। परिजन=परिवार के लोग। कृतान्त=शत्रु। शोणित=रक्त। समर=युद्ध।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक कविवर रामधारीसिंह दिनकर द्वारा विरचित 'रश्मिरथी' के पंचम सर्ग से अवतरित है, जिसमें कवि दिनकर ने माता कुन्ती की उस मन:स्थिति का और असहनीय चिन्ता का वर्णन किया है, जो युद्ध में होने वाली भयंकर विनाशलीला के बारे में सोच-सोचकर उत्पन्न हो रही थी। प्रस्तुत अंश में अगली सुबह होने वाले महाभारत में विनाशलीला की आशंका को व्यक्त किया है।

व्याख्या—घने काले अंधकार में माता कुन्ती भावी विनाश का हृदय विदारक चिन्तन करती हैं और सोचती हैं कि—कल प्रात:काल जब महाभारत का युद्ध प्रारम्भ होगा, उस युद्ध में स्वजन ही अपने जन के लिए कठोर यमराज बनकर उनके समाने खड़ा हो जायेगा। भाई-भाई के प्राणों को नष्ट करेगा और एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के खून में स्नान करेगा।

इस प्रकार युद्ध में होने वाली भयंकर विनाशलीला पर चिन्तन करके माता कुन्ती अपनी सुध-बुध खो बैठी! और वह अपने मन में बहुत अधिक व्यथित हो गयी। वह अपने मन में अधीर होकर सोचने लगी कि हे राम! यह आने वाली भयंकर विनाशलीला अब किसी भी तरह से नहीं हटेगी, क्या वास्तव में ही यह विनाशलीला को देखकर कुन्ती का हृदय फटेगा? कहने का भाव यह है कि कुन्ती अपने मन में सोच रही है कि कल होने वाले युद्ध में कर्ण और अर्जुन के बीच युद्ध होगा, क्या इन दोनों के बीच होने वाला टकराव किसी भी तरह से टल नहीं सकता? इन दोनों के बीच होने वाले युद्ध में किसी एक की मृत्यु होना निश्चित है, इसका दु:ख मेरे ही हृदय को सहना पड़ेगा।

विशेष—1. कुन्ती के मन में समायी आशंकाओं की ओर संकेत किया गया है।

2. कुन्ती की ममत्वरूपी स्थिति का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

(48)

''पर, मैं कुमारिका थी, जब तू आया था,
अनमोल लाल मैंने असमय पाया था।
अतएव हाय! अपने दुधमुँहे तनय से,
भागना पड़ा मुझको समाज के भय से।
बेटा, धरती पर बड़ी दीन है नारी,
अबला होती, सचमुच योषिता कुमारी।

है कठिन बन्द करना समाज के मुख को,
सिर उठा न पा सकती पतिता निज सुख को।
उस पर भी बाल अबोध, काल बचपन का,
सूझा न शोध मुझको कुछ और पतन का।
मजूषा में धर तुझे, वज्र कर मन को,
धारा में आयी छोड़ हृदय के धन को।''

शब्दार्थ—कुमारिका=कुँआरी। तनय=पुत्र। अबला=बेसहारा, निर्बल। पतिता=पापिनी। शोध=मार्ग। मंजूषा=पेटी। योषिता=कन्या।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य- पुस्तक कविवर रामधारीसिंह दिनकर द्वारा विरचित 'रश्मिरथी' के पंचम सर्ग से अवतरित है, जिसमें कवि दिनकर ने माता कुन्ती की उन परिस्थितियों का चित्रण किया है, जो विवाह से पूर्व माँ बनकर कर्ण को जन्म देती हैं किन्तु सामाजिक मान-मर्यादा और स्त्री धर्म की रक्षा हेतु उसे जान- बूझकर त्यागना पड़ता है। कवि ने कुन्ती की मजबूर और असमंजस्यमयी परिस्थितियों का अन्तर्द्वन्द्व रूप में मार्मिक चित्रण किया है।

व्याख्या—कुन्ती कहती हैं कि हे पुत्र कर्ण! मैं इसे अपना दुर्भाग्य ना कहूँ तो क्या कहूँ। तुम्हारे जन्म के समय मैं अविवाहित थी और अवसर से पहले ही मैंने तुझ जैसे अनमोल रत्न को प्राप्त कर लिया था, किन्तु समाज की लोक-मर्यादाओं और स्त्री लज्जा का ध्यान रखते हुए मुझे तुम्हारे जैसे अनमोल रत्न को त्यागने के लिए विवश होना पड़ा। अब मैं तुम्हें कैसे समझाऊँ कि जब मैंने तुम्हें अपने आप से दूर किया था तो तुम दूध पिते हुए अबोध बालक थे। मैं मजबूर थी, चाहते हुए मुझे अपने आप से तुम्हें अलग करना पड़ा।

कुन्ती कर्ण को त्यागने में अपने को निर्दोष सिद्ध करने की चेष्टा करती हुई कहती है कि इस जगत में नारी की बड़ी दीन- हीन स्थिति है और वास्तव में कुमारी कन्याएँ तो और भी अधिक दीन और अबला हुआ करती थीं, यदि उनके चरण रंचमात्र भी सन्मार्ग से डगमगा जाते थे तो उन्हें इतना गिरा हुआ मान लिया जाता था कि वे फिर समाज के सामने अपना सिर नहीं उठा सकतीं। उनके मुख पूर्णरूप विलीन हो जाते हैं और सभी की ठोकरें खानी पड़ती है।

हे कर्ण! वैसे समाज में स्त्री- मान की बड़ी गिरी हुई स्थिति है। जब कि तेरे जन्म के समय में तो मैं निरी अबोध बालिका थी। अपनी अबोधावस्था के कारण इस बात का अन्य कोई उपाय सोच ही न सकी कि तेरा असमय जन्म होने के कारण मुझे जो पातक लग रहा है, उससे कैसे छुटकारा पाऊँ। बस यही दिखाई पड़ा कि अपने हृदय पर पत्थर रखकर तुझे लकड़ी की सन्दूकची में बन्द किया और नदी में प्रवाहित कर आई थी।

विशेष—1. इसमें कुन्ती कर्ण को उसे त्यागने का कारण बताती है।
2. इसमें रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

(49)

''क्या तुम्हें कर्ण से काम? सूत है वह तो,
माता के तन का मल, अपूत है वह तो।
तुम बड़े वंश की बेटी, ठकुरानी हो,
अर्जुन की माता, कुरुकुल की रानी हो।
मैं नाम-गोत्र से हीन, दीन, खोटा हूँ,
सारथीपुत्र हूँ, मनुज बड़ा छोटा हूँ,
ठकुरानी! क्या लेकर तुम मुझे करोगी?
मल को पवित्र गोदी में कहाँ धरोगी?
है कथा जन्म की ज्ञात, न बात बढ़ाओ,
मत छेड़-छेड़ मेरी पीड़ा उकसाओ,
हूँ खूब जानता, किसने मुझे जना था,

किसके प्राणों पर मैं दुर्भार बना था।''

शब्दार्थ—मल=मैल। अपूत=कपूत। कुरु कुल=कुरु वंश।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक कविवर रामधारीसिंह दिनकर द्वारा विरचित 'रश्मिरथी' के पंचम सर्ग से अवतरित है, जिसमें कवि दिनकर ने स्पष्ट किया है कि कर्ण के सामने जब कुन्ती अपने आपको माँ कहकर उन्हें प्यार करती है तो कर्ण कुन्ती की अनेक शब्दों से भर्त्सना करते हैं। अपने आपको दुर्भाग्यशाली बताते हुए कुन्ती को माँ होने पर धिक्कारते हैं।

व्याख्या—कवि दिनकर कहते हैं कि कर्ण ने अपनी माँ को कई प्रकार से हीन बताने का प्रयास किया है। वे कुन्ती से कहते हैं कि तुम मुझे किस मुँह से पुत्र कह सकती हो। कर्ण से तुम्हें क्या मतलब है? क्योंकि वह तो सूतपुत्र है और अपनी माता के शरीर की अपावन गन्दगी है जबकि तुम बड़े वंश की बेटी हो, ठकुरानी हो, अर्जुन की माता हो तथा प्रसिद्ध कुरुकुल की सम्मानित रानी हो।

फिर कर्ण आगे कहता है कि मैं तो अपने गोत्र के नाम को भी नहीं जानता, मैं तो बड़ा दीन-हीन और छोटा पुरुष हूँ। मैं तो एक रथ-चालक का पुत्र हूँ और बड़ा ही तुच्छ व्यक्ति हूँ। तुम ठकुरानी होते हुए भी ऐसी दीन-हीन और छोटे व्यक्ति को अपनी पवित्र गोदी में कैसे और कहाँ स्थान दे सकोगी?

मुझे भी अपने जन्म की कथा याद है। किन्तु तुम उस भूली बात को छेड़कर मेरी व्यथा को उकसाने की चेष्टा मत करो। यह मुझे अच्छी तरह मालूम है कि मुझे किसने जन्म दिया था और मैं किसके जीवन के लिए दुर्वह-भार के समान हो गया था।

विशेष—इसमें अनेक अलंकारों की छटा अवलोकनीय है, जैसे—वृत्यानुप्रास, छेकानुप्रास, वीप्सा आदि।

(50)

''मैं खूब समझता हूँ कि नीति यह क्या है,
असमय में जन्मी हुई प्रीति यह क्या है।
जोड़ने नहीं बिछुड़े-वियुक्त कुलजन से,
फोड़ने मुझे आयी हो दुर्योधन से।
सिर पर आकर जब हुआ उपस्थित रण है,
हिल उठा सोच परिणाम तुम्हारा मन है।
अंक में लेने तुम मुझको भरने आयी हो,
कुरुपति को कुछ दुर्बल करने आयी हो।
अन्यथा स्नेह की वेगमयी यह धारा,
तट को मरोड़, झकझोर, तोड़ कर कारा,
भुज बढ़ा खींचने मुझे न क्यों आयी थी?
पहले क्यों यह वरदान नहीं लायी थी?''

शब्दार्थ—रण=युद्ध। अंक=गोद। दुर्बल=कमजोर। वेगमयी=तेजोमयी। कारा=बन्धन।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक कविवर रामधारीसिंह दिनकर द्वारा विरचित 'रश्मिरथी' के पंचम सर्ग से अवतरित है, जिसमें कवि दिनकर ने बताया है कि जब कुन्ती कर्ण को पाण्डवों से युद्ध न करने अथवा उनकी ओर मिल जाने का प्रस्ताव रखती है तो कर्ण उसे पूर्णतः अनुचित बताते हैं और वे इस प्रस्ताव को एक कुटनीति की संज्ञा देते हैं।

व्याख्या—कर्ण दुर्योधन के परम मित्र होने के साथ-साथ वचनबद्ध भी थे। जब कुन्ती ने कर्ण को पाण्डवों की ओर मिलने की बात कही तो कर्ण ने उसे एक कूटनीति का नाम देते हुए अनुचित बताया और कहने लगे कि मैं इस बात के रहस्य को समझ रहा हूँ कि तुम अपने मन में मेरे प्रति उमड़े प्रेम के कारण मुझे अपने बिछुड़े पाँडव-भ्राताओं से मिलाने नहीं आयी हो वरन् यह चाहती हो कि मैं दुर्योधन का साथ त्याग दूँ।

कारण यह है कि जब महाभारत का युद्ध सिर पर आ पहुँचा तो उसमें अपनी पराजय होने की बात सोचकर तुम्हारा अन्तर्मन

व्याकुल हो उठा। अपनी इस व्याकुलता के कारण तुम्हारा उद्देश्य यह है कि मैं दुर्योधन की ओर से युद्ध न करूँ, मैं उसका साथ त्याग दूँ। मुझे अपनी गोद में स्थान देने का तुम्हारा मूल उद्देश्य यही था।

हे देवी! तुम स्वयं ही सोचो कि यदि तुम्हारा यह उद्देश्य होता तो तुम्हारा मेरे प्रति यह प्रेम ही क्यों उत्पन्न हुआ है। तुम आज मुझे जो शुभ संदेश सुना रही हो। मुझ पर प्रेम की वर्षा कर रही हो। उसकी धारा सामाजिक बाधाओं को तोड़ती हुई लोक लज्जा के बन्धनों को छिन्न-भिन्न करती हुई, मेरी ओर इससे पहले क्यों नहीं उमड़ पड़ी थी। इससे पहले तुमने मुझे क्यों नहीं बताया कि मैं तुम्हारा पुत्र हूँ।

विशेष—1. इसमें कर्ण ने कुन्ती से अनेक तर्क प्रस्तुत किये हैं जो स्वाभाविक थे। 2. इसमें सांगरूपक अलंकार है।

(51)

''लेकिन, यह होगा नहीं देवि! तुम जाओ,
जैसे भी हो, सुत का सौभाग्य मनाओ।
दें छोड़ भले ही कभी कृष्ण अर्जुन को,
मैं नहीं छोड़ने वाला दुर्योधन को।
कुरुपति का मेरे रोम-रोम पर ऋण है,
आसान न होना उससे कभी उऋण है।
छल किया अगर, तो क्या जग में यश लूँगा।
प्राण ही नहीं, तो उसे और क्या दूँगा?''

शब्दार्थ—कुरुपति=दुर्योधन। उऋण=ऋण से मुक्ति।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक कविवर रामधारीसिंह दिनकर द्वारा विरचित 'रश्मिरथी' के पंचम सर्ग से अवतरित है, जिसमें कवि दिनकर ने कर्ण के मन में अपने परम मित्र युवराज दुर्योधन के प्रति प्रगाढ़ मैत्री की भावना को बहुत ही रोचक ढंग से चित्रित किया है।

व्याख्या—महावीर कर्ण अपनी माँ कुन्ती से कहते हैं कि हे देवी! ऐसा नहीं हो सकता कि मैं यह जानकर कि अर्जुन मेरा छोटा भाई है और मैं पाण्डवों का अग्रज हूँ। मैं अपनी अर्जुन-वध की प्रतिज्ञा को अथवा दुर्योधन की ओर से लड़ने के प्रण को छोड़ दूँ। आप से जहाँ तक बन पड़े अर्जुन की प्राण-रक्षा के लिए दान-पुण्य करते हुए उसके मंगल की कामना कीजिए। जहाँ तक मेरे दुर्योधन का पक्ष छोड़ने का प्रश्न है तो मैं स्पष्ट करता हूँ कि चाहे अर्जुन के अनन्य मित्र श्रीकृष्ण अर्जुन का साथ त्याग दें, किन्तु मैं दुर्योधन का साथ नहीं छोड़ सकता हूँ।

हे देवी! मैं अपने उस मित्र दुर्योधन का साथ कैसे छोड़ सकता हूँ। जिसके अहसानों से मेरे शरीर का रोम-रोम तक लदा हुआ है। उसने मेरे ऊपर इतने उपकार किये हैं कि मैं लाखों चेष्टाएँ करके ही उसके उपकारों का बोझ नहीं उतार सकूँगा। यदि मैं अपने मित्र के भी साथ छल करते हुए उसे संकट के क्षणों में त्याग दूँगा, तो जगत् में मेरी निन्दा होगी। ऐसे मित्र के लिए भी यदि मैं अपने प्राण न्यौछावर नहीं करूँगा तो ऐसी क्या वस्तु है जिसे देकर मैं स्व-मित्र के उपकारों से उऋण हो सकता हूँ।

विशेष—1. प्रस्तुत पंक्तियों में कर्ण के चरित्र के उत्कर्ष के दर्शन होते हैं।
2. इसमें छेकानुप्रास और वीप्सा अलंकार है।

(52)

''अम्बर पर मोती-गुँथे चिकुर फैला कर,
अंजन उंड़ेल सारे जग को नहला कर।
साड़ी में टाँके हुए अनन्त सितारे,
थी घूम रही तिमिरांचल निशा पसारे।
थी दिशा स्तब्ध, नीरव समस्त अग-जग था,
झिल्ली अपना स्वर कभी-कभी भरती थी,
जल में जब-जब मछली छप-छप करती थी।''

शब्दार्थ—अम्बर=आकाश। चिकुर=केश। अंजन=काजल। तिमिरांचल=अंधकार का अंचल। स्तब्ध=शान्त। नीरब=शान्त।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य- पुस्तक कविवर रामधारीसिंह दिनकर द्वारा विरचित 'रश्मिरथी' के पंचम सर्ग से अवतरित है, जिसमें कवि दिनकर ने पतित पावनी गंगा के किनारे महावीर कर्ण और उनकी माँ कुन्ती दोनों की व्यथित अवस्था तथा उनकी मनोदशा का वर्णन किया है।

व्याख्या—कवि दिनकर कुन्ती और कर्ण की स्थिति का वर्णन करते हुए कहते हैं कि जिस समय कर्ण और कुन्ती गंगा के किनारे अपने दुर्भाग्य पर करुण क्रन्दन कर रहे थे तो घनी अँधकार से युक्त रात्री अपने काले घने केशों में अनगिनत तारों रूपी मोतियों को गुँथकर अपनी कालिका रूपी काजल को सम्पूर्ण जगत में उड़ेलती हुई तथा नीला आकाश रूपी साड़ी में तारों रूपी सितारे धारण कर विचरण कर रही थी अर्थात् उस समय जब कर्ण और कुन्ती अपनी करुण व्यथा से व्यथित थे, उस समय रात्रि का घना अन्धकार था।

कवि दिनकर कहते हैं कि उस समय दिशाओं में पूर्णतया स्तब्धता और नीरवता छाई हुई थी। जगत् के समस्त जड़ चेतन पदार्थ भी शान्त थे। अब से कुछ क्षण पूर्व तक कुँजों में जो पक्षी चहचहा रहे थे। वे भी मूक हो उठे हैं। जब- तब या तो झींगुर बोल उठते थे अथवा कोई मछली जल में छपछपा कर नाद कर देती थी।

विशेष—अलंकार सांगरूपक है। भाषा सरल और स्वाभाविक है।

(53)

''की पूर्ण सभी की, सभी तरह अभिलाषा,
जाने दूँ कैसे लेकर तुम्हें निराशा?
लेकिन, पड़ता हूँ पाँव, जननि! हठ त्यागो,
बनकर कठोर मुझसे मुझको मत माँगो।
केवल निमित्त समर का दुर्योधन है,
सच पूछो तो यह कर्ण- पार्थ का रण है।
छीनो सुयोग मत, मुझे अंक में लेकर,
यश, मुकुट, मान, कुल, जाति, प्रतिष्ठा देकर।
अर्जुन से लड़ना छोड़ कीर्ति क्या लूँगा?
क्या स्वयं आप अपने को उत्तर दूँगा?
मेरा चरित्र फिर कौन समझ पायेगा?
सारा जीवन ही उलट- पलट जायेगा।''

शब्दार्थ—अभिलाषा=इच्छा। जननि=माँ। हठ=जिद। निमित्त=बहाना। रण=युद्ध। सुयोग=सौभाग्य, गौरव। अंक=गोद।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य- पुस्तक कविवर रामधारीसिंह दिनकर द्वारा विरचित 'रश्मिरथी' के पंचम सर्ग से अवतरित है, जिसमें कवि दिनकर ने बताया है कि जब कुन्ती लगभग निराश होकर कर्ण के पास से जाने लगीं तो कर्ण अपनी दानवीरता के गुणानुसार कुन्ती से इच्छित दान प्रदान करने का आश्वासन देते हैं और बताते हैं कि उनके पास से आज तक कोई खाली हाथ नहीं लौटा।

व्याख्या—कर्ण कुन्ती से कहते हैं कि हे माँ! जब मैंने अब तक किसी को निराश लौटने नहीं दिया तो तुम्हारी बात कैसे टाल सकता हूँ और मैं तुम्हें भी निराश नहीं होने दूँगा।

कर्ण कुन्ती से कहते हैं कि मैं तुम्हें निराश खाली हाथ नहीं जाने दूँगा किन्तु हे माता! तुम अपने इस हठ को त्याग दो कि मैं पाण्डवों से मिल जाऊँ। तुम मुझसे मुझको ही माँगने की निर्दयता मत करो।

हे माँ, यह जो महाभारत का युद्ध आरम्भ होने वाला है। उसका दुर्योधन तो बहाना मात्र है। क्योंकि सच में तो यह कर्ण और अर्जुन का युद्ध होगा। तुम मुझसे मेरे इस गौरव को मत छीनो कि मैं अर्जुन से युद्ध न कर सकूँ।

हे माँ, यदि मैं अर्जुन को युद्ध में हरा नहीं सका तो मुझे उससे बढ़कर यश की अभिलाषा हो सकती है? मैंने अर्जुन को परास्त करने का जो प्रण कर रखा है। वह फिर कैसे पूरा होगा। मैं अपने मन में कैसे शान्ति पाऊँगा। यदि मैं मित्र दुर्योधन की ओर से युद्ध नहीं कर पाया तो जगवासी मेरे चरित्र को कैसे समझ पायेंगे। हे माँ! यदि मैं तुम्हारे कहे अनुसार पाँडव की ओर मिल जाता हूँ तो मेरा जीवन ही निरर्थक हो जायेगा।

विशेष—1. इन पंक्तियों में वृत्यानुप्रास, छेकानुप्रास अलंकार है। 2. कर्ण की यह उक्ति बड़ी ही मार्मिक है।

(54)

''जंग में जो भी निर्दलित, प्रताड़ित जन हैं,
जो भी निहीन हैं, निन्दित हैं निर्धन हैं
यह कर्ण उन्हीं का सखा, बन्धु सहचर है,
विधि के विरुद्ध ही उसका रहा समर है।
सच है कि पाण्डवों को न राज्य का सुख है,
पर, केशव जिनके साथ, उन्हें क्या दुःख है?
उनसे बढ़कर मैं क्या उपकार करूँगा?
है कौन त्रास, केवल मैं जिसे हरूँगा?''

शब्दार्थ—निर्दलित=प्रताड़ित=पीड़ित और निम्न। निहीन=कुचले जाने वाला। निर्धन=गरीब। सखा=मित्र। सहचर=साथी। समर=युद्ध। केशव=कृष्ण।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य- पुस्तक कविवर रामधारीसिंह दिनकर द्वारा विरचित 'रश्मिरथी' के पंचम सर्ग से अवतरित है, जिसमें कवि दिनकर ने स्पष्ट किया है जब कुन्ती कर्ण से वरदान माँगने की स्थिति को स्पष्ट कर देती है और कर्ण वरदान देने के लिए उद्धत हो जाते हैं तो वे अपने इस उद्देश्य पर प्रकाश डालते हैं कि कर्ण ने दीन- दुःखियों का साथ देने और उनके दुःखों में भागीदार बनकर उन्हें कम करने के लिए ही जन्म लिया है।

व्याख्या—कर्ण कुन्ती को समझाते हुए कहते हैं कि हे माता! मैं यह विश्वास दिलाता हूँ कि विजयश्री प्राप्त करने के बाद दुर्योधन का साथ त्यागकर पाण्डवों की ओर मिल जाऊँगा क्योंकि मैं तो इस संसार में हमेशा से उन लोगों का मित्र, भाई और साथी रहा हूँ, जो समाज द्वारा दलित और प्रताड़ित किए गए हैं। जो समाज उन्हें अपने जुल्मों के भारी पैरों तले रौंदकर ठुकरा देता है और जो लोग इस वैभवपूर्ण संसार में रहकर भी सुख- सुविधाओं से वंचित रहते है तथा जो गरीब हैं और जिनकी समाज के प्रतिष्ठित लोगों के द्वारा सदैव निन्दा की जाती रही है, मैं हमेशा उनको साथी रहा हूँ।

कर्ण कहते हैं कि यह वास्तव में सच है कि पाँडवों को इस समय राज्य का सुख उपलब्ध नहीं है। किन्तु जिनकी ओर श्रीकृष्ण हों, उन्हें किसी प्रकार दुःखी नहीं माना जा सकता। श्रीकृष्ण से भी बढ़कर मैं पाँडवों का हित- साधन कर सकूँ, मुझमें इतनी शक्ति नहीं है तथा पाँडवों को न किसी से ऐसा भय ही है, जिसे दूर करने के लिए मुझे उनकी ओर मिल जाना चाहिये।

विशेष—1. प्रस्तुत पंक्तियों में कर्ण ने अपने को दीन- दुःखियों का साथी बताया है।

2. इसमें छेकानुप्रास और वृत्यानुप्रास अलंकार है।

(55)

''बज चुका काल का पटह, भयानक क्षण है,
दे रहा निमन्त्रण सबको महामरण है।
छाती के पूरे पुरुष प्रलय झेलेंगे,
झण्झा की उलझी लटें खींच खेलेंगे।
कुछ भी न बचेगा शेष अन्त में जाकर,
विजयी होगा सन्तुष्ट तत्त्व क्या पाकर,
कौरव विलीन जिस पथ पर हो जायेंगे,
पाण्डव क्या उससे भिन्न राह पायेंगे?''

शब्दार्थ—पटह=शंख नाद, डंका। महामरण=काल। प्रलय=विनाश। झंझा=विनाशकारी गुत्थियाँ।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य- पुस्तक कविवर रामधारीसिंह दिनकर द्वारा विरचित 'रश्मिरथी' के पंचम सर्ग से अवतरित है, जिसमें कवि दिनकर ने कर्ण के जीवन में घटित होने वाली सम्पूर्ण आशंकाओं के बारे में संकेत दिया है। इसमें ऐसा लगता है कि मानो कर्ण को भविष्य के प्रति सम्पूर्ण जानकारी पहले से ही प्राप्त हो गई हो।

व्याख्या—कर्ण अपनी माँ कुन्ती को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे माते! न जाने क्यों मुझे भविष्य में घटने वाली सभी घटनाएँ सुस्पष्ट रूप से दिखाई दे रही हैं। मैं जानता हूँ कि इस महायुद्ध का अन्तिम परिणाम क्या निकलने वाला है। कर्ण कहते हैं कि हे

माँ! मुझे तो पाण्डवों की विजय होती हुई दिखाई दे रही है। किन्तु यह सब देखते हुए भी मेरे मन में लेश मात्र भी घबराहट नहीं है, बल्कि युद्ध के प्रति मेरा उत्साह निरन्तर गुणोत्तर ढंग से बढ़ता जा रहा है।

कर्ण कहते हैं कि हे माँ! अब तो क्रूर काल का डंका बज चुका है और उसने अपना संकेत देकर भीषण विनाश की उद्घोषणा भी कर दी है। ऐसा लगता है कि वीरों को स्वयं महाकाल निमंत्रण दे रहा है। धीरवीर पुरुष ही इस प्रलय प्रकोप को सहन कर सकेंगे, जो अपने मन में वीरता के साथ-साथ धैर्य भी रखते हैं। ऐसे ही धीरवीर विनाश की इस भयंकर चोट को सहन कर तथा इसकी उलझी हुई गुत्थियों से खोल सकेंगे। अर्थात् इस महाकाल का वीरतापूर्वक सामना कर सकेंगे।

कर्ण कहते हैं कि हे माते! मुझे यह स्पष्ट दिखाई दे रहा है कि महाकाल के इस ताण्डव नृत्य के अंत में कुछ भी शेष नहीं रहेगा, ऐसे में मैं यह नहीं जानता हूँ कि किस पक्ष को विजयश्री मिलेगी और उसे इसका क्या सुखद परिणाम अथवा दु:खद परिणाम मिलेगा, जिसकी प्राप्ति से उसे संतोष मिल सकेगा। यह ठीक है कि युद्ध में सभी कौरव मारे जाएँगे किन्तु यह भी शाश्वत सत्य है कि अंत में पाण्डवों को भी अत्यन्त दु:ख के सागर में डूबकर मृत्यु की शरण लेनी पड़ेगी।

विशेष— 1. प्रस्तुत पंक्तियों में युद्ध के विनाश परिणाम की स्थिति को स्पष्ट किया है।
2. संसार मर्त्य है, जो निश्चित की नष्ट होगा, इस सत्य को स्पष्ट किया गया है।
3. प्रस्तुत अंश में कर्ण को अत्यंत साहसी दिखाया गया है, जो अपने सम्मुख महाकाल को देखकर भी नहीं घबरा रहा है।
4. प्रस्तुत अंश में मानवीकरण अलंकार दृष्टव्य है।
5. भाषा सरल, रोचक और प्रभावशाली है।

षष्टम सर्ग

(56)

गिरि का उदग्र गौरवाधार, गिर जाय श्रृंग ज्यों महाकार,
अथवा सूना कर आसमान, ज्यों गिरे टूट रवि भासमान।
कौरव-दल का कर तेजहरण, त्यों गिरे भीष्म आलोकवरण।
कुरुकुल का दीपित ताज गिरा, थक कर बूढ़ा जब बाज गिरा,
भूलुंठित पितामह को विलोक, छा गया समर में महाशोक।
कुरुपति ही धैर्य न खोता था, अर्जुन का मन भी रोता था।
रो-धो कर तेज नयन दमका, दूसरा सूर्य सिर पर चमका,
कौरवी तेज दुर्जेय उठा, रण करने को राधेय उठा।
सबके रक्षक गुरु आर्य हुए, सेना नायक आचार्य हुए।
राधेय, किन्तु जिनके कारण, था अब तक किये मौन धारण,
उनका शुभ आशिष पाने को, अपना सद्धर्म निभाने को,
वह शर-शय्या की ओर चला, पग-पग हो विनय-विभोर चला।

शब्दार्थ—गिरि=पर्वत। उदग्र=ऊँचा, वयोवृद्ध। श्रृंग=चोटि। रवि=सूर्य। भासमान=दैदीप्यमान। आलोकवरण=प्रकाश को धारण करना। दीपिता=तेजस्व। विलोक=देखकर। समर=युद्ध। दुर्जेय=मुश्किल से जीता जाने वाला। राधेय=कर्ण। सद्धर्म=कर्तव्य। शर-शय्या=बाणों की सेज।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक कवि दिनकर द्वारा विरचित खण्ड-काव्य 'रश्मिरथी' के षष्टम सर्ग से अवतरित है जिसमें कवि ने महाभारत के युद्ध में भीष्म-पितामह के धराशाही हो जाने पर, आचार्य द्रोण के सेनापतित्व में महारथी कर्ण के युद्धार्थ प्रस्तुत होने का वर्णन किया गया है।

व्याख्या—कविवर दिनकर कहते हैं कि जिस समय भीष्म-पितामह युद्धस्थल में आहत होकर गिरे तो ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे किसी विशाल पर्वत के गौरव का आधार उसकी सर्वोच्च विशाल चोटी टूट कर धराशायी हो गई हो, अथवा ऐसा लग रहा था मानो असीम आकाश को सूना करते हुए चमकता हुआ सूर्य पृथ्वी पर गिर गया हो। भीष्म पितामह के मूर्च्छित और आहत होते ही कौरव सेना

अपना तेज खो बैठी तथा युद्ध भूमि में उपस्थित सभी महारथी उत्साह विहीन हो गये।

दिनकर कहते हैं कि जब पितामह भीष्म घायल होकर और थककर वृद्ध बाज की भाँति पृथ्वी पर गिरे तो उनके साथ-साथ कौरवों का दैदीप्यमान ताज भी गिर गये, ऐसा प्रतीत होने लगा। भूमि पर बिखरे हुए पितामह के तेजस्वी व्यक्तित्व को देखकर सम्पूर्ण युद्धस्थल में शोक-सा छा गया। पितामह की बाणबिद्ध देह को देखकर न केवल दुर्योधन ही अपितु प्रतिद्वन्द्वी पार्थ भी फफक-फफक कर रोने लगे।

जब कौरव दल रो-धोकर शान्त हो गया तो अचानक उनका दूसरा सूर्य अपनी कान्तिमय कलेवर में चमकने लगा और कौरव दल को आशा किरण दिखाई देने लगी। क्योंकि कौरव सेना की ओर से महाबली कर्ण युद्ध के लिये आगे आये। कर्ण को परास्त करना अत्यन्त कठिन था। भीष्म पितामह ने धराशायी हो जाने पर कौरव दल के सेनानायक रूप में आचार्य द्रोण को नियुक्त किया गया और महातेजस्वी कर्ण उनके सानिध्य में युद्ध के लिये खड़े हो गये।

ये वही महाबली कर्ण थे जो अब तक पितामह भीष्म के कारण युद्ध से अलग थे। इसका प्रमुख कारण यह था कि भीष्म पितामह ने कर्ण को विधर्मी और अधर्मी कहकर अपमानित किया था जिससे कर्ण ने यह प्रण किया था कि मैं भीष्मपितामह के सेनापतित्व में युद्ध नहीं करूँगा। युद्ध में प्रस्थान करने से पूर्व भीष्म पितामह से आर्शीवाद लेने का कर्त्तव्य निभाने के लक्ष्य से कर्ण पितामह की शरशैय्या की ओर बढ़े। उस समय कर्ण का हृदय विनम्रता तथा श्रद्धा से आपूरित था।

विशेष— 1. प्रस्तुत अंश में पितामह भीष्म के आहत होकर पृथ्वी पर गिर जाने का मर्मस्पर्शी एवं जीवन्त चित्रण किया है।
2. कर्ण की प्रतिज्ञा का सही अवसर पर सुन्दर उल्लेख किया है।
3. प्रस्तुत अंश में दृष्टान्त, रूपकविश्योक्ति अलंकार का सुन्दर प्रयोग दृष्टव्य है।

(57)

ओ मेरे प्रतिद्वन्द्वी मानी! निश्छल, पवित्र, गुणमय, ज्ञानी,
मेरे मुख से सुन परुष वचन, तुम वृथा मलिन करते थे मन।
मैं नहीं निरा अवशंसी था, मन-ही-मन बड़ा प्रशंसी था।
सो भी इसलिये कि दुर्योधन, पा सदा तुम्हीं से आश्वासन,
मुझको न मानकर चलता था, पग-पग पर रूठ मचलता था।
अन्यथा पुत्र! तुमसे बढ़कर, मैं किसे मानता वीर प्रवर?
पार्थोपम रथी, धनुर्धारी, केशव-समान रणभट भारी,
धर्मज्ञ, धीर, पावन-चरित्र, दीन-दलितों के विहित मित्र,
अर्जुन को मिले कृष्ण जैसे, तुम मिले कौरवों को वैसे।

शब्दार्थ—प्रतिद्वन्द्वी=विपक्षी। मानी=स्वाभिमानी। परुषवचन=कठोर वचन। वृथा=व्यर्थ। मलिन=गंदा। अवशंसी=निन्दक।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक कवि दिनकर द्वारा विरचित खण्ड-काव्य 'रश्मिरथी' के षष्ठ सर्ग से अवतरित है जिसमें भीष्म पितामह महारथी कर्ण की आत्मप्रशंसा करते हैं, यद्यपि वे इस समय आहत अवस्था में शर-शैय्या पर लेटे हुए हैं—

व्याख्या—भीष्म पितामह महावीर कर्ण की आत्म प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि मेरे स्वाभिमानी प्रतिद्वन्द्वी महाबली कर्ण! तुम अत्यन्त निश्छल हृदय, पावन आचरण वाले, गुणों के आधार तथा ज्ञानवान हो। तुम मेरे द्वारा कहे जाने वाले कठोर वचनों को सुनकर व्यर्थ ही अपने मन में दु:खी हो जाया करते थे। किन्तु कर्ण! मैं जो आज तक तुम्हारी निन्दा करता रहा वह केवल बाह्य रूप था। अन्त:करण से मैं सदैव तुम्हारा प्रशंसक रहा।

पितामह कहते हैं कि हे कर्ण! मैं आज तक तुमसे कठोर वचन बोलता रहा, उनके लिये तुम्हें बुरा नहीं मानना चाहिये और न ही उन्हें अन्यथा लेना चाहिये। मैंने इसलिये तुम्हारी अवमानना की थी कि तुमसे सान्त्वना पाकर और तुम्हारे बल पर गर्व कर दुर्योधन मेरी एक भी बात नहीं मानता था। वह तुम्हारा सहयोग पाकर मुझसे बार-बार रूठ जाया करता था और मनमानी किया करता था। हे प्रिय कर्ण! सच तो यह है कि मैं तुमसे बढ़कर किसी अन्य को श्रेष्ठ मानता ही नहीं था।

हे पुत्र! मेरे हृदय में हमेशा तुम्हारे विषय में यह भार था कि तुम अर्जुन के समकक्ष वीर और श्रेष्ठ धनुर्धर हो तथा स्वयं श्रीकृष्ण के समान महान् योद्धा, धर्म के सभी रहस्यों को समझने वाले, धैर्यवान, पवित्र आचरण करने वाले तथा दीन-दु:खियों के परम मित्र हो। इस सन्दर्भ में किसी प्रकार का संदेह नहीं है कि पाण्डवों में अर्जुन को श्रीकृष्ण जैसे योद्धा और धर्मज्ञ का साथ मिला, वैसे ही हमारे कौरवों को तुम्हारे जैसा उद्भट और साहसी योद्धा प्राप्त हुआ।

विशेष— 1. प्रस्तुत अंश में पितामह भीष्म ने कर्ण की अपार प्रशंसा की है।

2. पितामह ने कर्ण को कृष्ण के समान ज्ञानी, मर्मज्ञ, योद्धा और कुशल नेतृत्व करने वाला बताकर स्वयं की भावना का परिचय दिया है।

3. प्रस्तुत अंश में छेकानुप्रास और वृत्यानुप्रास अलंकार का प्रयोग किया है।

(58)

कल तक था पथ शान्ति का सुगम, पर हुआ आज वह अति दुर्गम,
अब उसे देख ललचाना क्या? पीछे को पाँव हटाना क्या।
जय को कर लक्ष्य चलेंगे हम, अरि-दल का गर्व दलेंगे हम।
हे महाभाग, कुछ दिन जीकर, देखिये और यह महासमर,
मुझको भी प्रलय मचाना है, कुछ खेल नया दिखलाना है,
इस दम तो मुख मोड़िये नहीं, मेरी हिम्मत तोड़िये नहीं।
करने दीजिए स्वव्रत पालन, अपने महान् प्रतिभट से रण,
अर्जुन का शीश उड़ाना है, कुरुपति का हृदय जुड़ाना है;
करने को पिता! अगर मुझको, है बुला रहा संगर मुझको।

शब्दार्थ—सुगम=आसान। दुर्गम=मुश्किल। अरिदल=शत्रु सेना। दलेंगे=नष्ट करेंगे। प्रतिभट=विपक्षी योद्धा। संगर=युद्ध।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक दिनकर द्वारा रचित 'रश्मिरथी' खण्ड-काव्य के षष्ट-सर्ग से अवतरित है। जब भीष्म पितामह महाबली कर्ण से युद्ध बन्द करने की इच्छा प्रकट करते हैं तो महाबली कर्ण इस प्रस्ताव को पूरा करने में असमर्थता व्यक्त करते हैं। उसका कारण यह होता है कि अब युद्ध अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुका था, जिसे रोकना सूर्यपुत्र कर्ण को असम्भव था। कर्ण युद्ध को बन्द न करने कि बात पर बल देते हैं।

व्याख्या—कवि दिनकर कहते हैं कि जब पितामह ने युद्ध बन्द करने की इच्छा कर्ण के सम्मुख व्यक्त की तो कर्ण कहते हैं कि हे पितामह! यदि आप इसी प्रस्ताव को कुछ समय पूर्व व्यक्त करते तो कदाचित् शान्ति का मार्ग आसान था। क्योंकि उस समय सभी के विचार-विमर्श होते और शायद युद्ध नहीं होता किन्तु अब यह बहुत कठिन हो गया है। शान्ति का मार्ग बहुत दुष्कर है और अब युद्ध को बन्द कर शान्ति की ओर देखना या शान्ति के मार्ग की ओर अपने मन को ललचाना व्यर्थ है। जब हमने युद्ध के मार्ग पर कदम बढ़ा ही दिया है तो अब उसको पीछे हटाना क्षत्रिय धर्म नहीं है और न ही यह वीरों को शोभा देता है। अब तो हमारा उद्देश्य शत्रु के गर्व को चूर-चूर कर उस पर विजय प्राप्त करना है।

हे पुण्यात्मा! आप कुछ दिनों तक जीवित रहते हुए युद्ध का अवलोकन कीजिये। आप देखिये कि मैं इस युद्ध में किस प्रकार भयंकर नरसंहार करने का चमत्कार दिखाता हूँ। इस समय आप मुझसे मुख मोड़कर मेरे साहस को मत गिराइये। अपितु मुझे युद्ध के लिए आशीर्वाद देकर मेरे उत्साह को बढ़ाने की कृपा कीजिये।

हे महाभाग! अब तो आप मुझे अपनी इस प्रतिज्ञा की पूर्ति करने दीजिये कि मैं अपने समान बलशाली और प्रतिद्वन्द्वी अर्जुन से युद्ध करते हुए उसका शीश काटकर छोड़ूँ। आप मुझे आज्ञा दें। जिससे मैं अर्जुन का शीष काटकर स्व-मित्र दुर्योधन के हृदय को शान्ति पहुँचा सकूँ। हे तात! मेरे नाम को अमर करने के लिए युद्ध मुझे अपनी ओर आमन्त्रित कर रहा है। अत: मुझे युद्ध के लिए आशीर्वाद दीजिये।

विशेष— 1. प्रस्तुत अंश में कवि ने सुन्दर मुहावरों का प्रयोग किया है।

2. क्षत्रिय और सच्चे वीर कदम बढ़ाकर पीछे नहीं हटते हैं, इस बात की पुष्टि की है।

3. भीष्म पितामह दोनों पक्षों के युद्ध को रोकने का इसलिए प्रयास करते हैं कि वे कौरव और पाण्डव—दोनों के प्रति कर्त्तव्यनिष्ठ थे और दोनों के बीच शान्ति चाहते थे।

4. भाषा ओजस्विता लिए हुए है, सरल और प्रभावशाली गुणों से युक्त है।

(59)

''दे अचिर सैन्य को अभयदान, अर्जुन! अर्जुन! हो सावधान,
तू नहीं जानता है यह क्या, करता न शत्रु पर कर्ण दया?
दाहक प्रचण्ड इसका बल है, यह मनुज नहीं कालानल है।
बड़वानल, यम या कालपवन, करते जब कभी कोप भीषण,
सारा सर्वस्व न लेते हैं, उच्छिष्ट छोड़ कुछ देते हैं।
पर, इसे क्रोध जब आता है, कुछ भी न शेष रह पाता है।
'यह महामत्त मानव-कुंजर, कैसे अशंक हो रहा विचर,
कर को जिस ओर बढ़ाता है, पथ उधर स्वयं बन जाता है।
तू नहीं शरासन तानेगा, अंकुश किसका यह मानेगा?
'अर्जुन! विलम्ब पातक होगा, शैथिल्य प्राण-घातक होगा,
उठ जाग वीर! मूढ़ता छोड़, धर धनुष-बाण अपना कठोर।
तू नहीं जोश में आयेगा, आज ही समर चुक जायेगा।''

शब्दार्थ—दाहक=जलानेवाली। प्रचण्ड=तीव्र। कालानल=मौत की अग्नि। बड़वानल=समुद्र में लगनेवाली आग। काल पवन=मौत की हवा। कोप=प्रभाव। महामत्त=गर्व से झुमने वाला। मानवकुंजर=मनुष्य रूप में हाथी। शरासन=धनुष।

प्रसंग—कवि दिनकर द्वारा विरचित खण्ड-काव्य 'रश्मिरथी' के षष्टम खण्ड से अवतरित इस अंश में कौरव-पाण्डव युद्ध की चरम सीमा को बहुत ही रोचक और प्रभावशाली ढंग से स्पष्ट किया गया है। जब कौरव-दल की ओर से महाबली सूर्यपुत्र कर्ण हृदय-विदारक निरन्तर प्रहार करने लगे तो पाण्डव सेना में भगदड़ मच गई। सभी सैनिक अपने प्राण बचाने के लिए त्राहि-त्राहि करने लगे। बड़े-बड़े महारथियों के साहस विचलित होने लगे। तब स्वयं श्रीकृष्ण ने अर्जुन को युद्ध के लिए प्रोत्साहित किया।

व्याख्या—कवि दिनकर समरभूमि की मर्मस्पर्शी स्थिति को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि जब पाण्डवों की सेना धराशायी होने लगी और कर्ण के तीव्र बाणों के प्रहार सहन करने में असमर्थ हो गई तथा सभी योद्धा और महारथी लगभग घबराने लगे तो कृष्ण ने अर्जुन से कहा कि हे पार्थ! तू सावधान होकर शीघ्र ही अपने दल को सांत्वना देने की चेष्टा कर। क्या तू यह नहीं जानता कि कर्ण ने अपने शत्रु पर दया दिखाना नहीं सीखा है। इसकी शक्ति ऐसी भयंकर और प्रदाहक है कि इसे मनुष्य न मानकर यमराज या कालाग्नि समझना चाहिए। इसका क्रोध तो अतुलनीय है। समुद्र की अग्नि-यमराज की कालपवन जब कभी भीषण रूप में क्रोधित होते हैं तब वे अपने सामने पड़ने वाले समस्त पदार्थों का नाश नहीं करते हैं किन्तु कर्ण तो किसी को भी जीवित नहीं छोड़ता है।

श्री कृष्ण कहते हैं कि हे पार्थ! यह कर्ण मनुष्य न होकर मदमस्त हाथी है। उसी के समान युद्ध भूमि में विचरण करता है। यह जिस ओर भी अपनी सूंड को बढ़ा देता है। उसी ओर सैनिक भाग जाते हैं, जिससे इसके लिये स्वयं ही मार्ग बन जाता है।

हे अर्जुन! यदि तू अपने धनुष को नहीं तानेगा तो यह मस्त हाथी और किसी का अंकुश नहीं मान सकता, यह किसी के भी रोके नहीं रुक सकता है।

हे पार्थ! यदि तू अपने धनुष पर शर-सन्धान करने में देर करेगा तो तुझे अपने सैनिकों को मरवाने का पाप लगेगा। यदि तू इस समय शिथिलता दिखायेगा तो वह आत्म-घातक सिद्ध होगी। इसलिये हे अर्जुन! तू अपनी विमूढ़ता को त्याग युद्ध के लिए जाग उठ और अपने शर रूपी अंकुश से इस कर्ण कुंजर की गति को रोक दे। तू यह समझ लेकिन यदि तू उत्साहित होकर बाण-संचालन करते हुए कर्ण को मुँहतोड़ उत्तर नहीं देगा, तो यह महाभारत का युद्ध आज ही समाप्त हो जायेगा और कौरव दल विजयी हो जायेगा।

विशेष— 1. प्रस्तुत अंश में कवि ने महाबली कर्ण के युद्ध-कौशल का सुन्दर वर्णन किया है।
2. कृष्ण के द्वारा अर्जुन को युद्ध के लिए प्रोत्साहन देने की स्थिति को प्रकट किया है।
3. भाषा ओजस्वीपूर्ण एवं प्रभावशाली है।
4. व्यतिरेक, सांगरूपक अलंकारों का प्रयोग किया है।

(60)

सुत के वध की सुन कथा पार्थ का, दहक उठा शोकार्त्त हृदय,
फिर किया क्रुद्ध होकर उसने, तब महा लोम-हर्षक निश्चय,
'कल अस्तकाल के पूर्व जयद्रथ को न मार यदि पाऊँ मैं,
सौगन्ध धर्म की मुझे, आग में स्वयं कूद जल जाऊँ मैं।'
तब कहते हैं अर्जुन के हित, हो गया प्रकृति-क्रम विपर्यस्त,
माया की सहसा शाम हुई, असमय दिनेश हो गये अस्त।
ज्यों-त्यों करके इस भाँति वीर अर्जुन का वह प्रण पूर्ण हुआ,
सिर कटा जयद्रथ का, मस्तक निर्दोष पिता का चूर्ण हुआ।

शब्दार्थ—शोकार्त्त=शोकाकुल। लोमहर्षक=हृदय विदारक। सहसा=अचानक। दिनेश=सूर्य।

प्रसंग—रामधारीसिंह दिनकर द्वारा विरचित प्रस्तुत खण्ड-काव्य 'रश्मिरथी' के षष्ठम सर्ग की इन पंक्तियों में युद्ध करते हुए अर्जुन के मन में जयद्रथ के प्रति क्रूरता का भाव व्यक्त किया है तथा अभिमन्यु की मृत्यु का अहसास जयद्रथ के लिए प्राणघातक बताया है और अर्जुन की क्रूरता को स्पष्ट किया है।

व्याख्या—कवि दिनकर अर्जुन की मन:स्थिति और उनके अन्त:करण में उत्पन्न क्रोधाग्नि की ज्वलन्त स्थिति को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि अभिमन्यु के वध की खबर सुनकर अर्जुन के शोकाकुल हृदय में प्रतिहिंसा की आग जल उठी और उसने क्रोधित होकर रोंगटे खड़े कर देने वाली यह प्रतिज्ञा कर ली कि यदि मैं कल सूर्यास्त से पूर्व ही जयद्रथ को दिवंगत नहीं कर पाऊँगा तो मैं धर्म की शपथ लेकर यह निश्चय व्यक्त करता हूँ कि मैं स्वयं चिता में जलकर भस्म हो जाऊँगा।

ऐसा प्रसिद्ध है कि अर्जुन की इस प्रतिज्ञा को पूर्ण कराने के लिए प्रकृति की कार्यप्रणाली में फेर-बदल आ गया था। उस दिन माया के कारण संध्या समय के कुछ पूर्व हो गयी, जिससे सूर्य भी समय से पूर्व ही अस्त हो गया था। दिन भर अर्जुन से छिपा रहने वाला जयद्रथ जब चिता में जलने को प्रस्तुत अर्जुन का उपहास करने के लिए जयद्रथ उसके सामने आया तो अचानक ही सूर्य निकल आया था और दिवस शेष पाकर अर्जुन ने उसको मार डाला। जयद्रथ का शीश जब उसके पिता की गोद में जाकर गिरा और वह घबराहट में खड़ा हो गया, तो उस निरपराध का शीश बिना किसी दोष के ही खण्ड-खण्ड हो गया था।

विशेष—
1. प्रस्तुत अंश में कवि ने अर्जुन को प्रतिज्ञाबद्ध तथा अपने प्रण को पूरा करने वाला व्यक्तित्व के रूप में स्पष्ट किया है।
2. अन्याय के विरुद्ध प्रकृति भी साथ देती है, इस बात की पुष्टि की गई है।
3. जयद्रथ जैसे व्यक्ति की मृत्यु को स्पष्ट कर यह बताया है कि कृष्ण निश्चित रूप से धर्म के पक्षधर थे और अधर्म का विनाश करने में अर्जुन का साथ दे रहे थे।
4. भाषा सरल, रोचक और प्रभावशाली है।
5. 'मस्तक निर्दोष पिता का चूरण हुआ' इस अन्तर्कथा की ओर संकेत है कि जयद्रथ के पिता को वरदान मिला था कि जो उसके पिता का शीर्ष गिरायेगा, उसके सिर के टुकड़े-टुकड़े हो जायेंगे।

(61)

''इसीलिये ध्येय में नहीं, धर्म तो सदा निहित, साधन में है,
वह नहीं किसी भी प्रधन-कर्म, हिंसा, विग्रह या रण में है।
तब भी जो नर चाहते, धर्म, समझे मनुष्य संहारों को
गूँथना चाहते वे, फूलों के साथ तप्त अंगारों को।
वासना-वह्नि से जो निकला, कैसे हो वह संयुग कोमल?
देखने हमें देगा वह क्यों करुणा का पन्थ सुगम शीतल?
जब लोभ सिद्धि का आँखों पर, माँड़ी बन कर छा जाता है,
तब वह मनुष्य से बड़े-बड़े दुश्चिन्त्य कृत्य करवाता है।''

शब्दार्थ—ध्येय=लक्ष्य। विग्रह=बिखराव। तप्त=जलते हुए। वासना-वह्नि=माया की आग। करुणा=दया। सुगम=आसान। माँड़ी=धुन्ध। दुश्चिन्त्य कृत्य=बुरे कार्य।

प्रसंग—कवि रामधारीसिंह दिनकर द्वारा विरचित प्रस्तुत खण्ड-काव्य 'रश्मिरथी' के षष्ठम सर्ग से अवतरित प्रस्तुत अंश में स्पष्ट किया है कि धर्म और सफलता का कोई सम्बन्ध नहीं होता है, इसलिए यह स्पष्ट है कि धर्म सफलता के स्थान पर उस उद्देश्य की प्राप्ति के साधन में छुपे रहते हैं।

व्याख्या—कवि धर्म और सफलता के बीच अन्तराल को स्पष्ट करे हुए कहते हैं कि धर्म और सफलता का कोई सम्बन्ध नहीं है। इसलिए यह सिद्ध होता है कि धर्म सफलता के स्थान पर उस उद्देश्य की प्राप्ति के साधनों में छिपा रहता है। उसमें हिंसा प्रधान कर्मों का कोई अस्तित्व नहीं होता। जो लोग यह इच्छा किया करते हैं कि नर-संहार को भी धर्म समझ लिया जाये, वे दहकते हुए अंगारों के साथ फूलों को गूँथने की अनुचित चेष्टा किया करते हैं। इस तरह हिंसा प्रधान धर्म का सम्बन्ध किसी भी प्रकार उचित नहीं माना जा सकता।

युद्ध और धर्म के संसर्ग का अनाचस्यसिद्ध करते हुए कविवर कहते हैं कि युद्ध दूसरों को विनष्ट करने की इच्छा रूपी अग्नि से जन्म लेता है, उस युद्ध को कोमल या करुण कैसे माना जा सकता है। क्रोध और घृणा की ज्वाला से उत्पन्न हुआ युद्ध हमें करुणा का सुगम मार्ग कैसे दे सकता है? क्योंकि मनुष्य की आँखों पर सफलता रूपी माड़ी बढ़ जाती है और उसका विवेक लुप्त हो जाता है और उस दिशा में मानव दुष्कर्म करने लगता है।

विशेष—1. प्रस्तुत अंश में यह स्पष्ट किया है कि उत्तम लक्ष्य के साथ-साथ साधन भी उत्तम होने चाहिए।

2. प्रस्तुत अंश में मुहावरों का सुन्दर प्रयोग है, भाषा सरल, रोचक और प्रभावशाली है।

(62)

''हो छिपा जहाँ भी पार्थ, सुने, अब हाथ समेटे लेता हूँ,
सबके समक्ष द्वैरथ-रण की, मैं उसे चुनौती देता हूँ।
हिम्मत हो तो वह बढ़े, व्यूह से निकल जरा सम्मुख आये,
दे मुझे जन्म का लाभ और साहस हो तो खुद भी पाये।'
पर, चतुर पार्थ-सारथी अलग, रथ अलग नचाये फिरते थे,
कर्ण के साथ द्वैरथ-रण से, शिष्य को बचाये फिरते थे।
चिन्ता थी, एकघ्नी कराल, यदि द्विरथ-युद्ध में छूटेगी।
पार्थ का निधन होगा, किस्मत, पाण्डव-समाज की फूटेगी।''

शब्दार्थ—समक्ष=सामने। चुनौती=चेतावनी पूर्ण आह्वान। व्यूह=जाल। कराल=विनाशक।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक खण्ड-काव्य 'रश्मिरथी' के षष्ठम सर्ग से अवतरित है, जिसके सर्जक रामधारीसिंह दिनकर हैं। प्रस्तुत पंक्तियों में कर्ण को युद्धभूमि में अत्यधिक क्रोधमग्न और प्रचण्ड ज्वाला उगलने वाला बताया है, जो कौरवों की ओर से पाण्डवों के विपक्ष में घमासान युद्ध कर रहे हैं, साथ ही अर्जुन को विद्रोह भरी चुनौती देते हुए ललकार रहे हैं। कर्ण की वीरता, घमासान युद्ध और कृष्ण के द्वारा अर्जुन को बचाने के प्रयास प्रस्तुत किए गये हैं।

व्याख्या—समर भूमि में घमासान युद्ध करते हुए महाबली कर्ण अर्जुन को विद्रोह भरी चुनौती देकर ललकारते हैं और युद्धक्षेत्र में आह्वान करते हैं। कर्ण कहते हैं कि हे अर्जुन! तुम जहाँ कहीं भी छुपे हुए हो, मेरी ललकार सुन लो। मैं इस समय युद्ध की भीषणता का रोक रहा हूँ तथा द्वैरथ-युद्ध की चुनौती दे रहा हूँ। यदि तुम में साहस हो तो इस चुनौती को स्वीकार करके व्यूह से निकलने का साहस करो तथा मेरे सामने आ जाओ। साथ ही वीरता के साथ मुझसे युद्ध करो। या तो तुम मुझे युद्ध में लाभ प्रदान करो, जिसमें मेरा जीवन हो या तुम स्वयं लाभान्वित हो जाओ।

कर्ण अर्जुन को जैस-जैसे ललकार रहे थे, वैसे-वैसे अर्जुन के कुशल सारथी श्रीकृष्ण ने जान-बूझकर युद्ध की चुनौती को स्वीकार करते हुए भी अर्जुन के रथ को कर्ण से दूर रखे हुए थे। वे नहीं चाहते थे कि कर्ण और अर्जुन के बीच द्वैरथ-युद्ध हो। क्योंकि उन्हें चिन्ता

थी कि अगर यह युद्ध हुआ तो कर्ण निश्चित ही एकघ्नी का प्रयोग करेंगे और एकघ्नी एक ऐसा कालजयी बाण था, जो निश्चित ही अर्जुन के प्राणों को हर लेता और कर्ण यही चाहते थे कि वे एकघ्नी का प्रयोग करें और अर्जुन के प्राण लें। यदि ऐसा हुआ तो पाण्डव-सेना के भाग्य फूट जाएँगे और अर्जुन मारे जाएँगे।

विशेष—1. प्रस्तुत अंश में स्पष्ट किया है कि श्रीकृष्ण रणनीति के विशेषज्ञ थे। वे हर सम्भव अर्जुन को बचाने का प्रयास कर रहे थे। 2. प्रस्तुत अंश में छेकानुप्रास अलंकार है।

(63)

''सुन सहम उठा राधेय, मित्र की ओर फेर निज चकित नयन,
झुक गया विवशता में कुरुपति का अपराधी, कातर आनन।
मन-ही-मन बोला कर्ण, 'पार्थ! तू वय का बड़ा बली निकला,
या यह कि आज फिर एक बार, मेरा ही भाग्य छली निकला।'
रहता आया था मुदित कर्ण जिसका अजेय सम्बल लेकर,
था किया प्राप्त जिसको उसने, इन्द्र को कवच-कुण्डल देकर,
जिसकी करालता में जय का, विश्वास अभय हो पलता था,
केवल अर्जुन के लिए जिसे राधेय जुगाये चलता था,
वह काल-सर्पिणी की जिह्वा, वह अटल मृत्यु की सगी स्वसा,
घातकता की वाहिनी, शक्ति यम की प्रचण्ड, वह अनल-रसा,
लपलपा आग-सी एकघ्नी तूणीर छोड़ बाहर आयी,
चाँदनी मन्द पड़ गयी, समर में दाहक उज्ज्वलतर छायी।''

शब्दार्थ—चकित नयन=आश्चर्य से युक्त नेत्र। विवशता=मजबूरी। कातर आनन=मुर्झाया हुआ चेहरा। वय=आयु। सम्बल=सहारा। अजय=जिसे जीता न जा सके। अनल-रसा=आग उगलने वाली।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्यपुस्तक राष्ट्रकवि सिंह दिनकर द्वारा विरचित खण्ड-काव्य 'रश्मिरथी' के षष्ठम सर्ग से अवतरित है, जिसमें कवि ने बताया है कि युद्ध-भूमि में महाबली कर्ण के पास देवराज इन्द्र द्वारा दी गई अमोघ शक्ति एकघ्नि प्रदान की, जिसके बल पर महाबली कर्ण समर में अपना कुशल योद्धा का व्यक्तित्व प्रस्तुत कर रहे थे, किन्तु कृष्ण ने अपनी रणनीति के अनुसार भीम-पुत्र घटोत्कच को आमंत्रित किया जो कि हिडम्बा राक्षसी से जन्मा था। कृष्ण यह जानते थे कि महाबली कर्ण की शक्ति एकघ्नी निश्चित ही घटोत्कच के विनाश का कारण बनेगी और अर्जुन हमेशा-हमेशा के लिए खतरे से बाहर हो जाएँगे।

व्याख्या—जब घटोत्कच समर में प्रकट हुआ तो उसकी भयंकर मार-काट से घबराकर दुर्योधन और कर्ण भी आश्चर्य में पड़ गए। वह एक विशालकाय दानव रूप में आकाश मार्ग से उतरा। उसने कौरवों की सेना का विध्वंस शुरु किया, जिससे घबराकर दुर्योधन ने कर्ण से कहा कि हे महाबली कर्ण! अब तुम एकघ्नी का प्रयोग करने में लेश मात्र भी विलम्ब न करो, अन्यथा सम्पूर्ण कौरववंश कि सेनाएँ एक ही पल में नष्ट हो जाएँगी। तुम एकघ्नी का प्रयोग करके हमारी सबकी मृत्यु से छुटकारा दिलाओ। दुर्योधन के ऐसे करुण शब्द सुनकर कर्ण सहम उठे और अपने परम मित्र की ओर आश्चर्यचकित होकर देखने लगे। यद्यपि दुर्योधन अच्छी तरह से जानता था कि जिस एकघ्नि को कर्ण ने अर्जुन के लिए रख रखा है, उसका प्रयोग इस समय करने के लिए कर्ण को तैयार करना न्यायोचित नहीं है। जब कर्ण ने दुर्योधन को चकित नेत्रों से देखा तो दुर्योधन के कातर नेत्र धरा की ओर झुक गए। चूँकि कर्ण दुर्योधन के अभिन्न मित्र थे और वे अपने मित्र की इच्छा की अवहेलना नहीं कर सकते थे, ऐसी दुविधापूर्ण स्थिति में वे मन ही मन सोचने लगे कि वास्तव में अर्जुन आयु की दृष्टि से बड़ा ही भाग्यवान है।

कर्ण द्वारा घटोत्कच पर एकघ्नी का प्रयोग करने का निश्चय कर लेने के सन्दर्भ में कवि दिनकर कहते हैं कि एकघ्नी, जिसके दुर्जेय आश्रय के भरोसे कर्ण यह सोचकर निश्चिन्त रहते थे कि इसके रहते हुए मेरा कुछ नहीं बिगड़ सकता है। जिसे कर्ण ने स्वयं देवराज

इन्द्र से प्राप्त किया था। जिसकी भयंकरता के कारण उन्हें हमेशा अपनी विजय का विश्वास रहता था और जिसे उन्होंने अर्जुन का वध करने के लिए सुरक्षित रख रखा था, उसी को मित्र के आग्रह पर विवश होकर घटोत्कच का विनाश करने के लिए प्रयोग करना पड़ा।

कर्ण द्वारा एकघ्नी का प्रयोग करने के लिए तरकस से निकालते समय एकघ्नी कालसर्पिनी की जीभ के समान भयंकर थी। कभी न टलने वाली मृत्यु की वह सगी बहन थी, वह यमराज की भयंकर शक्ति समान थी। उसका रस अग्निमय था अर्थात् वह भयंकर ज्वाला स्वरूप थी, ऐसी एकघ्नी को जब कर्ण ने लपलपाती हुई अग्नि के समान तरकस से निकाला तो युद्धस्थल के अन्य अस्त्र-शस्त्र के प्रकाश मन्द पड़ गये और युद्धस्थल में अत्यधिक प्रवाहक प्रकाश छा गया।

विशेष— 1. प्रस्तुत अंश में कवि ने कृष्ण की रणनीति का सुन्दर चित्रण किया है।
2. युद्ध का स्वाभाविक वर्णन है।
3. प्रस्तुत अंश में उल्लेख अलंकार का सुन्दर प्रयोग किया गया है।

(64)

''लेकिन समर को जीत कर, निज वाहिनी को प्रीत कर,
वलयित गहन गुंजार से, पूजित परम जयकार से,
राधेय संगर से चला, मन में कहीं खोया हुआ,
जय-घोष की झंकार से आगे कहीं सोया हुआ।
हारी हुई पाण्डव-चमू में हँस रहे भगवान् थे,
पर जीत कर भी कर्ण के हारे हुए-से प्राण थे।
क्या, सत्य ही, जय के लिए केवल नहीं बल चाहिए ?
कुछ बुद्धि का भी घात, कुछ छल-छद्म कौशल चाहिए ?
क्या भाग्य का आघात है, कैसी अनोखी बात है ?''

शब्दार्थ—वलयित=गगनचुम्बी। पूजित=पूज्य। राधेय=कर्ण। समर=युद्धभूमि। चमू=सेना। आघात=युद्ध।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक रामधारीसिंह दिनकर द्वारा विरचित खण्ड-काव्य 'रश्मिरथी' के षष्ठम सर्ग से अवतरित है, जिसमें स्पष्ट किया है कि जहाँ एक ओर घटोत्कच की मृत्यु पर कौरव-पक्ष की सेना के सभी महारथियों में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई, वहीं दूसरी ओर महाबली कर्ण घटोत्कच की मृत्यु पर प्रसन्न नहीं थे, क्योंकि उस राक्षस की मृत्यु महाबली कर्ण का लक्ष्य नहीं था और जिस लक्ष्य को लेकर वे आज तक अपनी वीरता को जीवित रखे हुए थे, वह लक्ष्य अब उनसे हमेशा-हमेशा के लिए दूर होता दिखाई दे रहा था। इसलिए उन्हें लेशमात्र प्रसन्नता नहीं थी।

व्याख्या—कवि दिनकर घटोत्कच की मृत्यु के उपरान्त दोनों पक्षों (कौरव-पाण्डव) के सैनिकों व महारथियों की मन:स्थिति का चित्रण करते हुए कहते हैं कि कर्ण अपनी उस एकघ्नी को खो बैठे थे, जिसे उन्होंने देवराज इन्द्र के द्वारा अपने कवच-कुण्डल के बदले में प्राप्त किया था तथा जिसे उसने अपने घोर-प्रतिद्वन्द्वी अर्जुन को मारने रख रखा था। यही वजह थी कि वह युद्ध जीतने के बाद भी उदास थे और वह खोया-खोया सा लौट रहा था। उसको अपनी जय-जयकार के शब्द नहीं सुनाई दे रहे थे। अपितु वह यह सोच रहा था कि भाग्य बड़ा ही छली है। मुझसे वह एकघ्नी भी जाती रही जो मैंने अर्जुन को मारने के लिए रखी थी।

उधर दूसरी ओर पाँडव सेना में श्रीकृष्ण पाँडव सेना के पराजित होने पर भी प्रसन्न हो रहे हैं जबकि कर्ण जीतने पर भी उदास है। इससे इसी बात का पता चलता है कि विजय के लिए शूरवीरता ही आवश्यक नहीं है, अपितु उसके साथ-साथ कूटनीतिक चालों और छल-कपट में भी निपुण होना आवश्यक है।

कर्ण की दशा के प्रति कवि कहते हैं कि भाग्य के इस विचित्र घोर निष्ठुर प्रहार को तो देखो कि किसी के तो आँसुओं में मोती छिपे हुए थे। जबकि कौरवों के आनन्दोल्लास में भी कर्ण का अभिशाप हँस रहा था। अत: कर्ण एक एकघ्नी के अभाव से टूट गया था।

विशेष—1. इन पंक्तियों में कर्ण की मनोदशा का बड़ा ही मार्मिक वर्णन किया है।
2. इन पंक्तियों में रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

सप्तम सर्ग

(65)

''अंगार-वृष्टि पा धधक उठे जिस तरह शुष्क कानन का तृण,
सकता न रोक शस्त्री की गति पुंजित जैसे नवनीत मसृण।
यम के समक्ष जिस तरह नहीं चल पाता बद्ध मनुज का वश,
हो गयी पाण्डवों की सेना त्यों ही बाणों से बिद्ध, विवश।
भागने लगे नरवीर छोड़ वह दिशा जिधर भी झुका कर्ण,
भागे जिस तरह लवा का दल सामने देख रोषण सुपर्ण!
'रण में क्यों आये आज?' लोग मन-ही-मन में पछताते थे,
दूर से देखकर भी उसको, भय से सहमे सब जाते थे।''

शब्दार्थ—अंगार-वृष्टि=जलते हुए अंगारों की वर्षा। शुष्क कानन=सुखा बाग। तृण=पत्ते। नवनीत=मक्खन।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक रामधारीसिंह दिनकर द्वारा विरचित खण्ड-काव्य 'रश्मिरथी' के सप्तम सर्ग से अवतरित है, जिसमें कवि ने बताया है कि जैसे-जैसे महाबली कर्ण की मृत्यु निकट आ रही थी, वैसे-वैसे उसका तेज और युद्ध-कौशल भयंकर होता जा रहा था। वो महाकाल का दूसरा रूप बन गया था। उसके विनाशक युद्ध के सामने पाण्डवों की सेना अत्यन्त दयनीय हो गई थी।

व्याख्या—कवि दिनकर महाबली कर्ण की युद्धस्थिति व उसके भयंकर रूप का वर्णन करते हुए कहते हैं कि जिस समय कर्ण वीरगति को प्राप्त करने वाले दिनों से गुजर रहे थे, उन दिनों में उनका तेज और युद्धकौशल भयंकर होता जा रहा था, वो युद्ध में विनाशक और विस्फोटक रूप लेकर शत्रु-सेना का संहार कर रहे थे, जिसे देखकर पाण्डवों की दशा देखने योग्य हो गई थी। जैसे यमराज के जाल में फँसे मरणासन्न व्यक्तियों की यमराज के सामने एक नहीं चलती अथवा जैसे सूखे हुए लता-पत्रादि में अंगारों की वर्षा होने पर आग लग गयी हो, जैसे मक्खन का कोमल और चिकना ढेर शस्त्रों के आघात को रोक नहीं पाता अपितु वह ढेर चाहे जितना भी बड़ा हो-तो भी शस्त्र से आसानी से कट जाता है।

आगे कविवर कहते हैं कि कर्ण जिस दिशा में भी युद्ध आरम्भ करता था, उसी दिशा में शूरवीर वहाँ से हट जाते थे। जैसे बाज को देखकर पक्षी भागने लगते हैं। पाण्डव पक्ष के योद्धा गण यह सोचकर पश्चाताप कर रहे थे कि हम आज युद्ध करने ही क्यों आये थे। वे कर्ण को यदि अपने से दूर भी युद्ध करता देखते थे तो भी उनके हृदय दहकने लगते थे।

विशेष— 1. जिस प्रकार बुझने से पूर्व दीपक टिमटिमाने लगता है और अधिक तेज हो जाता है, उसी प्रकार कर्ण अन्तिम दिनों में बड़ा भयंकर युद्ध कर रहा है।

2. इन पंक्तियों में उपमा अलंकार है।

(66)

''इतने में कुटिल नियति प्रेरित पड़ गये सामने धर्मराज,
टूटा कृतान्त-सा कर्ण, कोक पर पड़े टूट जिस तरह बाज।
लेकिन, दोनों का विषम युद्ध क्षण भर भी नहीं ठहर पाया,
सह सकी न गहरी चोट, युधिष्ठिर की मुनि-कल्प, मृदुल काया।
भागे वे रण को छोड़, कर्ण ने झपट दौड़कर गहा ग्रीव,
कौतुक से बोला, 'महाराज! तुम तो निकले कोमल अतीव।
हाँ, भीरु नहीं, कोमल कहकर ही, जान बचाये देता हूँ।
आगे की खातिर एक युक्ति भी सरल बताये देता हूँ।'
'हैं विप्र आप, सेविये धर्म तरु-तले कहीं, निर्जन वन में,

क्या काम साधुओं का, कहिये, इस महाघोर, घातक रण में?
मत कभी क्षात्रता के धोखे, रण का प्रदाह झेला करिये,
जाइये, नहीं फिर कहीं गरुड़ की झपटों से खेला करिये।' ''

शब्दार्थ—कुटील=टेढ़े। नियती=मंशा। प्रेरित=प्रेरणा पाकर। कोक=शव। मृदुल-काया=कोमल शरीर। कौतुक=कोलाहल। भीरु=डरपोक। विप्र=ब्राह्मण। सेविये=साधना कीजिए। तरु तले=पेड़ के नीचे।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक रामधारीसिंह दिनकर द्वारा विरचित खण्ड-काव्य 'रश्मिरथी' के सप्तम सर्ग से अवतरित है, जिसमें बताया है कि महाबली कर्ण युद्धभूमि में घमासान युद्ध कर रहे थे। उधर वे युधिष्ठिर के प्राण हरने की स्थिति में आ गये किन्तु वे कुन्ति को वचन दे चुके थे कि अर्जुन के अतिरिक्त किसी भी अन्य पाण्डव बन्धु का वध नहीं करेंगे। ऐसी स्थिति में कर्ण ने धर्मराज युधिष्ठिर को उपहास करते हुए छोड़ दिया।

व्याख्या—कवि दिनकर कर्ण की युद्ध-स्थिति का वर्णन करते हुए कहते हैं कि युधिष्ठिर कर्ण के वज्र तुल्य प्रहारों को सहने में असमर्थ होकर जब युद्ध स्थल से भाग उठे तो कर्ण ने दौड़कर उनकी गरदन जा पकड़ी और उनका उपहास करते हुए कहने लगे—महाराज! आप तो बहुत ही कोमल शरीर वाले सिद्ध हुए। मैं आपको डरपोक तो नहीं पर कोमल बताते हुए आपके प्राण बक्शे दे रहा हूँ—और आपको एक ऐसा भी उपाय बता देता हूँ जिससे आपको फिर कभी ऐसा कष्ट न झेलना पड़े।

वह उपाय यह है कि आपका शरीर क्षत्रियों जैसा दृढ़-कठोर न होकर ब्राह्मणों के समान कोमल है तथा उसका स्वप्न भी ब्राह्मणों जैसा है। इसलिए आप ब्राह्मणों के समान ही किसी एकान्त में वृक्षों के नीचे साधना किया कीजिये। आप स्वयं ही सोचिये कि आप साधु-पुरुषों को भयंकर युद्ध की मारकाट से क्या काम है। अत: आप सबसे आगे स्वयं को क्षत्रिय समझते हुए युद्ध की आग से मत खेला करिये। मैं इस बार तो आपको छोड़ देता हूँ कि भविष्य में आप गरुड़ जैसे वीर पुरुषों के प्रहार को सहने के लिए युद्धभूमि में मत आया कीजिये।

विशेष—1. इन पंक्तियों में कर्ण ने युधिष्ठिर को कायर समान कहकर अपमानित किया है।
2. इन पंक्तियों में रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

(67)

''हँसकर बोला राधेय, 'शल्य, पार्थ की भीती उसको होगी,
क्षयमान् क्षणिक, भंगुर शरीर पर मृषा प्रीति जिसको होगी।
इस चार दिनों के जीवन को, मैं तो कुछ नहीं समझता हूँ।
करता हूँ वही, सदा जिसको भीतर से सही समझता हूँ।
पर ग्रास छीन, अतिशय बुभुक्षु, अपने इन बाणों से मुख से,
होकर प्रसन्न हँस देता हूँ, चंचल किस अन्तर के सुख से,
यह कथा नहीं अन्त:पुर की, बाहर मुख से कहने की है,
यह व्यथा धर्म के वर-समान, सुख-सहित, मौन सहने की है।
सब आँख मूँद कर लड़ते हैं, जय इसी लोक में पाने को,
पर, कर्ण जूझता है कोई, ऊँचा सद्धर्म निभाने को,
सबके समेत पंकिल सर में, मेरे भी चरण पड़ेंगे क्या?
ये लोभ मृत्तिकामय जग के आत्मा का तेज हरेंगे क्या?''

शब्दार्थ—राधेय=कर्ण। भीती=डरपोक। क्षयमान=नाशवान। भंगुर=नष्ट होने वाली। मृषा=व्यर्थ। अतिशय=अत्यधिक।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक रामधारीसिंह दिनकर द्वारा विरचित खण्ड-काव्य 'रश्मिरथी' के सप्तम सर्ग से अवतरित है, जिसमें स्पष्ट किया है कि जब महाबली कर्ण जान-बूझकर धर्मराज युधिष्ठिर को अपने हाथ में आने के बाद भी जीवित छोड़ देते हैं तो शल्य कर्ण को डरपोक और कायर के आक्षेप से सम्बोधित करते हैं। जिस पर कर्ण शल्य को अपने नीडर होने की बात कहकर शरीर को नाशवान् बताते हैं।

व्याख्या—शल्य के मुख से आक्षेप सुनकर कि तू पाँडवों को इसलिए जीवित छोड़ रहा है क्योंकि तू अर्जुन से डरता है। कर्ण

हँसते हुए कहता है कि अरे शल्य! अर्जुन से तो वह डरेगा जो अपने क्षीण होने वाले, क्षण भर रहने वाले नाशवान शरीर से झूठा प्रेम करता होगा। मैं तो इस बात को अच्छी तरह समझता हूँ कि मेरा यह जीवन चार दिन का खेल है। इसलिये मुझे अपने प्राणों का भय नहीं है और न अपनी अन्तरात्मा की पुकार के अनुसार कार्य किया करता हूँ।

मैंने अपने अतीव भावों से उनके ग्रास क्यों छीन लिये हैं और पाण्डवों का वध क्यों नहीं किया और मुझे इसमें भी प्रसन्नता का अनुभव क्यों हो रहा है। यह बात: अन्त:पुर के रहस्य के समान गुप्त रखने की है। उसे तुम्हें नहीं बताया जा सका। मेरे इस कृत्य के पीछे व्यथामय कहानी छिपी है। उसको मुझे धर्म के वरदान की तरह मौन रहते हुए ही सुखपूर्वक सहन करना चाहिए। तुम्हें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि मैं उन वीरों की तरह नहीं हूँ जो आगा-पीछा न सोचकर अधर्मपूर्वक युद्ध किया करते हैं। मैं तो उत्तम धर्म को निभाने की दृष्टि से युद्ध किया करता हूँ। क्या तुम जिस प्रकार अन्य योद्धाओं ने अपने-अपने चरित्र को धब्बा लगा दिया है, उस प्रकार कर्ण के भी चरणों को पाप-पंक में लिप्त करना चाहते हो। ऐसा नहीं हो सकता है कि इस क्षुद्र जगत् के लोग मेरी भी आत्मा के तेज को हरके उसे कलुषित बना दें।

विशेष—1. इन पंक्तियों में जीवन की अपेक्षा कर्ण ने धर्म को अधिक उत्तम माना है।

2. इसमें मुहावरों का भी प्रयोग है।

(68)

''बोला, 'शाबाश, वीर अर्जुन! यह खूब गहन सत्कार रहा,
पर, बुरा न मानो, अगर आन कर मुझ पर वह बेकार रहा।
मत कवच और कुण्डल विहीन, इस तन को मृदुल कमल समझो,
साधना-दीप्ति वक्षस्थल को, अब भी दुर्भेद्य अचल समझो।'
'अब लो मेरा उपहार, यही यमलोक तुम्हें पहुँचायेगा,
जीवन का सारा स्वाद तुम्हें बस, इसी बार मिल जायेगा।
कह इस प्रकार राधेय अधर को दबा रौद्रता में भरके,
हुंकार उठा घातिका शक्ति विकराल शरासन पर धरके।'
सँभलें जब तक भगवान्, नचायें इधर-उधर किंचित् स्यन्दन।
तब तक रथ में ही, विह्वल, बिद्ध, मूर्च्छित हो गिरा पृथानन्दन।
कर्ण का देख यह समर-शौर्य संगर में हा-हाकार हुआ,
सब लगे पूछने, ''अरे, पार्थ का क्या सचमुच संहार हुआ?''

शब्दार्थ—गहन=गहरा। मृदुल=कोमल। वक्षस्थल=सीना। दुर्भेद्य=जिसको भेदा न जा सके। अचल=स्थिर। रौद्रता=रुद्र रूप से युक्त।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक रामधारीसिंह दिनकर द्वारा विरचित खण्ड-काव्य 'रश्मिरथी' के सप्तम सर्ग से अवतरित है, जिसमें कवि ने अर्जुन और कर्ण के बीच होने वाले युद्ध का जीवन्त वर्णन किया है। कर्ण ने अर्जुन पर और अर्जुन ने कर्ण पर जवाबदेह बाणों के प्रहारों की वर्षा कर दी। अर्जुन के तीव्र बाण प्रहार को सहन करते हुए कर्ण ने भयंकर गर्जना की और चुनौती देते हुए बोले—

व्याख्या—वाह अर्जुन! तुम वास्तव में धन्य हो कि तुमने अपने बाण-प्रहार द्वारा मेरा भली प्रकार सत्कार किया है, हाँ तुम्हें इस बात का पछतावा न होना चाहिये कि तुम्हारा बाण मुझे गहरा आघात नहीं पहुँचा सका और प्राय: निष्फल ही सिद्ध हुआ है। कारण यह है कि यद्यपि मेरा शरीर इस समय कवच और कुण्डलों से रहित है। फिर भी यह कमल पुष्प जैसा कोमल नहीं है, जैसा कि तुमने सोच रखा होगा। मैंने अपने शरीरांगों को कठिन व्यायामों द्वारा अत्यधिक सुदृढ़ बना रखा है, जिससे मेरी छाती अब भी चट्टान के समान अभेद्य है।

कर्ण फिर कहते हैं कि अर्जुन मैंने तेरे प्रहार को तो सहन कर लिया है। अब तू भी मेरे प्रहार की भेंट को स्वीकार कर जो तुझे यमलोक का पथिक बना देगा। मेरे इस एक ही आघात से तुझे अपने जीवन का समस्त आस्वादन मिल जायेगा। यह कहकर क्रोधोन्मत्त कर्ण ने अपने होठ को दाँतों तले दबाते हुए, विकराल हुँकार भरी और एक भयंकर एवं प्राणघातक बाण को धनुष पर चढ़ाकर अर्जुन पर छोड़ दिया।

कवि कहते हैं कि कर्ण के भयंकर बाण-प्रहार को बचाने के लिए जब तक श्रीकृष्ण संभलकर रथ को इधर-उधर नचा पाते, उससे पूर्व ही उस शक्ति ने अर्जुन को बेध डाला और वह व्याकुलता के कारण रथ में ही मूर्च्छित होकर गिर गया। कर्ण के इस अतुल

पराक्रम को देखकर युद्धस्थल में हाहाकार मच गया और लोग एक-दूसरे से पूछने लगे—अरे क्या अर्जुन वास्तव में मारा गया है।

विशेष—1. प्रस्तुत अंश में वृत्यानुप्रास और छेकानुप्रास अलंकार हैं।

2. इसमें कर्ण के भाव बड़े ही भव्य हैं। वह अपने पराक्रमी शत्रु को भी साधुवाद देने में नहीं हिचकिचाता।

(69)

''राधेय जरा हँसकर बोला, 'रे कुटिल! बात क्या कहता है?
जय का समस्त साधन नर की अपनी बाँहों में रहता है।
उस पर भी साँपों से मिल कर मैं मनुज, मनुज से युद्ध करूँ?
जीवन भर जो निष्ठा पाली, उससे आचरण विरुद्ध करूँ?
'तेरी सहायता से जय तो मैं अनायास पा जाऊँगा,
आने वाली मानवता को, लेकिन, क्या मुख दिखलाऊँगा?
संसार कहेगा, जीवन का सब सुकृत कर्ण ने क्षार किया,
प्रतिभट के वध के लिए सर्प का पापी ने साहाय्य लिया।''

शब्दार्थ—कुटील=दुष्ट। अनायास=अचानक। सुकृत=सफल। साहाय्य=सहायता।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक रामधारीसिंह दिनकर द्वारा विरचित खण्ड-काव्य 'रश्मिरथी' के सप्तम सर्ग से अवतरित है, जिसमें बताया है कि जब अर्जुन और कर्ण में भीषण युद्ध चल रहा था तो अचानक कर्ण के तरकस में अश्वसेन नामक नाग आकर बैठ गया। और वह नाग कर्ण से विनती करने लगा कि तुम अर्जुन का वध करने के लिए मुझे काम में लो। मैं एक ही प्रहार से अर्जुन को यमलोक पहुँचा दूँगा किन्तु कर्ण अश्वसेन नाग के इस निवेदन को ठुकरा देते हैं।

व्याख्या—कवि दिनकर कहते हैं कि कर्ण अश्वसेन नाग के प्रस्ताव को ठुकराते हुए कहते हैं कि अरे कपटी नाग! तू कैसी बातें कर रहा है। मुझे तेरी सहायता की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि विजय प्राप्त करने की शक्ति प्रतापी मनुष्यों की भुजाओं में निवास करती है। तू स्वयं ही यह सोच कि तेरा यह कृत्य कितना निन्दनीय होगा कि मैं मनुष्य होकर भी दूसरे मनुष्य से युद्ध करने के लिए एक साँप की सहायता लूँ और मैं अपने जीवन में जो धार्मिक कार्य करता रहा हूँ उन्हें भुलाते हुए अब अधर्म का आश्रय ले लूँ।

यह तो सत्य है कि तेरी सहायता पाकर मुझे अर्जुन पर बिना किसी प्रकार की कठिनाई के विजय मिल जायेगी, लेकिन ऐसा अधम आचरण करके मैं भावी मानवों को अपना मुख कैसे दिखा सकूँगा। वे मुझे यह कहकर लज्जित किया करेंगे कि कर्ण कितना नीच था कि उसने अपने जीवन के शुभ कार्यों को राख करते हुए अपने सम तुल्य योद्धा को मारने के लिए साँप की सहायता ली थी।

विशेष—1. प्रस्तुत पंक्तियों में कर्ण का चरित्र प्रशंसनीय बताया है।

2. कर्ण सिद्धान्तवादी थे, वे शत्रु को मारने के लिए अधर्म का सहारा नहीं लेते थे।

(70)

''अर्जुन! देखो, किस तरह कर्ण सारी सेना पर टूट रहा,
किस तरह पाण्डवों का पौरुष होकर अशंक वह लूट रहा।
देखो जिस तरफ, उधर उसके ही बाण दिखाई पड़ते हैं,
बस, जिधर सुनो, केवल उसके हुंकार सुनाई पड़ते हैं।
कैसी करालता! क्या लाघव! कितना पौरुष! कैसा प्रहार!
किस गौरव से वह वीर छिरद कर रहा समर-वन में विहार!
व्यूहों पर व्यूह फटे जाते, संग्राम उजड़ता जाता है,
ऐसी तो नहीं कमल-वन में भी कुंजर धूम मचाता है।''

शब्दार्थ—पौरुष=पुरुषार्थ। अशंक=बिना शंका के। करालता=भयंकरता। लांघव=कौशल।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक रामधारीसिंह दिनकर द्वारा विरचित खण्ड-काव्य 'रश्मिरथी' के सप्तम सर्ग से अवतरित है, जिसमें कवि ने स्पष्ट किया है कि जब कर्ण के प्रहारों ने पाण्डव दल को अत्यधिक व्याकुल कर दिया तो श्रीकृष्ण अर्जुन को उत्तेजित करते हैं और वे पाण्डवों पर टूट पड़ने की सलाह देते हैं।

व्याख्या—कवि दिनकर कहते हैं कि श्रीकृष्ण अर्जुन से कौरवों पर आक्रमण करने के लिए कहते हैं और वे उन्हें उत्तेजित करते हुए कहते हैं कि हे वीर अर्जुन! तुम इस ओर ध्यान दो कि कर्ण किस प्रकार पाण्डव सेना पर निर्भय होकर टूट पड़ रहा है और हमारी सेना के छक्के छुड़ा दिये हैं। इस समय तो यह दशा है कि युद्धस्थल में जिधर भी देखिये उधर ही कर्ण के बाणों की वर्षा होती दिखाई देती है और चारों ओर कर्ण की ही हुंकारें सुनाई पड़ रही हैं।

तुम ध्यान से देखो कि कर्ण कितनी भयंकरता और कौशल से युद्ध कर रहा है, युद्ध में अपने पौरुष का कैसा परिचय दे रहा है और उसके आघात कितने भयानक सिद्ध हो रहे हैं। वह कर्ण रूपी हाथी इस युद्ध रूपी वन में बड़े स्वाभिमानपूर्वक विचरण कर रहा है। इसके प्रहारों से पाण्डव सेना के व्यूह छिन्न-भिन्न होते जा रहे हैं और यह युद्ध स्थल में मस्ती से घूमता हुआ पुष्पों के वन को नष्ट कर रहा है।

विशेष—वीर द्विरद और 'समर वन' में रूपक अलंकार है। व्यूहों पर मचाता में दृष्टान्त अलंकार है।

(71)

''समझ में शल्य की कुछ भी न आया, हयों को जोर से उसने भगाया।
निकट भगवान् के रथ आन पहुँचा, आगम्, अज्ञात का पथ आन पहुँचा!
अगम की राह, पर, सचमुच अगम है, अनोखा ही नियति का कार्यक्रम है।
न जाने न्याय भी पहचानती है, कुटिलता ही कि केवल जानती है?
रहा दीपित सदा शुभ धर्म जिसका, चमकता सूर्य-सा था कर्म जिसका।
अबाधित दान का आधार था जो, धरित्री का अतुल शृंगार था जो,
क्षुधा जागी उसी की हाय, भू को, कहें क्या मेदिनी मानव प्रसू को?
रुधिर के पंक में रथ को जकड़ कर, दुखी वह बैठ चक्के को पकड़ कर।''

शब्दार्थ—हय=घोड़ा। आगम=जिसको जाना न जा सके। अबाधित=बाधा रहित। धारित्री=धारण करने वाली। सुधा=भूख। मेदिनी=जन्म देने वाली। पंक=कीचड़।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक रामधारीसिंह दिनकर द्वारा विरचित खण्ड-काव्य 'रश्मिरथी' के सप्तम सर्ग से अवतरित है, जिसमें कवि ने बताया है कि महाबली कर्ण को अपने अन्तिम समय का आभास हो गया था। इसके बाद वे शल्य से कहते हैं।

व्याख्या—कर्ण कहते हैं कि होनी नियति की गति अबूझी पहेली रहस्यमय होती है। उसकी कार्य प्रणाली इतनी विचित्र होती है कि उसे समझना टेढ़ी खीर होता है। पता नहीं नियति के यहाँ भी पाप और धर्म का कोई स्थान है अथवा वह कुटिलता और कपटाचरण को ही पहचाना करती है अत: क्या उसके यहाँ भी भले-बुरे की पहचान नहीं है।

नियति की इस कुटिल गति के विषय में क्या कहा जाये कि यही कर्ण जिसका जीवन धार्मिक कृत्यों से प्रदीप्त रहा था। जिसके कार्य सूर्य की कान्ति के समान पवित्र रहे थे। जो आजीवन रूप में दान देता रहा था, तथा जिसके उदात्त जीवन से पृथ्वी की शोभा बढ़ रही थी, अपने उस शोभापूर्ण कर्ण को ही खाने के लिए पृथ्वी की भूख जाग उठी। पृथ्वी तो मनुष्यों को जन्म देने वाली कही जाती है। अत: उसके इस भक्षण के कृत्य के विषय में क्या कहा जाये? वह तो कर्ण के रथ के पहिये को रक्त की कीचड़ में जकड़कर बैठी गयी है।

विशेष—1. कर्ण को जो शाप मिला था वह आज सिद्ध हो गया था।

2. भाषा सरल और स्वाभाविक है।

3. अगम की अगम में यमक अलंकार है और वक्रोक्ति अलंकार क्षुधा जागी में है।

(72)

''भला क्यों पार्थ कालाहार होता, वृथा क्यों चिन्तना का भार ढोता?
सभी दायित्व हरि पर डाल करके, मिली जो शिष्टि उसको पाल करके,

लगा राधेय को शर मारने वह, विपद् में शत्रु को संहारने वह,
शरों से बेधने तन को, दन को, दिखाने वीरता नि:शस्त्र जन को।
विशिख सन्धान में अर्जुन निरत था, खड़ा राधेय नि:सम्बल, विरथ था,
खड़े निर्वाक् सब जन देखते थे, अनोखे धर्म का रण देखते थे।''

शब्दार्थ—कालाहार=काल का ग्रास। वृथा=व्यर्थ। चिन्तना=चिन्ता। दायित्व=जिम्मेदारी। विपद्=विपत्ति। विशिख=बाण। निर्वाक्=मूक।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक रामधारीसिंह दिनकर द्वारा विरचित खण्ड-काव्य 'रश्मिरथी' के सप्तम सर्ग से अवतरित है, जिसमें कवि ने बताया है कि जब कृष्ण ने अर्जुन को यह आदेश दिया कि हे अर्जुन! तू धर्म और अधर्म के विचार में मत पड़ बल्कि मैं जो कहता हूँ, वैसा कर अन्यथा तू स्वयं ही मौत का ग्रास बन जायेगा। और तू अपने कर्म की समस्त जिम्मेदारियाँ मुझ पर छोड़ दे तथा मेरी आज्ञा का पालन कर।

व्याख्या—जब कृष्ण धर्म-अधर्म के विचार में न पड़ने के लिए अर्जुन को उपदेश देते हैं, तब वे कहते हैं हे अर्जुन! तू धर्माधर्म के विचार में मत पड़ अपितु मैं जैसा कह रहा हूँ वैसा कर वरना तू स्वयं ही काल का ग्रास बन सकता है। तू अपने कर्म की समस्त जिम्मेदारियाँ मुझ पर छोड़ और मेरी आज्ञा का पालन कर।

अर्जुन जब अपनी जिम्मेदारियों को श्रीकृष्ण पर छोड़ता हुआ उनकी आज्ञा का पालन करना आरम्भ कर देता है तो अर्जुन आपत्ति में फँसे हुए कर्ण का वध करने की कामना से उस पर बाण प्रहार करने लगा। वह अपने तीव्र बाणों से उसके शरीर और मुख आदि अंगों को बेधने लगा। जब अर्जुन निहत्थे कर्ण पर अपनी वीरता का प्रदर्शन कर रहा था, तब वह बेसहारा और बिना रथ के भू पर खड़ा था। युद्ध स्थल में अन्य प्राणी और सैनिक इस अधर्म युद्ध को मूक होकर देख रहे थे और वह आश्चर्य कर रहे थे कि अर्जुन ऐसा अधर्ममय युद्ध क्यों कर रहा है?

विशेष—1. प्रस्तुत अंश में अर्जुन कृष्ण के अनुसार युद्ध करते हैं, जिसमें केवल अधर्म दिखाई देता है।
2. अर्जुन के द्वारा किये गये इस अधार्मिक युद्ध को देखकर सभी सैनिक आश्चर्य में पड़ जाते हैं।

(73)

हमीं धर्मार्थ क्या दहते रहेंगे? सभी कुछ मौन हो सहते रहेंगे?
कि देंगे धर्म को बल अन्य जन भी? तजेंगे क्रूरता-छल अन्य जन भी?
न दी क्या यातना इन कौरवों ने? किया क्या-क्या न निर्घिन कौरवों ने?
मगर, तेरे लिए सब धर्म ही था, दुरित निज मित्र का, सत्कर्म ही था।
किये का जब उपस्थित फल हुआ है, ग्रसित अभिशाप से सम्बल हुआ है,
चला है खोजने तू धर्म रण में, मृषा किल्विष बताने अन्य जन में।
'शिथिल कर पार्थ किंचित भी न मन तू। न धर्माधर्म में पड़ भीरु बन तू।
कड़ा कर वक्ष को, शर मार इसको, चढ़ा सायक, तुरन्त संहार इसको।' ''

शब्दार्थ—धर्मार्थ=धर्म की खातिर। क्रूरता=कठोरता। निर्घिन=घृणा रहित। सत्कर्म=अच्छे कार्य। दुरित=दुष्ट। निज=अपनी। शिथिल=कमजोर। किंचित्=कुछ। भीरु=डरपोक, कायर। वक्ष=सीना।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक रामधारीसिंह दिनकर द्वारा विरचित खण्ड-काव्य 'रश्मिरथी' के सप्तम सर्ग से अवतरित है, जिसमें कवि ने कौरवों के अधर्म आचरणों पर प्रकाश डाला है।

व्याख्या—कवि दिनकर कहते हैं कि कौरवों के अधार्मिक आचरणों पर प्रकाश डालते हुए श्रीकृष्ण ने कहा कि क्या धर्म के लिए कष्ट सहने का हम पाण्डवों ने ही उत्तरदायित्व ले रखा है? क्या हम लोग नाना प्रकार के कष्ट सहते हुए भी धर्म के नाम पर चुप बने रहेंगे अथवा कोई दूसरे लोग भी धर्म को बल देने की चेष्टा करें। क्या धर्म तुम लोगों से यह अपेक्षा नहीं करता कि निष्ठुरता और कपट को त्यागकर धर्माचरण करो।

हे कर्ण! तुम स्वयं ही सोच लो कि कौरवों ने पाण्डवों को कौन-कौन से कष्ट नहीं दिये हैं। इन घिनौने आचरण वाले पापी कौरवों

ने ऐसा कौन- सा पाप कर्म नहीं किया है, किन्तु ठीक है। चूँकि दुर्योधन तुम्हारा मित्र था अत: तुम्हें उसके पाप- कर्म भी निष्पाप प्रतीत होते रहे हैं, तुम उनके दुष्कर्मों को भी सत्कर्म मानते रहे हो।

अरे कर्ण! तुम और तुम्हारे साथी कौरवों ने जो पाप किये हैं अब उनका दण्ड भोगने की घड़ी आज उपस्थित हुई है। जब तुम्हारे अभिशाप फलने लगे तब तुझे धर्म की याद आ रही है, और तू दूसरे लोगों में व्यर्थ के पाप खोजने और बताने लगा है। अन्तत: श्रीकृष्ण अर्जुन को उत्तेजित करते हुए कहने लगे कि अर्जुन तू पाप- पुण्य के चक्कर में पड़कर कायरता को मत प्राप्त हो।

2.11 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

2.11.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न- 1. रामधारीसिंह दिनकर द्वारा रचित 'रश्मिरथी' किस कोटि का काव्य है?

उत्तर— रामधारीसिंह दिनकर द्वारा रचित 'रश्मिरथी' प्रबन्ध काव्य है।

प्रश्न- 2. रश्मिरथी प्रबन्धकाव्य में किसका चरित्र कवि ने वर्णित किया है?

उत्तर— रश्मिरथी प्रबन्धकाव्य में पराक्रमी महारथी कर्ण का जीवन चरित्र अंकित है।

प्रश्न- 3. रश्मिरथी प्रबन्ध काव्य के प्रथम सर्ग में किसका उल्लेख किया गया है?

उत्तर— रश्मिरथी प्रबन्ध काव्य के प्रथम सर्ग में कर्ण और अर्जुन की प्रतियोगिता का उल्लेख किया गया है।

प्रश्न- 4. कर्ण के हृदय में अर्जुन के प्रति स्थायी द्वेषभाव जागृत होने का प्रमुख कारण क्या था?

उत्तर— कर्ण के हृदय में अर्जुन के प्रति स्थायी द्वेषभाव जागृत होने का प्रमुख कारण कृपाचार्य द्वारा कर्ण से उसकी जाति और कुल पूछने से उपजी लज्जा का भाव था।

प्रश्न- 5. दुर्योधन किस आधार पर कर्ण को अंग देश का राजा बना देता है?

उत्तर— दुर्योधन कर्ण को अपना सखा मानकर उसे अंग देश का राजा बना देता है।

प्रश्न- 6. परशुराम ने कर्ण को किस कारण शाप दिया था और वह क्या था?

उत्तर— कर्ण ने परशुराम को गुरु बनाकर उनसे अपनी जाति छिपाकर और ब्राह्मण बनकर शिक्षा ग्रहण की थी लेकिन जब परशुराम को सत्य का बोध हुआ तब उन्होंने कर्ण को शाप दिया कि तू समय पर ब्रह्मास्त्र विद्या को भूल जायेगा।

प्रश्न- 7. मनुष्य की सच्ची पहचान किन आधारों पर हुआ करती है?

उत्तर— मनुष्य की सच्ची पहचान उसके गुण और सत्य के आधार पर ही हुआ करती है।

प्रश्न- 8. कर्ण किस खानदान में पला था?

उत्तर— कर्ण सारथी खानदान में पला था।

प्रश्न- 9. दुर्योधन के द्वारा कर्ण को अंग देश का राजा बनाये जाने पर भीम का आक्रोश किन शब्दों में व्यक्त हुआ था?

उत्तर— भीम ने कहा था कि घोड़े की पूँछ को झाड़ने वाला देखें अब राजकाज का संचालन कैसे करता है क्योंकि कर्ण जैसे सूतपुत्र के वश की यह बात नहीं है।

प्रश्न- 10. गुरु द्रोणाचार्य ने एकलव्य का अंगूठा किस भाव से पूरित होकर कटवा लिया था?

उत्तर— गुरु द्रोणाचार्य ने एकलव्य का अंगूठा इस भाव से पूरित होकर कटवा लिया था कि अर्जुन के समान धनुर्विद्या में अचूक निशाने वाला कोई दूसरा न पैदा हो सके।

प्रश्न- 11. कर्ण को देखकर द्रोणाचार्य के मन में कौन- सी आशंका उपजी थी?

उत्तर— कर्ण को देखकर द्रोणाचार्य के मन में आशंका उपजी कि यह अद्भुत और महान् योद्धा यदि अपनी प्रगति और विकास की दिशा में इसी प्रकार आगे बढ़ता गया तो भविष्य में अर्जुन के लिए मौत बनकर खड़ा हो सकता है।

प्रश्न- 12. कवि दिनकर ने युद्ध में कठोर काल के समान क्रोधी और तप करने में महासूर्य जैसा तेजस्वी किस व्यक्तित्व को कहा है?

उत्तर— कवि दिनकर ने युद्ध में कठोर काल के समान क्रोधी और तप करने में महासूर्य जैसा तेजस्वी परशुराम जी को कहा है।

प्रश्न- 13. गुरु परशुराम कर्ण की जंघा पर जब अपना सिर रखे हुए सो रहे थे, उस समय उनका शिष्य गुरु सेवा में किस तरह चेष्टावान था?

उत्तर— कर्ण चेष्टावान था कि कहीं चींटियाँ गुरु के शरीर पर न चढ़ जाएँ या फिर हवा में उड़कर तिनके और पत्ते उनके शरीर पर पड़कर उनकी कच्ची नींद को उचाट न दें।

प्रश्न- 14. कर्ण की जंघा पर सिर रखकर सोये गुरु ने कर्ण को क्या सन्देश रूप में कहा था?

उत्तर— कर्ण की जंघा पर सिर रखकर सोये गुरु परशुराम ने कर्ण से सन्देश रूप में कहा कि यदि तू पुष्ट करने वाला सन्तुलित भोजन नहीं खायेगा तो फिर मेरे द्वारा दी जा रही कठोर शास्त्रार्थ विद्या को कैसे सहन करेगा।

प्रश्न- 15. कवि दिनकर ने युद्ध का क्या उद्देश्य संकेतित किया है?

उत्तर— कवि दिनकर ने युद्ध का उद्देश्य, संकेतित किया है कि युद्धों का उद्देश्य धर्म और मानवता की रक्षा करना ही नहीं रह गया है, बल्कि कुछ लोगों ने स्वार्थों की पूर्ति करना ही युद्ध का उद्देश्य बना लिया है।

प्रश्न- 16. युद्ध के पीछे राजाओं की छिपी मनोवृत्ति कौनसी बतायी गयी है?

उत्तर— युद्ध के पीछे राजाओं की छिपी मनोवृत्ति यह बताई गई है कि वे राज्य सत्ता पर अधिक अभिमान कर सकें और अपने राज्य की सीमाओं को बढ़ाकर अधिकार से अधिक सुख भोग सकें।

प्रश्न- 17. गुरु परशुराम प्रसन्न होकर अपने शिष्य कर्ण को क्या कहा करते थे?

उत्तर— गुरु परशुराम अपने शिष्य कर्ण से कहा करते थे कि हे ब्राह्मण कुमार! तुम दीर्घ जीवी बनो। अमर यश के भागी बनो और मेरी तरह तुम भी निश्चय ही एक बार इस धरती को क्षत्रियों से रहित कर दोगे।

प्रश्न- 18. गुरु सेवा में बैठे कर्ण की जाँघ कीड़े द्वारा काटे जाने पर कर्ण ने क्या सोचा था?

उत्तर— कर्ण ने सोचा था कि यह कीड़ा मेरा खून पीता है तो बेशक पीता रहे परन्तु पाँव हिलाकर गुरु की कच्ची नींद टूटने से पाप का भागी मैं कभी नहीं बनूँगा।

प्रश्न- 19. सोते हुए परशुराम की नींद टूटने का क्या कारण था?

उत्तर— सोते हुए परशुराम की नींद टूटने का कारण कर्ण की जाँघ से निकलकर बहने वाला गर्म खून था।

प्रश्न- 20. जाँघ से कर्ण द्वारा कीड़ा निकालने पर परशुरामजी ने क्या कहा था?

उत्तर— परशुराम जी ने कहा था कि शिव: शिव: तूने तो यह बड़ी मूर्खता का काम किया है, पता नहीं कब से तू स्थिर सा रहकर इस कीड़े के काटने से होने वाली पीड़ा को चुपचाप सहन करता रहा।

प्रश्न- 21. कर्ण किस बात को सोचकर कीड़े द्वारा काटे जाने पर भी चुपचाप सहन करता रहा?

उत्तर— कर्ण यह सोचकर कि गुरु को थोड़ी देर का समय विश्राम करने के लिए मिला है वह मेरे हिलने-डुलने से नष्ट हो जायेगा और गुरुजी की नींद भंग हो जायेगी।

प्रश्न- 22. कीड़ा प्रसंग में कर्ण को दु:ख किस बात का था?

उत्तर— कर्ण को दु:ख इस बात का था कि उसके गुरु को कीड़ा काटने की बात का पता चल गया था।

प्रश्न- 23. गुरु परशुराम ने ब्राह्मण स्वभाव की क्या विशेषता बताई?

उत्तर— गुरु परशुराम ने बताया कि ब्राह्मण में स्वभावगत सहनशीलता नहीं होती है, इसलिए वह अपमान को सहन नहीं कर सकता।

प्रश्न- 24. गुरु परशुराम को कर्ण पर ब्राह्मण न होने का संदेह कैसे हुआ?

उत्तर— गुरु परशुराम को कर्ण पर ब्राह्मण न होने का सन्देह इस आधार पर हुआ कि कर्ण की जाँघ कीड़े द्वारा काटे जाने पर भी वह विचलित नहीं हुआ जो एक क्षत्रिय बालक के ही वश की बात हो सकती थी न कि ब्राह्मण बालक की।

प्रश्न- 25. गुरु परशुराम द्वारा क्रोधित होने पर शिष्य कर्ण ने अपने बारे में क्या बताया?

उत्तर— गुरु परशुराम द्वारा क्रोधित होने पर शिष्य कर्ण ने अपने बारे में बताया कि मैं सारथी पुत्र हूँ और जाति से शूद्र कर्ण हूँ।

प्रश्न- 26. कर्ण अपने गुरु परशुराम को शिक्षा ग्रहण करने के सम्बन्ध में सत्य किस कारण से नहीं बता सका?

उत्तर— उसके हृदय में इस बात का सन्देह था कि गुरु को मेरी जाति आदि के बारे में पता चल जायेगा तो वे मुझ सूतपुत्र को अपना

शिष्य कभी नहीं बनायेंगे।

प्रश्न- 27. गुरु परशुराम के द्वारा भस्म करने की बात सुनकर शिष्य कर्ण ने क्या कहा था?

उत्तर— शिष्य कर्ण ने कहा था कि यदि आप चाहें तो मुझे भस्म कर दें लेकिन अर्जुन के मस्तक को झुकाने की जो हमने प्रतिज्ञा कर रखी है, वह अधूरी रह जायेगी।

प्रश्न- 28. ''मेरा तुमसे जितना लगाव है, उतना लगाव मैंने अपने किसी अन्य शिष्य से नहीं रखा।'' कर्ण के प्रति गुरु परशुराम ने यह कथन किस आधार पर कहा?

उत्तर— कर्ण के प्रति गुरु परशुराम ने उसके व्यवहार की पवित्रता के आधार पर यह कथन कहा।

प्रश्न- 29. गुरु परशुराम अपने शिष्य कर्ण के मुख से यह बात ''तू सूत पुत्र नहीं है बल्कि तू किसी ब्राह्मण वंश का पराक्रमी बालक है।'' सुनने को क्यों आतुर हो रहे थे?

उत्तर— गुरु परशुराम अपने प्रिय कर्ण से यह बात सुनने को इसलिए आतुर हो रहे थे क्योंकि उनके मन में कर्ण के प्रति अपार स्नेह समाया हुआ था।

प्रश्न- 30. गुरु परशुराम की अपने शिष्य कर्ण के प्रति विवशता क्या थी?

उत्तर— गुरु परशुराम की विवशता यह थी कि वे कर्ण को सूद पुत्र जानकर क्रोधित हो उठे थे क्योंकि उनकी भावनाओं को कर्ण के छल से ठेस पहुँची थी।

प्रश्न- 31. गुरु परशुराम से शाप पाकर कर्ण ने क्या कहा था?

उत्तर— इस प्रकार का कठोर शाप देने के बदले अच्छा होता कि आप मेरे प्राण ही हर लेते।

प्रश्न- 32. गुरु परशुराम ने कर्ण को शाप देने के पश्चात् सान्त्वना रूप में क्या कहा था?

उत्तर— जब तक तुम्हारे शरीर पर कवच और कुण्डल है तब तक तुम्हें कोई जीत नहीं सकता है।

प्रश्न- 33. पाण्डवों के जीवन में नवीन उत्साह आने का क्या कारण था?

उत्तर— पाण्डवों ने बारह वर्ष का वनवास और एक वर्ष का अज्ञात वास काट लिया था इसलिए उनके जीवन में नवीन उत्साह आ गया था।

प्रश्न- 34. कवि दिनकर के अनुसार कौन- से व्यक्ति अपने जीवन के शाश्वत पथ से और कर्त्तव्य से विमुख होकर पीछे हट जाया करते हैं?

उत्तर— कवि दिनकर के अनुसार कायर व्यक्ति अपने जीवन के शाश्वत पथ से और कर्त्तव्य से विमुख होकर पीछे हट जाया करते हैं।

प्रश्न- 35. कवि दिनकर ने सच्चे शूरवीर व्यक्ति की क्या विशेषता बतायी है?

उत्तर— कवि दिनकर ने सच्चे शूरवीर व्यक्ति की विशेषता बताई है कि उसके सामने कितनी भी मुसीबत क्यों न आ जाये वे किंचित मात्र भी घबराया नहीं करते हैं।

प्रश्न- 36. वीर पुरुष के लिए सभी मुसीबतें कब आसान हो जाया करती हैं?

उत्तर— वीर पुरुष के लिए सभी मुसीबतें उस समय आसान हो जाया करती हैं, जब वह उनको दूर करने के लिए सच्चे मन से जोर लगाता है और प्रयास करता है।

प्रश्न- 37. ''मनुष्य के अन्दर भी महान शक्तियाँ और प्रकाश छिपे रहते हैं।'' इस कथन को दिनकर जी ने किन उदाहरणों के द्वारा पुष्ट किया है?

उत्तर— दिनकर जी ने अपने इस कथन को मेहन्दी और दीपक की बत्ती के उदाहरणों के द्वारा पुष्ट किया है।

प्रश्न- 38. दिनकरजी के अनुसार मनुष्य अपने जीवन में सुख, समृद्धि और आदर कब प्राप्त करता है?

उत्तर— जब मनुष्य अपने जीवन में आने वाली मुसीबतों को सहता है और धैर्य से जीवन पथ पर आगे बढ़ता है तब ही उसे जीवन में सुख- समृद्धि और आदर प्राप्त होता है।

प्रश्न- 39. कवि दिनकर के अनुसार कौन- से व्यक्ति अपने जीवन में नये रास्तों का निर्माण किया करते हैं?

उत्तर— कवि दिनकर के अनुसार जो मनुष्य अपने जीवन में परिश्रम करके और कष्ट सहकर आगे बढ़ते हैं वे ही अपने जीवन में नये

रास्तों का निर्माण किया करते हैं।

प्रश्न- 40. कवि दिनकर के अनुसार मनुष्य कब शूरवीर कहलाता है?

उत्तर— कवि दिनकर के अनुसार जब मनुष्य विपत्तियों से संघर्ष करता है और उन पर विजय हाँसिल कर अपने जीवन में आगे बढ़ता है तब वह शूरवीर कहलाता है।

प्रश्न- 41. महाभारत का युद्ध प्रारम्भ होने से पूर्व पाण्डवों का दूत बनकर कौरवों के पास कौन गया था?

उत्तर— पाण्डवों का दूत बनकर श्रीकृष्ण कौरवों के पास गये थे।

प्रश्न- 42. पाण्डवों के दूत रूप में उपस्थित होकर श्रीकृष्ण ने दुर्योधन से क्या कहा था?

उत्तर— पाण्डवों के दूत रूप में उपस्थित होकर श्रीकृष्ण ने दुर्योधन से कहा था कि न्याय की दृष्टि से तुम हमें आधा राज्य प्रदान कर दो। यदि आधा राज्य देने में असुविधा हो तो केवल पाँच गाँव ही दे दो।

प्रश्न- 43. अहं भाव से पूरित होकर दुर्योधन किसको बाँधने के लिए तैयार हो गया?

उत्तर— अहं भाव से पूरित होकर दुर्योधन पाण्डव दूत श्रीकृष्ण को बाँधने के लिए तैयार हो गया था।

प्रश्न- 44. श्रीकृष्ण ने दुर्योधन को अपने चरण किन पर्वतों की भाँति बताये?

उत्तर— श्रीकृष्ण ने दुर्योधन को अपने चरण मैनाक और सुमेरु पर्वत की भाँति बताये।

प्रश्न- 45. दुर्योधन के राज्य दरबार से लौटते समय श्रीकृष्ण ने दुर्योधन से क्या कहा था?

उत्तर— श्रीकृष्ण ने दुर्योधन से कहा था कि अब पाण्डवों द्वारा अपने अधिकार की माँग नहीं की जायेगी, अब तो केवल युद्ध ही होगा।

प्रश्न- 46. श्रीकृष्ण की चेतावनी भरी बातों को सुनकर दुर्योधन की सभा में कौन- कौन व्यक्ति सुखानुभूति कर रहा था?

उत्तर— श्रीकृष्ण की चेतावनी भरी बातों को सुनकर दुर्योधन की सभा में धृतराष्ट्र और विदुर ही सुखानुभूति कर रहे थे।

प्रश्न- 47. श्रीकृष्ण ने कर्ण को क्या समझाया था?

उत्तर— श्रीकृष्ण ने कर्ण को समझाया था कि तुम अब मेरा कहना मानकर अपने पाँच भाइयों का साथ पकड़ो क्योंकि बिछुड़े हुए भाइयों को पाकर तुम सुखमय जीवन व्यतीत करोगे और भविष्य में प्राप्त होने वाले सभी सुखों को सादर भोगोगे।

प्रश्न- 48. कर्ण ने किस नारी को नागिन कहना उचित ठहराया है?

उत्तर— जो नारी बच्चे को जन्म देने के बाद उसे फैंक आती है, ऐसी नारी को नागिन कहना उचित ठहराया है।

प्रश्न- 49. दुर्योधन ने कौन- सा अनोखा कार्य करके कर्ण को नया जीवन प्रदान किया था?

उत्तर— दुर्योधन ने कर्ण जैसे सारथी पुत्र को अंग देश का राजा बनाकर अनोखा कार्य कर उसे नया जीवन प्रदान किया था।

प्रश्न- 50. दुर्योधन ने किसकी शक्ति के सहारे महायुद्ध करने का निर्णय लिया था?

उत्तर— दुर्योधन ने कर्ण की शक्ति के सहारे महायुद्ध करने का निर्णय लिया था।

प्रश्न- 51. कर्ण ने युद्ध के सम्बन्ध में क्या प्रण किया था?

उत्तर— कर्ण ने युद्ध के सम्बन्ध में प्रण किया था कि ''युद्ध में दुर्योधन को या तो जीत दिलवाऊँगा या फिर अर्जुन के हाथों मारा जाऊँगा।''

प्रश्न- 52. अपनी जन्म कथा के सम्बन्ध में कर्ण ने श्रीकृष्ण से क्या प्रार्थना की थी?

उत्तर— अपनी जन्म कथा के सम्बन्ध में कर्ण ने श्रीकृष्ण से प्रार्थना की थी कि मेरी छिपी जन्म कथा को युधिष्ठिर को मत बताना।

प्रश्न- 53. इन्द्र को वज्र बनाने के लिए किसने अपनी हड्डियों का दान किया था?

उत्तर— इन्द्र को वज्र बनाने के लिए महर्षि दधीचि ने अपनी हड्डियों का दान दिया था।

प्रश्न- 54. किस फ़क़ीर ने अपने हाथों से अपने शरीर की खाल को उतारकर सत्य के महत्त्व को मानवता के लिए उजागर करने की दृष्टि से अन्तिम मोल चुकाया था?

उत्तर— सरमद नामक फकीर ने अपने हाथों से अपने शरीर की खाल को उतारकर सत्य के महत्त्व को मानवता के लिए उजागर करने की दृष्टि से अन्तिम मूल्य चुकाया था।

प्रश्न- 55. कर्ण के स्वभाव की सबसे बड़ी विशेषता क्या थी?

उत्तर— कर्ण वीर होने के साथ-साथ सबसे बड़ा दानी था।

प्रश्न- 56. ब्राह्मण भेषधारी इन्द्र ने कर्ण से क्या माँगा था?

उत्तर— ब्राह्मण भेषधारी इन्द्र ने कर्ण से कवच और कुंडल दान में माँगे थे।

प्रश्न- 57. कर्ण ने इन्द्र द्वारा कवच कुण्डल दान रूप में माँगे जाने का क्या प्रयोजन बताया?

उत्तर— कर्ण ने इन्द्र द्वारा कवच कुण्डल दान रूप में माँगे जाने का यह प्रयोजन बताया कि तुम कवच कुण्डल का दान इसलिए माँग रहे हो कि अर्जुन को अचूक समझे जाने वाले बाण मेरे शरीर से टकराकर बेकार न हो जाएँ।

प्रश्न- 58. कर्ण ने अपने पर विजय प्राप्त करने के लिए अर्जुन को कौनसा सरल उपाय बताया था?

उत्तर— कर्ण ने अपने पर विजय प्राप्त करने के लिए बताया अर्जुन मेरी एक मोम की मूर्ति बना ले, फिर वह उसे काटकर फेंक दे। इस प्रकार संसार में बिना लड़े ही सरलता से कर्ण पर विजय पाने वाला कहलाने लगेगा।

प्रश्न- 59. कुन्ती छिड़ने वाले महाभारत के युद्ध हेतु कर्ण को क्या समझाने समर भूमि में गयी थी?

उत्तर— कुन्ती समर भूमि में कर्ण को यह समझाने गयी थी कि इस युद्ध में तुम पाण्डवों के विरुद्ध मत लड़ो क्योंकि मैं यह नहीं चाहती कि पाँडव भ्राताओं से लड़कर उन्हें मार दे या खुद उनके हाथों मर जाए।

प्रश्न- 60. कर्ण ने कुन्ती को अपनी माँ स्वीकार करने के सम्बन्ध में क्या तर्क दिए?

उत्तर— कर्ण ने कुन्ती को अपनी माँ स्वीकार करने के सम्बन्ध में तर्क दिया कि तुमने मुझे जन्म देकर भी अपना पुत्र स्वीकार नहीं किया जबकि राधा ने मुझे नदी से प्राप्त करके भी अपना ही पुत्र स्वीकार किया। इस स्थिति में मैं अपनी राधा माँ के स्थान पर तुमको अपनी जननी कैसे स्वीकार कर सकता हूँ।

प्रश्न- 61. कर्ण ने अर्जुन के सौभाग्य के सम्बन्ध में क्या भाव व्यक्त किए थे?

उत्तर— कर्ण ने कहा था कि अर्जुन का भाग्य देखिए, उसने अपनी समस्त चिन्ताएँ श्रीकृष्ण और अपने मित्रों पर छोड़ रखी है?

प्रश्न- 62. ''वह पुष्प बिछुड़ी हुई डाली पर नहीं खिल पाएगा'' यह वाक्य किसने, किसके लिए और कब कहा?

उत्तर— वह वाक्य कुन्ती ने कर्ण के लिए उस समय कहा जब उसने दुर्योधन से अपने आपको अलग करने में असमर्थता जताई।

प्रश्न- 63. कर्ण ने निराश कुन्ती को क्या वचन दिया था?

उत्तर— कर्ण ने कहा था कि युद्ध में मैं पाण्डवों को प्राण लेने की स्थिति में जीवित छोड़ दूँगा। और युद्ध के अन्त में पाण्डव पाँच ही रहेंगे।

प्रश्न- 64. युद्ध के मैदान में जाते हुए कर्ण को भीष्म पितामह ने क्या कहा था?

उत्तर— इस संग्राम को बन्द कराकर जगत में सुकीर्ति के भाजन बनने का प्रयत्न करो।

प्रश्न- 65. कर्ण के भीषण बाण प्रहार को देखकर श्रीकृष्ण ने अर्जुन से चेतावनी रूप में क्या कहा था?

उत्तर— श्रीकृष्ण ने कहा था कि यदि तू कर्ण को मुँह तोड़ जवाब नहीं देगा तो यह महाभारत युद्ध आज ही समाप्त हो जायेगा और कौरव जीत जाएँगे।

प्रश्न- 66. भीष्म पितामह को कौन-सा वरदान प्राप्त था?

उत्तर— भीष्म पितामह को इच्छा-मृत्यु का वरदान था।

प्रश्न- 67. अभिमन्यु के वध में कितने रथियों ने भाग लिया था?

उत्तर— अभिमन्यु के वध में सात रथियों ने भाग लिया था।

प्रश्न- 68. अर्जुन ने जयद्रथ वध के सम्बन्ध में क्या प्रतिज्ञा की थी?

उत्तर— अर्जुन ने प्रतिज्ञा की थी कि कल सूर्यास्त से पूर्व यदि जयद्रथ का वध नहीं किया तो स्वयं चिता में जलकर भस्म हो जायेगा।

प्रश्न- 69. सात्विक कौन था? उसने धोखे से किसका सिर काट लिया था?

उत्तर— सात्विक अर्जुन का शिष्य था। उसने धोखे से भूरिश्रवा का सिर काट लिया था।

प्रश्न- 70. कर्ण, अर्जुन के मध्य होने वाले द्वैरथ युद्ध के सम्बन्ध में श्रीकृष्ण को क्या चिन्ता थी?

उत्तर— श्रीकृष्ण को चिन्ता थी कि यदि यह युद्ध होगा तो कर्ण एकघ्नी का प्रयोग करके अर्जुन के प्राण हर लेगा।

प्रश्न- 71. कर्ण द्वारा हो रहे पाण्डव सेना के विनाश को रोकने के लिए कृष्ण ने क्या किया?

उत्तर— उन्होंने भीम पुत्र घटोत्कच को बुलाकर कर्ण द्वारा की जा रही बाण वर्षा को रोकने के लिए कहा।

प्रश्न- 72. घटोत्कच की मृत्यु पर श्रीकृष्ण के मुख पर प्रसन्नता छा जाने का क्या कारण था?

उत्तर— कृष्ण के मुख पर प्रसन्नता छा जाने का कारण यह था कि एकघ्नी के अभाव में कर्ण अर्जुन का प्राणान्त नहीं कर सकेगा।

प्रश्न- 73. घटोत्कच को मारने के बाद भी कर्ण दु:खी क्यों था?

उत्तर— घटोत्कच को मारने के बाद भी कर्ण दु:खी था क्योंकि अर्जुन को मारने के लिए एकघ्नी का प्रयोग घटोत्कच पर कर वह उसे खो चुका था।

प्रश्न- 74. कर्ण ने युद्ध स्थल से भागने वाले युधिष्ठिर को क्या सलाह दी थी?

उत्तर— कर्ण ने युधिष्ठिर को सलाह दी थी कि आपका शरीर ब्राह्मणों जैसा कोमल है इसलिए आप ब्राह्मणों के समान ही किसी एकान्त वृक्ष के नीचे साधना किया कीजिए।

प्रश्न- 75. कर्ण ने युधिष्ठिर को युद्ध क्षेत्र में जीवित क्यों छोड़ दिया था?

उत्तर— कर्ण ने युधिष्ठिर को युद्ध क्षेत्र में जीवित इसलिए छोड़ दिया था क्योंकि उसने माँ कुन्ती को वचन दिया था कि युद्ध में मैं पाण्डवों के प्राणों का हरण नहीं करूँगा।

प्रश्न- 76. कर्ण के सारथी शल्य ने युद्ध में कर्ण की निन्दा क्यों की थी?

उत्तर— कर्ण ने युद्ध क्षेत्र में पाण्डवों को मारने के बजाय जीवित ही छोड़ दिया था।

प्रश्न- 77. युद्ध क्षेत्र में लड़ते हुए कर्ण और अर्जुन की तुलना कवि ने किनसे की है?

उत्तर— युद्ध क्षेत्र में लड़ते हुए कर्ण और अर्जुन की तुलना कवि ने क्रमश: सूर्य और यमराज से की है।

प्रश्न- 78. तरकस से तीर निकालते समय कर्ण के तरकश में से कौन फुंकार उठा था?

उत्तर— तरकस से तीर निकालते समय कर्ण के तरकस से अश्वसेन नामक भयंकर नाग फुंकार उठा था।

प्रश्न- 79. अश्व से न ने कर्ण से क्या प्रार्थना की थी?

उत्तर— अश्वसने ने कहा था कि मुझे अपने धनुष पर बाण के समान चढ़ाकर अर्जुन की ओर फेंक दें ताकि मैं अपने शत्रु अर्जुन से बदला ले सकूँ।

प्रश्न- 80. कर्ण के रथ का पहिया कीचड़ में फँस जाने पर जब कर्ण कीचड़ में फँसे पहिये को निकालने लगा, तब श्रीकृष्ण ने अर्जुन को क्या आदेश दिया था?

उत्तर— कृष्ण ने कहा था कि हे अर्जुन, तू धनुष-बाण से रहित और रथ से उतरने वाले कर्ण के शीश को उड़ा दे, नहीं तो फिर तुझे ऐसा मौका नहीं मिलेगा।

2.11.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न- 1. रश्मिरथी के कथानक का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उत्तर—'रश्मिरथी' का कथानक दानी और महावीर कर्ण के चरित्र पर आधारित 'महाभारत' का एक अंग है। इसका संक्षिप्त कथानक निम्नलिखित है—

कथानक—कवि दिनकरजी की दूसरी महान् कृति 'रश्मिरथी' है। यह भी प्रबन्ध काव्य है, जिसकी रचना 1957 ई. में हुई थी। इस प्रबन्धकाव्य का कथानक सात सर्गों में विभक्त है। इसमें महाभारत के पराक्रमी महारथी कर्ण का जीवन चरित्र अंकित है। इसके प्रथम सर्ग में कर्ण और अर्जुन की प्रतियोगिता का उल्लेख किया गया है, जिसमें कृपाचार्य द्वारा कर्ण की जाति और उसका कुल पूछने पर कर्ण को लज्जित होना पड़ता है, किन्तु इससे कर्ण के हृदय में अर्जुन के प्रति स्थाई द्वेष घर कर लेता है और दुर्योधन कर्ण को अपना सखा मानकर उसे अंगदेश का राजा बना देता है। इसी सर्ग में कर्ण को परशुराम के आश्रम पर रहकर धनुर्विद्या की शिक्षा ग्रहण करते हुए अंकित किया गया है। वहाँ कर्ण अपनी जाति छिपाकर और ब्राह्मण बनकर परशुराम का शिष्य बनता है, किन्तु इस रहस्य के खुल जाने पर परशुराम कर्ण को यह शाप दे देते हैं कि 'तू समय आने पर ब्रह्मास्त्र-विद्या को भूल जायेगा।' तीसरे सर्ग में पाँडवों के वन से लौटने, कृष्ण के दूत बनकर हस्तिनापुर जाने, कृष्ण के कहने पर भी दुर्योधन द्वारा पाँडवों को पाँच ग्राम तक न देने, कृष्ण को बन्दी बनाने, विराट रूप दिखाकर कृष्ण के निकल जाने, कृष्ण द्वारा कर्ण को पांडवों के पक्ष में मिलाने आदि का बड़ा ही रोचक वर्णन किया

गया है। चौथे सर्ग में कर्ण की दानशीलता का निरूपण किया गया है और इन्द्र द्वारा कर्ण के कवच कुंडल दान में ले आने का तथा इन्द्र द्वारा कर्ण को अमोघ शस्त्र दे आने का वर्णन किया गया है।

पाँचवें सर्ग में कुंती का कर्ण के समीप जाकर उसे अपना पुत्र मानने तथा अपने पक्ष में मिलाने का वर्णन किया गया है। साथ ही कर्ण कुंती को यह कहकर आश्वासन देता है कि मैं पार्थ को छोड़कर अन्य किसी भी पांडव का वध नहीं करूँगा। छठे वर्ग में कर्ण और भीष्म का वार्तालाप अंकित है, जिसमें भीष्म युद्ध बन्द कराना चाहते हैं और कर्ण को पाँडवों एवं कौरवों से मिलकर रहने की सलाह देते हैं परन्तु कर्ण अपने मित्र दुर्योधन के आग्रह पर लड़ने से सन्नद्ध हो जाता है और भीष्म पितामह के चरण छूकर रणक्षेत्र में आ कूदता है। यहाँ कर्ण बड़ी भयंकरता के साथ पांडव-सेना का संहार करता है किन्तु कृष्ण तुरन्त ही घटोत्कच से कर्ण को भिड़ाकर इन्द्र द्वारा दिए हुए कर्ण के अमोघ शस्त्र को घटोत्कच पर छुड़वा देते हैं और पार्थ को कर्ण से सुरक्षित बना लेते हैं। सातवें सर्ग में कर्ण के भयंकर युद्ध का वर्णन किया गया है, जिसमें वह युधिष्ठिर, भीम, नकुल और सहदेव को बार-बार अपने चंगुल में फँसाकर भी छोड़ देता है। वह पार्थ से लड़ने के लिए जैसे ही उद्धृत होता है, वैसे ही अश्वसेन नामक सर्प बाण का रूप धारण करके कर्ण के तरकस में आ बैठता है और उस बाण द्वारा पार्थ का विनाश कराना चाहता है, किन्तु कर्ण उसे अपना सहायक नहीं बनाता और यह कहकर फटकार देता है कि यहाँ नर का नर से युद्ध हो रहा है, नर का सर्प से युद्ध नहीं है। अतः मैं सर्प को अपना सहायक बनाकर यह कलंक नहीं लेना चाहता। अन्त में कर्ण का रथ रणक्षेत्र में पृथ्वी के अन्दर फँस जाता है और वह रथ को निकालने का जैसे ही प्रयत्न करता है, वैसे ही अर्जुन कर्ण को मार देता है। इस तरह एक शूर, दानी, तपस्वी, व्रती एवं सत्यवादी कर्ण का महाभारत में अन्त हो जाता है।

प्रश्न- 2. ''रश्मिरथी काव्य में वीर-रस की प्रधानता उच्चकोटि की रही है।'' इस कथन की पुष्टि कीजिए।

उत्तर—'रश्मिरथी' काव्य वीर-रस-पूर्ण है। इसमें कर्ण और अर्जुन के युद्ध वर्णन में वीर-रस की सुन्दर एवं सजीव व्यंजना हुई है।

कवि का प्रकृति-चित्रण भी बड़ा ही मनमोहक है, किन्तु कवि यहाँ प्रकृति की सुरम्य छवि में अधिक नहीं रमा है। उसका ध्यान मुख्यतया कर्ण के चरित्र-चित्रण तक ही सीमित रहा है। अतः यह एक चरित काव्य है। इसकी भाषा ओजमयी और उसमें सरसता, सुबोधता एवं प्रांजलता पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है। मुहावरों एवं लोकोक्तियों के प्रयोग ने भाषा को और भी प्रभावोत्पादक बना दिया है। सर्वत्र ओज के साथ-साथ प्रसाद गुण भी विद्यमान है। अलंकार योजना भी पर्याप्त पुष्ट एवं भावानुकूल है, किन्तु महाकाव्य की-सी विस्तृत एवं रसात्मक परिधि प्राप्त करके भी कवि 'रश्मिरथी' में महाकाव्योचित गरिमा एवं गुरुता की सृष्टि से सफल नहीं हुआ है। इसमें महाकाव्य के शास्त्रीय लक्षण तो मिल जाते हैं, किन्तु यहाँ कवि न तो जीवन की विविधता के गरिमामय चित्र अंकित कर सका है और न इसकी कथावस्तु को व्यापक बनाकर महाकाव्योचित गम्भीरता का सृजन कर सका है, और न वर्णन-कौशल एवं घटना-वैचित्र्य द्वारा वह महाकाव्य की-सी गम्भीरता उत्पन्न करने में सफल हुआ है। इतना अवश्य है कि इसमें कवि ने युग-युग से प्रताड़ित एवं पद-दलित कर्ण के चरित्र को उज्ज्वल एवं उन्नत बनाने में अशेतीत सफलता प्राप्त की है और कर्ण के चरित्र को उन्नत करके नूतन मानवता की प्रतिष्ठा में भी अत्यधिक सहयोग प्रदान किया है।

अतएव चरित-काव्यों में 'रश्मिरथी' एक सफल एवं उत्कृष्ट काव्य-कृति है और निश्चय ही यह एक उच्चकोटि का खंड-काव्य है।

प्रश्न- 3. प्रस्तुत खण्ड-काव्य 'रश्मिरथी' के उद्देश्य और नामकरण की सार्थकता पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।

उत्तर—'रश्मिरथी' काव्य का नामकरण कवि ने कर्ण को पुण्यप्रताप का केन्द्र मानकर श्रद्धा भाव से किया है। रश्मिरथी रथ का स्वामी कर्ण अपनी जाति, वंश, गोत्र आदि की मर्यादा से पूज्य नहीं बना किन्तु अपनी धर्म-निष्ठा, दानशीलता, तितिक्षा, कृतज्ञता, अटूट मैत्री भावना आदि गुणों के कारण उसने समाज में अपना स्वतन्त्र स्थान बनाया था। अपने कुल के विषय में वह अज्ञानी बना रहना ही ठीक समझता था। वह तो धर्म निष्ठा और दानशीलता को जीवन की सर्वश्रेष्ठ सम्पत्ति मानता था इसलिए आसन्न मृत्यु की बेला में भी उसने दैन्य और करुणा की भाषा में विषाद भरे दीन-वचन नहीं कहे वरन् अपने पुण्य-प्रताप को पुकारते हुए बड़े गर्व के साथ कहा—

तपस्या रोचिभूषित ला रहा हूँ, चढ़ा मैं रश्मिरथ पर आ रहा हूँ।

स्पष्ट है कि कविवर दिनकर ने कर्ण के इन्हीं गुणों को दृष्टि में रखकर कर्ण को रश्मिरथी के रूप में अपने काव्य में अंकित करने योग्य समझा।

प्रश्न- 4. ''प्रस्तुत खण्ड-काव्य 'रश्मिरथी' चरित्र-चित्रण की दृष्टि से अत्यन्त उन्नत और उच्च कोटि का है।'' स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—चरित्र-चित्रण की दृष्टि से 'रश्मिरथी' काव्य अत्यन्त उन्नत एवं उच्चकोटि का है। इसमें कवि ने कुन्ती एवं कर्ण को चित्रित

करने में पर्याप्त सफलता प्राप्त की है।

कवि ने कर्ण को आदर्श मित्र, अनन्य गुरुभक्त, परम धार्मिक, तेजस्वी धनुर्धर, उद्धारक, नारियों का संरक्षक, दयाशील, दानशील, परमत्यागी आदि अनेक गुणों से विभूषित करके अंकित किया है। कवि ने महाभारत की कुन्ती को 'रश्मिरथी' में अधिक सहृदय, वात्सल्यमयी एवं उदार हृदया अंकित किया है। वह ममता एवं वात्सल्य की करुणामूर्ति है और नारी की विवशता एवं परवशता की साकार प्रतिमा जान पड़ती है। कुन्ती का बारम्बार यह प्रयत्न रहता है कि कैसे भी भाई-भाई में युद्ध न हो और इसके लिए वह अपमान, अनादर एवं तिरस्कार को सहने के लिए भी सन्नद्ध हो जाती है। इस काव्य में कवि ने श्रीकृष्ण, युधिष्ठिर, अर्जुन तथा परशुराम से भी अधिक उज्ज्वल एवं श्रेष्ठ चित्रण कर्ण का अंकित किया है। उसे कवि ने अत्यधिक गरिमा एवं महिमा प्रदान की है और दुर्योधन जैसे दुश्चरित्र व्यक्ति को भी कर्ण के सम्पर्क के कारण दुर्योधन के रूप में अर्थात् सच्चे स्नेही मित्र के रूप में अंकित किया है।

प्रश्न- 5. रश्मिरथी की रचना के प्रेरक तत्त्वों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उत्तर—'रश्मिरथी' की भूमिका में कवि ने इस प्रबन्धकाव्य की रचना के प्रेरक तत्त्वों का संकेत करते हुए लिखा है कि—''कुरुक्षेत्र की रचना कर चुकने के बाद ही मुझ में यह भाव जगा कि मैं कोई काव्य भी लिखूँ, जिसमें केवल विचारोत्तेजकता ही नहीं कुछ कथा संवाद और वर्णन का भी महात्म्य हो।'' कथा-काव्य की रचना के आनन्द को कवि ने खेतों में देशी पद्धति से जई उपजाने के आनन्द के समान जाना है, जिसको जई के दानों के साथ कुछ घास और भूसा भी हाथ आता है, लहलहाती हरियाली देखने का सुख प्राप्त होता है और हल चलाने की मेहनत से तन्दुरुस्ती भी बनती है। इसके साथ ही कवि ने अपने कविकर्म की सफाई में दाहिने और बायें हाथ का रूपक ग्रहण कर यह भी ध्वनित कर दिया है कि कला की कसौटी पर 'रश्मिरथी' की रचना में उच्चस्तरीय उपकरणों का प्रयोग अपेक्षाकृत कम हुआ है, क्योंकि बायाँ हाथ इसमें अधिक सक्रिय रहा है। प्रबंधात्मक रचना में वर्णन-प्रसंग की इतिवृत्तात्मकता के अनेक प्रसंग हैं और वहाँ बायाँ हाथ स्पष्ट लक्षित होता है।

काव्य के वर्ण्य-विषय सम्बन्धित भूमिका में कवि ने लिखा है कि 'यह युग दलितों और उपेक्षितों के उद्धार का युग है।' कर्ण-चरित्र के उद्धार की चिन्ता इस बात का प्रमाण है कि हमारे समाज में मानवीय गुणों की पहचान बढ़ने वाली है। कुल और जाति का अहंकार विदा हो रहा है। आगे मनुष्य केवल उसी पद का अधिकारी होगा जो उसके सामर्थ्य से सूचित होता है, उस पद का नहीं जो उसके माता-पिता या वंश की देन हो।

इसी प्रकार व्यक्ति अपने निजी गुणों के कारण जिस पद का अधिकारी है, वह भी इसमें कोई बाधा नहीं डाल सकेंगे। कर्ण-चरित का उद्धार इस तरह से नयी भावना की स्थापना का ही प्रयास है।

यों तो कर्ण का चरित्र महाभारत के पाठकों के लिए नया नहीं है, किन्तु 'रश्मिरथी में जिस ओज और तेज से मंडित कर कवि ने उसे प्रस्तुत किया है वह पठनीय बन गया है। प्रथम सर्ग में जहाँ कर्ण रंगभूमि में अवतरित होता है वर्ग-संघर्ष की चुनौती उसके सामने है। जाति-गोत्र, कुल, वंश, माता-पिता आदि के गौरव को स्वीकार न करता हुआ वह पुरुषार्थ, शौर्य, पराक्रम, बल, विक्रम के द्वारा इतिहास में रेखा खींचकर अमर बनना चाहता है। जन्म दैवायत्व है। मनुष्य की अधिकार-सीमा से बाहर की बात जिसके लिए मनुष्य उत्तरदायी नहीं उसकी चर्चा और चिन्ता क्यों की जाए—

किन्तु मनुज क्या करे? जन्म लेना तो उसके हाथ नहीं,
चुनता जाति और कुल अपने बस की है बात नहीं।

प्रश्न- 6. स्पष्ट कीजिए की 'रश्मिरथी' आधुनिक युग-चेतना का काव्य है।

उत्तर—'रश्मिरथी' आधुनिक युग-चेतना का वाहक काव्य है। आधुनिक युगचेतना जितने पारदर्शी रूप में कर्ण के चरित्र में झलक रही है, कदाचित उस युग के किसी अन्य पात्र के चरित्र में अन्यत्र उपलब्ध नहीं होती है। दिनकर ने भूमिका में स्पष्ट कर दिया है कि यह युग दलितों और उपेक्षितों के उद्धार का युग है, मानवीय गुणों की पहचान का युग है, निजी गुणों से अर्जित पद प्राप्त करने का युग है। अपेक्षित कर्ण के उद्धार के लिए कवि ने कथा प्रसंगों के साथ अपने काव्य शिल्प और वर्णन से जो नूतन युगबोध उत्पन्न किया है वह पठनीय एवं मननीय है। प्रारम्भ में ही कवि ने स्पष्ट कर दिया है कि हीनमूलता का विचार परम्परावादी विचार है, वीर व्यक्ति के लिए वह मान्य नहीं हो सकता क्योंकि 'वीर खींच कर ही रहते हैं इतिहासों में लीक' इतना ही नहीं आज के युग की पुकार को और अधिक उग्र और स्पष्ट करते हुए दुर्योधन के मुख ने कवि ने कहलवाया है—'बड़े वंश से क्या होता है छोटे हों यदि काम। नर का गुण उज्ज्वल

चरित्र है, नहीं वंश धन, धाम।' बात तो सोलहों आने सही है लेकिन कहीं—दुर्योधन भी जो खोटे काम करता था, इससे उसका चरित्र भी उज्ज्वल नहीं था। ये शब्द यदि कर्ण के मुख से निकलते तो निश्चय ही इनका प्रभाव पाठक पर अपेक्षाकृत अधिक होता।

कथा और वर्णन प्रधान होने के कारण रश्मिरथी काव्य में स्थिरता न होकर प्रवाहपूर्ण गति है। कर्ण-चरित्र के माध्यम से कवि ने रूढ़िवादिता और जड़ विश्वासों को झकझोरने का सफल प्रयास किया है। कर्ण के उपेक्षित जीवन को नया सामाजिक अर्थ प्रदान करने और वैचारिक रूप से उसके तिरस्कार का वैज्ञानिक विश्लेषण इस काव्य में उपलब्ध होता है। कर्ण आहूत और अनाहूत परिस्थितियों में सुस्थिर रहकर अपना मार्ग बनाता है, वह विरोध और संघर्ष से टूटकर हताश होने वाला व्यक्ति नहीं है, दूसरों शब्दों में यह कह सकते हैं रश्मिरथी सामाजिक जीवन के अभिशापों को मिटाने के लिए सांस्कृतिक स्तर पर कला का और कल का दायित्व निर्वाह करने वाला काव्य है। अन्तिम युद्ध में कर्ण अर्जुन से पराजित होकर समाप्त हो जाता है किन्तु अधर्म और अन्याय के प्रति समर्पित नहीं होता। मान्वता और मानवीय गुणों के प्रति उसकी आस्था जीवन के अन्तिम क्षण तक दीप्त रहती है और प्रतिकूल परिस्थितियों में उसे अधिकाधिक तेजोदीप्त होते हुये देखा जा सकता है। कर्ण किसी लोकोत्तर सत्य का अन्वेषी न होकर लोक में अनादृत, अस्वीकृत लौकिक-सत्य को ही स्थापित करने और मनवाने का सतत् प्रयास करता है। रश्मिरथी में कवि ने इसीलिए कृष्ण के प्रसंग में तो अलौकिक घटना का उल्लेख किया है। किन्तु कर्ण को किसी अलौकिक या अमानवीय घटना का विधाता या स्वीकर्ता नहीं माना।

प्रश्न- 7. ''प्रस्तुत खण्ड-काव्य 'रश्मिरथी' का मुख्य पात्र कर्ण का दुर्भाग्य नक्षत्र धूम-केतु के समान उदित हुआ है।'' स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—युद्धक्षेत्र में धर्मयुद्ध की भावना से जूझने वाले कर्ण का दुर्भाग्य नक्षत्र धूमकेतु के समान उदित हुआ और विजय की आसन्न बेला में कर्ण के रथ का पहिया पंक में फँस गया। रथ-चक्र को पंक से बाहर निकालने के लिए कर्ण शस्त्र फेंक कर चक्के को उठाने में लग गया। कर्ण को चक्के के उद्धार में लगा देख नीतिज्ञ कृष्ण ने अर्जुन को अनीतिपूर्ण आदेश दिया कि वह निहत्थे कर्ण का वध करने में विलम्ब न करे। अर्जुन नराधम नहीं था। वह इस आदेश को सुनते ही सहम गया और उसने कृष्ण से कहा कि यह नरोचित कर्म नहीं है। यह धर्मयुद्ध की नीति नहीं है। कृष्ण ने अर्जुन को समझाते हुए कहा कि यह समय धर्म-विवेक का नहीं है। यदि इस समय इस चिन्तन में फँसेगा तो तेरा काल तुझे ग्रास लेगा—

क्रिया को छोड़ चिन्तन में फँसेगा,
उलटकर काल तुझको नहीं ग्रसेगा।

अर्जुन को क्रियाशील होना पड़ा। उसने शस्त्रविहीन कर्ण को प्रखर बाणों से बींध दिया। अर्जुन ने धर्म-निष्ठ कर्ण पर अधर्म से विजय प्राप्त की, किन्तु इस विजय से पाँडवों में भी अवसाद की गहरी छाया फैल गई। स्वयं श्रीकृष्ण भी कर्ण-वध से शोक मग्न होकर कह उठे कि विजय पा लेना मात्र पुरुषार्थ नहीं है, शील और चरित्र की मर्यादा स्थापित करना ही मनुष्य और मानवता की विजय है—

नहीं पुरुषार्थ केवल जीत में है,
विभा का सार शील-पुनीत में है—

हृदय का निष्कपट, पावन क्रिया का,
दलित-तारक समुद्धारक त्रिया का,
बड़ा बेजोड़-दानी था, सदय था,
युधिष्ठिर! कर्ण का अद्भुत हृदय था।

प्रश्न- 8. दिनकरजी का समस्त काव्य राष्ट्रीय उत्थान और जागरण की प्रेरणा है। संक्षिप्त में अपने विचार व्यक्त कीजिए।

उत्तर—दिनकर जी का समस्त काव्य राष्ट्रीयोत्थान और जागरण की प्रेरणा है। 'कुरुक्षेत्र', 'हुँकार', 'रेणुका' आदि में दिनकर जी की राष्ट्रीय विचारधारा बड़े वेग से प्रवाहित हुई है। दिनकर जी सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय कवि हैं। वे मूलतः जन-चेतना के गायक रहे हैं। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पहले आपने एक वीर योद्धा की भाँति पूरी शक्ति से ब्रिटिश साम्राज्यशाही का विरोध किया। आपकी रचनाओं में अतीत का गौरव-गान और देश की वर्तमान दुर्दशा का चित्रण है। स्वराज्य-प्राप्ति के पश्चात् आशा के अनुरूप देश की प्रगति न देखकर आपके हृदय की आग रह-रहकर भभक उठती है। आप अनुभव करते हैं कि जनता पिस रही है, अभी उसको सच्चा स्वराज्य नहीं मिला। इसलिए संघर्ष की आवश्यकता है।

दिनकर जी इन्कलाब के कवि रहे हैं। वे जन-भावनाओं के गायक हैं। देश की प्रत्येक परिवर्तित परिस्थिति में उन्होंने यह ध्यान में रखा है कि इसका प्रभाव साधारण जनता पर क्या पड़ेगा ? वे राष्ट्रीयता और जनता दोनों ही के सजग प्रहरी रहे हैं।

दिनकर जी का 'कुरुक्षेत्र' आधुनिक युग की गीता और राष्ट्रीयता का शंखनाद है। युधिष्ठिर की समस्या वही थी जो आज के भारत की समस्या है। युधिष्ठिर उसी युद्ध को रोकने का उपाय पूछने पितामह के पास जाते हैं। जिसे रोकने के लिए 'लीग ऑफ नेशन्स' बनाई गई थी तथा जिसे रोकने को आज 'संयुक्त राष्ट्रसंघ' प्रयत्नशील है।

'कुरुक्षेत्र' की रचना के समय भारत की जो दयनीय दशा थी, वह इसमें ध्वनित हो उठती है। पितामह धर्मराज को समझाते हैं—तुम्हें संन्यास नहीं लेना चाहिए। सारा भारतवर्ष दु:खी है—व्याकुल है, इसकी सेवा करनी चाहिए तथा भारतवासियों को सहारा देना चाहिए।

क्षत विक्षत है भारत भूमि का,
अंग-अंग बाणों से।
त्राहि-त्राहि का नाद निकलता,
है असंख्य प्राणों से।
कोलाहल है, महा त्रास है,
विपद आज है भारी।
मृत्यु-विवर से निकल चतुर्दिक,
तड़फ रहे नर-नारी।

पोंछो अश्रु उठो, हुत आओ,
वन में नहीं भुवन में।
होओ खड़े असंख्य नरों के,
आशा बन जीवन में।

'कुरुक्षेत्र' में भीष्म ने जो राजतंत्र की बुराई की है उसे पढ़कर अंग्रेजी शासन के अत्याचार और दमन-नीतियों का स्मरण हो जाता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि काव्यधारा के विकास में दिनकर और उनका 'कुरुक्षेत्र' महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। वर्तमान राष्ट्रीय कवियों में राष्ट्रीय कवि की दृष्टि से उनकी समता में मैथिलीशरण गुप्त ही ठहर सकते हैं। परन्तु उनके 'कुरुक्षेत्र' में अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध शस्त्र उठाने तथा कर्मवाद की जो प्रेरणा है वह उन्हें शीर्ष स्थान प्रदान करती है। 'परशुराम की प्रतीक्षा' में उनकी राष्ट्रीय भावना चीन के आक्रमण को विफल करने और शत्रु से प्रतिशोध लेने के लिए आपद्धर्म के रूप में युद्ध को उचित ठहराती है। इस काव्य में दिनकर जी का उग्र राष्ट्रीय कवि का रूप है।

प्रश्न- 9. दिनकर जी की भाषा-शैली पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उत्तर—दिनकर जी की काव्य-भाषा विशुद्ध खड़ी बोली है। तत्सम शब्दों का प्रयोग बड़ी सफलता के साथ हुआ है। शब्द-योजना पुष्ट और भावानुकूल है। भावों की शिथिलता भाषा में नहीं मिलती है। उनकी भाषा-शैली पूर्ण रूप से विचारों और भावों को अभिव्यक्त करने में समर्थ है। प्रत्येक शब्द विचार और भावों का वाहक बन गया है। दिनकर जी के काव्य में कहीं भी क्लिष्ट शब्द योजना नहीं मिलेगी। भावों के अनुरूप ही उनकी भाषा सरल, सुबोध, सुलझी हुई एवं प्रांजल है। शब्दों की तोड़-मरोड़ और व्याकरण की अशुद्धियाँ नहीं मिलेंगी। शाब्दिक चमत्कार तथा साहित्य-प्रदर्शन के चक्कर में दिनकर जी कहीं नहीं पड़े। लाक्षणिक तथा व्यंजना शब्दों का प्रयोग भी बहुत कम उन्होंने किया है। इसलिए उनकी शैली अत्यन्त परिमार्जित और प्रौढ़ है। सरलता और सुबोधिता ही भाषा का अपना सौन्दर्य और विशेषता है। दिनकर जी की छन्द योजना में नवीनता है तथा अलंकारों के प्रयोग में भी स्वाभाविकता है। उनकी समस्त रचनाओं में भाव और भाषा का सामंजस्य मिलता है।

प्रश्न- 10. ''विचारों की स्पष्टता दिनकर जी के काव्य की मूलभूत विशेषता है।'' संक्षिप्त में स्पष्ट कीजिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

उत्तर—विचारों की स्पष्टता दिनकर जी के काव्य की मूलभूत विशेषता है। उनका काव्य अवचेतन मन की उलझी हुई संवेदना का वाहक कहीं नहीं बनता। उन्होंने अपने काव्य में सौन्दर्य और उपयोगिता का सफल समन्वय किया है। वे कहते हैं—

''सौन्दर्य काव्य का श्रेय है, परन्तु उपयोगी होना भी उनका श्रेय है। इसलिए बिना दोनों का ग्रन्थि-बन्धन हुए सत्काव्य की सृष्टि सम्भव नहीं।''

यही कारण है कि दिनकर जी का समस्त काव्य सोद्देश्य है। उसमें प्रसाद और ओज गुण का सुन्दर समन्वय हुआ है।

दिनकर जी एक विचारक कवि हैं। 'कुरुक्षेत्र' में उनकी विचारशीलता के दर्शन होते हैं। इसमें बुद्धि और हृदय के सन्तुलित विकास पर उन्होंने बल दिया है। आध्यात्म और विज्ञान के समन्वय पर बल देते हुए ''साहित्य का नूतन ध्येय'' निबन्ध में वे लिखते हैं—

''संसार उस बिन्दु पर पहुँच रहा है, जहाँ जड़ से चेतन की उत्पत्ति होगी, जहाँ भौतिकता से अध्यात्म की किरणें फूटेंगी और जिस युग के नेता आँकड़े एकत्र करने वाली वैज्ञानिक नहीं, प्रत्यज गाँधी या अरविन्द अथवा गाँधी और अरविन्द होंगे।''

दिनकर जी की 'सीपी और शंख' रचना समस्त विश्व की आधुनिक काव्य चेतना का निचोड़ है। इस दृष्टि से दिनकर जी की काव्य धारा में एक नया मोड़ आता है। वे रहस्यात्मक सत्य की अभिव्यक्ति के लिए संकेतों की भाषा का प्रयोग करने की ओर मुड़ते हैं।

नारी-भावना—दिनकर जी ने नारी को भी अपने काव्य में स्थान दिया है और उसके रूप-आकर्षण, महिमा एवं रहस्यात्मकता का गान किया है।

प्रकृति-प्रेम—दिनकर जी के स्वभाव में प्रकृति के प्रति एक अबाध आकर्षण है। वे समस्त प्राकृतिक व्यापारों में एक आत्मीयता का अनुभव करते हैं। इसलिए जहाँ भी उन्होंने प्रकृति वर्णन किया है वह मार्मिक और सजीव है। उसके यथार्थ वर्णन के कारण उसमें गीतात्मकता की अपेक्षा कथात्मकता अधिक है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि दिनकर जी युग प्रतिनिधि कवि हैं। उनकी भाषा में ओज और भावों में क्रान्ति की ज्वाला है। अतीत के चित्रों को अपनी भावना के अनुसार सजाने में वर्तमान युग का कोई अन्य कवि उनकी समता नहीं कर सकता। उनकी प्रत्येक पंक्ति में भारतीय संस्कृति और सभ्यता का उद्वेलन है। उनमें जन-जीवन के जागरण का स्वर है।

2.11.3 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न- 1. दिनकर जी की काव्य-भाषा की विशेषताओं पर सारगर्भित निबन्ध लिखिये।

उत्तर—अभिव्यक्ति की स्वच्छता—अभिव्यक्ति की स्वच्छता दिनकर जी की भाषा की प्रमुख विशेषता है। सर्वत्र सहज, सार्थक और भावानुकूल शब्दों का प्रयोग हुआ है। 'हुँकार' में ज्वाला बरसाने, 'रसवन्ती' में रस की अभिव्यक्ति करने, 'कुरुक्षेत्र' और 'उर्वशी' में अन्तर्मंथन को व्यक्त करने में उनकी भाषा में समान रूप से गतिमयता, सरसता और गम्भीरता बनी रहती है। दिनकर जी अपने भावों को शब्दों में भर देने वाले कुशल शिल्पी हैं। उनका शब्द-कोष बहुत व्यापक है। उनकी भाषा में शब्द भाव-गर्भित, अर्थ-गर्भित और चित्रमय होते हैं।

लाक्षणिकता—लाक्षणिकता भाषा की रमणीयता को बढ़ा देती है। दिनकर जी के लाक्षणिक शब्दों में दुरुह कल्पना का प्रयोग नहीं हुआ है। संस्कृत शब्दों में प्रायः लाक्षणिकता मिलती है। कहीं-कहीं पद भाव-चित्र एवं वातावरण के गुम्फन में प्रचलित शब्दों की अपेक्षा दुरुह शब्दों का भी प्रयोग हो जाता है। 'आलोक ध्वजा' से एक उदाहरण दृष्टव्य है—

ज्योतिर्धर कवि मैं ज्वलित सौर मण्डल का,

मेरा शिखण्ड अरुणाभ किरीट अनल का।

भावानुकूल होने के कारण तत्सम शब्द प्रेषणीयता में बाधक न होकर साधक ही होते हैं। तत्सम शब्दों का प्रयोग 'उर्वशी' में देखा जा सकता है। प्रतिपाद्य विषय की गम्भीरता, गरिमा और विशदता के निर्वाह के लिए तत्सम शब्दों का प्रयोग आवश्यक हो गया है। इससे अभिव्यक्ति में भव्यता आ गई है।

कुछ तत्सम शब्द : 'अस्थिपुँज', 'तमिस', 'कृशानु', 'चक्षु स्विनी', 'सिय माण', 'ज्योतिर्धर', 'विभ्रांत', 'कस्मै देवाय:', 'चक्षु-श्रुवा', 'चक्षुस्विनी', 'उत्कान्ति', 'खग्रास' आदि।

'उर्वशी' की भाषा के अतिरिक्त दिनकर जी के अन्य काव्यों की भाषा तत्सम नहीं कही जा सकती। दिनकर द्वारा प्रयुक्त तत्सम

शब्दों के प्रयोग में औचित्य और सन्तुलन का निर्वाह हुआ है। यह शब्द उनके प्रतिपाद्य को गम्भीरता और भव्यता के प्रतिपादन में सहायक हुए हैं।

तत्सम तथा देशज शब्द—तत्सम और देशज शब्दों के द्वारा दिनकर जी ने अपनी काव्य-भाषा को सहज-स्वाभाविक बना दिया है। 'निठुर', 'सपना', 'ब्याह', 'सुहाग', 'नैन', 'हिय', 'पिया' जैसे शब्दों के प्रयोग से उनकी भाषा जीवन के निकट आ गई है। इसके द्वारा रमणीयता और स्वाभाविकता का भी समावेश हुआ है।

माँ की ठीक दुलार पिता की ओ लाजवन्ती भोली।
ले जायेगी हिया की मणि अभी पिया की डोली।

स्थानीय शब्दों के प्रयोग में दिनकर जी बड़े सिद्धहस्त हैं। कहीं-कहीं कविता की पूरी पंक्तियों में ही स्थानीय शब्दों का प्रयोग मिलता है।

भैया! लिख दे एक खत मो बालम के जोग।
चारो कीने खेम कुसल माँझे ठाँ मोर वियोग।

चौपालों में बैठ कृषक गाते कहुँ आल्हा बनवारी।

विदेशी-शब्द—दिनकर जी की रचनाओं में उर्दू, फारसी, अंग्रेजी आदि के प्रयोग प्रचुरता से मिल जाते हैं। इन शब्दों के प्रयोग से भाषा में गत्यात्मकता आ गई है। हिन्दी, उर्दू के गंगा-यमुनी रूप के उदाहरण 'द्वन्द्वगीत' तथा अन्य सामाजिक यथार्थवादी रचनाओं में मिल जाते हैं।

मैंने देखा आजाद उन्हें जो साथ जिस्म के चलते थे।
मंजिल मिली उन वीरों को जो अंगारों पर चलते थे।

जिनमें बाकी ईमान अभी वे टिक रहे वीरानों में।
दे रहे सत्य की जाँच, आखिरी दम तक रेगिस्तानों में।

जग-जीवन से सम्बन्धित रचनाओं में दिनकर जी जिस प्रकार उर्दू, हिन्दी और संस्कृत के शब्दों का प्रयोग करते हैं, उसी प्रकार आवश्यकता पड़ने पर अंग्रेजी का भी प्रयोग करते हैं। 'परशुराम की प्रतीक्षा' की कुछ कविताओं में अंग्रेजी की शब्दावली और मुहावरे रूपान्तरित होकर प्रयुक्त हुए हैं। ऐसे शब्दों से भाषा की व्यंजना शक्ति बढ़ी है। उदाहरण के लिए 'परशुराम की प्रतीक्षा' की एनार्की शीर्षक कविता को लिया जा सकता है।

एक कैबिनेट अनेक यहाँ मुख हैं।
डिमोक्रेसी दूर करो हमें तानाशाह दो।
चिन्तन में सोसलिस्ट गर्क है।
कम्युनिस्ट और काँग्रेसी में क्या फर्क है।

रेलवे का स्लीपर उठाये कहाँ जाता है।

मुहावरे एवं लोकोक्तियाँ—मुहावरों और लोकोक्तियों के प्रयोग से अनुभूति में प्रखरता और तीव्रता आ जाती है। दिनकर जी ने भाषा में मुहावरों का प्रयोग अनुभूति के साथ एकाग्र होकर किया है। प्राय: वे भाव के अंग ही बन गये हैं।

मुहावरे—

1. फट न जाय अम्बर की छाती।
2. ये हैं वे जिनके जाइ पानी में आग लगाते हैं।
3. अपनी ही उँगली पर जो खंजर की जंग छुड़ाते हैं।
4. पड़ी समय से होड़ खींच मत तलवों से काँटे रुककर,

फूँक- फूँक न चलती जवानी चोटों से बचकर झुककर।

5. हम धोते हैं घाव इधर सतलज के शीतल जल से,
उधर तुझे भाता है इन पर नमक हाथ छिड़काना।

6. अपना रक्त पिला देती यदि फटती आज वज्र की छाती।

लोकोक्तियाँ—

1. है फर्क मगर काशी में जब वर्षा होती।
हम नहीं तानते हैं छाते बरसातों में।

2. जीवन के दिन चार अवधि उसमें भी अन्य जवानी के।

3. थके सिंह आदर्श ढूँढते व्यंग्य बाण सहते हैं।

'नए सुभाषित', 'नील कुसुम' और 'उर्वशी' में पुराने सुभाषितों की नए रूप में प्रतिष्ठा दिनकर जी ने की है।

वर्ण- योजना—शब्दालंकारों का प्रयोग दिनकर जी के काव्य में विरल ही है। 'पुनरावृत्ति', 'वर्ण योजना' अवश्य मिल जाती है। इससे भाषा में चमत्कार आ गया है। निम्नलिखित उदाहरण में 'दिल्ली' और 'आह' शब्दों की पुनरावृत्ति कविता को प्रभावपूर्ण और भावपूर्ण बना देती है—

दिल्ली आह अलंक देश का
दिल्ली आह ग्लानि की भाषा।
दिल्ली आह मरण पौरुष का
दिल्ली छिन्न- भिन्न अभिलाषा।

'परशुराम की प्रतीक्षा' में पद- मैत्री है। इसमें जो आकृतियाँ हैं, उनको दिनकर की कंठकला का प्रभाव द्विगुणित कर देता है। 'हाय', 'अरे', 'अहा', 'उफ' आदि शब्दों के प्रयोग दिनकरजी ने भावोद्रेक के ढंग से किए हैं—

हाय! मरण तक जीकर मुझको हलाहल पीना है।
उफ! रो मत धड़ीर प्रेम के प्रथम परिचय की।
आह! गर्भ में लिए उसे कल्पना शृंग पर चढ़कर।

कहीं- कहीं ऐसे प्रयोग खटकते हैं। 'परशुराम की प्रतीक्षा' में 'जवानियाँ', 'जवानी का झण्डा' जैसी ओजपूर्ण कविताओं में 'अहा' तथा 'देखलो' की आवृत्तियाँ खटकने लगती हैं।

अहा, कि एक रात चाँदनी मेरी सुहावनी?
अहा, कि एक बात प्रेम की बड़ी सुहावनी?
अहा, कि एक याद दूब- सी मरु प्रदेश में,
अहा, कि एक चाँदनी जो छिपा विचार देश में,
अहा, कि पुकार कर्म की अहा कि पीर मर्म की,
अहा, कि आँसुओं में मुस्कुरा रही जवानियाँ॥

वृत्ति, गुण और रीति—दिनकर मुख्यतया वीर रस के कवि हैं। 'रसवन्ती' और 'उर्वशी' में मधुर, कोमल आदि भावनाएँ भी अभिव्यक्त हुई हैं। 'तत्सम शब्दों और लम्बे वाक्यों से माधुर्य की हानि हुई है। ओजपूर्ण, परुषावृत्ति और गौड़ी रीति का परम्परागत सामंजस्य दिनकर के काव्य में नहीं मिलेगा। 'ओज' उनके समस्त काव्य की आत्मा है। 'हुँकार' और 'परशुराम की प्रतीक्षा' ओज गुण से ओत- प्रोत काव्य- संग्रह है। प्रसाद शैली में समास रहित ऋतु पदावली होती है। उसमें मधुरावृत्ति की मसृणता और परुषावृत्ति की कठोरता का समन्वय होता है। इस शैली में सरल, सुबोध और प्रचलित शब्दों का प्रयोग होता है। दिनकर जी मुख्यत: इसी शैली के कवि हैं।

शब्द- शक्तियाँ—दिनकर जी के काव्य में विकास के साथ- साथ अभिधा के लक्षण का प्रयोग बढ़ता गया। अभिधात्मक वर्णन दिनकर जी के नीरस नहीं होने पाये हैं। अभिधा में भाव एवं चित्र समन्वित हो गये हैं।

दो प्रेमी हैं वहाँ एक जब,

बड़े साँझ आल्हा गाता हूँ।
पहना स्वर उसकी राधा को,
घर से यहाँ खींच लाता है।
चोरी- चोरी बड़े नीम की-
छायाँ में छिपकर सुनती है,
हुई न क्यों मैं कड़ी गीत की
विधना, यों मन में गुनती है।

दिनकर जी के काव्य में लक्षणा के विविध प्रयोग देखने को मिलते हैं। दिनकर लक्षणा के कवि हैं। शब्दों के प्रतीकात्मक प्रयोगों और अर्थ-गर्भित विशेषणों के निर्माण की सामर्थ्य में उनकी सशक्त लक्षणा की ही शक्ति निहित है। उन्होंने प्रतीकों का प्रयोग सामाजिक और राजनीतिक वैषम्यों की आक्रोशपूर्ण अभिव्यक्ति के लिए किया है, 'परशुराम की प्रतीक्षा' से कुछ उदाहरण। स्वार्थी राजनीतिक नेताओं और पूँजीपतियों के लिए प्रतीकों का प्रयोग किया गया है—

सिंहों पर अपना अतुल भार मत डालो,
हाथियों स्वयं तुम अपना बोझ सम्भालो,
कौन पाप? है याद भेड़िये जब टूटे थे।
तेरे घर के पास दीन- दुर्बल भेड़ों पर।

व्यंजना और लक्षणा से संयुक्त अभिव्यंजना में भारत की नीति और तत्सम्बन्धी विचारधारा के प्रति दिनकरजी का आक्रोश उबल पड़ा है।

है जिनके दाँत, उनसे अदन्त कहते हैं,
यानी शूरों को देख सन्त कहते हैं,
तुम तुड़ा दन्त क्यों नहीं पुण्य पाते हो।
यानी तुम भी क्यों भेड़ न बन जाते हो?
पर कौन शेर भेड़ों की बात सुनेगा?
जिन्दगी छोड़ मरने की राह चुनेगा।

'लोहे के पेड़', 'लोहे के मर्द' इत्यादि शब्दों की व्यंजना लक्षणा पर आधारित है। परशुराम की प्रतीक्षा' की पूरी 'एनर्की' कविता दिनकर जी की सबल और सक्षम व्यंजना का उदाहरण है।

निष्कर्ष—छायावादी शब्द-समूह की कोमलता दिनकर के प्रतिपाद्य विषय के अनुकूल नहीं है। दिनकर जी की काव्य-भाषा में कुछ छुट-पुट दोष भी मिल जाते हैं, जो निम्नलिखित हैं—

1. कहीं-कहीं उनकी भाषा में चारण की भाषा की नाटकीयता आ गई है। बोधिसत्व को जगाते हुए जब वह बार-बार 'जागो-जागो' की रट लगा देते हैं, तब उनकी शैली चारणों की-सी हो जाती है।

2. लिंग और वचन सम्बन्धी दोष भी मिल जाते हैं, जैसे—

(क) मैं चाँदनियों का बोझ किसी विध सहती हूँ।

(ख) मारुत फूलों से भरा आँसूओं से गीला।

(ग) आपस के ही द्वेष से हो गया संहसार पूरे देश का।

3. कहीं-कहीं स्त्रीलिंग बहुवचन के साथ प्रयुक्त क्रियाओं का रूप दोषपूर्ण हो गया है। स्त्रीलिंग में बहुवचन के साथ क्रियाओं का रूप, पुल्लिंग में प्रयुक्त क्रियाओं की ही भाँति रहता है, लेकिन दिनकर के प्रयोग में स्वाधीनता आ गई है—

'हम लौट रही थी', 'हम मारी-मारी फिरती हूँ', 'हम चली' आदि गलत प्रयोग हैं।

4. कहीं-कहीं अनावश्यक पुनरावृत्ति भी मिलती है—

(क) गली कूँचे वन तीरथ नगर में।

(ख) मनुज दुर्बल मानव लाचार।

(ग) महिला मुक्ता विडम प्रबल विरचे हुए भवन में।

दिनकर जी की काव्य-भाषा में छुट-पुट दोषों का कोई उल्लेखनीय महत्त्व नहीं है। समग्र रूप से कहा जा सकता है कि दिनकर जी की भाषा सशक्त और समर्थ है।

प्रश्न- 2. ''दिनकरजी की भाषा को चित्र-योजना ने अद्भुत सौन्दर्य और आकर्षक बना दिया है।'' इस कथन की समीक्षा करते हुए उनकी अलंकार योजना व छन्द योजना पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।

उत्तर—दिनकर जी की भाषा में चित्रात्मकता का विशेष गुण है, आलम्बन की विविधता के कारण दिनकर जी के काव्य में लक्षित और उपलक्षित चित्रों के विविध प्रयोग हुए हैं। उनके चित्र ओजपूर्ण भी हैं और मधुर एवं कोमल भी। उनमें आलम्बन चित्र और विस्तृत आधार-फलक का विचित्र विराट चित्र है और लघु फलकों पर निर्मित कोमल मधुर चित्र भी हैं। साथ ही अनुभाव-चित्रों की भी उन्होंने सुन्दर योजना की है।

विस्तृत आलम्बन फलक पर अंकित आलम्बन चित्र—क्रान्ति और युद्ध-सम्बन्धी रचनाओं में दिनकरजी ने इसी प्रकार के चित्र अंकित किये हैं। ये चित्र सबल और शान्तिपूर्ण हैं। रेखाओं और वर्णों के संयुक्त प्रयोग के चित्र बड़े सजीव हो गये हैं। निम्नलिखित उदाहरण में क्रान्ति का समग्र चित्र सामने आ जाता है। रेखाएँ ध्वनि से संयुक्त हैं। तलवार की झनकारें और क्रुद्ध हुँकारें वीर रस के अनुभावों की सृष्टि करती हैं। बिजली और आग सैनिकों के उबलते क्रोध, मृत्यु और नाश का वेग करती हैं। भूचाल और तूफान क्रान्ति की व्यापक अवस्था, भीषण संहार और घोर अस्तव्यस्तता का चित्र प्रस्तुत करते हैं। अनुकरणात्मक शब्द 'झन-झन' की आवृत्ति 'मारु' राग के वातावरण का निर्माण कर देती है—

झन-झन-झन-झन-झन धनन धनन
मेरी पायल झनकार रही तलवारों की झनकारों में
अपनी आगमनी बना रही मैं आप क्रुद्ध हुंकारों में।
मैं अहंकार-सा कड़क उठी हँसती बिजुली की कोरों में।
बन काल-हुताशन खेल रही पगली मैं फूट पहाड़ों में
अंगड़ाई में भू-चाल साँस में लेकर के उच्चास पवन।

दिनकर जी के चित्र गत्यात्मक हैं। करुणा तथा भयानक रस के चित्र खींचने में भी दिनकर जी समर्थ हुए हैं। जैसे—

विष की ज्वाला से दक्षमान हो उठा व्यग्र सारा-खगोल।
मतवाले नाग शशंक चले खोले जिह्वाएँ लाल-लाल।

दिनकर जी ने विस्तृत आधार फलक पर ग्रामीण और सामाजिक वातावरण के अनेक चित्र खींचे हैं। जैसे – इसकी एक पंक्ति में कवि ग्राम के सात्विक सौरभ की सफल अनुभूति देता है। तुलसी के पौधे के साथ घंटे की ध्वनि पवित्र वातावरण को उपस्थिति कर देती है। तीसरी पंक्ति में दीपक की लौ के सामने अपनी पुस्तक में सिर खपाते हुए ग्रामीण बालकों का चित्रण वातावरण को सजीवता प्रदान करता है। बालकों से प्रिय को पत्र लिखने का अनुरोध करती हुई ग्राम्य-युवती सारे वातावरण का शब्द-चित्र सा खींच देती हैं। यह चित्र क्रिया-विधायक है—

वन-तुलसी की गन्ध लिये हल्की पुरवैया आती है।
मन्दिर की घन्टा ध्वनि युग-युग का सन्देश सुनाती है।
टिम-टिम दीपक के प्रकाश में पढ़ते निज पोथी शिशुगन
परदेशी की प्रिया बैठ गाती यह विरह-गीत उन्मन।
भैया लिख दे एक कलम खत मो बालम के जोग।
चारों कोने खेम-कुशल माँझे ठाँ तोर वियोग।

दिनकर जी के उपस्थित किए समस्त चित्रों में अधिकतर रेखाएँ ही प्रधान हैं। ओज, वीरता, आत्म-शक्ति की प्रचुरता की चरम अभिव्यक्ति इन चित्रों में हुई है।

लघु फलकों पर अंकित प्रकृति-चित्र—दिनकर जी प्रकृति के कवि न होकर जीवन के कवि हैं, परन्तु जीवन प्रकृति से सर्वथा मुक्त

नहीं हो सकता है। प्राय: प्रकृति का चित्रण उद्दीपन रूप में हुआ है। प्रकृति के कोमल, मधुर और सजीव चित्र ही दिनकर जी ने प्रस्तुत किये हैं। प्रकृति-चित्रण में चित्रात्मकता, 'रसवन्ती' और 'नील-कुसुम' में विकसित होकर 'उर्वशी' में चरम सीमा पर पहुँची हुई है। 'उर्वशी' के प्रकृति-चित्र प्राय: आलंकारिक हैं। 'रेणुका' की रचनाओं के प्रकृति-चित्रों में उनकी चित्रांकन शक्ति का परिचय मिलता है—

आज सरित का कल-कल छल-छल
निर्झर का अविरल झर-झर।
पावस की बूंदों में रिमझिम,
पीले पत्रों का मर्मर।

प्रकृति का निम्नलिखित संश्लिष्ट चित्र बहुत सुन्दर बन पड़ा है। प्रकृति का निस्तब्ध, नीरव और स्थिर चित्र सजीव हो उठा है—

पूर्ण कुँजों में न मर्मर गान
सो गया थक कर शिथिल पावमान
अब न जल कर रश्मि बिम्बित लाल
मूँद उर में स्वप्न सोया ताल
सामने द्रुम-राशि तमसाकार
बोलते तप में विहंग दो चार
झींगुरों के शेर खग से लीन
देखते ज्यों एक रब अस्पष्ट विहीन।

दिनकर जी ने वर्ण-योजना के द्वारा, इन्द्र धनुषी वातावरण उपस्थित कर दिया है। चाँदनी का शुभ्र, श्वेत परिधान, नक्षत्रों के झिलमिलाते अलंकार दर्पण-सा चमकता सरोवर, जल आदि सभी कुछ सामने आ जाता है, उड़ता हुआ पुष्प पराग, चहकती मैना का स्वर और तितलियों का रंग-बिरंगापन वातावरण में फाल्गुन का रंग और होली की मादकता भर देता है।

चन्द्रिका तट का कर परिधान, सजा नक्षत्रों से शृंगार
प्रकृति पुलकाकुल आँखें खोल देखीं निज सुवर्ण संसार
चमकते तस पर झिलमिल फूल, बौर जाता है कभी रसाल
चहकती चित्रित मैना कहीं, हों उड़ती कुसुमों की धूल

शुभ शरद-वर्णन के निम्न उदाहरण में सजीवता के प्रभाव देखते ही बनता है—

उजड़ रही मंजरी काँस की, हवा झूमती आती है।
राशि-राशि अंबली फूलों की ओर झुकी जाती है।
उगा अगस्त्य उतर आया सख्ती में निर्मल व्योम सखी।
झलमल-झलमल काँप रहे हैं जल में उद्गम सोम सखी।

रूप और अनुवाद-चित्र—दिनकर जी की 'उर्वशी' में रूप तथा अनुवाद के सुन्दर चित्रण मिलते हैं। उर्वशी की चित्र-योजना प्राय: आलंकारिक और प्रतीकात्मक है। रूप तथा क्रिया से समन्वित एक चित्र—

खोल दृग देखा प्राचीन और आरक्त चरणों का शृंगार,
तुम्हारा नव उद्वेलित रूप, व्योम में उड़ता कुन्तल भार।

निम्न उदाहरणों में कार्य-कलापों और मानसिक स्थितियों के बहुत सुन्दर चित्र हैं। चित्र क्रिया-विधायक है। नव वधू के हृदय में छिपे उल्लास एवं विदा लेती हुई कन्या के विछोह-पीड़ा से सम्मिलित अनुभावों का चित्र मुखर हो गया है—

आँखों में दे आँख हेरती
है उसको जब सखियाँ,
सुरखी आ जाती मुख पर
हँस देती मीठी अँखियाँ।
पर समेट लेती शरमाकर

बिखरी- सी मुस्कान,
मिट्टी उकसाने लगती है,
अपराधिनी समान।

प्रकृति के उपकरणों से भी दिनकर जी ने रूप-रंग लेकर नारी का रूप संवारा है—

ये नवनीत कपोल गुलाबों की जिनमें लाली खोई,
ये नलिनी से नयन जहाँ काजल की लघु अलिनी सोई,
कोपल से अधरों को रंग कर कर बसन्त का धन्य हुआ।
किसी विरह से तनु को यह धवलिया आँसू से धोई।

इन कोमल भावों के अतिरिक्त दिनकर जी ने संघर्षरत क्रियाशील और सामाजिक व्यक्ति के भी प्रभावपूर्ण और सबल चित्र खींचे हैं।

व्यंग्य चित्र—किसी की धज्जियाँ उड़ाने के लिए दिनकर जी बड़े ही सजीव व्यंग्य-चित्र खींच देते हैं। इनमें शंकर के कार्टून से कम प्रभाव नहीं होता। गाँधी के नाम पर अहिंसात्मकता का कृत्रिम ढोंग रचने वालों पर वे प्रहार करते हुए कहते हैं—

कुर्ता, टोपी, पहन कमर में भले बाँध लो
पाँच हाथ की धोती घुटनों के ऊपर तक
अथवा गाँधी बनने के आकुल प्रयास में,
आगे के दो दाँत डॉक्टरों से तुड़वा लो।

चित्रों की सार्थकता इस दृष्टि से होती है कि वे भाव और विचार के चित्र बनकर हमारे मन एवं चक्षु के सामने साकार हो जाएँ, सार्थकता की इस कसौटी पर दिनकर जी के चित्र खरे उतरते हैं।

दिनकरजी की अलंकार योजना का निरूपण—काव्य में अलंकारों का इतना ही महत्त्व है कि वे उसके आन्तरिक विकास और रसोद्रेक में सहायक हों। दिनकर जी के अनुसार—

''अलंकार शब्द से वैसे तो अनावश्यक बनाव शृंगार की भी ध्वनि निकलती है, किन्तु कविता में अलंकारों के प्रयोग का वास्तविक उद्देश्य अतिरंजन नहीं, वस्तुओं का अधिक से अधिक सुनिश्चित होना है।''

दिनकर जी के अप्रस्तुत-योजना में तीन रूप मिलते हैं—1. सादृश्यमूलक 2. अतिशयोक्तिमूलक 3. विरोधमूलक।

दिनकर जी की सादृश्य अप्रस्तुत-योजना संश्लिष्ट, चित्रात्मक और सभी प्रकार की साम्य-योजनाओं पर आधारित है। उपमा और रूपक दिनकर जी के प्रिय अलंकार हैं। शर-शय्या पर पड़े हुए भीष्म के लिए निम्न उदाहरण में कितनी सफल अप्रस्तुत योजना है—

शरों की सेज पर लेटे हुए गजराज जैसे।
थके टूटे गरुड़ से सुस्त पन्नग राज जैसे।

'थके', 'टूटे' तथा 'गरुड़' से चलते शब्द भीष्म के गौरवपूर्ण पराभाव को व्यंजित कर रहे हैं। 'रसवन्ती' की उपमाएँ एक ओर सहज कोमल और मधुर है, दूसरे ओर उनमें छायावादी मानवीकरण-परम्परा का अवशेष भी मिलता है, छायावादी अलंकार-योजना के अवशेष का प्रतिनिधित्व करने वाली प्रमुख कविता 'संध्या' में मानवीकरण के सुन्दर, स्निग्ध और कोमल उदाहरण मिलते हैं, परन्तु कहीं-कहीं उनका रूप रहस्यपूर्ण, वीभत्स और कठोर भी हो गया है। निम्न चित्र में संस्था में अभिसारिका का आरोप किया गया है—

षोडसी तिमिराम्बरा सुकुमार
भूलुंठित पुष्पित लता सी म्लान छिन्नाधार।

अभिसारिका के रूप में संध्या-सुन्दरी की उदासी और अनवरत प्रतीक्षा का नैराश्य यहाँ उपमानों में साकार हो उठा है। 'सामधेनी' और 'नीलकुसुम' में सादृश्यमूलक अप्रस्तुत योजनाओं में कहीं-कहीं नये प्रयोग हुए हैं—

दम तोड़ती हुई बुढ़िया-सी,
दुनिया पड़ी हुई है।

'मॉडी' प्रलय के निकट सूर्य की निष्प्रभ होती हुई ज्योति का संकेत देती हैं। दम तोड़ती हुई बुढ़िया प्रलय के नाश से प्रांत विश्व का चित्र उपस्थित करती है।

अप्रस्तुत योजना के विकास की दृष्टि से सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान 'उर्वशी' की अप्रस्तुत-योजना को है। उदाहरण—इसमें उपमानों

की चमक उर्वशी का आलौकिक रूप हमारे नेत्रों के सामने ला देती है—

प्रगटी जब उर्वशी चाँदनी में द्रुम की छाया से,
लगा सर्प के मुख से जैसे मणि बाहर निकलती हो।
या कि स्वयं चाँदनी स्वर्ण-प्रतिभा में आन ढली हो।
उतरी हो धर देह स्वप्न की विभा प्रथम उपवन की,
हिमकण सिक्त कुसुम सा उज्ज्वल अंग-अंग झलमल था,
मानो अभी-अभी जल से निकला उत्फुल्ल कमल था।

सादृश्यमूलक अप्रस्तुत-विधान के अतिरिक्त अलंकारों के और भी रूप दिनकर जी के काव्य में मिलते हैं। विरोध और अतिशयोक्ति में चमत्कार-नियोजन का प्रयोग दिखाई पड़ता है। कुछ अलंकारों के उदाहरण—

व्याज-निन्दा—निम्न उदाहरण में व्याज-निन्दा अलंकारों के अन्तर्गत व्यंग्य और आक्रोश की अभिव्यक्ति हुई है—

महँगी आजादी की यह पहली साल गिरह है,
रहने दो अब बापू की अर्थी दूर नहीं।
और धूमधाम से नहीं मनाओगे क्या तुम,
कुछ ही वर्षों में दशक चोर बाजारी का?
छल छद्म कपट का राजनीत के तिकड़म का,
क्रम-क्रम से इनका भी उत्सव होना चाहिए।

व्यतिरेक—व्यतिरेक अलंकारों में उपमेय में उपमान से अधिक गुण कहे जाते हैं। निम्न उदाहरण में इन्द्र कर्ण की कीर्ति को निष्कलंक चन्द्र कहते हैं—

किन्तु आपकी फिकी चाँदनी कीर्ति हो जायेगी।
निष्कलंक विधु कहाँ दूसरा फिर वसुधा पायेगी।

उल्लेख—व्यंग्यपूर्ण प्रतिपाद्य में उल्लेख अलंकार के प्रयोग से प्रभावोत्पादकता बहुत अधिक बढ़ गई है।

आजादी खादी के कुरते की एक बटन,
आजादी टोपी एक तुकीली तनी हुई,
फैशन वालों के लिए नया फैशन निकला,
मोटर में बाँधो तीन रंग वाला चिथड़ा।

अपह्नुति—अपह्नुति अलंकार में उपमेय को हटाकर उपमान की स्थापना की जाती है—

भरी सभा में लाज द्रोपदी की न गई थी लूटी।
वह तो वही कराल आग थी निर्भय होकर फूटी।

उपमेय द्रोपदी की लाज को हटाकर उपमा कराल 'आग' की स्थापना की गई है।

पर्यायोक्ति—इस अलंकार के अन्तर्गत अभिप्रेतार्थ की अभिव्यक्ति प्रकारान्त से दी जाती है। 'रश्मिरथी' में इस अलंकार का प्रयोग बहुत अधिक हुआ है—

एक लाज का पंख तोड़कर करना, अभय अपर को।
सुर को गोथे भले, नीति यह नहीं शोभती नर को।
यह तो निहत शरभ पर चढ़ आखेटक पद माना है।
जहाँ मिला मृगपति को उस पर पौरुष दिखलाना है।

अतिशयोक्ति—इस अलंकार में किसी बात का बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन का चमत्कार उत्पन्न किया जाता है—

मेरे अश्रु, ओस बनकर कल्पद्रुम पर छायेंगे।
परिजात वन के प्रसून आहों से कुम्हलायेंगे।

दृष्टान्त—इस अलंकार में प्रथम वाक्य का दूसरे वाक्य को दृष्टान्त के रूप में प्रस्तुत करके उपमेय की सृष्टि होती है—

दीपक के जलते प्राण दीपावली तभी सुहावन होती है,
रोशनी जगत को देने को अपनी अस्थियाँ जलाता चल।

मानवीकरण—इस अलंकार में प्रकृति के तत्त्वों और कार्यों का वर्णन मानवी क्रियाओं के रूप में होता है। इस उदाहरण में रजनी में बाला का मानवीकरण किया गया है—

पहन मुक्ता के युग अवतंस
रत्न गुम्फित खोले, कच-जाल
बजाते मधुर-चरण मंजीर
आ गये तम में रजनी बाल।

सन्देह, विशेषोक्ति उत्तर-प्रश्न आदि अलंकारों का प्रयोग भी दिनकर जी ने यदा-कदा किया है। वैषम्य मूलक अलंकारों में विरोधाभास और विरोध अलंकार दिनकर जी को विशेष प्रिय है, जैसे—

जागो रसिक वियोग लोक के, मधुवन के संन्यासी।

नींद है वह जागरण जब फूल खिलते हों।

मूक है प्रच्छन्न है सबसे बड़ी आवाज।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि दिनकर जी ने अप्रस्तुत योजनाओं की आलंकारिक सामग्री विविध क्षेत्रों से जुटाई है। उन्होंने आवश्यकतानुसार जीवन और प्रकृति के क्षेत्र से उपमानों का चयन किया है। उनके द्वारा प्रयुक्त अलंकार काव्य की रसार्द्रता, प्रभविष्णुता में बहुत सहायक हुए हैं। अतिरंजना और चमत्कार-प्रदर्शन के लिए उन्होंने अलंकारों का कहीं भी प्रयोग नहीं किया है।

दिनकर जी की छन्द-योजना का निरूपण—दिनकर जी की पूर्वकालीन रचनाओं में तीन बातों की प्रधानता है। प्रबन्धात्मक कृतियों में छन्दों का प्रयोग हुआ है। दिनकर जी का छन्दों पर पूरा अधिकार है। उनकी छन्द-योजना प्रसंग, विषय-वस्तु और भाव को अपनी परिधि में बाँधकर स्पष्ट कर देती है। 'रसवन्ती', 'सामधेनी', 'इतिहास के आँसू', 'कुरुक्षेत्र' और 'रश्मिरथी' में 'सार' नामक मात्रिक छन्द का बहुत प्रयोग हुआ है। इसके प्रत्येक चरण में 18 मात्राएँ और चरणांत में दो गुरु होते हैं।

चली पिया के गाँव उमर के सोलह सालों वाली।

यह छन्द 'शृंगार', करुणा आदि कोमल रसों के लिए बहुत उपयुक्त है। दिनकर जी ने 'रेणुका' में कई प्रकार के मात्रिक छन्दों का उपयोग किया है, इनमें पद्धति, तोटक, सरसी, शृंगार, लावनी और वीर छन्द प्रमुख है।

पद्धति के प्रत्येक चरण में 16 मात्राएँ होती हैं—

साकार द्रव्य गौरव विराट
पौरुष के पुँजीभूत ज्वाल।
मेरी जननी के हिम किरीट,
मेरे भारत के दिव्य भाल।

तोटक—इसमें प्रत्येक चरण में 30 मात्रा होती है 'चरणान्त' में 'मगण' होता है।

चलो जहाँ निर्णय कानन में वनय कुसुम मुसकाते।

सरसी—इस छन्द में 27 मात्राएँ होती हैं तथा अन्य में गुरु, लघु रहता है।

लहर-लहर पर लहराते हैं मधुर प्रभाती गान।
भुवन स्वर्ग बन रहा उड़े जाते ऊपर को प्रान॥

शृंगार—इस छन्द के प्रत्येक चरण में 16 मात्राएँ होती हैं। चरण के अन्तर में गुरु, लघु रहता है—

पुजारिन सी बन कष्ट हिलोर।

भिगो देगी अंग-जग का छोर॥

दिनकर छन्द—प्रसाद जी ने जिस प्रकार 'आँसू' छन्द की सृष्टि की उसी प्रकार 'कस्मै देवाय' शीर्षक कविता के छन्द को 'दिनकर' छन्द के नाम से पुकारा जा सकता है। सोलह मात्रा वाले इस छन्द को दिनकर जी ने अपने काव्य में बहुत प्रयोग किया है—

न देखे कलेजा फाड़ कृषक के
बहें हृदय शोणित की धारें।
बनती ही उन पर जाती हैं,
वैभव की ऊँची दीवारें।

दिनकर जी के काव्य में मात्रिक छन्दों के साथ-साथ वर्णिक वृन्तों का भी प्रयोग हुआ है।

'कुरुक्षेत्र' में मनहरण कवित्त वर्णिक छन्द है। इसके प्रत्येक चरण में 16 मात्राएँ 15 पर यति देकर 31 मात्राएँ होती हैं—

जानता कहीं जो परिणाम महाभारत का,
तन-बल छोड़ मैं मनोबल से लड़ता।
तप से, सहिष्णुता से, त्याग से सुयोधन को।
जीत नई नीव इतिहास भी मैं धरता॥
और कहीं वज्र गणना न मेरी आह में जो,
मेरे तप से नहीं सुयोधन सुधरता।
तो भी हाय, यह रक्तपात नहीं करता मैं,
भाइयों के संग कहीं भीख माँग भरता।

ललित पद—इसके प्रत्येक चरण में 28 मात्राएँ होती हैं—

समर निध धर्मराज पर,
अहो शान्ति यह क्या है।
जो अनीत पर स्थित होकर भी,
बनी हुई सबला है। —**कुरुक्षेत्र**

राधिका—इसके प्रत्येक चरण में 22 मात्राएँ होती हैं—

शारदे! विकल संक्रान्ति-काल का नर मैं।
कालिदास रथ पर चढ़ा हुआ द्वापर मैं।
संतप्त विश्व के लिए खोजते छाया।
आशा में था इतिहास-लेख तक आया। —**कुरुक्षेत्र**

सुमेरु—इस छन्द के प्रत्येक चरण में 19 मात्राएँ और 10, 9 पर यति के साथ अन्त का वर्ण लघु होता है। चरणांत में मगण रहता है—

इसी के त्रास में अन्तर पगा था,
हमें वनवास में भी लगा था,
कभी निश्चित भी क्या हो सका था,
न तेरह वर्ष मुख से जो सो सका था। —**रश्मिरथी**

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि दिनकर जी ने परम्परा तथा नवीन दोनों प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है। परम्परागत छन्द-योजना में आन्तरिक रागों और अनुभूतियों का स्पन्दन है तथा नई छन्द-योजना में बौद्धिक चिन्तन की सुस्थिरता और और दृढ़ता व्यक्त करने की शक्ति है। 'परशुराम की प्रतीक्षा' में संकलित विचार प्रधान कविताएँ अधिकतर तुक और लय से युक्त हैं।

प्रश्न- 3. रश्मिरथी के कथानक के आधार पर कवि द्वारा प्रस्तुत नवीनता की विवेचना कीजिए।

उत्तर—'वेणी संहार' नाटक के प्रणेता भट्टनारायण का ध्यान भी कर्ण के चरित्र की इस विशेषता की ओर गया था और कुल-गोत्र

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

की उच्चता- हीनता को दूर कर कर्ण ने अपने मुख से पौरुष की ही बात की थी।

सूतो व सूत पुत्रो व यो वा को वा भवाम्यहम।
दैवायत्तं कुले जन्म मदायत्तं व पौरुषम्॥

महाभारत में वर्णित कर्ण- चरित्र को स्वीकार करते हुए भी दिनकर ने उसमें अपनी रुचि से यत्किंचित् परिवर्तन किये हैं। द्रोणाचार्य और कृपाचार्य के निर्देशन में कौरव- पांडवों के शस्त्र विद्या का अभ्यास हो रहा था। अर्जुन के धनुकौशल पर सभी प्रेक्षक मुग्ध थे। अर्जुन की भूरी- भूरी प्रशंसा के वातावरण में कर्ण रंगभूमि में अवतरित होकर अर्जुन को ललकारता है। कर्ण की तेजोदीप्त वाणी में समरश्लाघा के साथ प्रतिद्वन्द्विता की भावना थी समवेत योद्धा और आचार्य कर्ण के रणकौशल का अनुमान लगाकर अभिभूत हो उठे थे। उनके सामने अर्जुन की मानरक्षा का प्रश्न उपस्थित हो गया था। कृपाचार्य को दुविधा के इस क्षण में एक युक्ति सूझी। वे कर्ण को निस्तेज करने के लिए कर्ण से उसका कुल गोत्र तथा माता- पिता का परिचय पूछने लगे। यह परम्परावादी प्रश्न कर्ण को निस्तेज करने के उद्देश्य से ही पूछा गया था। महाभारत की कथा में यह उद्देश्य पूर्ण होता हुआ अंकित किया गया है अर्थात् कर्ण हतप्रभ होकर रंगभूमि में मौन धारण कर लेता है, किन्तु रश्मिरथी के कवि ने कर्ण को न तो हतप्रभ ही चित्रित किया और न मौन धारण करवाया। इस दकियानूसी प्रश्न का उत्तर कर्ण ने बड़े आवेश के साथ दिया है। उसे दुर्योधन की सहायता की दरकार नहीं हुई। कर्ण के जीवन में परीक्षा की आग में तपने का यह प्रथम अवसर था।

जाति जाति रटते, जिनकी पूँजी केवल पाखण्ड।
मैं क्या जानूँ जाति- जाति है ये मेरे भुजदण्ड।
पढ़ो उसे जो झलक रहा है मुझमें तेज प्रकाश,
मेरे रोम- रोम में अंकित है मेरा इतिहास॥

महाभारत द्वापर युग की रचना है। उस युग में कुल- गोत्र की मर्यादा रूढ़ियों से सम्पृक्त थी। 'रश्मिरथी' आधुनिक युग की कृति है जिसमें वैयक्तिक गुणों की अवहेलना सम्भव नहीं है। जातिगत ऊँच- नीच का भाव समाज से मिटता जा रहा है और कर्म का गौरव प्रतिष्ठित हो रहा है। 'रश्मिरथी' का कर्ण स्वतन्त्र व्यक्तित्व रखने वाला अप्रतिम योद्धा, दानवीर, धर्मवीर, परोपकारी, सहिष्णु, त्यागी नर पुंगवा है। उसके व्यक्तित्व के ये गुण इतने उज्ज्वल और दीप्त हैं कि इनके होते आज के युग में कोई उसकी उपेक्षा करने का साहस न करेगा। आज तो समाज में अपृश्यता, वर्णसंकरता आदि का केंचुला उतरता जा रहा है। समग्र मानवीय गुणों के विकास के लिए द्वार खुलते जा रहे हैं। इसलिए कर्ण जैसे तेजस्वी चरित्र का वर्णन करने का मोह प्रत्येक सजग कलाकार में होना स्वाभाविक है। युगबोध के आलोक में कर्ण का भाग्य जागेगा ही क्योंकि आज का युग मानवीय गुणों की पूजा का युग है।

महाभारत के अनुशीलन से एक और तथ्य पर दृष्टि केन्द्रित होती है। वह तथ्य है कृष्ण का कर्ण के गुणों के प्रति आकर्षण और भीष्म का कर्ण के प्रति गम्भीर विकर्षण। 'रश्मिरथी' में कृष्ण के सहज आकर्षण को कवि ने समुचित रूप से अंकित किया है। किन्तु भीष्म के विकर्षण को पूरी तरह चित्रित नहीं किया गया। ऐसा नहीं है कि दिनकर भीष्म के उपेक्षाभाव से अपरिचित हैं। मुझे तो ऐसा लगता है कवि दिनकर के अन्तर्मन में भीष्म की यह उपेक्षा गहरी बैठ गई है और उसी का प्रतिकार करने के लिए दिनकर ने कर्ण को अद्वितीय व्यक्तित्व प्रदान किया है। भीष्म यदि कर्ण को सच्चा महारथी नहीं समझते तो न समझें किन्तु कर्ण अपने दिव्य गुणों के कारण किसी भी पांडव से कम नहीं है।

इस प्रकरण में महाभारत के एक सन्दर्भ का भी उल्लेख करना आवश्यक है। महाभारत का युद्ध प्रारम्भ होने से पूर्व दुर्योधन ने अपने वरिष्ठ महारथियों को बुलाकर पूछा कि वे बतावें कि कौन महारथी कितने समय में पांडव सेना का संहार कर विजय प्राप्त कर सकता है। सबसे पहले भीष्म पितामह ने कहा कि मैं पांडव सेना को एक मास की अवधि में समाप्त कर सकता हूँ। द्रोणाचार्य ने भी पाँडव सेना पर विजय प्राप्त करने के लिए एक मास का ही समय चाहा। कृपाचार्य ने दो मास का समय पाँडव सेना को जीतने के लिए माँगा। द्रोणाचार्य का पुत्र अश्वत्थामा अपने पिता की उपस्थिति में भी अपने अहंकार को दबा न सका और अभिमान भरे स्वर में बोला कि मैं केवल दस दिन में समस्त पाण्डव सेना का विनाश कर सकता हूँ। तदनन्तर दुर्योधन ने अंगराज कर्ण से पूछा कि आपको विजय प्राप्त करने के लिए कितना समय अपेक्षित होगा। समरश्लाघी कर्ण ने अश्वत्थामा की गर्वोक्ति सुनी थी, तत्काल तमक कर ओजस्वी वाणी में बोला, ''महाराज! मुझे पाँच दिन का समय दें। मैं केवल पाँच दिन में समस्त पाँडव व्यूह का अर्जुन सहित विध्वंस कर विजयश्री प्राप्त कर दिखा सकता हूँ।''

भीष्म पितामह कर्ण की इस गर्वोक्ति को सुनकर चुप नहीं रह सके। उन्होंने कर्ण को डांटते हुए कहा—''कर्ण तुम बाकू शूर हो तुम पूरे महारथी नहीं अर्ध महारथी हो, तुम पंथ शूर बनकर केवल बकवास करना जानते हो। तुमने आज तक कोई युद्ध जीता नहीं है इसलिए बढ़-चढ़ कर डींग मारते हो। तुमने अर्जुन के गांडीव का तेज देखा नहीं है। जिस दिन तुम युद्ध क्षेत्र में सारथी कृष्ण सहित गांडीवधारी अर्जुन को देखोगे उस दिन तुम्हारा मुख निवर्ण होकर मौन हो जायेगा।'' भीष्म ने कर्ण को अपमानित करने में कुछ उठा न रखा था लेकिन कर्ण अपने वचन पर अडिग बना रहा। कोई आश्चर्य नहीं कि कवि दिनकर ने 'रश्मिरथी' के सृजन के समय यह अनुभव किया हो कि भीष्म ने कर्ण को समझाने में जो भूल की है उसका निराकरण उसकी गौरवगाथा प्रस्तुत कर किया जाए। भीष्म तो कर्ण को कभी सह नहीं सके, कर्ण का सम्मान उन्हें सदा खलता रहा, उन्होंने दुर्योधन से स्पष्ट कह दिया था कि मैं कर्ण को साथ लेकर युद्ध करनेको उद्यत नहीं हूँ। लेकिन रश्मिरथी में दिनकर ने प्रसंग छोड़ दिया है—

कर्णो व युद्धतां पूर्वमहं या पृथिवीपते।
स्पर्धते हि सदात्पर्थ सूत पुत्रो मया रणे॥

कर्णस्य च महाबाहो सूतपुत्रस्य पुर्मते।
न चपि पद्भाक् कर्ण: पांड्वाना नृपोत्तम॥

यह एक विचित्र विडम्बना है कि पांडवों के पथ-प्रदर्शक श्रीकृष्ण आद्यन्त कर्ण के प्रशंसक बने रहे। धर्म, दान, दया, परोपकार, सत्यवादिता, शौर्य, पराक्रम, तेज सभी गुणों में कृष्ण ने कर्ण को अप्रतिम स्वीकार किया और उन्होंने कभी जातिगत, वंशगत, कुलगत नीचता की बात नहीं की। श्रीकृष्ण की दृष्टि में कर्ण सनातन वेद सिद्धान्तों का ज्ञाता, धर्मशास्त्र पारंगत महापुरुष था—

त्वमेव कर्ण जानासि वेदवादान् सनातनम्।
त्वमेव धर्मशास्त्रेषु सूम्क्षेषु परिनिष्ठित॥

सिंहर्षज्ञ गणेन्द्राणां बलवीर्य पराक्रम।
दीप्ति कान्ति धुतिगुणैः सूर्यनृदुज्वलनोपम:।
तेजसाबद्रिस दृशैः वायुवेग समोजवे।
अन्तक: प्रतिमा: क्रोधे सिंह सहननो बली।

प्रश्न- 4. रश्मिरथी के आधार पर कर्ण का चरित्र- चित्रण कीजिए।

अथवा

वे कौन-कौन सी विशेषताएँ हैं, जिनसे होकर कर्ण का महान् गौरवशाली चरित्र बना है?

उत्तर—जन्म और जाति की हीनता कर्ण को भी हतप्रभ नहीं कर सकी। वह रंगभूमि में कृपाचार्य द्वारा किये अपमान का बदला लेने के लिए कटिबद्ध हुआ तो केवल अपने बल-विक्रम का परिचय देने के लिए ही हुआ। कर्ण जानता था कि अर्जुन को परास्त करने के लिए सुयोग्य गुरु से शस्त्राभ्यास करना अनिवार्य है, किन्तु एकलव्य की भाँति वह अन्ध गुरुभक्ति में नहीं फँसा। द्रोणाचार्य के निषेध से वह परशुराम की शरण में गया और अन्याय-अनीति का कोप भाजन बनकर भी उसने अपना मन छोटा नहीं किया। कर्ण के जीवन में मिथ्याचरण का केवल एक ही प्रसंग है और वह है ब्राह्मण कुमार बनकर परशुराम की गुरुभक्ति। अर्जुन और द्रोण से प्रतिशोध लेने के लिए कर्ण ने मिथ्याकथन द्वारा परशुराम का शिष्यत्व स्वीकार किया और दुर्भाग्य से अपनी विलक्षण तितिक्षा एवं गुरुभक्ति के कारण ही परशुराम का कोप भाजन भी बना। जिस कर्ण को कृष्ण ने वृष की उपाधि देकर सत्यवादी, तपस्वी, नियमव्रत, दयावान कहा है, वही गुरु भक्ति में कपटाचरण करे यह कैसी विडम्बना है—इस सन्दर्भ को रश्मिरथी में चित्रित करते हुए दिनकर ने द्रोणाचार्य के मनोभावों का जो रूप खड़ा किया है वह कर्ण के इस कपटाचरण का उत्तर देने में समर्थ है। महाभारतकार ने द्रोणाचार्य के निषेध की चर्चा नहीं की है। यह दिनकर की कल्पना है और परशुराम के पास कर्ण को छद्मवेश में ले जाने में सहायक है। इस प्रकार कर्ण अपने जीवन की दूसरी परीक्षा में भी खरा सिद्ध होता है।

सत्यवादिता और अटूट मैत्री भावना—कर्ण की सत्यवादिता और अटूट मैत्रीभावना का परिचय हमें कृष्ण-कर्ण संवाद में मिलता है। जब कर्ण अपना जीवनवृत्त जान लेने पर भी कृष्ण के बताये मार्ग का अनुसरण नहीं करता। दुर्योधन से कर्ण को विमुख करने के समस्त प्रयत्न

गर्म तवे पर पड़ी जल बिन्दु के समान दग्ध हो जाते हैं और कर्ण स्पष्ट शब्दों में कृष्ण से कहता है—

मित्रता बड़ा अनमोल रतन
कब इसे तोल सकता है धन?
धरती की तो है क्या बिसात?
आ जाय अगर बैकुंठ हाथ,
उसको भी न्यौछावर कर दूँ,
कुरुपति के चरणों पर धर दूँ।

कर्ण के जीवन में परीक्षा की यह तीसरी घड़ी थी, जिसमें कर्ण ने अडिग रहकर अपनी सच्ची मैत्री भावना का परिचय दिया।

उदात्त एवं अवदात्त चरित्र—कर्ण का उदात्त और अवदात्त चरित्र सुरपति इन्द्र को अपने कवच कुण्डल दान देते समय गौरव के चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया है। कर्ण की दानशीलता महिमा मंडित होकर मानवता का मानदण्ड स्थापित करती हुई दृष्टिगत होती है। तपनोत्मतप्त पर्वत कुल को तथा दुदविवाहिग् विधुर वनों को शीतल जलवृष्टि से शान्त करने के बाद रिक्त हुए जलद में जिस प्रकार शोभा का विकास होता है, उसी प्रकार अपने प्राणों से भी प्रिय कवच- कुण्डल का दान देकर कर्ण ने गौरव- गरिमा के चरम बिन्दु का स्पर्श किया। 'रिक्तोसि यज्जलद सैव तवोत्तमाक्षी'। रश्मिरथी में कवि ने इस पावन- प्रसंग को चरित्र विकास के सर्वोच्च शिखर तक पहुँचा हुआ दिखाया है। कर्ण का दान- व्यापार विश्व के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित करने योग्य इसलिए बना कि यह छद्मवेशी इन्द्र को दिया हुआ दान था और उस दान में प्राणदान से भी अधिक महत्त्व अन्तर्हित था, रश्मिरथी में इस प्रकरण को बड़ी सटीक भाषा में विस्तार से लिखा गया है—

देवराज! हम जिसे जीत सकते न बाहु के बल से,
है क्या उचित उसे मारें हम न्याय छोड़ कर छल से?
हार- जीत क्या चीज? वीरता की पहचान समर है,
सच्चाई पर कभी हार कर भी न हारता नर है।

जीवन देकर जय खरीदना, जग में यही चलन है,
विजय- दान करता न प्राण को रखकर कोई जन है।
मगर प्राण रखकर प्राण अपना आज पालता हूँ मैं,
प्राणाहुति के लिए विजय का हवन डालता हूँ मैं।

मैं उनका आदर्श, कहीं जो व्यथा न खोल सकेंगे,
पूछेगा जग, किन्तु पिता का नाम न बोल सकेंगे।

सिंहासन ही नहीं, स्वर्ण भी जिन्हें देख नत होगा,
धर्म- हेतु धन, धाम लुटा देना जिनका व्रत होगा।

कवच- कुंडल दान भी कर्ण की परीक्षा ही था और इस चौथी परीक्षा में उत्तीर्ण होकर कर्ण ने दान महात्म्य की सर्वोच्च मर्यादा स्थापित की थी।

धर्मावतार—कर्ण के जीवन में पाँचवीं परीक्षा की घड़ी ममता मोह के पाश लेकर आई। कर्ण के पास कुन्ती का आना और अपने वात्सल्य का प्रकट करना कर्ण के लिए कठोर परीक्षा की घडी थी। कुन्ती का यह आगमन वस्तुतः कर्ण के प्रति वात्सल्यता के कारण नहीं था, इसके मूल में अपने पुत्रों की ही विजय कामना थी, कुन्ती ने एक तरह मनोवैज्ञानिक प्रयोग द्वारा कर्ण को द्रवित करने के लिए उसकी मनोभूमि को दुलार के साथ स्पर्श करने का प्रयत्न किया था। कुन्ती जानती थी कि यदि कर्ण के मन में उसके जन्मकालीन निर्मम व्यवहार के प्रति रोष होगा तब भी वह पांडवों को अपना सदोहर जानकर कुछ पसीजेगा अवश्य, और हो सकता है कि किसी दुर्बलता के क्षण में

वह पाँडवों के प्रति ममतामय हो उठे। यदि यह सब न भी हुआ तब भी वह अपना जन्म वृत्तान्त जान लेने के बाद युद्धभूमि में पहले जैसा दुर्दान्त न रह सकेगा। उसकी युद्धर्षिता में अन्तर आ ही जायेगा। कुन्ती ने आर्द्र वचनों से कर्ण के मन को छूने का, अपने पक्ष में लाने का भरसक प्रयत्न किया लेकिन कर्ण अपनी टेक से डिगा नहीं, उसने दुर्योधन का पक्ष छोड़ पाँडव पक्ष में आना स्वीकार नहीं किया। उसने बड़ी संयत भाषा में कुन्ती से कहा—

हो चुका धर्म के ऊपर न्यौछावर हूँ,
मैं चढ़ा हुआ नैवेद्य देवता का हूँ।
अर्पित प्रसून के लिए यों न ललचाओ,
पूजा की वेदी पर मत हाथ बढ़ाओ।

उत्सर्ग एवं मातृवत्सलता—अर्पित प्रसून को पूजा की वेदी से उठाने का निषेध करने पर भी कर्ण ने कुन्ती को खाली हाथ वापस नहीं किया। उसने कुन्ती को अपने उत्सर्ग से धन्य कर दिया और अर्जुन को छोड़ किसी और पाँडव को युद्ध में न मारने का वचन देकर अपनी दानशीलता का परिचय दिया। कर्ण का यह विवेकपूर्ण उत्सर्ग दान की तुलना पर अद्भुत अप्रतिम और अनवर्य है। यह मानव उत्सर्ग और यह विलक्षण विवेक जिस न्याय तुला पर टिके हैं वह तुला न तो कर्ण से पहले किसी के पास थी और न कर्ण के बाद कोई उसे पाने का अधिकारी बन सका।

युद्ध में वीरता—कर्ण की छठी और अन्तिम परीक्षा युद्धभूमि में हुई। उसने अपूर्व वीरता का परिचय देकर पाँडव सेना में हाहाकार उत्पन्न कर दिया था। दिनकर की प्रिय शब्दावली में वह पृथ्वी का सूर्य और विभा का सूर्य होने जा रहा था। लेकिन उसने सामने विजय से भी बढ़कर धर्म निष्ठा का आदर्श था। रह-रहकर उसके भीतर धर्मयुद्ध की भावना जाग रही थी और वह संकल्प दृढ़ स्वर में पुकार उठता था—

नहीं राधेय सत्पथ छोड़कर अध-लोक लेगा,
विजय पाये न पाये रश्मियों का लोक लेगा।

कर्ण के निर्मम बाणों के प्रहार से युधिष्ठिर आहत हो गये थे किन्तु उसने युधिष्ठिर के प्राण हरण नहीं किये वरन् उन्हें कुशलपूर्वक युद्ध भूमि से जाने का अवसर दिया। उसने कुन्ती को वचन दिया था कि अर्जुन को छोड़किसी अन्य पांडव का वध नहीं करेगा। शल्य ने कर्ण को बहुत समझाया कि सामने आये हुए शत्रु को जीवित छोड़ना क्षत्रिय का धर्म नहीं है किन्तु कर्ण ने कुन्ती को दिये अपने वचन की मर्यादा का पालन किया। कर्ण ने शल्य से कहा—

ये चार फूल हैं मोल किन्हीं
कातर नयनों के पानी के,
ये चार फूल प्रच्छन्न दान
हैं किसी महाबल दानी के।
ये चार फूल, मेरा अदृष्ट था
हुआ कभी जिनका करगी,
ये चार फूल पाकर प्रसन्न
हँसते होंगे अन्तर्यामी।

युद्ध की बेला में नागवंश का सर्प अश्वसेन कर्ण के तूणीर में चुपचाप आ बैठा और अर्जुन से अपना प्रतिशोध लेने के लिए उसने कर्ण से आग्रह किया कि वह शर के रूप में उसका प्रयोग कर अर्जुन का संहार करे। कर्ण ने इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया और अश्वसेन को धिक्कारते हुए कहा कि मैं मानव जाति का प्रतीक हूँ। साँपों से मिलकर अपनी जाति का नाश करना घोर नीच कर्म है। मैं ऐसा जघन्य कर्म कभी नहीं कर सकता—

उस पर भी साँपों से मिलकर,

मैं मनुज, मनुज से युद्ध करूँ?
जीवन भर जो निष्ठा पाली,
उससे आचरण विरुद्ध करूँ?

संसार कहेगा जीवन का
सब सुकृत कर्ण ने क्षार किया।
प्रतिभट के वध के लिए सर्प का
पापी ने साहाय्य लिया।

'रश्मिरथी' में इस प्रसंग को कवि ने मानवता के उच्च धरातल पर चित्रित किया है। कर्ण स्वार्थी, अवसरवादी मनुष्य न रहकर महान् आदर्शों से प्रेरित सच्चा महामानव बनकर समाज में मानव मूल्यों का संस्थापक बनता है। सर्पवंश की कुटिलता को कर्ण ने मानव-समाज से दूर रखकर यह ध्वनित किया है कि भले ही स्वार्थ-साधना के लिए कुछ क्षुद्र मनुज विषधर बनना पसन्द करते हों किन्तु मानवता के विकास में सर्प की चाल घृण्य एवं गर्हित ही है, उससे मनुष्य को दूर रहना चाहिए।

धर्म-युद्ध में कर्ण का दुर्भाग्य-नक्षत्र धूमकेतु—युद्धक्षेत्र में धर्मयुद्ध की भावना से जूझने वाले कर्ण का दुर्भाग्य नक्षत्र धूमकेतु के समान उदित हुआ और विजय की आसन्न बेला में कर्ण के रथ का पहिया पंक में फँस गया। रथ-चक्र को पंक से बाहर निकालने के लिए कर्ण शस्त्र फेंक कर चक्के को उठाने में लग गया। कर्ण को चक्के के उद्धार में लगा देख नीतिज्ञ कृष्ण ने अर्जुन को अनीतिपूर्ण आदेश दिया कि वह निहत्थे कर्ण का वध करने में विलम्ब न करे। अर्जुन नराधम नहीं था। वह इस आदेश को सुनते ही सहम गया और उसने कृष्ण से कहा कि यह नरोचित कर्म नहीं है। यह धर्मयुद्ध की नीति नहीं है। कृष्ण ने अर्जुन को समझाते हुए कहा कि यह समय धर्म-विवेक का नहीं है। यदि इस समय इस चिन्तन में फँसेगा तो तेरा काल तुझे ग्रस लेगा—

क्रिया को छोड़ चिन्तन में फँसेगा,
उलटकर काल तुझको ही ग्रसेगा।

अर्जुन को क्रियाशील होना पड़ा। उसने शस्त्रविहीन कर्ण को प्रखर बाणों से बींध दिया। अर्जुन ने धर्मनिष्ठ कर्ण पर अधर्म से विजय प्राप्त की, किन्तु इस विजय से पाँडवों में भी अवसाद की गहरी छाया फैल गई। स्वयं श्रीकृष्ण भी कर्ण-वध से शोक मग्न होकर कह उठे, कि विजय पा लेना मात्र पुरुषार्थ नहीं है, शील और चरित्र की मर्यादा स्थापित करना ही मनुष्य और मानवता की विजय है—

नहीं पुरुषार्थ केवल जीत में है,
विभा का सार शील-पुनीत में है—

हृदय का निष्कपट, पावन क्रिया का,
दलित-तारक समुद्धारक त्रिया का,
बड़ा बेजोड़-दानी था, अदेय था,
युधिष्ठिर! कर्ण का अद्भुत हृदय था।

मानवीयकरण का आधार कर्ण—'रश्मिरथी' में कर्ण को जीवन में छह परीक्षाओं का सामना करना पड़ा है और प्रत्येक परीक्षा में वह उत्तरोत्तर उत्कर्ष को प्राप्त करता हुआ लक्षित होता है। युद्ध भूमि में उसे अन्तिम परीक्षा देनी पड़ी। यह परीक्षा विनाश के बाद रथ चक्र के कीचड़ में फँसने तक निरन्तर जारी रही लेकिन कर्ण न तो हतप्रभ हुआ और न धर्म से विमुख होकर उसने धर्म-विरुद्ध आचरण किया। कविवर दिनकर ने कर्ण को इन परीक्षाओं की कसौटी पर खरा सिद्ध करने के लिए पौराणिक वृत्त में कुछ अन्तर नहीं किया है केवल वर्णन-महात्म्य से इन प्रसंगों को दीप्त भर कर दिया है। कवि धर्म से कर्ण के चरित्र में मानवीय गुणों का दर्शन जिस सहजता से हो जाता है, वैसा इतिवृत्त के माध्यम से सम्भव नहीं था। रश्मिरथी पढ़कर ऐसा लगता है कि कवि ने कष्ट को दीप्त और दिव्य बनाने के लिए कोई अतिरिक्त प्रयास न कर उसे अपनी शैली से ही संवेद्य बना दिया है।

निष्कर्ष—कर्ण का चरित्र-चित्रण करते हुये रश्मिरथी में अवान्तर कथा-प्रसंगों को छोड़ दिया गया है। यह पद्धति श्रेयस्कर ही सिद्ध हुई है। हाँ, कलिंग युद्ध का प्रसंग यदि कहीं अट सकता तो कर्ण के पराक्रम को व्यक्त करने का प्रत्यक्ष प्रसंग काव्य में आ सकता था। दूसरा एक छोटा-सा प्रसंग और था जो कर्ण के पुरुषार्थ और शौर्य के प्रस्फुटन की दृष्टि से उपयुक्त था। वह प्रसंग है अश्वत्थामा और कर्ण का वाक् युद्ध। भट्टनारायण ने इस प्रसंग को अपने नाटक में स्थान देकर कर्ण के मानवीय गुणों का उद्घाटन किया है।

प्रश्न- 5. एक पौराणिक सफल काव्य की दृष्टि से 'रश्मिरथी' की समीक्षा कीजिए।

उत्तर—'रश्मिरथी' यों तो पौराणिक प्रबन्ध-काव्य है, किन्तु दिनकर ने अपनी कवि प्रकृति और कवि-कर्म के अनुकूल ऐसे प्रसंगों की अवतारणा करली है जो चिन्तन-मनन के साथ आज की ज्वलन्त समस्याओं से सम्पृक्त है। युद्ध-विवेचन दिनकर का प्रिय विषय रहा है। 'कुरुक्षेत्र' से 'परशुराम की प्रतीक्षा' तक हम कवि के युद्ध-विवेचन की प्रिय-परम्परा को देख सकते हैं। 'रश्मिरथी' भी इसका अपवाद नहीं है। समरश्लाघी कर्ण के चरित्र-वर्णन में युद्ध-विवेचन न हो यह सम्भव भी नहीं है। द्वितीय सर्ग में परशुराम कर्ण को प्रबोधते हुए वीरत्व का रहस्य बताते हैं और उसी सन्दर्भ में ब्रह्म तेज और क्षात्र तेज की तुलना करते हैं। क्षात्र तेज के अभिमानी क्षत्रिय राजा अपनी प्रतिष्ठा के लिए युद्ध ठानते हैं और ब्राह्मण वर्ग का अपमान करते हैं इसलिए आवश्यक है कि ब्राह्मण भी रण-कौशल में पारंगत होकर क्षत्रियों को सही मार्ग पर चलना सिखावे। परशुराम ने कहा है—'भूप समझता नहीं और कुछ छोड़ खड्ग की भाषा को।' षष्ठ सर्ग में कवि ने रण की अनिवार्यता को स्वीकार न करते हुए विचार के धरातल पर उसके अवांछनीय रूप का विश्लेषण किया है। युद्ध पशुता का द्योतक, नरसंहार का जनक और मानव जाति का कलंक है। फिर भी युद्ध में मनुष्य प्रवृत्त होता है, यही मनुष्य का दुर्भाग्य है। कवि की मान्यता है कि जब तक स्वार्थ लोलुप मनुष्य युद्धरत रहेगा तब तक मानवता का पूर्ण विकास सम्भव नहीं है। युद्ध भौतिकता की देन है। भौतिक विज्ञान के विकास-चरण ज्यों-ज्यों पृथ्वी से आकाश की ओर बढ़ रहे हैं, त्यों-त्यों युद्ध और अणु आयुधों की होड़ बढ़ रही है। सचमुच ही मनुष्य का पशुत्व अभी निश्शेष नहीं हुआ है—

झर गयी पूंछ, रोमन्त झरे,
पशुता का झरना बाकी है।
बाहर, बाहर तन संवर चुका
मन अभी संवरना बाकी है।

इस सर्ग में भीष्म ने भी युद्ध से कर्ण को विरत करने के लिए युद्धोन्माद के घातक परिणामों का वर्णन किया है। युद्ध से सात्विक वृत्तियाँ समाप्त हो जाती हैं, मनुष्य केवल तमोगुणी होकर संहार और विनाश में ही विश्वास करने लगता है। भीष्म ने बड़े अनुपात के स्वर में कहा है—

पर हाय, वीरता का सबल,
रह जायेगा धनु ही केवल?
या शान्ति-हेतु शीतल, शुचि-श्रम
भी कभी करेंगे वीर परम?
ज्वाला भी कभी बुझायेंगे?
या लड़कर ही मर जायेंगे?

'रश्मिरथी' का नायक कर्ण दानशीलता का अप्रतिम निदर्शन है। दान करने का प्रसंग आते ही वह सब-कुछ उत्सर्ग करने को सहर्ष उद्यत हो जाता है। दान महात्म्य को कर्ण धर्म की भावना से पुण्यार्जन करने के लिए नहीं वरन् कर्त्तव्य भावना से सात्विक आनन्द प्राप्त करने निमित्त ही स्वीकार करता है। दान और उत्सर्ग का भी इस काव्य में बड़ा विशद वर्णन हुआ है—

जो नर आत्मदान से अपना जीवन-घट भरता है,
वही मृत्यु के मुख में भी पड़कर न कभी मरता है।
जहाँ कहीं है ज्योति जगत में जहाँ कहीं उजियाला,
वहाँ खड़ा है कोई अन्तिम मोल चुकाने वाला।

दान-महिमा प्रसंग में कवि ने उन सभी महादानियों का उल्लेख किया है जिन्होंने मानव जाति के कल्याण के लिए दान के चरम उत्सर्ग को स्वीकार किया था, लेकिन इस प्रसंग में कवि ने यह ध्यान नहीं रखा कि वह द्वापर युग के एक पौराणिक चरित का वर्णन कर रहे हैं। उस युग के वर्णन में कलयुग के ईसा मसीहा, सरमद, सुकरात, मंसूर और गाँधी का वर्णन इतिहास की दृष्टि से त्रुटि है। यह त्रुटि काव्य में दो स्थलों पर हुई है।

कर्ण-चरित को उपन्यस्त करने में दिनकर ने महाभारत का प्राय: अनुसरण किया है। जहाँ-तहाँ छोटे-मोटे परिवर्तन हैं किन्तु उनके कारण मूलकथा में कहीं विपर्यास नहीं आया है। कर्ण के मानस-द्वन्द्व को स्पष्ट करने के लिए कवि ने इन्द्र-कर्ण संवाद, कुन्ती-कर्ण संवाद और भीष्म-कर्ण संवाद में अपनी कल्पना शक्ति के योग से वैचारिक तत्त्व को गांभीर्य प्रदान किया है।

कर्ण का कुन्ती के प्रति जो भाव महाभारत में मिलता है उसे दिनकर ने अपनी कलम से कोमल बनाकर अंकित किया है। महाभारत में भी कर्ण को आदर्श व्यक्ति के रूप में ही चित्रित किया गया है। जातिगत का वंशगत निम्न होते हुए भी कर्ण का चरित्र सर्वत्र उदात्त और अवदात्त ही है। यहाँ तक कि उसका प्रतिद्वन्द्वी अर्जुन भी कर्ण की प्रशंसा करता है। रश्मिरथी में इस तथ्य का उद्घाटन नहीं हुआ। कर्ण के उद्धार की बात कह कर यही मान लिया गया है, जैसे महाभारत में कर्ण उपेक्षित होने के साथ कोई सामान्य व्यक्ति रहा होगा। कर्ण की दिग्विजय यात्रा का प्रसंग भी रश्मिरथी में छोड़ दिया गया है। यदि उसे समेट लिया जाता तो कर्ण के शौर्य-पराक्रम को उजागर करने का अच्छा सुयोग कवि प्राप्त कर सकता था। दिनकर ने महाभारत के आठ पर्वों से रश्मिरथी की सामग्री संकलित की है। सामग्री को यथावत् रखते हुए भी कवि कर्म से उसमें गरिमा उत्पन्न करने में कवि पूर्ण सफल हुआ है। कर्ण चरित्र का उद्धार करने के लिए रश्मिरथी में कर्ण के एक खेद का वर्णन दिनकर ने किया है जो महाभारत में नहीं है। दुर्योधन द्वारा द्रोपदी का अपमान कर्ण के पश्चाताप का विषय बनकर कर्ण के चरित्र का यह उन्नयन दिनकर की अपनी कल्पना है। दिनकर के सामने कर्ण एक विवेकी, सदाचारी, धर्मपरायण, दानी, मानी, वीर व्यक्ति ही रहा है अत: इस प्रकार के कल्पित वर्णनों का समाधान हो जाता है।

'रश्मिरथी' की रचना में उपेक्षितों के उद्धार के प्रयास के साथ व्यक्ति मानव की प्रतिष्ठा का भी उद्देश्य बना रहा है। वैयक्तिक गुणों के आधार पर व्यक्ति का मूल्यांकन जब तक समाज में स्वीकार्य नहीं होगा तब तक व्यष्टि गुण से पुष्ट समष्टि का निर्माण सम्भव नहीं है। सामाजिक दृष्टि का निर्माण व्यक्ति की इकाई को पृथक् रखकर करना असम्भव है। व्यक्ति अपने आपको नियति के ऊपर छोड़कर, निरीह बनकर जीवित भले ही रह सके किन्तु किसी आदर्श की स्थापना वह नहीं कर सकता। कर्ण को नियति से जूझना पड़ा, समाज से लड़ना पड़ा, उच्च वर्ग से संघर्ष करना पड़ा, धन-वैभव के अभाव से टकराना पड़ा लेकिन सभी संघर्षों में वह विजयी हुआ। कर्ण की इस विजय यात्रा का स्तवन ही रश्मिरथी में किया गया है।

रश्मिरथी की रूप-विधा की चर्चा भी दो शब्दों में करना आवश्यक है। वस्तुत: आधुनिक युग में काव्य-रचना के साथ परम्परागत काव्य विधाओं का पालन अनिवार्य नहीं रह गया है। प्रबन्ध काव्य लिखते समय महाकाव्य की रूढ़ियों का निर्वाह आज का कवि नहीं करता, फिर भी कुछ तत्त्व ऐसे हैं जो निसर्गत: रचना में स्थान पा जाते हैं, जैसे कथा, पात्र, चरित्र-चित्रण, प्रकृतिवर्णन मानसिक संघर्ष वर्णन आदि। रश्मिरथी में भी ये सभी तत्त्व स्थान-स्थान पर मिलते हैं। फिर भी महाकाव्य की मूलभूत चेतना जो समग्रता और परिपूर्णता के साथ युगीन जीवन तथा युग निरपेक्ष शाश्वत जीवन मूल्यों के साथ व्यक्त होती है रश्मिरथी में नहीं है। कर्ण का चरित्र उतने व्यापक परिवेश में फैला हुआ न होने से महाकाव्य की सम्पूर्णता की आशा करना व्यर्थ है। यह प्रबन्ध महाभारत का एक सन्दर्भ है और इसी दृष्टि से प्रबन्धात्मक खण्डकाव्य ही ठहरता है। जिन समीक्षकों ने इसे महाकाव्य ठहराया है उनके मापदण्ड न तो प्राचीन हैं और न ही अर्वाचीन। यदि दोनों में से किसी भी मानदण्ड को उन्होंने प्रमाण माना होता तो इसे सफल महाकाव्य न कहते। कवि ने बायें हाथ का प्रयोग जिस लक्षण से प्रयुक्त किया है उसका संधान करना रश्मिरथी में कठिन नहीं है। अनेक ऐसे स्थल हैं जो द्विवेदी युगीन इति वृत्तात्मक काव्य के प्रवाह में रचे गये प्रतीत होते हैं। वहाँ बायाँ हाथ ही सक्रिय रहा है।

निष्कर्ष—कर्ण के चरित्र पर तीन-चार प्रबन्ध काव्य हिन्दी में और लिखे गये हैं, उनकी तुलना में रश्मिरथी पर विचार किया जाए तो इसकी श्रेष्ठता अनेक संदर्भों में उभर कर सामने आ जाती है। कर्ण की जीवन कथा आधुनिक जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा करने में यदि कवि सफल हुआ है तो निश्चय ही रश्मिरथी हिन्दी जगत की एक प्राणवान रचना है। इस रचना के माध्यम से पुरुष और पुरुषार्थ दोनों का महत्त्व प्रतिष्ठित हुआ है—

मगर यह कर्ण की जीवन कथा है,
नियति का, भाग्य का इंगित वृथा है,
मुसीबत को नहीं जो झेल सकता,
निराश से नहीं जो खेल सकता,
पुरुष क्या, श्रृंखला को तोड़ करके,

चले आगे नहीं जो जोर करके ?

प्रश्न- 6. रश्मिरथी और महाभारत के कथा- प्रसंग पर तुलनात्मक दृष्टि रखते हुए रश्मिरथी की विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—भारतीय महाकाव्यों में महाभारत के महिमामय अतीत को वाणी मिली है। इन्हीं महाकाव्यों (रामायण- महाभारत) के द्वारा आज हम गरिमा-मंडित प्राचीन को यथावत् देख सकते हैं। 'वाल्मीकि' और 'व्यास' दोनों महाकवियों ने तत्कालीन भारतीय जीवन का सांगोपांग चित्रण इस रूप में किया कि वह एक व्यक्ति, काल अथवा देश की वस्तु न रहकर सार्वभौम और सार्वकालिक हो गई। इन महाकाव्यों में हमारी जातीय, सांस्कृतिक और साहित्यिक परम्परा की प्राण- प्रतिष्ठा है। यही कारण है कि समीक्षात्मक वृद्धि की अनवरत चोटों से प्रताड़ित भारतीय हृदय इन ग्रन्थों के प्रति अविश्वसनीय नहीं हो पाया और प्रत्येक युग अपनी चिन्तन धारा के अनुरूप इन महाकाव्यों से प्रेरणा ग्रहण करता हुआ आगे बढ़ता है।

साहित्यिक चिन्तन धारा के विकास के क्षेत्र में 'रामायण', 'महाभारत' का महत्त्व इस कारण और भी बढ़ जाता है कि पुनरुत्थान युग का अधिकांश साहित्य इन्हीं ग्रन्थों को उपजीव्य बना कर लिखा गया है। इनमें भी प्रभाव- परम्परा की दृष्टि से 'महाभारत' का स्थान महत्त्वपूर्ण है। इसका कारण है कि महाभारतकार ने जीवन को उसके समग्र रूप में, प्रस्तुत महाकाव्य में उपस्थित किया है। जीवन का वैविध्य और वैपरीत्य जितना 'महाभारत' में उपलब्ध है उतना अन्यत्र नहीं। जीवन के सहज विकास में जिन सिद्धान्तों का निर्माण हुआ, मानवेतर शक्ति की स्वरूप कल्पना में जिन दर्शन का अभ्युदय हुआ और व्यवहार के क्षेत्र में जीवन को जिस प्रवृत्तिमूलक दृष्टिकोण से देखा गया—वे सम्पूर्ण विधि विधान किसी- न- किसी रूप में 'महाभारत' में विद्यमान हैं। 'महाभारत' के इस सार्वभौम महत्त्व के कारण आधुनिक युग का कवि तत्कालीन चिन्तन की पृष्ठभूमि पर नवीन युग को मानवता का नया संदेश देने में समर्थ हुआ है।

'महाभारत' के सभी प्रसंग पुरुषार्थ चतुष्टय के किसी- न- किसी वर्ग की व्यावहारिक सिद्धि के हेतु आये हैं। इसमें जीवन का प्रत्येक पक्ष मुखर हुआ है। इस कारण उपजीवक काव्यों के रचयिताओं ने अपने सिद्धान्त के अनुरूप महाभारत के प्रसंग का चयन कर काव्य रचना की है। इससे भारत- धर्म को स्वीकार करने वाले कवियों ने, वर्तमान युग के परिवेश में कर्म से विमुख पराधीन जाति में कर्म- सौन्दर्य का आलोक जागृत किया और वैभव सम्पन्न अतीत की आधारशिला पर उसे सुदृढ़ होने का वरदान देकर स्वतंत्रता के प्रकाश से मंडित किया।

महाभारत का कर्ण-प्रसंग—महाभारत के कथा- प्रवाह के अनेक प्रसंगों में दानवीर कर्ण की कथा व्यक्ति के पौरुष और कर्म- सौन्दर्य की कथा है। कर्ण 'महाभारत' का यशस्वी पात्र है। उसके जीवन से सम्बन्धित सभी घटनाओं में एक ऐसा मर्म विद्यमान है जिसके उद्घाटन से पौरुषहीन जाति में कर्म के प्रति आस्था का जागरण नितान्त स्वाभाविक है। भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता में एक ओर वर्ण व्यवस्था की सतर्कता कर्मानुसार व्यक्ति की जाति का निर्वाचन और गुणों के अनुसार व्यक्ति के महत्त्व की स्वीकृति स्पृहणीय है, तो दूसरी ओर कुल- जाति विहीन। पुरुषत्व का शतश: कुंठित गान भी अभिनन्दननीय है। धर्म की गति जितनी सूक्ष्म है उतनी ही सूक्ष्म उसकी व्यावहारिक उपचर्या। इसी आधार पर महाभारतकार ने कर्ण का चरित्रांकन किया है। कर्ण के जन्म से लेकर मृत्यु तक अनेक उत्थान- पतन आये। यह नहीं कि महाभारत के अन्य पात्रों का जीवन समरस रहा, किन्तु स्थिति- सापेक्ष मानसिक संघर्ष जितना कर्ण के जीवन में रहा, उतना किसी अन्य पात्र के जीवन में प्राप्त नहीं होता। कौरव- पाँडवों के संघर्ष के मध्य कर्ण का नाटकीय रूप में आना और इतना महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त करना केवल सामाजिक नीति के कारण ही नहीं हुआ, अपितु उसके लिए सामाजिक जीवन- पद्धति ने अभूतपूर्व योग दिया। इस असाधारण व्यक्तित्व से सम्बद्ध असाधारण घटनाएँ आज के कवि को युग- निरपेक्ष घटना के रूप में दिखाई देती हैं। उसे कर्ण का चरित्र, कर्ण- जीवन की घटनाएँ अनेक सामाजिक मान्यताओं पर पुनर्विचार करने के लिए बाध्य करती है। उच्चकुल में उत्पन्न होकर भी जो हीन- जन्मा रहा, पौरुष की अदम्यता के होते हुए भी सर्वदा हारता रहा और अन्त में दैवीय छलना के फलस्वरूप मृत्यु को प्राप्त हुआ, ऐसे कर्ण का जीवन, वर्णव्यवस्था तथा अन्य सामाजिक पद्धति की नई व्याख्या की प्रेरणा देता है। इस प्रसंग से कवि समाज की उन मान्यताओं का मूलोच्छेदन करता है जो आज भी समाज की प्रगति में बाधक है।

कर्ण की कथा : जन्म-दो कथान्तर—कर्ण के जन्म, कुन्ती और सूर्य द्वारा समागम और कवच-कुण्डल हरण तथा 'महाभारत' में कथान्तरों के साथ प्राप्त होती हैं। आदि पर्व वाली कथा संक्षिप्त और वनपर्व वाली कथा वृहत्तर है। आदिपर्व में भी पिता के घर आये दुर्वासा की सेवा और स्पष्ट रूप से पुत्र- हेतु- वर- प्राप्ति की कथा दो स्थानों पर आई है। दोनों प्रसंगों में भेद यह है कि प्रथम में सामान्यत: देने की बात कही गयी है किन्तु द्वितीय प्रसंग में कुन्ती के भावी संकट की ओर संकेत किया गया है—

तस्यै स प्रददौ मन्त्रमापद्रूमन्विवेक्षया

अभिचारामि संयुक्तमब्रवीच्चैव तां मुनि।

यह स्पष्टीकरण कुन्ती के चरित्र रक्षा हेतु किया गया है। कथा का द्वितीय वृहत्तर रूप वनपर्व में वर्णित है। सूर्य स्वप्न में कर्ण को दर्शन देकर इन्द्र को कवच कुण्डल न देने की चेतावनी देते हैं। कर्ण अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ है, किन्तु सूर्य के देवराज इन्द्र से एकघ्नी माँग लेने

के परामर्श को स्वीकार कर लेता है। यह वृहत्तर रूप यथार्थवादी और मनोवैज्ञानिक है। कुन्ती सूर्य के साथ समागम करने से पूर्व मानसिक और सामाजिक भय का प्रदर्शन करती है। इस पर सूर्यदेव अपनी शक्ति से कुन्ती को भयभीत करते हैं। इस स्थल पर महाभारत ने कुन्ती के मुख से विवाह के सामाजिक नियम की विवेचना अत्यधिक सटीक रूप में की है। कुन्ती कहती है कि ''मेरे माता-पिता तथा अन्य गुरुजन ही मेरे शरीर को देने का अधिकार रखते हैं। मैं अपने धर्म का लोप नहीं करूँगी,कुन्ती इस नियम का सशक्त प्रतिपादन करती है कि स्त्रियों के सदाचार में शरीर की पवित्रता बनाये रखना ही प्रधान है। इसके उत्तर में सूर्य कुन्ती को आश्वासन देते हैं कि उनके साथ समागम के उपरान्त भी वह सती साध्वी रह सकती है।''

इस प्रसंग में कथा की वास्तविकता की रक्षा का पूर्ण प्रयास किया गया है। अमोघ शक्ति देते समय इन्द्र कर्ण को चेतावनी देते हैं किन्तु कर्ण उसे यथार्थरूप में स्वीकार करता हुआ अपने पौरुष के प्रति आश्वस्त रहता है। ऐसा लगता है कि देवत्व और मनुष्यत्व के भीषण संग्राम में देवत्व विजय-प्राप्ति हेतु सभी साधन संगृहीत कर लेता है। कर्ण का जन्म जितनी विकट परिस्थितियों में हुआ उससे भी अधिक भयंकरताएँ उसके जीवन में आई और वह इन सबको झेलता हुआ अपने असाधारण व्यक्तित्व की छाप छोड़ गया। कर्ण से सम्बद्ध कथानक में रंगभूमि प्रसंग, परशुराम से शस्त्र प्राप्ति, दिग्विजय, कर्ण-कुन्ती मिलन आदि ऐसे मार्मिक प्रसंग हैं जिनमें महाभारतकार ने निष्पक्ष रूप से व्यक्ति के पौरुष का गान किया है।

निष्कर्ष—कर्ण के जीवन पर लिखे गये सभी प्रबन्ध काव्यों में कवि की दृष्टि कर्ण के चारित्रिक उत्थान की ओर रही है। इस प्रसंग से उसने आज के युग में जातिगत वैषम्य का सशक्त विरोध करते हुए कर्म को सहज गुण के रूप में व्यक्त किया है। कर्ण के जीवन का सन्देश यही है कि फल-प्राप्ति की आसक्ति को त्यागकर अपने कर्त्तव्य का पालन किया जाए। कर्ण-जन्म की घटना तत्कालीन सामाजिक न्याय के विरुद्ध रही अत: यह प्रकट होने पर भी कि वह उच्चकुल जन्मा है, वह उपेक्षित रहा। दिनकर ने 'रश्मिरथी' में अत्यधिक उदार दृष्टि से यह समझाने का प्रयास किया कि ऐसी विषम परिस्थिति में एक वीर व्यक्ति का क्या दृष्टिकोण हो सकता है।

प्रश्न- 7. 'रश्मिरथी' के वस्तु- विकास की विवेचना कीजिए।

उत्तर—'रश्मिरथी' की रचना कर्ण प्रसंग पर आधारित है। कवि की दृष्टि कर्ण के उदात्त चरित्र के उद्घाटन की ओर रही है। मानव के कतिपय गुण, दान, धर्म पालन, ओज, वीरत्व कर्म में विश्वास, मैत्री आदि कर्ण के व्यक्तित्व का आधार रहे हैं। दिनकर कर्ण की कथा के सन्दर्भ में उक्त गुणों की स्थापना पर बल देते हैं—आज का मानव इन स्वभावगत गुणों के अभाव में स्वयं में दु:खी, सामाजिक व्यवस्थाओं से ग्रस्त और जीवन से भयभीत है, अत: एक उच्च आदर्श सम्पन्न जीवन की कल्पना के लिए भाग्य के साथ पुरुषार्थ के चरम आलोक में अपेक्षा है। यह आलोक कर्ण के चरित्र में विद्यमान है जिससे प्रेरणा प्राप्त कर आज का जातिविहीन मानव मानवीय गुणों के बल पर प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकता है।

कथानक का आरम्भ—दिनकर ने 'महाभारत' की कथा का वही भाग 'रश्मिरथी' में ग्रहण किया है जो उनके जीवन दर्शन की उपस्थापना में सहायक हो सके। 'रश्मिरथी' की कथा का प्रारम्भ और की प्रशस्ति और कर्ण के जीवन-परिचय से होता है। रंगभूमि के प्रसंग में 'महाभारत' का कर्ण अर्जुन को ललकारता है—

पार्थ यत दे कृतं कर्म विशेष वदहं वत:,
करिष्ये पश्यतां नृणां भाऽऽत्मंना विस्मयं गम:।

'रश्मिरथी' का कर्ण उसी व्यंग्य में कहता है—

तूने जो-जो किया, उसे मैं भी दिखला सकता हूँ,
चाहे तो कुछ नई कलाएँ भी सिखला सकता हूँ।

कवि ने 'महाभारत' के कर्ण के मानसिक औदात्य को पूर्ण शक्तिमत्ता के साथ व्यक्त किया है—कर्ण-अर्जुन के द्वन्द्व की स्थिति में, कृपाचार्य जाति की आड़ लेकर कर्ण को हतप्रभ करने की चेष्टा करते हैं। मूल ग्रन्थ में दुर्योधन आचार्य के प्रश्न का उत्तर देता है किन्तु वैज्ञानिक युग के कवि का कर्ण ऐसे किसी माध्यम को स्वीकार न करता हुआ अपने अहं का विस्फोट स्वयं करता है—

जाति-जाति रटते, जिनकी पूँजी केवल पाषंड
मैं क्या जानूँ जाति? जाति है ये मेरे भुजदण्ड

पढो उसे जो झलक रहा है मुझमें तेज प्रकाश,
मेरे रोम-रोम में अंकित है मेरा इतिहास।

कर्ण के माध्यम से दिनकर आज के मानव के कर्म-दीप्त पौरुष का आख्यान करते हुए जाति के 'लेबल' को निरर्थक सिद्ध करते हैं। आज का मानव उस एकान्त स्थिति में बहुत आगे आ चुका है जहाँ उसका प्रत्येक कार्य उसकी वैयक्तिक आशा-निराशा लाभ-हानि का द्योतक

था। आज वह सम्पूर्ण जीर्ण बन्धनों पर पदाघात करता हुआ स्वअर्जित सम्पत्ति का स्वामी है और उसका यह निश्चय भी दृढ़ है कि सामाजिक प्रतिष्ठा भी अन्त: मानव की स्वयं अर्जित सिद्धि है।

'रश्मिरथी' के आचार्य द्रोण आधुनिक कुल-गोत्र सम्पन्न मठाधीश के प्रतीक है क्योंकि उच्च जाति किसी रूप में तथाकथित निम्न वर्ग को उभरने नहीं देना चाहती। द्रोण की प्रतिज्ञा है कि ''मैं शिष्य बनाऊँगा न कर्ण को यह निश्चय है बात।''

उक्त प्रसंग के उपरान्त दिनकर ने शान्ति पर्व के नारदोक्य उपाख्यान को ग्रहण किया है। यहाँ पर कवि परशुराम के व्यक्तित्व में शक्ति और शील के समन्वय पर बल देता है। केवल शील दुर्बलता का परिचायक और आत्म प्रवचना है, केवल शक्ति पशुबल है। अत: जीवन का कल्याण शक्ति शील के सामंजस्य में है। दिनकर ने जिस प्रकार 'कुरुक्षेत्र' में 'ज्वलित प्रतिशोध' को आपद्धर्म के रूप में मान्यता दी है तद्वत् 'रश्मिरथी' में कवि शील को शस्त्र ग्रहण की प्रेरणा देता है। 'कुरुक्षेत्र' का सैद्धान्तिक पक्ष 'रश्मिरथी' में आकर व्यावहारिक उपचर्या की उपस्थापना करता है। परशुराम के व्यक्तित्व में क्षात्र धर्म और ब्राह्मण धर्म के संयोग से आततायी को समूल नष्ट करने की भावना का प्रतिपादन किया है। धर्म और जीवन की रक्षा हेतु यह समन्वय आवश्यक है, क्योंकि उद्धत राजत्व को केवल मंत्रोच्चारण से नहीं रोका जा सका, उसके लिए गंगा जल की कोई कीमत नहीं उसे रोकने के लिए ब्राह्मण का शरग उठाना परम धर्म है इसी प्रसंग में कवि असत्य और छल से प्राप्त सिद्धि की व्यर्थता परशुराम के शाप में सिद्ध करता है। परशुराम शाप देते हैं कर्ण लौट आता है।

'रश्मिरथी' के तृतीय सर्ग में कृष्ण और कर्ण का संवाद वर्णित है। कृष्ण सामरिक नीति के आवश्कतानुसार कर्ण को पाण्डव पक्ष में करने का प्रयास करते हैं किन्तु असफल होते हैं।

'रश्मिरथी' का कर्ण दुर्योधन के पक्ष को छोड़ना अस्वीकार करता है। वह मित्र धर्म की स्थापना करता हुआ मित्र मोह को मानव का पातक बताता है। दिनकर के 'महाभारत' की कथा के दिव्य अंशों को छोड़ दिया है क्योंकि आज का बुद्धिवादी मानव उन्हें स्वीकार करने में असमर्थ है। इसके साथ उस कथांश के दिव्य रूप को सामाजिक जीवन-पद्धति के अनुरूप ग्रहण कर नवीन परिवर्तन किया है। मूलकथा का प्रत्येक परिवर्तन युग सापेक्ष चिन्तन प्रक्रिया पर आधारित है। जिन बातों को उस युग ने मानव की वैयक्तिक सिद्धि मानकर व्यक्त किया, आज वे ही सारी बातें सामाजिक सिद्धि की परिचायक बनकर व्यक्त हुई है।

कवच-कुण्डल का प्रसंग एक राजनीतिक दाव-पेंच के रूप में माना जा सकता है। दिनकर ने उसे राजनीति तक ही सीमित नहीं देखा अपितु मानव धर्म के अंग रूप में चित्रित किया है। कवि दानधर्म की व्यापक महत्ता का आलेख करता है और दान को मानव का प्रकृतधर्म उद्घोषित करता है। इस प्रसंग में कवि भारत-धर्म का आख्यान करते हुए दान को जीवन का सर्वोच्च समर्पण बताता है और उसी में उदात्त चरित्र की प्रतिष्ठापक परिणति मानता है।

मूलग्रन्थ में इन्द्र सीधे कवच-कुण्डल की याचना करते हैं कर्ण कुछ और लेने के लिए कहता है किन्तु देवराज अपनी याचना पर अडिग है। इस पर कर्ण देवराज से उनकी शक्ति की याचना करता है और यह आदान-प्रदान राजनीतिक समझौते का रूप धारण कर लेता है।

यदि दास्यमि ते देव कुण्डले कवचं तथा।
वध्यतामुपयास्यामि त्वं च शक्र वहास्यताम्॥
यस्माद् विनिमय कृत्वा कुण्डले वर्म चोत्तमम्।
हरस्व शक्र कामंद्वे न दद्यामहमन्यथा॥

दिनकर ने इस राजनीतिक समझौते की प्रकृति को परिवर्तित करके मानवीय संवेदना को उभारा है। इससे कर्ण का चरित्र और भी उज्ज्वल रूप में अंकित होता है। कर्ण बार-बार इन्द्र के द्वारा सच को प्रकट करने पर कहता है—

विप्रदेय मांगिये छोड़ संकोच वस्तु मन चाही।
मरूँ अयश मृत्यु करूँ यदि एक बार भी नाही॥

इतनी उत्कंठा-उद्वेलन और इतनी निर्मम याचना। 'रश्मिरथी' के लेखक ने यह प्रसंग मानवता के चैतन्य-शिखर को मंडित करके लिखा है। इन्द्र उस छली-कपटी आततायी का प्रतीक है जो अवसर पड़ने पर भिक्षुक बनकर सत्य का हरण करने को तत्पर है और कर्ण दानव्रत के उस प्रकाश से आलोकित है, जहाँ मानव यह जानकर भी कि वह छला जा रहा है अपने प्रण को नहीं छोड़ता।

वस्तुत: 'रश्मिरथी' में 'महाभारत' के सभी प्रसंगों को मनुषत्व के प्रतिपादन के लिए ग्रहण किया गया है। दिनकर की दृष्टि में मनुष्यत्व दान में है और ऐसा दान जो व्यक्ति को क्षुद्र अहं की सीमा से उठाकर परार्थ के लिए संचालित करता है मानवता का चरम रूप है। दिनकर ने इस स्थल पर इन्द्र के हृदय का परिवर्तन मानवीय गुणों की प्रतिष्ठा के लिए किया है। दिनकर के कर्ण के कवच-कर्त्तव्य दृश्य को देखकर आत्म-ग्लानि अनुभव करते हैं। कवि ने यहाँ भी कथा को वैज्ञानिक मोड़ दिया है और चरित्र में अन्त:संघर्ष की स्थापना करके भाव को संवेद्य बनाया है। कुरुक्षेत्र में यदि विजेता की आत्मग्लानि मानवता को हेय है तो 'रश्मिरथी' के छली इन्द्र की आत्मग्लानि भी मानवीय गुणों की सशक्त स्वीकृति है। इस पश्चाताप में अनेक पापकर्म दग्ध होकर साधुतत्त्व की भभूति बनने योग्य हो जाते हैं।

कर्ण-कुन्ती का प्रसंग करुणा की लेखनी से लिखा गया है। इस प्रसंग में भावना, तर्क, विवशता के मूर्त, अमूर्त चित्र पाठक के मन पर गहरा प्रभाव डालने में समर्थ हुए हैं। यदि करुणा मानव जीवन का सर्वाधिक प्रभावशील भाव है, तो इस कथन पर कवि अपने पाठक को भाव की अन्तिम गहराई तक ले जाता है। माँग और दान एक राजनीतिक चाल ही नहीं मानवीय आकांक्षा भी है और 'रश्मिरथी' में इस आकांक्षा का प्रबलतम रूप उपस्थित होता है। 'रश्मिरथी' में कुन्ती का आत्म-संघर्ष कितना सकारण और मनोवैज्ञानिक है—

एक ही गोद के लाल, कोख के भाई,
सत्य ही लड़ेंगे दो और लड़ाई,

दो में जिसका उर फटे फटूँगी मैं ही,
जिसकी भी गर्दन कटे, कटूँगी मैं ही?

एक ओर माता का विह्वल हृदय, दूसरी ओर पुत्र की संचिता घृणा। कर्ण अपने उपेक्षित जीवन के समस्त दु:ख बटोर कर आवेश में कहता है—

अब तक न स्नेह से कभी किसी ने हेरा
सौभाग्य किन्तु जग पड़ा अचानक मेरा
इसी प्रवाह में वह यहाँ तक कह डालता है—
जोड़ने नहीं बिछुड़े, वियुक्त कुलजन से
फोड़ने मुझे आई हो दुर्योधन से।

परिस्थिति के इस संघर्ष में कवि अन्तर और बाह्य रेखाओं को शक्ति से उभारता हुआ पाठक की अनुभूति को सरल करने में समर्थ हुआ है। पाठक न तो कुन्ती को दोष दे पाता है, न कर्ण को और केवल आहत मातृत्व के प्रति सहानुभूति अर्पित करता है।

इस प्रसंग के उपरान्त कर्ण और भीष्म के संवाद में कवि अनुभूति और चिन्तन दोनों को समानान्तर रूप में व्यक्त करता है। भाव का अनुभव व्यक्ति की सहानुभूति है और दर्शन की दृष्टि वैचारिक संकल्प विकल्प की क्रीड़ा है। 'रश्मिरथी' का कवि भाव के आवेग को वैचारिक परिणति में परिवर्तित करता है और सिद्धान्त को सामान्य ज्ञान के स्तर पर व्यक्त करके, पाठक की अनुभूति का विषय बना देता है। भीष्म युद्ध की भयंकरता बताकर कर्ण को युद्ध विरत करना चाहते हैं किन्तु कर्ण भी समय-सापेक्ष युद्धधर्म पर अडिग रहकर कर्त्तव्य का पालन करता है।

कवि अपने मूल विचार के अनुसार युद्ध-धर्म के औचित्य पर प्रकाश डालता है। युद्ध में रत दोनों पक्ष विजय-हेतु अनैतिक साधनों को अपनाते हैं, अत: युद्ध इसलिए भी निंद्य है और मानव अपने स्वाभाविक विवेक को खो बैठता है।

निष्कर्ष—कर्णार्जुन का युद्ध प्रसंग 'महाभारत' से यथावत् ग्रहण किया गया है। इस प्रसंग में कवि अनेक मूर्त, प्रत्यक्ष और अनुभवगम्य बिम्बों की अवतारणा करके पाठक के हृदय में वीर रस का संचार करता है। मानवीय गुणों का उद्घाटन करने वाला कवि इस गर्हित युद्ध-प्रसंग में भी कर्ण के द्वारा उदात्त गुणों का निर्वचन कराता है। कर्ण इस बात का पश्चाताप करता है कि उसने द्रोपदी के अपमान के समय दुर्योधन को क्यों नहीं रोका। इससे स्पष्ट है कि कवि मानव के आभ्यान्तर सत् तत्त्व को उसकी प्राणधारा मानता है। स्थिति से विवश मानव अपकर्म कर सकता है। पर आत्मा की पुकार किसी-न-किसी समय उसे आचार-अनाचार पर विचार करने के लिए विवश करती है। यही कारण है कि कर्ण की मृत्यु के बाद कृष्ण उसके गुणों का वर्णन करते हैं।

प्रश्न- 8. चरित्र-सृष्टि एवं चरित्र-चित्रण की नवीनता की दृष्टि से 'रश्मिरथी' की समीक्षा कीजिए।

उत्तर—प्रस्तुत खण्ड-काव्य रामधारीसिंह 'दिनकर' द्वारा रचित है, जिसमें सम्पूर्ण रचना महाभारत के प्रमुख प्रसंग को लेकर की गई है। आस्थावादी होने के नाते काव्यकार ने रश्मिरथी का प्रतिपाद्य सात्विक वृत्तियों का उद्घाटन करने की दृष्टि से किया है, जिसमें कवि का मूल उद्देश्य मानव का स्तवन है और इसी उद्देश्य में उनके सम्पूर्ण विचार समाहित हैं। रश्मिरथी का प्रतिपाद्य आधुनिक जीवन की सामाजिक क्रान्ति से सम्बन्धित है। आज के समाज में जाति और कुल का अहंकार लगभग समाप्त हो गया है। अत: मानव की सम्पूर्ण उपलब्धियाँ उसके पौरुष की अग्नि से प्रकाशित होकर उसके जीवन को कुन्दन बनाती है। आधुनिक मानव को पौरुष के प्रति आस्थावान बनाने के लिए महावीर कर्ण के अतिरिक्त और कोई पात्र नहीं हो सकता है क्योंकि कर्ण का जीवन अपने आप में विविध संघर्षों की जीवन्त गाथा है क्योंकि कर्ण न केवल समाज से लड़े किन्तु उन्हें जीवन भर अपने-आप से भी लड़ना पड़ा।

कर्ण के जीवन में एक विवाद का स्थान हो सकता है कि यदि कर्ण दलितों और उपेक्षितों का प्रतीक है तो उसने पाण्डव पक्ष क्यों नहीं अपनाया? वह राज्य पक्ष की ओर क्यों गया। 'महाभारत' में जितनी यातनाएँ पाण्डव पक्ष को प्राप्त हुईं उतनी कौरवों को नहीं। वह निरन्तर अर्जुन का प्रबल विरोधी बना रहा? इन सभी प्रश्नों पर विचार करते समय यह देखना है कि प्रारम्भ से ही कर्ण को जो उपेक्षा

प्राप्त हुई वह पाँडवों के पक्ष से थी। पाण्डवों के कारण ही जाति के प्रश्न को लेकर उसे अपमानित किया गया। 'महाभारत' में चरित्र की इन मन:स्थितियों का अध्ययन नहीं है। 'रश्मिरथी' में कवि ने इस पक्ष पर आधारित नियमों के अलोक में संतुलित रूप से विचार किया है कि कर्ण का मानसिक द्वन्द्व उसे पाण्डव विरोधी शिविर में ले आया। उसे स्पष्ट ज्ञात हो गया था कि कृष्ण पाण्डवों का समर्थन करते हैं। सभी दिव्य शक्तियाँ पाण्डवों के पक्ष में हैं। अत: ध्यानपूर्वक देखने पर कौरवों का पक्ष दुर्बल पड़ता है और इसी कारण कौरवों का पक्ष कर्ण के पौरुष से जगमगा गया।

'महाभारत' के मुख्य प्रसंगों के मध्य विचार- दर्शन इस काव्य की प्रमुख उपलब्धि है। कर्ण ने ओजपूर्ण अभिव्यक्ति में जातिवाद का सशक्त विरोध किया, दान को जीवन की अजस धारा और त्याग की महनीय निधि माना। कवि का वैचारिक दृष्टिकोण इस तथ्य की स्थापना करता है कि व्यक्ति को गुण- कर्म से सामाजिक उच्चता प्राप्त करके, जाति बन्धन के अवरोध को समाप्त कर, पुरुषार्थ के बल पर उन्नति करनी चाहिए। अत: वह समाज व्यवस्था भी परिवर्तनीय है, जिसमें उक्त सुविधाएँ अप्राप्त हों। सम्पूर्ण काव्य में कवि ऐसी समाज व्यवस्था के निर्माण में रत है जो व्यक्ति के गुणों पर आधारित हों। मानव मात्र की यही मंगल- कामना इस काव्य का महान् उद्देश्य है।

चरित्र- सृष्टि—'महाभारत' में चरित्र- सृष्टि का आधार यथार्थवादी प्रवृत्ति और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है। सभी प्रमुख चरित्र अपनी- अपनी सीमा में आदर्शवादी हैं। उनके प्रत्येक कर्म के पीछे आदर्श का आधार दिखाया गया है। वे वरीत्व के तेजोदीप्त जीवन के मध्य अपनी चित्तवृत्ति का प्रतिनिधित्व करते हैं। सभी चरित्र वीर युगीन चारित्र के प्रतीक हैं, वे युद्ध से विमुख होना नहीं जानते। शत्रु की ललकार के उत्तर में युद्ध को धर्म समझकर स्वीकार करते हैं। उनका ध्येय कर्म सम्पादन में है फल में नहीं।

प्रमुख पात्र युग- भावना के प्रतीक—'महाभारत' के प्रमुख पात्रों में युग- भावना के प्रबल आवेग के कारण भी अधिक परिवर्तन सम्भव न हो सका। इन चरित्रों का पुन:स्पर्श नहीं हुआ है, पुनर्सृजन नहीं। कर्ण की स्थिति इन सब से पृथक रही, उसके चरित्र में कवि को आधुनिक वर्ग- भेद, धर्म- भेद, जाति- भेद के विरुद्ध स्वरघोष करने का आधार मिल सका। 'महाभारत' में कृष्ण ने कर्ण की चारित्रिक उच्चता का वर्णन इस प्रकार किया है—

त्वमेव कर्ण जानासि वेद वादान सनातनम्।
त्वमेव धर्मायशास्त्रेषु सूक्ष्मेषु परिनिष्ठित: ॥

दिनकर ने 'रश्मिरथी' में कर्ण को वीरत्व, त्याग, निष्ठा और पुरुषार्थ का प्रतीक मानकर चित्रांकन किया है। कर्ण के चरित्र का प्रमुख गुण आत्मविश्वास पूर्ण वीरत्व है। महाभारत में वह 'सूर्येन्दु ज्वलनोपम:' है और रश्मिरथी में 'रविसमानदीपित ललाट' से युक्त है। वह निरन्तर पराजय को प्राप्त होता हुआ भी अपने को हेय न समझ सका, जबकि सभी गौरव एक- न- एक बार पाण्डवों से गरत होकर आत्म- पराजय स्वीकार करते हैं—तब भी कर्ण के मुख से दीन वचन नहीं निकले। वह स्वयं अपने वीरत्व की उद्घोषणा करता है—

नहि कर्ण ! ''समुद्यूतां यथार्थमिह भद्रक। विक्रमार्थं यदं जातो यशोऽर्थंच तथाऽऽत्मन: ॥''

इसी आधार पर दिनकर का कर्ण कहता है—

हो छिपा जहाँ भी पार्थ सुने अब हाथ समेटे लेता हूँ।
सबके सम्मुख द्वैरथ रण की मैं उसे चुनौती देता हूँ।

वीरत्व के चरम कर्म- क्षेत्र में पहुँचकर, वह दैव की क्रूर गति से भी भयभीत नहीं होता। 'रश्मिरथी' का कर्ण केवल इहलोक की गति को ही अन्त नहीं मानता वह परलोक की गति में भी विश्वास करता है। तभी तो उसकी मानववादी भावना युद्ध क्षेत्र में भी जीवित रही—

अगला जीवन किसलिए भला
तब हो द्वैपान्ध बिगाड़ूँ मैं
साचो की जाकर शरण
सर्प बन क्यों मनुष्य को मारूँ मैं ॥

दिनकर को अहिंसावादी कहने वाले आलोचक दिनकर के कर्ण की उक्तियों को यदि ध्यान से देखें तो उन्हें ज्ञात होगा कि यह कवि किसी भी क्षेत्र में मानव- भावना का तिरस्कार नहीं कर सकता। यहीं पर यह मानना पड़ता है कि उसके चिन्तन का मूल भारतीय संस्कृति है।

परशुराम से शस्त्र- प्राप्ति के अवसर पर किया गया छल राजनीति की दृष्टि से उचित है किन्तु मानववादी दृष्टि से उसका समर्थन नहीं किया जा सकता। इस स्थल पर दिनकर ने आत्मग्लानि, पश्चाताप की भावना के आधार पर कर्ण का पाप प्रक्षालन किया। परशुराम के मुख से ब्राह्मण कुमार शब्द सुनते ही कर्ण का मन धिक्कारने लगता है और वह अपना रक्त बहाकर अपने पाप का प्रायश्चित करता है। दिनकर छल का विरोध करते हैं क्योंकि छल से प्राप्त विद्या यशकारी नहीं होती।

दुर्योधन के प्रति कर्ण की मित्रता उसके महान चरित्र का द्योतक है। वह आत्माहुति करके मित्र-धर्म का निर्वाह करता है। इस प्रकार 'रश्मिरथी' का कर्ण 'महाभारत' के कर्ण का प्रतिरूप होते हुए भी दिनकर की अपनी सृष्टि बन गया है और उसके चरित्र के माध्यम से कवि ने जन्मजात एवं अर्जित पद के संघर्ष में मानव के अर्जित गुणों का व्याख्यान किया है। कर्ण के चित्रांकन का मूल है—

मैं उनका आदर्श किन्तु जो तनिक न घबरायें। निज चरित्र बल से समाज में पद विशिष्ट पायेंगे।

कर्ण के अतिरिक्त भीष्म, कृष्ण, कुन्ती, युधिष्ठिर का चित्रांकन भी कवि की अपनी विचारधारा के अनुरूप हुआ है। दिनकर के भीष्म उस कुल-वृद्ध के प्रतीक हैं, जो अपने वंशजों को सर्वनाश की ओर जाने से रोकने में असमर्थ हैं, वे कर्ण से कहते हैं—

बोले- क्या तत्त्व विशेष बचा
बेटा आँसू ही शेष बचा।

भीष्म के पीड़ित व्यक्तित्व में मानवता की रक्षा की वेदना है व युद्ध इसलिए नहीं रोकना चाहते कि कुछ व्यक्ति वीरगति प्राप्त करेंगे किन्तु इसलिए कि मानवता समूल नष्ट हो जायेगी। यदि आज का दम्भी राजनीतिज्ञ भी भीष्म के वचनों का मर्म समझ सके तो निश्चय ही मानव का कल्याण होगा—

इसलिए, पुत्र! अब भी रुक कर,
मन में सोचो, यह महा समर
किस ओर तुम्हें ले जायेगा?
फल अलभ कौन दे पायेगा?
मानवता ही मिट जायेगी
फिर विजय सिद्धि क्या लायेगी?

यदि आत्म संघर्ष है जिसके आलोक में 'रश्मिरथी' के भीष्म की रेखाएँ उभरती हैं। प्रतीक बनकर पाठक को एक विशिष्ट अनुभूति प्रदान करता है। दिनकर ओजस्वी भाषा के चयन और भावुक शब्दों के गठन में सिद्धहस्त हैं। कुन्ती की अभिव्यक्ति में विवशताजन्य आकुलता उद्वेलक प्रभाव की दृष्टि से अत्यधिक सशक्त रूप में व्यक्त हुई है। यह स्थिति भी कितनी विचित्र है कि माता कितने समय बाद पुत्र से मिलने आती है और वह भी एक याचना करने के लिए कि उसका पुत्र अपनी संचित निधि को माँ के आँचल में डाल दे, किन्तु गर्भित पुत्र माँ को उस स्थिति में ले आता है, जहाँ वह अपराधिनी-सी चुप है, यहाँ पर कुन्ती का चरित्र केवल उसकी आत्मग्लानि के प्रसंग में उभर सका है—

लज्जित होकर तू वृथा वत्स! रोता है,
निर्दोष सत्य का कब कोमल होता है।
धिक्कार नहीं तो मैं क्या और सकूँगी?
काँटे बोये थे, कैसे कुसुम चुनूँगी?

इस करुणाविगलित चरित्र को कवि अहं और प्रतारणा के संघर्ष में जीवन देता है।

2.1 2 सारांश

इस प्रकार 'रश्मिरथी' की चरित्र सृष्टि समग्र रूप से न होकर खण्ड रूप में व्यक्त हुई है। कवि ने जिन स्थानों का स्पर्श किया है वे प्रबुद्ध पाठक को उद्वेलित करने में समर्थ हैं।

'रश्मिरथी' पुनरुत्थान युग के उत्तरार्द्ध में लिखी गई रचना है अत: स्वभावत: कवि का उद्देश्य मानव-धर्म का आख्यान रहा है। महाकाव्य का कलेवर प्राप्त करते हुए भी इस काव्य का सन्देश महान है जो मानव को निज की शक्ति का परिचय पाने की प्रेरणा देता है और सधर्म के प्रति जागरूक करता है। निश्चय ही भारतीय भाषाओं के प्रबन्ध काव्यों की परम्परा में 'रश्मिरथी' विशिष्ट स्थान की अधिकारिणी रचना है।

2.1 3 अभ्यास प्रश्नावली

प्रश्न- 1. चरित्र-चित्रण की नवीनता की दृष्टि से रश्मिरथी की समीक्षा कीजिए।

प्रश्न- 2. रश्मिरथी के आधार पर कर्ण का चरित्र-चित्रण कीजिए।

आधुनिक काव्य संग्रह

इकाई- 3

अयोध्यासिंह उपाध्याय ''हरिऔध''

संरचना

3.0 कवि परिचय

3.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

3.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

3.2.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

3.2.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

3.2.3 निबंधात्मक प्रश्न

3.3 सारांश

3.4 अभ्यास प्रश्नावली

3.0 कवि परिचय

कवि अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध को द्विवेदी युगीन कवियों में प्रमुख स्थान प्राप्त है। सुप्रसिद्ध कवि होने के साथ- साथ आप एक उपन्यासकार, आलोचक, इतिहासकार भी थे। इनका जन्म उत्तरप्रदेश के निजामाबाद के जिला आजमगढ़ में हुआ। इनके पिता का नाम पं. भोलासिंह था। मिडिल कक्षा उत्तीर्ण करने के बाद इन्हें निजामाबाद के ही एक मिडिल स्कूल में अध्यापक पद पर नियुक्ति मिल गई। कुछ समय तब अध्यापन कार्य करने के पश्चात् इन्हें क़ानूनगो के पद पर आसीन कर दिया गया। इस जिम्मेदारीपूर्ण पद पर कार्य करते हुए भी वे साहित्य सृजन तथा साहित्य अनुशीलन में संलग्न रहे। सरकारी नौकरी से निवृत्त होने के पश्चात् ये हिन्दु विश्वविद्यालय वाराणसी में लम्बी अवधि तक अवैतनिक रूप में अध्यापन कार्य करते रहे।

हरिऔध का कार्यकाल 1865 से 1947 तक स्वीकार किया गया है। इन्हें उर्दू, फारसी और संस्कृत भाषा का अच्छा ज्ञान था। वैसे ये पहले बृजभाषा में कवित्त और सवैये लिखा करते थे, किन्तु कुछ समय पश्चात् अपनी रचना खड़ी बोली में करने हेतु प्रवृत्त हुए। जितना अधिकार ब्रजभाषा पर था उतना ही खड़ी बोली पर अपना हक रखते थे। ब्रजभाषा की रचनाओं में 'रस- कलश' विशेष रचना मानी गई है क्योंकि भाव, भाषा और शैली—तीनों ही दृष्टि से यह रचना हिन्दी साहित्य जगत में अपना विशिष्ट महत्त्व रखती है। इन्होंने खड़ी बोली के काव्य को भाषा, भाव, छन्द तथा अभिव्यंजना की दृष्टि से एक नवीन अंदाज प्रदान किया।

उपदेशात्मकता का प्रबल स्वर रखने वाले हरिऔध अपनी कविताओं में आचरण की शुद्धता तथा नैतिक मूल्यों का उत्कर्ष भी सशक्त रखते हैं यद्यपि इनकी कविताओं में यत्र- तत्र काव्यगत सौन्दर्य पर भी आघात पहुँचा है। जहाँ इनके काव्य में सरल हिन्दी का सहज सौन्दर्य है वहीं दूसरी ओर संस्कृत भाषा की समासोक्त पदावली की छटा, मुहावरों तथा साधारण रोजमर्रा के शब्दों का बाहुबल्य है।

सर्वश्रेष्ठ काव्य रचनाओं में 'प्रिय प्रवास' को स्वीकार किया जाता है जिसमें श्रीकृष्ण को अवतार के रूप में प्रस्तुत न करके एक लोक नायक के रूप में प्रस्तुत किया है तथा उन्हीं के अनुरूप राधा को भी प्रस्तुत किया है। इस काव्य की रचना तुकान्त छन्दों में की गई है। यद्यपि इस काव्य में संस्कृत की समासोक्त पदावली तथा क्लिष्ट खड़ी बोली का प्रयोग किया गया है किन्तु अति प्रशंसनीय है। वैसे 'प्रिय- प्रवास' खड़ी बोली में लिखा गया प्रथम काव्य है। राधा और कृष्ण को सामान्य नायक-नायिका के स्तर से ऊपर उठाकर विश्वप्रेमी तथा विश्वसेवी के रूप में प्रस्तुत कर काव्य की महत्ता बढ़ाई है। इनके काव्यों को हिन्दी जगत में प्रचुर ख्याति प्राप्त हुई है। इनके काव्य- ग्रंथों में 'प्रिय- प्रवास' के साथ- साथ 'पथ- प्रसून', 'चुभते चौपदें', 'चोखे चौपदे', 'बोलचाल', 'रसकलश', 'वैदेही- वनवास' आदि प्रमुख हैं। 'प्रिय- प्रवास' पर इन्हें हिन्दी का सर्वोत्तम पुरस्कार 'मंगलाप्रसाद पारितोषिक' प्रदान किया गया।

3.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

ब्रज की संध्या

(1)

दिवस का अवसान समीप था।
गगन था कुछ लोहित हो चला॥
तरु शिखा पर थी अब राजती।
कमलिनी-कुल-वल्लभ की प्रभा॥
विपिन बीच विहंगम-वृन्द का।
कलनिनाद विवर्द्धित था हुआ॥
ध्वनिमयी विविधा विहगावली।
उड़ रही नभ-मण्डल मध्य थी॥

शब्दार्थ—दिवस=दिन। अवसान=अस्त। लोहित=लालिमा युक्त। तरु शिखा=पेड़ों की फुनगियाँ। वल्लभ=रश्मियाँ। प्रभा=चमक। विपिन=बाग। निनाद=ध्वनि। विवर्द्धित=बढ़ता हुआ। विविधा=अनेक प्रकार की।

प्रसंग—प्रस्तुत कवितांश हमारी पाठ्य-पुस्तक ''आधुनिक काव्य-संग्रह'' में संकलित कवि अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' द्वारा विरचित हिन्दी खड़ी बोली के प्रथम महाकाव्य 'प्रिय प्रवास' के प्रथम सर्ग 'ब्रज की संध्या' कविता से अवतरित है, जिसमें कवि ने ग्वाल-बालों के साथ जंगल से लौटते हुए कृष्ण गोपाल के सौन्दर्य के निमित्त सायंकालीन प्राकृतिक सौन्दर्य का मन-मोहक तथा जीवन्त चित्रण किया है।

व्याख्या—कवि हरिऔध गोधूली बेला के प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहते हैं कि दिन ढलने के साथ-साथ भगवान् भास्कर लगभग अस्त होने जा रहे थे, उस समय सम्पूर्ण गगन मण्डल में मोहक ललिमा व्याप्त हो गई थी। वृक्षों की ऊँची-ऊँची फुनगियों पर सूर्य का प्रकाश अत्यन्त शोभायमान होने लगा। कमलिनी के वंशज अर्थात् कमल समूह के स्वामी सूर्य की अस्त होती हुई किरणों की आभा वृक्षों की फुनगियों के सौन्दर्य को और अधिक बढ़ा रही थी।

कविवर हरिऔध साँझ की प्राकृतिक छटा को वर्णित करते हुए कहते हैं कि उस समय सभी पक्षी अनन्त विहार कर अपने-अपने घौंसले अथवा अपने निर्धारित विश्रामस्थल पर लौटने लग जाते हैं जिससे पक्षियों की कलख ध्वनि निरन्तर बढ़ती जा रही थी तथा एक ओर आकाश की ऊँचाइयों में विभिन्न पक्षियों के समूह सुन्दर पंक्तियों में चहकते हुए अपने-अपने गन्तव्य की ओर निरन्तर बढ़ते हुए अत्यन्त मन-मोहक लग रहे थे।

विशेष—1. कवि ने संध्याकाल से कुछ पूर्व गोधूली बेला के प्राकृतिक सौन्दर्य का जीवन्त चित्रण किया है।
2. अनुप्रास अलंकार तथा द्रुतविलम्ब छन्द का प्रयोग वर्णनात्मक शैली में किया गया है।

(2)

सुन पड़ा स्वर ज्यों कलवेणु का।
सकल ग्राम सशंक हो उठा।
हृदय-यंत्र निनादित हो गया।
तुरत ही अनियंत्रित भाव से॥
वय युवा युवती गृह बालिका।
विपुल बालक वृद्ध वयस्क भी।
विवश से निकले निज गेह से।
स्वदृग का दुःख-मोचन के लिये॥

शब्दार्थ—वेणु=बाँसुरी (मुरली)। सकल=सभी। निनादित=संगीतमय। विपुल=पर्याप्त। निजगेह=अपनेघर। स्वदृग=अपने नेत्र। दुःख

मोचन=संकट हरण करने वाले।

प्रसंग—प्रस्तुत कवितांश हमारी पाठ्य-पुस्तक ''आधुनिक काव्य-संग्रह'' में संकलित कवि अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' द्वारा विरचित हिन्दी खड़ी बोली के प्रथम महाकाव्य 'प्रिय प्रवास' के प्रथम सर्ग 'ब्रज की संध्या' कविता से अवतरित है, जिसमें कवि ने साँझ की गोधूली बेला में गायों के वन से लौटने तथा गोचारक, गोपाल श्री कृष्ण के मधुर मुरलीवादन का अति मनोहर वर्णन किया है।

व्याख्या—कविवर 'हरिऔध' साँझ की गोधूली बेला में गायों के आगमन तथा गोपाल कृष्ण के मुरली वादन का वर्णन करते हुए कहते हैं कि जैसे ही श्रीकृष्ण की मुरली की सुर सरिता के प्रवाह की धुन को सुना तो ब्रजवासी यह जान गये कि गोपाल गाय चराकर लौट रहे हैं और सभी उनके दर्शन की प्रबल इच्छा को रोक नहीं पाये। अत्यन्त उत्सुकता के कारण उनके मन रूपी वाद्ययंत्र भी मुरली की धुन के साथ झंकृत हो उठे और अनियंत्रित भावों से उनके हृदय प्रेम-पूरित होने लगे।

कविवर कहते हैं कि गोपाल कृष्ण की मुरली की धुन को सुनकर ब्रज के युवक, युवतियाँ, बच्चे, प्रौढ़, वृद्ध सभी अपने-अपने नेत्रों के वियोग रूपी कष्ट का शमन करने के लक्ष्य से अपने प्यासे नेत्रों को हरिदर्शन से तृप्त करने के लिये अपने-अपने घरों के बाहर आ गये।

विशेष—
1. ब्रजवासियों के मन में व्याप्त गोपाल कृष्ण के प्रति अपार प्रेम को स्पष्ट किया गया है।
2. ब्रजवासियों के हृदय की स्थिति का वर्णन अति प्रशंसनीय है।
3. कवितांश में उत्प्रेक्षा, रूपक और अनुप्रास अलंकार का सुन्दर प्रयोग किया गया है जो द्रुतविलम्बित छन्द के साथ अत्यन्त प्रभावशाली है।

(3)

विलसता कटि में पट-पीत था।
रुचिर-वस्त्र-विभूषित गात था।
लस रही उर में वनमाल थी।
कल-दुकूल-अलंकृत स्कंध था।
मधुरतामय था मृदु बोलना।
अमृत-सिंचित-सी मुसकान थी।
समद थी जन-मानस मोहती।
कमल लोचन की कमनीयता।

शब्दार्थ—विलसता=शोभायमान। कटि=कमर। पट-पीत=पीले वस्त्र। रुचिर=अच्छा लगना। गात=शरीर। लस=दिखाई। दुकूल=वस्त्र। अलंकृत=आभूषणों से युक्त सुन्दर। स्कन्ध=कंधा। समद=मुस्कान।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''आधुनिक काव्य-संग्रह'' में संकलित कवि अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' द्वारा विरचित हिन्दी खड़ी बोली के प्रथम महाकाव्य 'प्रिय प्रवास' के प्रथम सर्ग से लिया है, जिसमें कवि ने अपने ग्वाल सखाओं के साथ गोपाल कृष्ण के गोधूली बेला में जंगल से गाय चराकर घर लौटते समय का वर्णन किया गया है, उस समय कृष्ण की रूप माधुरी देखते बन रही थी।

व्याख्या—कविवर 'हरिऔध' श्रीकृष्ण की रूपमाधुरी का वर्णन करते हुए कहते हैं कि उनके कटि भाग अर्थात् कमर पर पीले रंग का रेशमी दुपट्टा शोभायमान लग रहा था और सारा शरीर सुन्दर वस्त्रों व आभूषणों से अलंकृत था। उनके गले में अत्यन्त सुन्दर वनमाला थी जो वक्षस्थल तक शोभायमान लग रही थी। उनके काँधों पर सुन्दर रेशमी दुपट्टा था जो मनमोहक लग रहा था। कविवर कहते हैं कि कृष्ण गोपाल का बातें करना तो अत्यन्त प्रभावशाली एवं मधुरतामय था। उनकी मधुर मुस्कान तो ऐसी प्रतीत हो रही थी मानो अमृत युक्त हो और ब्रजवासियों को सम्मोहित कर रही थी। कमल के समान सुन्दर नेत्रों वाले गोचारक गोपाल का रूप सौन्दर्य अत्यन्त आकर्षक और मोहक लग रहा था।

विशेष—1. प्रस्तुत अंश में गोपाल कृष्ण की रूप माधुरी का प्रभावशाली वर्णन किया है।

2. प्रस्तुत अंश में उपमा, उत्प्रेक्षा और अनुप्रास अलंकार का प्रयोग किया गया है।

(4)

मुदित गोकुल की जनमण्डली।
जब ब्रजाधिप सम्मुख जा पड़ी।
निरखने मुख की छवि यों लगी।
तृषित- चातक ज्यों घन की घटा।
उछलते शिशु थे अति हर्ष से।
युवक थे रस की निधि लूटते।
जरठ को फल लोचन का मिला।
निरख के सुषमा सुखमूल की।

शब्दार्थ—मुदित=प्रसन्न। ब्रजाधिप=गोकुल नरेश। निरखने=देखने। छवि=सौन्दर्य। तृषित=प्यासा। घन=बादल। निधि=खजाना। जरठ=वृद्ध। लोचन=नयन।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य- पुस्तक ''आधुनिक काव्य- संग्रह'' में संकलित कवि अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' द्वारा विरचित हिन्दी खड़ी बोली के प्रथम महाकाव्य 'प्रिय प्रवास' के प्रथम सर्ग से लिया है, जिसमें गोचारक कृष्ण की रूप- माधुरी का सजीव चित्रण किया है।

व्याख्या—कवि कृष्ण की रूप माधुरी का वर्णन करते हुए कहते हैं कि जब साँझ के समय श्रीकृष्ण अपने ग्वाल साथियों और गायों के साथ जंगल से घर आ रहे थे तो उनके दर्शन की अभिलाषा से ब्रज के सभी जन उनके पास आने के लिए उत्सुक हो गए। गोकुल के लोग गोचारक गोपाल के सौन्दर्य को इस तरह निर्निमेष निहारने लगे मानो उनके नेत्र रूपी चातक बादलों के समूहों को अपनी प्यास बुझाने के लक्ष्य से देख रहे हों।

कविवर कहते हैं कि कृष्ण के आगमन के समय ब्रज के बालक अत्यन्त मोद के कारण उछल रहे थे तथा ब्रज के युवक तो ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो कृष्ण के सौन्दर्य खजाने से माधुरी रस को लूट रहे हों। ब्रज के बुजुर्गों को भी कृष्ण की सुषमा व सौन्दर्य अत्यन्त मनभावन लगने लगा और उनके नेत्रों का सुफल उन्हें मिल गया। सभी ब्रजवासी कृष्ण के सौन्दर्य को देखकर अपने आपको धन्य मानने लगे थे।

विशेष—1. प्रस्तुत कविता में कृष्ण के रूप माधुर्य का भावपूर्ण वर्णन किया है।
2. प्रस्तुत अंश में अनुप्रास, उपमा और उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग किया गया है।
3. द्रुत विलम्बित छन्द का सुन्दर उदाहरण है।

(5)

विहग नीरवता- उपरान्त ही।
रुक गया स्वर शृंग बिषाण का।
कल- अलाप समापित हो गया।
पर रही बजती वर- वंशिका॥
ब्रज धरा- जीवन- जन जीवन- यन्त्रिका।
विटप- वेलि- विनोदित- कारिणी।
मुरलिका जन- मानस- मोहिनी।
अहह नीरवता निहिता हुई॥

शब्दार्थ—वहग=पक्षी। नीरवता=शान्ति। श्रृंग बिषाण=सींग व दाँत। कल अलाप=पक्षियों की कलरव ध्वनि। समापित=समाप्त। अलाप=स्वर। निहिता=स्थापित।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यावतरण हमारी पाठ्य- पुस्तक ''आधुनिक काव्य- संग्रह'' में संकलित कवि अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' द्वारा

विरचित हिन्दी खड़ी बोली के प्रथम महाकाव्य 'प्रिय प्रवास' के प्रथम सर्ग से लिया है, जिसमें कवि ने संध्याकालीन शान्त वातवरण को चित्रित किया है।

व्याख्या—कविवर संध्या कालीन पावन बेला की शान्ति का वर्णन करते हुए कहते हैं कि शाम ढलते-ढलते पक्षियों की कलरव ध्वनि पूर्णत: शान्त हो चुकी थी। गायों के सींगों व दाँतों की आवाज भी थम गई थी, उनका रँभाना भी प्राय: बन्द हो गया था। अगर शान्त वातावरण में कुछ सुनाई दे रहा था तो केवल मुरली मनोहर कृष्ण की मुरली की धुन सुनाई दे रही थी। कविवर शान्त वातावरण का वर्णन करते हुए कहते हैं कि प्रदोषकाल का अन्धकार बढ़ जाने के साथ ही कृष्ण की जो मुरलिया ब्रजवासियों के जीवन पर नियंत्रण करने वाली, वनस्पति जगत में प्रमोद का संचार करने वाली तथा सहृदय के मन को मोहित करने में सक्षम प्रतीत हो रही थी वह भी शान्त हो चुकी थी, इस प्रकार मुरलीवादन के रूक जाने पर समूचे ब्रज मण्डल में पूर्णत: शान्ति व्याप्त हो गई थी।

विशेष—1. कवि ने सायंकालीन वातावरण एवं ब्रजप्रदेश की शान्त स्थिति का वर्णन किया है।

2. साँझ के पश्चात् और रात्री के पूर्व के अल्प समय को प्रदोष काल के नाम से जाना जाता है।

3. अनुप्रास, काव्यलिंग अलंकार का सुन्दर प्रयोग है।

4. द्रुतविलम्बित छंद का प्रयोग तत्सम शब्दावली के साथ किया गया है।

कर्मवीर

(6)

देखकर बाधा विविध, बहु विघ्न घबराते नहीं।
रह भरोसे भाग के दु:ख भोग पछताते नहीं॥
काम कितना ही कठिन हो, किन्तु उकताते नहीं।
भीड़ में चंचल बने जो वीर दिखलाते नहीं॥
हो गये एक आन में उनके बुरे दिन भी भले।
सब जगह सब काल में वे ही मिले फूल फले॥

शब्दार्थ—बाधा विविध=अनेक प्रकार के विघ्न। उकताना=ऊब जाना।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''आधुनिक काव्य-संग्रह'' में संकलित कवि अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' द्वारा विरचित हिन्दी खड़ी बोली के प्रथम महाकाव्य 'प्रिय प्रवास' के प्रथम सर्ग से लिया है, जिसमें कवि ने सच्चे कर्मवीरों के सच्चे प्रयासों तथा जीवन में आने वाली विपरीत परिस्थितियों में भी अपनी आशावादी विचारधारा के साथ कर्म करने की प्रवृत्ति को स्पष्ट किया है।

व्याख्या—कवि 'हरिऔध' कर्मवीरों अर्थात् परिश्रमी व्यक्तियों के व्यक्तित्व का परिचय देते हुए कहते हैं कि जो सच्चे कर्मवीर होते हैं वे अपने जीवन अथवा अपने कर्म लक्ष्य के बीच आने वाली किसी भी विकट से विकट परिस्थिति में अधीर नहीं होते हैं। परिश्रमी व्यक्तियों के सामने अनेक परेशानियाँ, बाधाएँ आती है किन्तु सभी बाधाओं का सामना कर वे उन्हें दूर करते हैं और अपने लक्ष्य की ओर निरन्तर अग्रसर रहते हैं। सच्चे कर्मवीर अपनी सफलता या असफलता को कभी भाग्य के भरोसे नहीं मँढते हैं और न ही वे भाग्य पर विश्वास करते हैं। उनका विश्वास अपने कठिन कर्म पर होता है और यदि कर्म करने पर भी असफलता मिलती है तो वे उस पर निराश नहीं होते हैं, किसी प्रकार का पछतावा नहीं करते हैं बल्कि सफलता के लिए पुन: प्रयास में जुट जाते हैं। उनके सामने भले ही कोई कार्य कितना ही बड़ा या कठिन हो, वे उसको पूरा करते समय किसी प्रकार की ऊब अनुभव नहीं करते हैं तथा विपत्तियों में सच्चे कर्मवीर अपने मन को कभी भी विचलित नहीं होने देते हैं। कवि के अनुसार विपत्तियों या कार्य की कठिनता के आगे अपना धैर्य खो देने वाले व्यक्ति सही मायने में सच्चे वीर नहीं होते हैं। कर्मवीर सदैव आशावादी होते हैं और वे सदैव अपनी विपरीत परिस्थितियों में भी अनुकूलता का अनुभव करते हैं। वे अपनी आन-बान को महत्त्व देते हैं, भले ही उन्हें कितनी ही विपत्तियों का सामना करना पड़े, परिणामत: उनके प्रयासों के द्वारा सभी प्रतिकूलताएँ अनुकूलता में परिवर्तित हो जाती हैं और वे हर समय, हर जगह सदैव प्रसन्नता का अहसास कराते हैं। ऐसे व्यक्तित्व ही सच्चे कर्मवीर कहलाने के हकदार माने जाते हैं।

विशेष—1. प्रस्तुत पद्यांश में सच्चे कर्मवीरों की आशावादिता को अत्यन्त प्रभावशाली ढ़ंग से स्पष्ट किया गया है।
2. धैर्य और प्रयास सफलता की कुंजी है।

3. स्पष्ट किया है कि लगन और निष्ठा से किये जाने वाले प्रयासों से सम्पूर्ण बाधाएँ दूर हो जाती हैं।

4. भाषा में उत्साहवर्धन की धारा प्रवाहित है।

(7)

काम को आरम्भ करके यों नहीं जो छोड़ते।
सामना करके नहीं जो भूल कर मुँह मोड़ते॥
जो गगन के फूल बातों में वृथा नहीं तोड़ते।
सम्पदा मन से करोड़ों की नहीं जो जोड़ते॥
बन गया हीरा उन्हीं के है हाथ से है कारबन।
काँच को करके दिखा देते हैं वे उज्ज्वल रतन।

शब्दार्थ—गगन=आसमान। वृथा=व्यर्थ। कारबन=कोयला।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''आधुनिक काव्य-संग्रह'' में संकलित कवि अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' द्वारा विरचित हिन्दी खड़ी बोली के प्रथम महाकाव्य 'प्रिय प्रवास' के प्रथम सर्ग से लिया है, जिसमें कवि ने सच्चे कर्मवीरों, मेहनतकश व्यक्तियों की प्रवृत्ति व उनकी कार्यों के प्रति मन:स्थिति को स्पष्ट किया गया है।

व्याख्या—कवि 'हरिऔध' सच्चे कर्मवीरों की प्रवृत्ति को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि जो लोग किसी भी काम को चाहे वह छोटा हो अथवा बड़ा, सरल हो अथवा कठिन यदि पूरा करने की पहल कर देते हैं तो काम पूर्ण होने तक उसके लिए निरन्तर प्रयास करते रहते हैं, उससे जूझते हैं और कभी भी उस कार्य से अपनी विचारधारा में परिवर्तन नहीं करते हैं। कर्मवीरों की यह भी मन:स्थिति होती है कि वे निरर्थक स्वप्नों की दुनियाँ में भ्रमण नहीं करते हैं और न ही उनके मन में करोड़ों रुपयों की सम्पत्ति अर्जित करने का खयाल आता है वे तो अपनी मेहनत और कर्म को ही सबसे बड़ी दौलत मानते हैं। सच्चे कर्मवीरों के प्रयासों की यह तासीर (विशेषता) होती है कि वे कोयले जैसी सामान्य वस्तु को बहुमूल्य हीरा के समान बनाने में सफलता प्राप्त कर लेते हैं। साधारण काँच के टुकड़े को अपनी मेहनत से तराशकर आकर्षक व वेशकीमती रत्न का रूप देने में कामयाब हो जाते हैं, ये ही सच्चे कर्मवीरों का परिचय है।

विशेष—1. प्रस्तुत अंश में परिश्रम के प्रतिफल को सुन्दर बताया है।

2. स्पष्ट किया है कि सच्चे कर्मवीर कथनी में नहीं बल्कि करनी में विश्वास करते हैं।

3. कार्य को प्रारम्भ करके पूरा करने की प्रेरणा दी है।

4. सामना करना, मुँह मोड़ना, गगन के फूल तोड़ना।

(8)

चिलचिलाती धूप को जो चाँदनी ऐसे बना।
काम पड़ने पर करें जो शेर का भी सामना॥
जो कि हँस-हँस कर चबा लेते हैं लोहे का चना।
है कठिन कुछ भी नहीं, जिनके है जी में यह ठना॥
कोस कितने ही चलें पर वे कभी थकते नहीं।
कौन-सी है गाँठ जिसको खोल वे सकते नहीं॥

शब्दार्थ—चिलचिलाती=अत्यन्त तेज। लोहे के चने चबाना=अत्यन्त कठिन प्रयास करना (मुहावरा) असंभव कार्य।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''आधुनिक काव्य-संग्रह'' में संकलित कवि अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' द्वारा विरचित हिन्दी खड़ी बोली के प्रथम महाकाव्य 'प्रिय प्रवास' के प्रथम सर्ग से लिया है, जिसमें कवि ने सच्चे कर्मवीर अर्थात् पुरुषार्थी व्यक्ति की विशेषताओं का वर्णन किया है।

व्याख्या—कवि 'हरिऔध' कर्मवीरों के व्यक्तित्व की विशेषताओं का वर्णन करते हुए कहते हैं कि मेहनतकश व्यक्ति के सामने संसार की ऐसी कोई समस्या नहीं है जिनका निराकरण न हो सके। सच्चे कर्मवीर अपने पुरुषार्थ से चिलचिलाती धूप को भी शीतल चाँदनी के रूप

में परिवर्तित कर देते हैं अर्थात् मेहनती लोग जला देने वाली तेज धूप में भी इस प्रकार काम में लीन रहते हैं मानो वे चाँद की शीतल चाँदनी में काम कर रहे हों अर्थात् तेज धूप व गर्मी पुरुषार्थी की लगन में बाधा नहीं बन सकती है। कर्मवीर बहादुर होते हैं। यदि अवसर आ जाये तो शेर का सामना करने में भी वे पीछे नहीं रहते हैं अर्थात् अपने प्राणों की चिन्ता किये बिना वे ख़तरनाक परिस्थितियों से भी जूझ जाते हैं। कर्मवीरों के पास असंभव नाम का कोई शब्द नहीं होता है वे निरन्तर आगे बढ़ते रहने में थकावट अथवा आलस्य का अनुभव नहीं करते हैं अर्थात् वे निरन्तर परिश्रम करने हेतु तत्पर रहते हैं।

विशेष—1. कवि ने कर्मवीरों के साहस और प्रण को पूरा करने की प्रवृत्ति को स्पष्ट किया है।

2. मेहनत करने वालों को सफलता अवश्य ही मिलती है, तथ्य को पुष्ट करने का प्रयास किया है।

3. अनुप्रास तथा आक्षेप अलंकारों के साथ मुहावरे का प्रयोग हुआ है।

यशोदा विरह

(1)

यदि दिन कट जाता बीतती थी न दोषा।
यदि निशि टलती थी वार था कल्प होता।
पल-पल अकुलाती ऊबती थीं यशोदा।
रट यह रहती थी क्यों नहीं श्याम आते॥
प्रतिदिन कितनों को पंथ में भेजती थीं।
निज प्रिय सुत आना देखने के लिए ही।
नियत यह जताने के लिए ही थे अनेकों।
सकुशल गृह दोनों लाड़िले आ रहे हैं॥

शब्दार्थ—दोषा=रात। निशि=रात। कल्प=ब्रह्माजी का एक दिन (अत्यन्त दीर्घकाल)। वार=दिन। अकुलाती=व्याकुल होती। पंथ=मार्ग। निज=अपने। नियत=इच्छा।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''आधुनिक काव्य-संग्रह'' में संकलित कविता 'यशोदा विरह' से अवतरित है, जिसे कवि 'हरिऔध' द्वारा विरचित महाकाव्य 'प्रिय प्रवास' से लिया गया है। इसमें कवि ने स्पष्ट किया है कि कृष्ण और बलराम कंस के आतंक को हमेशा-हमेशा के लिए समाप्त करने हेतु मथुरा चले गये तो माता यशोदा अत्यन्त चिन्तित और भयभीत हो गई थीं। वे कंस के स्वभाव, उसकी क्रूर नीति और राक्षसी प्रवृत्ति को जानती थी और उनके मन में इस बात का भय था कि कृष्ण और बलराम दोनों ही बालक थे और कंस कृष्ण को मारना चाहता था। मथुरा में कृष्ण ने कंस को मार दिया था और दोनों भाई कुछ समय के लिए मथुरा में ही रूक गये थे। इधर यशोदा उन दोनों के न आने के कारण अत्यन्त परेशान हो गई थी। प्रस्तुत अंश में यशोदा की इसी मानसिकता को स्पष्ट किया गया है।

व्याख्या—कविवर यशोदा की मन:स्थिति व पुत्रविरह का वर्णन करते हुए कहते हैं कि कृष्ण और बलराम मथुरा से नहीं लौटे तो माता यशोदा के मन में अपने दोनों लाडलों के प्रति अनेक प्रकार की चिन्ताएँ होने लगीं। वे जानती थी कि मथुरा में उन दोनों बालकों का पाला कंस से पड़ेगा और कंस तो कृष्ण का परम शत्रु था। वह क्रूर और आततायी होने के साथ-साथ विशेष शक्तिशाली भी था किन्तु कृष्ण व बलराम तो सुकोमल बालक थे इन्हीं आशंकाओं से यशोदा अत्यन्त परेशान थी। बड़ी मुश्किल से सारे दिन की प्रतीक्षा में व्यतीत किया करती थी और जैसे-तैसे पहाड़-सा दिन व्यतीत हो भी जाता तो रात तो काटे नहीं कटती थी। जैसे भी करके रात्री निकलती तो अगला दिन कल्प के समान अति दीर्घकालीन अनुभव होने लगता था। उनका एक-एक पल कृष्ण विरह में असहनीय व्याकुलता से युक्त निकलता था। सारे-सारे दिन वे परेशान रहती थी। उनके मन में बस यही एक चिन्ता थी कि अभी तक उनके दोनों लाडले क्यों नहीं आये।

माता यशोदा इतनी बेचैन हो चुकी थी कि न जाने कितने ही लोगों को मथुरा नगरी के मार्ग में यह जानने के लिए भेज देती थीं कि क्या कृष्ण अपने भाई के साथ आ रहे हैं? वे राहगीरों के माध्यम से यह जानना चाहती थी कि कृष्ण और बलराम सकुशल तो हैं और कुशलता पूर्वक घर पर आ रहे हैं अथवा नहीं।

विशेष—1. प्रस्तुत अंश में मातृ हृदय की अकुलाहट को अति मार्मिक ढंग से स्पष्ट किया गया है।

2. प्रस्तुत कवितांश में मालिनी छन्द का सुन्दर रूप देखते ही बनता है। तत्सम शब्दों का प्रयोग किया गया है।

(2)

यदि कुछ समझाती गेह की सेविकाएँ।
बन विकल उसे थीं ध्यान में न लाती।
तन सुधि तक खोती जा रही थीं यशोदा।
अतिशय बिमना औ चिन्तिता हो रही थी॥
यदि दधि मथने को बैठती दासियाँ थीं।
मथन-रव उन्हें था चैन लेने न देता।
यह कह-कह के ही रोक देतीं उन्हें वे
तुम सब मिलके क्या कान को फोड़ दोगी?

शब्दार्थ—गेह=घर। विकल=व्याकुल। अतिशय=अत्यधिक। बिमना=बे-मन। मंथन रव=दही मँथने की आवाज।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''आधुनिक काव्य-संग्रह'' में संकलित कविता 'यशोदा विरह' से अवतरित है, जिसे कवि 'हरिऔध' द्वारा विरचित महाकाव्य 'प्रिय प्रवास' से लिया गया है। इसमें कवि ने कृष्ण व बलराम के मथुरा से समय पर न आने की स्थिति में माता यशोदा की मन:स्थिति व चिन्ताओं को व्यक्त किया गया है।

व्याख्या—कविवर यशोदा की विरह व्यथा को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि घर की सेविकाएँ जब यशोदा को कुछ सान्त्वना देने के लक्ष्य से कुछ समझाने का प्रयास करती हैं तो वे अपनी व्याकुलता के कारण ध्यान नहीं देती थी। अत्यन्त विरह वेदना के कारण माता यशोदा अपने शरीर की सुधि भी भुला बैठी थी और हमेशा परेशान और बेचैन बनी रहती थी।

यदि यशोदा के घर की सेविकाएँ दही मथने के लिए बैठती तो उनका मंथन-स्वर भी अप्रिय व कनफोड़ा-सा प्रतीत होता था और उस स्वर से यशोदा की बेचैनी और अधिक बढ़ जाती थी। वे अपनी दासियों को यह कहकर डाँट देती और दही मंथन को रोक देती थीं कि क्या तुम सब मिलकर मेरे कान ही फोड़ डालोगी?

विशेष—1. प्रस्तुत अंश में कवि ने यशोदा की बिमना और चिन्तिता अवस्था का जीवन्त वर्णन किया है।

2. काव्यलिंग अलंकार का प्रयोग किया गया है।

3. मालिनी छंद की यति और गति प्रशंस्य है।

(3)

सदन ढिग कहीं जो डोलता एक भी था।
निज श्रवण उठाती थीं समुत्कंठिता हो।
कुछ रज उठती जो पंथ के मध्य यों ही।
बन अयुत-दृगी तो वे उसे देखती थी॥
गृह दिशि यदि कोई शीघ्रता साथ आता।
तब उभय करों से थामती वे कलेजा।
जब वह दिखलाता दूसरी ओर जाता।
तब उभय करों से ढाँपती थी दृगों को॥

शब्दार्थ—सदन=भवन (घर)। ढिग=पास। श्रवण=कान। समुत्कंठित=उत्सुकता से। रज=मिट्टी या धूल। पंथ=राह। अयुत दृगी=खुले हुए नेत्र। दिशि=दिशा।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''आधुनिक काव्य-संग्रह'' में संकलित कविता 'यशोदा विरह' से अवतरित है, जिसे कवि 'हरिऔध' द्वारा विरचित महाकाव्य 'प्रिय प्रवास' से लिया गया है। इसमें कवि ने माता यशोदा की विरह व्यथा एवं पुत्र चिन्ता की स्थिति का मार्मिक चित्रण किया है।

व्याख्या—कविवर 'हरिऔध' माता यशोदा की विरह स्थिति का वर्णन करते हुए कहते हैं कि यदि घर के आस-पास कोई पत्ता भी उड़ता हुआ दिखाई देता तो यशोदा बड़ी उत्कण्ठा से उसे उठाती थी। उन्हें यह भ्रम होता था कि वह पत्ता या पत्र कहीं कृष्ण के द्वारा भेजा गया पत्र तो नहीं है। जब मार्ग में धूल उड़ती हुई दिखाई देती तो यशोदा दोनों खुले नेत्रों से निर्निमेष उस ओर देखने लगती थी और वे यह सोचती थी कि कदाचित ये मेरे लाडलों के रथ आगमन के कारण मार्ग में धूल उड़ रही है। शायद वे दोनों राजकुमार मथुरा से आ रहे हैं।

कविवर कहते हैं कि यदि कोई व्यक्ति उस घर की ओर शीघ्रता से आता हुआ दिखाई देता तो कुछ अनिष्ट घट जाने की आशंका से माता यशोदा अपने दोनों हाथों से अपने दिल को थाम लेती थी किन्तु जब वह व्यक्ति अन्यत्र चला जाता था तब वे अपने दोनों हाथों से नेत्रों को ढँक लेती थी। अर्थात् अनिष्ट की आशंका टल जाने के बाद माता यशोदा की आँखें सजल रहती थी।

विशेष—1. प्रस्तुत अंश में स्पष्ट किया है कि हृदय की वत्सलता के कारण अनिष्ट की आशंका, चिन्ता, उत्कंठा, व्यथा आदि भाव उत्पन्न होने लगते हैं।

2. मालिनी छन्द का प्रयोग मुहावरेदार भाषा के साथ है।

3. सकारण कथ्य को उपस्थित कर काव्यलिंग अलंकार का प्रयोग हुआ है।

(4)

पथ पर न लगी थी दृष्टि ही उत्सुका हो।
न हृदय तल ही की लालसा वर्द्धिता थी।
प्रतिपल करता था लाड़िलों की प्रतिक्षा।
यक-यक तन रोआँ नन्दकी कामिनी का।
प्रतिपल दृग देखा चाहते श्याम को थे।
छन-छन सुधि आती श्यामलती मूर्ति की थी।
प्रति निमिष यही थी चाहती नन्द रानी।
निज वदन दिखावे मेघ-सी कान्ति वाला॥

शब्दार्थ—उत्सुका=उत्सुकता युक्त। वर्द्धिता=बढ़ाने वाली। प्रतीक्षा=इन्तजार। यक-यक=प्रत्येक। निमिष=पल।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''आधुनिक काव्य-संग्रह'' में संकलित कविता 'यशोदा विरह' से अवतरित है, जिसे कवि 'हरिऔध' द्वारा विरचित महाकाव्य 'प्रिय प्रवास' से लिया गया है। इसमें कवि ने माता यशोदा के विरहाकुल मन का चित्रण किया है।

व्याख्या—कवि माता यशोदा की मन:स्थिति का वर्णन करते हुए कहते हैं कि यशोदा अपने लाडलों के मार्ग पर ही अपनी दृष्टि नहीं टिकाये रहती थी बल्कि उनके मन में और हृदय में भी उतनी ही लालसा बनी हुई थी। इस कारण वे प्रतिपल अपने प्रिय कुमारों की प्रतीक्षा में लगी रहती थी। पुत्रों के आगमन की प्रतीक्षा व वत्सलता के कारण नन्द महाराज की पत्नि यशोदा का प्रत्येक अंग विशेषकर ज्ञानेन्द्रियाँ रोमांचित रहती थी।

कविवर कहते हैं कि उस समय माता यशोदा के नेत्र हर पल अपने प्रिय पुत्रों को देखना चाहते थे। उन्हें हर क्षण श्याम वर्ण वाले कृष्ण की याद सताती रहती थी। महाराज नन्द की पत्नि सदैव, प्रतिपल बादलों के समान श्याम वर्ण वाले प्रिय पुत्र कृष्ण के दर्शन के लिए लालायित रहती थी। अर्थात् मातृ हृदय के कारण यशोदा का मन मथुरा प्रवास के कारण अनेक आशंकाओं से युक्त रहता था।

विशेष—1. माता यशोदा की वत्सल हृदय स्थिति का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत हुआ है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2. प्रस्तुत रचना भाव-काव्य से युक्त है।

3. मातृ हृदया की स्वाभाविक दशा का चित्रण होने से स्वभावोक्ति का सकारण वर्णन हुआ है, अत: यहाँ पर काव्यलिंग अलंकार है। अन्तिम पंक्ति में उपमा व अनुप्रास है।

4. मालिनी छन्द का सुन्दर रूप परिलक्षित है।

3.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

3.2.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न- 1. कवि 'हरिऔध' द्वारा विरचित खड़ी बोली का प्रथम महाकाव्य कौन- सा माना गया है?

उत्तर— 'प्रिय प्रवास' को खड़ी बोली का प्रथम महाकाव्य माना है।

प्रश्न- 2. कवि 'हरिऔध' ने संस्कृत वर्णवृतों का प्रयोग किस रचना में किया है?

उत्तर— 'प्रिय प्रवास' महाकाव्य में कवि ने संस्कृत वर्णवृतों का प्रयोग किया है।

प्रश्न- 3. 'प्रिय प्रवास' महाकाव्य में कवि ने राधा- कृष्ण को किस रूप में प्रतिष्ठित किया है?

उत्तर— 'प्रिय प्रवास' महाकाव्य के राधा- कृष्ण किसी अवतार के रूप में न होकर लोकोपकारी मानवीय रूप में प्रतिष्ठित हुए हैं।

प्रश्न- 4. कवि 'हरिऔध' द्वारा विरचित महाकाव्यों व मुक्तक काव्यों के नाम बताइये।

उत्तर— महाकाव्य—'प्रिय प्रवास' और 'वैदेही वनवास' मुक्तक काव्य—'रस- कलश', 'प्रेम- प्रपंच', 'बोलचाल मुक्तक'।

प्रश्न- 5. कवि 'हरिऔध' किस युग के कवि हैं?

उत्तर— कवि 'हरिऔध' द्विवेदी युग के कवि हैं।

प्रश्न- 6. 'प्रिय प्रवास' महाकाव्य मुख्य रूप से कौन- से रस का ग्रन्थ है?

उत्तर— 'प्रिय प्रवास' महाकाव्य में मुख्य रूप से विप्रलम्भ श्रृंगार रस का समावेश हुआ है।

प्रश्न- 7. 'ब्रज की संध्या' कविता का मूल कथ्य क्या है?

उत्तर— कवि ने गौचारक श्री कृष्ण के गौधूली बेला में प्रकृति के सान्ध्य सौन्दर्य के विहंगम दृश्यों का सजीव चित्रण किया है तथा कन्हैया के बाँसुरी वादन के श्रवण की उत्सुकता का वर्णन किया गया है।

प्रश्न- 8. 'कर्मवीर' कविता कौन- से काव्य से उद्धृत है?

उत्तर— 'कर्मवीर' कविता 'पद्य- प्रमोद' काव्य संग्रह से अनूदित है।

प्रश्न- 9. 'कर्मवीर' कविता का वर्ण्य विषय क्या है?

उत्तर— कर्मवीर कविता में सच्चे कर्मवीरों के पौरुष की विशेषताओं का वर्णन किया गया है।

प्रश्न- 10. ''तुम सब मिल के क्या कान को फोड़ दोगी?'' कथन किसका व किसके प्रति है?

उत्तर— प्रस्तुत कथन यशोदा का अपनी दासियों के प्रति है।

3.2.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न- 1. 'ब्रज की संध्या' शीर्षक कविता के मूल- भाव को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—'ब्रज की संध्या' शीर्षक कविता अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' द्वारा रचित प्रियप्रवास के प्रथम सर्ग से अवतरित है। इस कविता का मूल भाव ब्रजक्षेत्र के संध्याकालीन सौन्दर्य का चित्रण करना तथा कृष्ण की लीलाओं पर प्रकाश डालना है। दिवस के अवसान काल में डूबते सूर्य की किरणें वृक्षों की चोटियों को लालिमा युक्त बनाकर शोभायमान होने लगीं तथा अपने- अपने घोसलों में लौट आये पक्षी कलरव करते हुए शान्त हो गये हैं। इस मनमोहक वातावरण में श्रीकृष्ण भी अपनी गोप- मण्डली के साथ गायों को लिये घर की ओर लौट रहे हैं। उसी समय श्रीकृष्ण ने जो अपनी बंशी से मधुर ध्वनि निकाली उसको सुनकर गोकुल गाँव के वासी उत्सुक हो गये और वे सब चाहे उनमें बूढ़ा हो, बालक हो या युवक- युवती हो अपने घरों से बाहर निकल पड़े और उस बंशी से निकलने वाली मधुर ध्वनि को सुनने लगे। पीताम्बर वस्त्राधारी श्रीकृष्ण की बंशी से निकलने वाला स्वर उस समय तक चलता रहा

जब तक पक्षियों ने चहचहाना बन्द नहीं कर दिया। रात्रि के प्रारम्भ होने के कारण उपस्थित ये ग्रामवासी अपने- अपने घरों को लौट चले थे।

प्रश्न- 2. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' द्वारा रचित 'कर्मवीर' कविता में व्यक्त भावों को वर्णित कीजिये।

उत्तर—'कर्मवीर' कविता में कवि ने कर्मवीरों के प्रति श्रद्धा और आस्था व्यक्त करते हुए उनकी विशेषताओं को वर्णित किया है। कर्मवीर हमेशा अपने कर्मपथ पर निर्भय भाव से पूरित होकर विघ्न-बाधाओं की बिना परवाह किये हमेशा आगे बढ़ता रहता है। कर्म के क्षेत्र में लक्ष्य प्राप्ति की दृष्टि से यदि उन्हें कष्ट सहने भी पड़े तो वे कराहते नहीं हैं। अपनी सामर्थ्य के द्वारा वे प्रत्येक असंभव कार्य को संभव बना लेते हैं। वे भाग्य पर किसी भी स्थिति में भरोसा तक नहीं करते हैं। वे श्रम के पुजारी होते हैं। इसी आधार पर संसार और समाज के आँगन में जो प्रगति और आविष्कार हुए दिखाई पड़ते हैं, ये सब कर्मवीरों की ही देन हैं। अत: हमें भी अपने जीवन के कर्मपथ पर सच्चाई और ईमानदारी के साथ आगे बढ़ते रहना चाहिए। यही हमारी कर्मवीरों के प्रति सच्ची श्रद्धा और हमारी जीवन की सार्थकता होगी।

3. 2. 3 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न- 1. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' की कृतियों के आधार पर उनकी काव्य साधना पर एक सारगर्भित निबन्ध लिखिए।

उत्तर—आधुनिक काल में जिन कवियों ने सरस्वती के मन्दिर को सुन्दर प्रबन्धकाव्यों से आभूषित किया है। उनमें अयोध्यासिंह 'उपाध्याय' 'हरिऔध' का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। 'हरिऔध' जी हिन्दी के उन महान कलाकारों में से हैं। जिन्होंने खड़ी बोली की धारा को प्रशस्त ही नहीं किया अपितु यह भी सिद्ध कर दिया कि वह काव्य के लिए उस परिणाम में उपयुक्त है जिस रूप में ब्रज या अवधी थी।

'हरिऔध' जी का जन्म वैशाख कृष्ण पक्ष की तृतीया को सं. 1922 तदनुसार सन् 1865 में हुआ था। आपने अपने जन्म से निजामाबाद जिला आजमगढ़ को पवित्र किया। उपाध्याय जी के पिता का नाम मोलसिंह उपाध्याय था और माता का नाम रूकमणी था। हरिऔध जी पर उनके चाचा का प्रभाव अधिक था। हरिऔध जी ने स्कूल की शिक्षा प्राप्त करते हुए घर पर ही संस्कृत और फारसी का ज्ञान प्राप्त किया। एक दिन निजामाबाद में बाबा सुमेरसिंह के यहाँ गोष्ठी में आपकी प्रतिभा का परिचय मिला और वहीं आपने अपना उपनाम 'हरिऔध' रखा। संवत् 1939 में आपका विवाह पं. विष्णुदत्त की कन्या अनन्त कुमारी से हुआ। आप फिर सरकारी पद पर कार्य करते हुए साहित्य सेवा में जुटे रहे। सन् 1903 में आपने काशी विश्वविद्यालय को अपनी अवैतनिक सेवाएँ प्रदान कीं। 1914 तक आप इसी विश्वविद्यालय में सेवारत रहे। तदुपरान्त कार्य से मुक्त हो गये। संवत् 2004 में आपका स्वर्गवास हो गया।

हरिऔध जी की प्रतिभा असाधारण थी, आप बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न कलाकार थे। आपका स्वभाव सौम्य था तब अहं की भावना तनिक भी न थी। उपाध्याय जी ने अनेक मौलिक एवं अनूदित ग्रन्थों की संरचना की।

अनूदित रचनाएँ—अनूदित रचनाओं में दो प्रकार की रचनाएँ पाई गई हैं—1. गद्य सम्बन्धी, 2. पद्य सम्बन्धी

प्रथम प्रकार की रचनाओं में 'वेनिस का बाँका (उपन्यास)', 'रिपवान विकिल (उर्दू, रिपवान, विकिल का अनुवाद और कहानी) और 'नीति निबन्ध संग्रह' लिखे।

द्वितीय प्रकार की रचनाओं में आपने 'उपदेश कुसुम' और 'विनोद वाटिका' नामक ग्रन्थ लिखे। 'उपदेश कुसुम', 'गुलिस्ताँ' के आठवें अध्याय का अनुवाद है और 'विनोद वाटिका', 'गुलजार दविस्ता' का अनुवाद है।

मौलिक कृतियाँ—उपाध्याय जी की मौलिक कृतियाँ चार प्रकार की हैं—

1. उपन्यास—ठेठ हिन्दी का ठाठ, अधखिला फूल।

2. महाकाव्य—1. प्रिय प्रवास, 2. वैदेही वनवास।

3. आलोचनात्मक—1. हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास। 2. कबीर वचनावली की आलोचना। 3. साहित्य सन्दर्भ आदि। 4. स्फुट काव्य संग्रह—1. चोखे चौपदे, 2. चुभते चौपदे, 3. बोलचाल, 4. रसकलश, 5. पद्य प्रसून, 6. कल्प लता, 7. पारिजात, 8. ऋतु मुकुर, 9. काको पवन, 10. प्रेम प्रपंच, 11. प्रेम पुष्पोपहार, 12. प्रेमाम्बु प्रसवण, 13. प्रेमाम्बु प्रवाह, 14. प्रेमाम्बु वारिधि, 15. हरिऔध सतसई।

हरिऔध जी की इन कृतियों को देखकर उनकी विविध रूपा प्रतिभा का परिचय प्राप्त हो जाता है। हरिऔध ने अपनी लेखनी द्वारा साहित्य का कोई भी विशिष्ट अंग अछूता नहीं छोड़ा। ये सभी कृतियाँ अपने समय और प्रतिपाद्य की दृष्टि से पूर्ण सफल है। हरिऔध की

काव्य साधना में विशेषता यह है कि कवि ने तीन युगों का अवलोकन किया है। हिन्दी की खड़ी बोली के प्रथम युग से लेकर उसके परिमार्जन की अवस्था तक हरिऔध जी काव्य निर्माण करते रहे। खड़ी बोली का जो आन्दोलन द्विवेदी काल में चल रहा था उसने हरिऔध को भी पूर्णत: प्रभावित किया। वैसे हरिऔध द्विवेदी काल के होते हुए भी द्विवेदी मण्डल के बाहर रहे। हरिऔध जी की विशेषता भाव काल, विचारों के सम्यक् समन्वय और सम्पादन में है।

हरिऔध जी की काव्य साधना का स्वरूप—हरिऔध भारतेन्दु के उत्तरार्ध में काव्य जगत् में आए सुमेर सिंह उनके साहित्यिक गुरू थे। उस काल में ब्रजभाषा का बोलबाला था। हरिऔध जी ने ब्रजभाषा में कविता लिखना प्रारम्भ किया और ब्रजभाषा में आपने अपनी प्रथम पुस्तक 'कृष्णशतक' भी लिखी। परन्तु इस पुस्तक में किसी प्रकार की मौलिकता एवं नवीनता का आभास नहीं मिलता। इस पुस्तक में सौ दोहे संग्रहित हैं। यहाँ पर कवि ने कृष्णको परब्रह्म माना है और उसी परब्रह्म में कवि ने कृष्ण की उपासना की है।

'नमत निगुण निलेप अज निराकार निर द्वन्द्व
माया रहित विकार बिन, कृष्ण सच्चिदानन्द॥
नही प्रमादयामोंकधु, ताको है उन्माद।
कृष्ण ब्रह्मता में करत जो बावरो विवाद।'

ये सभी दोहे लगभग सतरह वर्ष की अवस्था में लिखे गए हैं। इनमें विचार या भाषा की दृष्टि से किसी प्रकार की नवीनता नहीं है। इसके बाद कवि का प्रयास चलता रहा और कवि ने 1895 अप्रेल में रुक्मणी परिणय और इसके तीन माह बाद 'प्रद्युम्न विजय व्यायोग' की रचना की। व्यायोग की रचना नाट्य रसिकों को ध्यान में रखकर की गई थी, परन्तु प्रताप नारायण मिश्र के कथानुसार उसमें नाटक प्रेमियों को अधिक स्वाद मिला। 'रुक्मणी परिणय' में हरिऔध ने कृष्ण को मानव रूप में अंकित करने का प्रयास किया है।

इसके बाद कवि की तीन रचनाएँ प्रकाशित हुई—'प्रेमाम्बु वारिधि', प्रवाह और 'प्रसवण'—ये तीनों रचनाएँ विचार की दृष्टि से कवि के अध्ययन काल के द्योतक हैं। कृष्ण के प्रति कवि के विचार अभी दृढ़ नहीं हो पाए थे। इन रचनाओं में कहीं तो कृष्ण को ब्रह्म के रूप में चित्रित किया है तो कहीं पर मानव के रूप में। कवि हरिऔध कहीं परम्परागत विचारों से प्रभावित दिखाई देते हैं तो कहीं पर कवि के हृदय में कृष्ण के चरित्र का नवीनीकरण करने की उमंग दिखाई देती हैं।

हरिऔध जी ने इसके बाद प्रेम प्रपंच लिखा और कुछ समय पश्चात् उक्त तीनों कृतियों और 'प्रेम प्रपंच' को मिलाकर काव्योपवन नामक संग्रह किया। इन सभी रचनाओं में हमें कवि के प्रारम्भिक जीवन और उनकी प्रतिभा के दर्शन होते हैं। प्रभाव काल की रचनाएँ होने के कारण इनमें हमें किसी गम्भीर जीवन दृष्टि के दर्शन नहीं होते और न कोई नवीनता पाठक को आकर्षित करती है। परन्तु ये सभी कविताएँ भारतेन्दुकालीन प्रमुख विशेषताओं से युक्त हैं और ऐतिहासिक समय निर्धारण में ये सभी रचनाएँ भारतेन्दु काल की हैं।

द्विवेदी युग के आगमन के साथ काव्य के क्षेत्र में पर्याप्त परिवर्तन आया और ब्रज के स्थान पर खड़ी बोली काव्य की भाषा बन रही थी। द्विवेदी जी के अथक प्रयासों से कवियों की भाषा में सुधार हो रहा था। हरिऔध जी पर भी इसका प्रभाव पड़ा। हरिऔध जी ने अभी तक उर्दू के छन्दों को हिन्दी के लिए उपयुक्त समझकर उनमें पहले-पहल रचना की। हरिऔध जी ने खड़ी बोली को काव्य के लिए उपयुक्त समझा और उसका प्रयोग प्रारम्भ किया। इस प्रकार की मनोवृत्ति कुछसमय तक चलती रही परन्तु आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के आन्दोलन के कारण खड़ी बोली का पूर्ण प्रचार हुआ। तब हरिऔध जी ने 1914 में 'प्रिय प्रवास' की रचना उसी भाषा में की। इस ग्रन्थ में हरिऔध जी ने खड़ी बोली में संस्कृत के छन्दों का निर्वाह किया। प्रति पाद्य विषय के साथ प्रिय प्रवास की एक विशेषता है उसका प्रकृति चित्रण। परन्तु यह प्रकृति चित्रण परम्परागत है। इसमें हमें किसी नवीन उद्भावना के दर्शन नहीं होते। पर हाँ एक बात अवश्य कही जायेगी कि हरिऔध ने संस्कृत की कोमल कानत पदावली का प्रयोग कर अन्य लोगों का ध्यान उस ओर आकृष्ट किया क्योंकि द्विवेदी जी के आग्रह को लेकर होने वाली खड़ी बोली की कविता में कर्ण कटुता अधिक थी।

संस्कृत की गीतिशैली को अपनाकर भी हरिऔध को अपना मार्ग बदलना पड़ा। उन्होंने शीघ्र ही लोक भाषा को अपनाया। मुहावरों की ओर मुड़े और अपने काव्य में प्रचलित मुहावरों का अधिक प्रयोग प्रारम्भ कर दिया। मुहावरों की शैली में रचे गए आपके 'चोखे चौपदे' और 'पद्य प्रसून' अधिक प्रसिद्ध हैं।

इसके बाद हरिऔध जी ने 'वैदेहि बनवास' लिखा। यह एक करुण रस प्रधान काव्य है। बोलचाल और मुहावरों में रचे गए, भाषा का

चमत्कार अत्यन्त सुन्दरता से दिखाया गया है।

प्रिय प्रवास में यदि गतिशीलता अधिक है तो चुभते चौपदे और चोखे चौपदे में पाठक ठहर-ठहर कर आनन्द प्राप्त करता चलता है। ये सभी चौपदे भाषागत आनन्द के साथ पहेलियों का सा आनन्द देते हैं। इन सभी चौपदों में कवि ने हास्य की सुन्दर अभिव्यंजना के साथ गम्भीर तथ्यों को उतारा है। यह केवल बोलचाल और मुहावरों के चमत्कार के कारण इतने प्रसिद्ध हो चुके हैं कि ग्रामीण क्षेत्रों में ये कहावत के रूप में प्रसिद्ध हैं। इन सभी चौपदों का महत्त्व इस बात में अधिक है कि कवि ने इनमें सामाजिक व्यंग्य किए हैं।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में हरिऔध की रचनाओं का अधिक महत्त्व है। हरिऔध जी का काव्य जीवन ब्रजभाषा, बोलचाल की भाषा और संस्कृतनिष्ठ साहित्य की भाषा का रहा। इन सभी रूपों में कवि हरिऔध ने सफलता प्राप्त की है। हरिऔध जी ने प्रिय प्रवास की राधा को अपनी देश प्रेमिका नायिका से बिलकुल मिला-जुला रखा है। 'रस कलश' की नायिका के विषय में जिस प्रकार के सिद्धान्त हरिऔध ने स्थापित किए थे वे सभी प्रिय प्रवास की नायिका में मिल जाते हैं। प्रिय प्रवास की नायिका लोक सेविका है। नायिकाओं के इस रूप में कवि की सुधारवादी मनोवृत्ति अत्यधिक साम्य रखती है। कभी-कभी इस प्रकार के वर्णन में इसका नितान्त अभाव हो जाता है। यह भी उल्लेख करना अत्यन्त आवश्यक है कि हरिऔध जी की काव्य प्रतिभा केवल भारतेन्दु कालीन और द्विवेदी कालीन परम्परा के पीछे ही नहीं रही उसने नवीन आलोक का भी स्वागत किया और समझा। प्रिय प्रवास और अन्य रचनाओं में उनके काव्य की नवीनता झलकती है। द्विवेदी युगीन प्रभाव के कारण कवि ने उपदेशात्मक, उद्गारात्मक और भावात्मक रचनाओं का प्रणयन किया। हरिऔध के लोक संग्रह भाव के कारण हमें उनकी सुधार-वृत्ति के सर्वदा दर्शन मिलते हैं। कवि ने जीवन के विविध अध्ययन से जो कुछ ग्रहण किया उसी को यथा सम्भव काव्य में चित्रित किया है।

हरिऔध जी की रचनाओं का मूल्यांकन करने पर निर्विवाद रूप से यह मानना पड़ेगा कि साहित्य के क्षेत्र में हरिऔध जी ने चतुर्मुखी प्रतिभा से हिन्दी को चिर ऋणी बना दिया। भाव और कला की दृष्टि से कवि ने तीन युगों का प्रतिनिधित्व किया। प्रिय प्रवास में नायक और नायिका को नया रूप देकर अश्लील श्रृंगारिका को समाप्त कर हरिऔध जी ने हिन्दी साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया।

प्रश्न- 2. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' के काव्य-सौन्दर्य पर प्रकाश डालिए।

उत्तर—हरिऔध बड़े ही मेधावी और प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार थे। उन्होंने कविता, उपन्यास, निबन्ध और समीक्षा के योग में अपनी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय दिया। परन्तु वे मूल रूप से कवि ही थे। बचपन से ही उनके हृदय में साहित्य-साधना की ज्योति जग चुकी थी। इसमें बाबा सुमेरसिंह का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। शिक्षार्थी जीवन में ही उन्होंने कबीर की साखियों पर कुण्डलियों की रचना करके जन-मानस में अपना स्थान बना लिया था। धीरे-धीरे काव्य साधना की ज्योति प्रकाश पुन्ज बन गयी और आपने अनेक काव्य ग्रंथों का निर्माण किया। आपका यह काव्य-ग्रन्थ आपकी उच्च कवित्व प्रतिभा का द्योतक है। आपके काव्य ग्रंथों में आपकी फुटकर रचनाओं के संकलन हैं। कविताओं में जाति सेवा, समाज सेवा, राष्ट्र सेवा और साहित्य-सेवा की भावनाओं की प्रधानता है। आपने अपनी कविताओं के माध्यम से तत्कालीन समाज की स्थिति, उसमें व्याप्त कुरीतियों और अन्धविश्वासों का पर्दाफाश किया है। अपने दो प्रबन्धकाव्यों की रचना की है। प्रियप्रवास और बैदही बनवास। प्रियप्रवास खड़ी बोली का पहला महाकाव्य है। इनके अतिरिक्त आपने परिजात नामक महाकाव्य की रचना भी की है।

वर्ण्य विषय—उपाध्याय जी के काव्य में विविध काव्य विषयों का सामवेश हुआ है। इनमें से भक्ति, नीति, प्रकृति, दर्शन, समाज-सुधार आदि प्रमुख विषय हैं। उपाध्याय जी की भक्ति में, अन्य विश्वासों, रूढ़ि व परम्पराओं का स्थान नहीं है। उन्होंने सुधारवादी प्रवृत्ति से प्रभावित होकर पुरातन संस्कृति के पुनरुद्धार का प्रयत्न किया है तथा युवकों के पथ-प्रदर्शन के लिए उन्होंने भगवान् कृष्ण को महापुरुष के रूप में अंकित किया है। प्रिय-प्रवास की राधा भी लोक सेविका के रूप में चित्रित है। मानवता प्रेम, विश्व बन्धुत्व एवं सेवा भावना से उनके नायक-नायिका प्रेरित हैं। वैदेही वनवास में सीता के निर्वासन की कथा युगानुरूप मौलिक उद्भावनाओं से युक्त है। 'चुभते चौपदे' तथा 'चौखे-चौपदे' में नीति-सूक्तियाँ हैं। इन रचनाओं में मुहावरों का सफल प्रयोग किया है।

रसव्यंजना—प्रिय प्रवास में श्रृंगार और वात्सल्य रस की प्रधानता है। आरम्भिक सर्गों में नन्द, यशोदा आदि के वात्सल्य का सुन्दर चित्रण हुआ है।

यशोदा का वात्सल्य अप्रतिम है। उसका वात्सल्य विरह हृदय विदारक है। उसे पढ़ने पर एक टीस उठती है। हृदय द्रवित हो उठता है। प्रियपति नन्द को सम्बोधित करती हुई यशोदा की वात्सल्य भावना का एक चित्र प्रस्तुत है। देखिये—

'प्रिय पति, वह मेरा प्राण प्यारा कहाँ है?
दु:ख जलनिधि डूबी का सहारा कहाँ है?
पल- पल जिसके मैं पथ को देखती थी,
निशिदिन जिसके ध्यान में थी बिताती।
उन पर जिसके है सोहती मुक्त माला।
वह नवनलिनी के नयन वाला कहाँ है?'

प्रिय प्रवास विप्रलम्भ प्रधान काव्य है। अर्थात् उसमें वियोग श्रृंगार प्रधान है। इसमें राधा के वियोग वर्णन को प्रधानता मिली है। इसके पवनदूत प्रसंग में विरहिणी राधा की वेदना पाठक के मर्म को स्पर्श करती है। कृष्ण को विरह व्यथा का स्मरण कराने के लिए राधा पवन से कहती है—

जो चित्रों में विरह विधुरा का मिले चित्र कोई
तो जाके निकट उसके भाव से यों हिलाना।
प्यारे होके चकित जिससे चित्र की ओर देखें,
आशा है यों सुरति उनको हो सकेगी हमारी।

प्रकृति चित्रण—उपाध्याय जी के प्रबन्ध काव्यों में प्रकृति चित्रण का भी महत्त्व है। कवि ने प्रकृति को आलम्बन, उद्दीपन, संवेदनात्मक, रहस्यात्मक आदि विविध रूपों में अंकित किया है। प्रिय प्रवास में आलम्बन प्रकृति का एक चित्र देखिये—

दिवस का अवसान समीप था
गगन था कुछ लोहित हो चला
तरु शिखर पर थी अब राजती
कमलनी कुल वल्लभ की प्रभा।

प्रकृति के मनोरम चित्रों के साथ- साथ कवि ने उसके भयंकर रूप को भी प्रस्तुत किया है। रजनी की भयंकरता का एक सुन्दर चित्र देखिये—

प्रकटती बहु भीषण मूर्ति थी,
कर रहा भय ताण्डव नृत्य था।
विकट दन्त भयंकर प्रेत थे,
विचरते तरु- मूल समीप थे।

प्रिय- प्रवास में प्रकृति का संवेदनात्मक रूप भी विद्यमान है। प्रकृति हर्षोल्लास और विषाद के समय मानव की सहचरी प्रतीत होती है। कृष्ण के विरह में ब्रजवासियों को पीड़ित देखकर रात्रि भी आँसू बहाती प्रतीत होती है।

'विकलता उनकी अवलोक के
रजनी भी करती अनुताप थी।
निपट नीरव ही मिष आँस के
नयन से गिरता हुआ बहु वारि था।'

प्रकृति का मानवीकरण छायावाद की प्रमुख विशेषता मानी जाती है। उपाध्याय जी ने द्विवेदी युग में भी प्रकृति को इस रूप में चित्रित किया है। प्रिय- प्रवास में गोवर्धन पर्वत का सम्राट के रूप में अंकन है। 'वैदेही वनवास' में प्रकृति का मानवीकरण इस प्रकार किया है—

'प्रकृति सुन्दरी विहंस रही थी,
चन्द्रानन था चमक रहा।
परम दिव्य बसन कान्त अंग में,
तारक चय था चमक रहा।

पहन श्वेत साटिका सिता ही
वह लसिता दिखलाती थी।
ले-ले सुधा सुधाकर से
वसुधा पर बरसाती थी।'

चरित्र अंकन—उपाध्याय जी के प्रिय प्रवास के पात्रों के चरित्रों का अंकन भी उनकी काव्य-कुशलता का परिचय देता है। उन्होंने कृष्ण के लोक प्रसिद्ध भक्त वत्सल, पतित पावन आदि रूप से चित्रण के साथ-साथ उन्हें महापुरुष के रूप में अंकित किया है। राधा का चरित्र उदात्त रूप में चित्रित किया गया है। वह परोपकार और लोकसेवा में संलग्न रहती है और विश्व प्रेम तथा विश्व बन्धुत्व की भावनाओं से युक्त है। वस्तुतः उपाध्याय जी की राधा लोक सेवा की प्रतिमूर्ति है। वैदेही वनवास की सीमा के चरित्र में भी मौलिकता दर्शनीय है।

काव्य रूप—उपाध्याय जी ने प्रबन्ध और मुक्तक दोनों काव्य रूपों में रचना की है। 'प्रिय प्रवास' उपाध्याय जी का महाकाव्य है। इसे खड़ी बोली का प्रथम महाकाव्य स्वीकार किया गया है। राधाकृष्ण इसके नायक-नायिका हैं। सत्रह सर्गों का यह महाकाव्य विप्रलम्भ श्रृंगार प्रधान है। 'वैदेही वनवास' भी प्रबन्ध काव्य है। 'रस कलश' में कवि ने ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। यह रीतिकालीन काव्य प्रवृत्ति का द्योतक है। 'चुभते चौपदे' में नीति प्रधान मुक्त हैं। इनमें मुहावरों का सुन्दर प्रयोग हुआ है। उदाहरण प्रस्तुत है।

'आज भी याद वैसी ही बनी,
है वही रंगत और, चाहत है वही।
तुम तरस खाकर कभी मिलते नहीं,
आँख तब तक तो तरसती ही रही।'

भाषा शैली—उपाध्याय जी ने ब्रज भाषा और खड़ी बोली दोनों का प्रयोग किया है। रस कलश में ब्रज भाषा का प्रयोग है। प्रिय प्रवास, वैदेही वनवास उनकी खड़ी बोली की रचनाएँ हैं। खड़ी बोली में तत्सम प्रधान शब्दावली का उचित प्रयोग किया गया है। चुभते चौपदे में मुहावरेदार सरल और व्यावहारिक खड़ी बोली का प्रयोग हुआ है। वस्तुतः आज खड़ी बोली को काव्योपयोगी भाषा बनाने में हरिऔध जी का प्रयत्न सराहनीय है। उपाध्याय जी ने संस्कृत छन्दों का ही प्रयोग किया है। मालिनी, मन्दाक्रान्ता, वंशस्थ तिलका, शार्दूल विक्रीड़ित, शिखरिणी तथा द्रुत विलम्बित इस प्रकार सात वर्णिक छन्दों का प्रयोग प्रिय प्रवास में देखा जा सकता है। अनुप्रास, रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति आदि उनके प्रिय अलंकार हैं।

3.3 सारांश

इस प्रकार अयोध्यासिंह उपाध्याय हिन्दी के पूर्व छायावादी युग के प्रतिनिधि कवि हैं। उनके काव्य में युगानुकूल काव्य विषयों को ग्रहण किया है। पात्रों के चरित्र में मौलिक उद्भावनाएँ उपाध्याय जी के कला कौशल का उज्ज्वल प्रमाण है।

3.4 अभ्यास प्रश्नावली

1. हरिऔध की काव्य साधना पर प्रकाश डालिए।
2. कर्मवीर कविता के भाव लिखिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University)

इकाई-4
मैथिलीशरण गुप्त

संरचना

4.0 कवि परिचय

4.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

4.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

4.2.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

4.2.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

4.2.3 निबंधात्मक प्रश्न

4.3 सारांश

4.4 अभ्यास प्रश्नावली

4.0 कवि परिचय

द्विवेदी युग के सर्वाधिक लोकप्रिय कवि मैथिलीशरण गुप्त का जन्म उत्तरप्रदेश के चिरगाँव, जिला झाँसी के एक प्रतिष्ठित वैश्य परिवार में हुआ था। इनके पिता श्री रामचरण एक निष्ठावान भक्त तथा कवि थे। मैथिलीशरण गुप्त के कवि व्यक्तित्व के निर्माण में उनके पिता की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। गुप्तजी की प्रारम्भिक शिक्षा चिरगाँव की पाठशाला में हुई तत्पश्चात वे झाँसी के एक स्कूल में भरती हुए लेकिन वहाँ से शीघ्र ही लौट आये और घर पर रहकर ही स्वाध्याय के द्वारा हिन्दी, बंगला और संस्कृत का ज्ञान प्राप्त किया।

मैथिलीशरण गुप्त जी को आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का वरद-हस्त प्राप्त था। आचार्य द्विवेदी उन्हें कविता लिखने के लिए प्रेरित करते थे, उनकी रचनाओं में संशोधन करके अपनी पत्रिका 'सरस्वती' में प्रकाशित करते थे। मैथिलीशरण गुप्त की पहली खड़ी बोली की कविता 'हेमन्त' शीर्षक से सरस्वती (1907) में छपी थी। 1909 में उनकी पहली काव्यकृति 'रंग में भंग' हिन्दी पाठकों के सामने आयी। 'जयद्रथवध' (1910), 'भारत-भारती' (1912), 'पंचवटी' (1925), 'झंकार' (1929), 'साकेत' (1931), 'यशोधरा' (1932), 'द्वापर' (1916), 'जयभारत' (1952), 'विष्णु प्रिया' (1957) आदि उनके प्रमुख काव्य-ग्रंथ हैं।

मैथिलीशरण गुप्त के काव्य का मूल स्वर राष्ट्रीय और सांस्कृतिक है। उनके काव्य में राष्ट्रीय भावना की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। राष्ट्रीय भावनाओं की अभिव्यक्ति का एक रूप मातृभूमि प्रेम है। इसके अन्तर्गत वंदना, स्तुति, अर्चना, आराधना की भावना से सम्बन्धित गीत और कविताएँ आती हैं। राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति का दूसरा रूप उनके यहाँ अतीत के गौरव गान और वर्तमान के प्रति क्षोभ में व्यक्त हुआ है। उनकी 'भारत-भारती' उस युग के राष्ट्रीय जागरण की प्रतिनिधि काव्य-रचना है। इस रचना ने हिन्दी भाषी जनता में अपने देश के प्रति गर्व और गौरव की भावनाएँ पैदा की।

द्विवेदी युग के आदर्श और नैतिकता की गहरी छाप मैथिलीशरण गुप्त की कविताओं पर देखी जा सकती है। समाज सुधार से जुड़े हुए सभी पहलुओं को उन्होंने अपनी कविता का विषय बनाया है। समय व समाज की आवश्यकतानुसार उन्होंने पौराणिक आख्यानों व चरित्रों को पुन: प्रतिस्थापित किया है।

द्विवेदी-युगीन कविता की इतिवृत्तात्मकता व गद्यवत शुष्कता मैथिलीचरण गुप्त की कविताओं में भी मिलती है लेकिन उनकी प्रकृति चित्रण सम्बन्धी रचनाओं में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति भी सूक्ष्म रूप में मौजूद है।

खड़ी बोली को प्रतिष्ठित करने, उसे आम जनता से जोड़ने और राष्ट्रीय स्तर पर पहुँचाने में मैथिलीशरण गुप्त का विशेष योगदान रहा है।

4.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

सखि, वे मुझसे कहकर जाते

(1)

स्वयं सुसज्जित करके क्षण में
प्रियतम को, प्राणों के पण में
हमी भेज देती हैं रण में, क्षात्र धर्म के नाते।
सखि, वे मुझसे कहकर जाते।
हुआ न यह भी भाग्य अभागा,
किस पर विफल गर्व अब जागा।
जिसने अपनाया था, त्यागा, रहें स्मरण ही आते!
सखि, वे मुझसे कहकर जाते।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण मैथिलीशरण गुप्त द्वारा रचित 'यशोधरा' काव्य से संकलित 'सखि, वे मुझसे कहकर जाते' शीर्षक कविता से अवतरित है। राष्ट्रीय भावनाओं के धनी कवि गुप्त ने यशोधरा के मनोभावों को भारतीय नारी के आदर्श के अनुरूप व्यक्त किया है। यशोधरा को बिना कहे उसके पति गौतम उसे सोती हुई छोड़कर सिद्धि प्राप्त करने के लिए वन को चले गये। यशोधरा को इसी बात का दु:ख है और वह व्यथित होकर कहती हैं—

व्याख्या—हे सखि! मेरे पति सिद्धि प्राप्त करने के लिए वन को मुझसे बिना कहे चले गये, उनका यही आचरण मेरी वेदना का कारण बना। यदि वे मुझसे कहकर जाते तो मैं एक क्षत्राणी के नाते उन्हें उसी प्रकार अपने हाथों से एक क्षण में सुसज्जित करके अपने प्राणों की बाजी लगाकर सहर्ष सिद्धि के रण में भेज देती, जिस प्रकार एक क्षत्राणी अपने पति को सुसज्जित करके रण में सहर्ष भेज देती है। लेकिन वे मुझसे कहकर नहीं गये, मुझे इसी बात की वेदना है। मेरा तो यह सौभाग्य भी नहीं रहा कि मेरे प्रियतम मुझे अपनी भावनाओं को सम्मान प्रदान करते। अब उनके चले जाने पर मैं किस पर अपना गर्व करूँ और उनके किस व्यवहार को याद करके पत्नी होने का अभिमान करूँ। सहधर्मिणी होने का गौरव तो समाप्त सा हो चुका है, क्योंकि वे मुझसे बिना कहे ही मुझे त्याग करके चले गये। अब तो उनकी याद ही बार-बार मेरे मन में आती है और उस याद के कारण वेदना मेरे मन में समाई रहती है। हे सखि! अच्छा तो यह होता कि मेरे प्रियतम मुझे अपनी मानते हुए मुझसे कहकर सिद्धि के लिए वन को चले जाते।

विशेष—1. कवि ने यशोधरा के माध्यम से भारतीय नारी के आदर्शों में समाहित स्वाभिमान का सहज अंकन किया है।
2. पतिव्रता यशोधरा की मनोदशा दृष्टव्य है।
3. अनुप्रास तथा पर्यायोक्त अलंकारों का सहज प्रयोग हुआ है।

(2)

जायँ, सिद्धि पावें वे सुख से,
दुखी न हों इस जन के दुख से,
उपालम्भ दूँ मैं किस मुख से? —आज अधिक वे भाते।
सखि, वे मुझसे कहकर जाते।
गये, लौट भी वे आवेंगे,
कुछ अपूर्व-अनुपम लावेंगे,
रोते प्राण उन्हें पावेंगे, पर क्या गाते-गाते
सखि, वे मुझसे कहकर जाते।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण मैथिलीशरण गुप्त द्वारा रचित 'यशोधरा' काव्य से संकलित 'सखि, वे मुझसे कहकर जाते' शीर्षक कविता से अवतरित है। गुप्तजी ने भारतीय नारी के आदर्शों से पीड़ित यशोधरा की विरह-वेदना को वर्णित किया है।

व्याख्या—यशोधरा के पति सिद्धार्थ सिद्धि प्राप्त करने की आकांक्षा से निष्क्रमण कर गये। उनके वियोग में व्यथित यशोधरा कहती है कि हे सखि! मेरे पति चाहे चले जाएँ और वे सुख से सिद्धि को प्राप्त कर लें, लेकिन मेरी व्यथाओं से किंचित् मात्र भी दु:खी न हों। अब मैं किस मुख से उलाहना दूँ, क्योंकि जाते समय उन्होंने मुझसे पूछा ही नहीं और वे स्वयं अपनी मर्जी से चले गये तो फिर मैं उलाहने देने का क्या अधिकार रखती हूँ। वे मेरे प्रियतम हैं, आज वे मुझसे बहुत अधिक दूर हैं इसलिये वे मुझे और अधिक अच्छे लगते हैं, क्योंकि उनकी जगह पर उनकी मधुर स्मृतियाँ मुझे उनकी याद दिलाती रहती हैं और मैं उनका स्मरण करके उनका गुणगान करती रहती हूँ। यशोधरा अपने मनोभावों को स्पष्ट करती हुई कहती है कि हे सखि! मुझे किंचितमात्र भी दु:ख नहीं होता यदि वे मुझसे कहकर के जाते। ठीक है, वे सिद्धि प्राप्त करने के लिए बिना कहे ही चले गये और कुछ समय बाद वे लौट भी आएँगे। लौटते समय वे अपने साथ कुछ अनोखा ज्ञान और अनुपम संदेश भी लाएँगे। लेकिन उस स्थिति में भी मेरे प्राण उन्हें रोते-रोते ही प्राप्त करेंगे क्योंकि वे मुझसे बिना पूछे चले गये। यदि वे मुझसे कहकर के जाते तो मैं उनके आने पर उनके स्वागत के लिए खड़ी हो जाती, लेकिन वे मुझे यह सौभाग्य दिये बिना ही चले गये। अब बताओ, मैं उनका किस प्रकार स्वागत करूँगी। अच्छा होता हे सखि! वे मुझसे कहकर के ही जाते। यशोधरा के कहने का भाव यह है कि स्वामी बिना कहे चले गये। भूल उन्होंने की इसलिए उनके आने पर मैं उनके स्वागत करने के लिए तत्पर नहीं होऊँगी।

विशेष—1. यशोधरा के विरह व्यथित भावों का मार्मिक चित्रण हुआ है।

2. भारतीय नारी हमेशा पति की शुभाकांक्षिणी होती है, भाव संकेतित है।

3. नारी का समर्पण, गौरव और स्वाभिमान दृष्टव्य है।

4. अनुप्रास तथा वीप्सा अलंकारों का प्रयोग हुआ है।

भरत कैकेयी पश्चात्ताप

(1)

''हाँ, जनकर भी मैंने न भरत को जाना।
सब सुन लें, तुमने स्वयं अभी यह माना।
यह सच है तो फिर लौट चलो घर भैया।
अपराधिनी मैं हूँ तात, तुम्हारी मैया।
दुर्बलता का ही चिह्न विशेष शपथ है,
पर, अबलापन के लिए कौन-सा पथ है?
यदि मैं उकसाई गई भरत से होऊँ!
तो पति समान ही स्वयं पुत्र भी खोऊँ।
ठहरो, मत रोको मुझे, कहूँ सो सुन लो।
पाओ यदि उसमें सार उसे सब चुन लो।
करके पहाड़-सा पाप मौन रह जाऊँ?
राई भर भी अनुताप न करने पाऊँ?''

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक में संकलित मैथिलीशरण गुप्त द्वारा रचित 'साकेत' महाकाव्य से अवतरित 'भरत-कैकेयी पश्चात्ताप' शीर्षक से लिया गया है। भरत श्रीराम से वापस अयोध्या लौट आने का अनुरोध करने के लिए चित्रकूट गये। वहाँ एक सभा आयोजित हुई। उस सभा में कैकेयी पश्चात्ताप व्यक्त करती है। उसी का वर्णन यहाँ किया गया है।

व्याख्या—कैकेयी कहती है कि हाँ मैं भरत को जन्म देकर के भी उसके हृदय को नहीं जान पाई हूँ। आप सब मेरी बात को ध्यान से सुनिये, राम ने भी अभी इस बात को स्वीकार किया है, इसलिए हे राम! अब तुम घर लौट चलो। यद्यपि मैंने तुम्हारे प्रति अपराध किया है, लेकिन मैं तुम्हारी माँ हूँ। यद्यपि कसम खाना दुर्बलता की निशानी है फिर भी हमारे समाज में स्त्रियों के पास अपनी बात को प्रमाणित करने के लिए इससे बड़ा कोई शक्तिशाली हथियार नहीं होता है। मैं कसम खाकर कहती हूँ कि यदि मेरे उस कृत्य में मैं भरत द्वारा किंचित्मात्र भी प्रोत्साहित हुई हूँ तो जिस प्रकार मैंने अपने पति को खोया है उसी प्रकार मैं अपने भरत जैसे प्रिय पुत्र को भी खो बैठूँ अर्थात् मैं भरत की कसम खाकर कहती हूँ कि मैं वर माँगने के कृत्य में भरत द्वारा उकसाई नहीं गयी हूँ। यदि मेरा कथन गलत हो तो हे ईश्वर!

पति के समान भरत भी मौत की गोद में सो जाए। कैकेयी के इस तरह के वचन सुनकर सभा में विरोधात्मक शब्द सुनाई पड़ने लगे। लेकिन पश्चात्ताप के भावों में डूबी कैकेयी कहने लगी कि ठहरो, मुझे ऐसा कहने से मत रोको। मैं जो कह रही हूँ उसे आप लोग ध्यान से सुनो ताकि आप सबको विश्वास हो जाए कि यह कुकृत्य का भाव मेरे ही पापी मन में जागा था। भरत जैसा भ्रातृ-स्नेही निर्दोष है। यदि आप लोगों को मेरी बात में कुछ अच्छा लगे तो उसे ग्रहण कर लो, लेकिन मैं जो कुछ कह रही हूँ उसे कह लेने दो क्योंकि मैं पहाड़ के समान इतना बड़ा पाप करूँ और चुपचाप बैठी रहूँ, यह इस समय की मेरी भावनाओं के अनुकूल नहीं है। मुझे अपने इतने बड़े कुकृत्य पर किंचित्मात्र भी पश्चात्ताप करने का क्या अधिकार नहीं है ? अर्थात् मुझे अपने दोषयुक्त कृत्यों पर थोड़ा-बहुत पश्चात्ताप करने दीजिये।

विशेष—1. कैकेयी के हृदय के पश्चात्ताप को कवि ने बहुत ही प्रभावी ढंग से वर्णित किया है।

2. अवतरण की भाषा भावानुकूल व सरस है।

(2)

बस मैंने इसका बाह्य-मात्र ही देखा,
दृढ़ हृदय न देखा, मदुल गात्र ही देखा।
परमार्थ न देखा, पूर्ण स्वार्थ ही साधा।
इस कारण ही तो हाय आज यह बाधा!
युग-युग तक चलती रहे कठोर कहानी-
''रघुकुल में भी थी एक अभागिन रानी!''
निज जन्म-जन्म में सुने जीव यह मेरा:
''धिक्कार! उसे था महास्वार्थ ने घेरा!''
''सौ बार धन्य वह एक लाल की माई,
जिस जननी ने है जना भरत-सा भाई।''
पागल सी प्रभु के साथ सभा चिल्लाई।
''सौ बार धन्य वह एक लाल की माई।''

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण मैथिलीशरण गुप्त द्वारा रचित हमारी पाठ्य-पुस्तक में संकलित 'भरत-कैकेयी पश्चात्ताप' शीर्षक से अवतरित है। चित्रकूट की सभा में बैठी हुई कैकेयी अपना पश्चात्ताप व्यक्त करती है।

व्याख्या—कैकेयी अपने अन्तःकरण से पश्चात्ताप करती हुई कहती है कि मैं अपने बेटे भरत को जन्म देकर के भी उसे नहीं पहचान पाई, यह भूल मुझसे ही हुई है। मैंने केवल उसके शरीर के बाह्य रूप अर्थात् उसके सुन्दर स्वरूप को ही देखा है और उसी स्वरूप को भरत मानती रही हूँ। मैं यह बात बिल्कुल भूल गई कि उसके शरीर के भीतर एक सुन्दर-सा हृदय भी है जिसमें प्रेम, बंधुत्व जैसे आदर्श भाव समाये हुए हैं। मैं यह कभी नहीं देख पाई कि मेरे पुत्र भरत के हृदय में भावात्मक और वैचारिक दृढ़ता कितनी पवित्र है। इससे भी बड़ी बात यह है कि मैंने केवल इस लोक का सुख ही सोचा और उसको सोचकर यह समझ लिया कि वह राजा बनकर इस संसार का सबसे सुखी व्यक्ति होगा। मैंने उसके परमार्थ के बारे में किंचित्मात्र भी विचार नहीं किया। इसी संकीर्णता के कारण आज मेरे सामने यह संकट उपस्थित हो गया है। इतना ही नहीं मेरे इस ओछे विचार के कारण इस संसार में युगों-युगों तक मेरी यह कठोर और अप्रिय कहानी सुनाई जाती रहेगी कि रघुवंश में कैकेयी जैसी कुल-मर्यादा को भंग करने वाली एक रानी हुई थी। कैकेयी कहती है कि इस कठोर कहानी को मुझे जन्म-जन्मों तक सुनना पड़ेगा। घोर स्वार्थ में डूबने का दुष्परिणाम तो मेरी जीभ को ही भोगना पड़ेगा और उसे यह भी सुनना पड़ेगा कि ऐसी रानी को धिक्कार है जिसे महास्वार्थ ने घेरा था। कैकेयी के इस प्रकार के पश्चात्तापपूर्ण कथनों को सुनकर राम कहने लगे कि भरत जैसे आदर्श भाई को जन्म देने वाली माता कैकेयी एक बार नहीं सौ-सौ बार धन्य है। राम के कथन को सुनकर सभा में उपस्थित जन पागलों की भाँति चिल्ला उठे कि भरत जैसे लाल की माता सौ बार धन्य है।

विशेष—1. कवि ने इस कथन के माध्यम से कैकेयी के मस्तक पर लगे कलंक को धोने का प्रयास किया है।

2. भूल किसी से भी हो सकती है यदि वह अपनी भूल को स्वीकार कर लेता है तो उसे भूला हुआ नहीं माना जाता है।

3. अवतरण की भाषा भावानुकूल तथा सरल है।

नर हो, न निराश करो मन को

(1)

''निज गौरव का नित ज्ञान रहे।
हम भी कुछ हैं यह ध्यान रहे॥
सब जाय अभी, पर मान रहे।
मरने पर गुंजित गान रहे।
कुछ हो, न तजो निज साधन को।
नर हो, न निराश करो मन को।

प्रभु ने तुमको कर दान किए।
सब वांछित वस्तु- विधान किए॥
तुम प्राप्त करो उनको न अहो।
फिर है किसका यह दोष कहो॥
समझो न अलभ्य किस धन को।
नर हो, न निराश करो मन को॥

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य- पुस्तक में संकलित मैथिलीशरण गुप्त द्वारा रचित 'नर हो न निराश करो मन को' शीर्षक कविता से अवतरित है। इस अंश में कवि ने हमें यह संदेश दिया है कि हमें भारतीय होने का तथा भारतीयता के मान- सम्मान करने का हमेशा ध्यान रखना चाहिए और हमेशा आशापूर्वक कार्य करते रहने चाहिए।

व्याख्या—कविवर कहते हैं कि हमें अपने मान- सम्मान व सांस्कृतिक गौरव का हमेशा ध्यान रखना चाहिए। हम भारतीय हैं और हमारे सांस्कृतिक गौरव व गुणों का सारे संसार में डंका बजता था। यह बात हमें अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए। हम भारतीय हैं और कुछ नहीं हैं अर्थात् हम एक समृद्ध सांस्कृतिक परम्परा द्वारा पालित व पोषित हैं। इस बात का हमें हमेशा ध्यान रखना चाहिए और भरत व उसकी संस्कृति के गौरव का हमें हमेशा ज्ञान व ध्यान रखना चाहिए। इस जगत में हमारी समस्त धन- सम्पत्ति, ऐश्वर्य- वैभव आदि चाहे नष्ट हो जाए परन्तु हमारा मान- सम्मान व प्रतिष्ठा अर्थात् भारतीय होने का गौरव कभी नष्ट नहीं होना चाहिए। हमें ऐसे कार्य करते रहने चाहिए जिससे हमारा मरने पर भी हमारी प्रशंसा के गीत गूँजते रहें। चाहे कुछ भी प्रत्याशित घटना हो जाए, परन्तु हम अपने साधनों व कार्यों में कभी भी निराशा को स्थान न दें। हम अपने भारतीय होने के गौरव तथा मान- सम्मान की रक्षा करने के लिए निरन्तर विचारपूर्वक आशा भरे मन से कार्य करते रहें।

विशेष—1. कवि का राष्ट्र- प्रेम व्यंजित है।
2. संस्कृति के गौरव व भारत के सम्मान की रक्षा को ही कर्त्तव्य बताया गया है।
3. सत्कर्मों की व्याख्या में कवि ने अजर- अमर यश की प्राप्ति का उल्लेख कर इहलौकिक व परलौकिक की ओर संकेत किया है।

4.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

4.2.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न- 1. मैथिलीशरण गुप्त को किस साहित्यकार का वरदहस्त प्राप्त था?

उत्तर—मैथिलीशरण गुप्त को आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी का वरदहस्त प्राप्त था।

प्रश्न- 2. मैथिलीशरण गुप्त के काव्य का मूल स्वर क्या है?

उत्तर—मैथिलीशरण गुप्त के काव्य का मूल स्वर राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक है।

प्रश्न- 3. मैथिलीशरण गुप्त की पहली काव्य- रचना किसे माना गया है?

उत्तर—मैथिलीशरण गुप्त की पहली काव्य- रचना 'रंग में भंग' को माना गया है।

प्रश्न- 4. गुप्त जी को 'राष्ट्रकवि' की सर्वोच्च उपाधि से किसने विभूषित किया था?
उत्तर—गुप्तजी को 'राष्ट्रकवि' की सर्वोच्च उपाधि से महात्मा गाँधी ने विभूषित किया था।
प्रश्न- 5. गुप्तजी प्रारम्भ में किस उपनाम से कविता लिखते थे?
उत्तर—गुप्तजी प्रारम्भ में 'रसिकेन्द्र' उपनाम से कविता लिखते थे।
प्रश्न- 6. गुप्तजी की सबसे पहले कौनसी कविता 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित हुई थी?
उत्तर—गुप्तजी की सबसे पहले 'हेमन्त' शीर्षक कविता 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित हुई थी।
प्रश्न- 7. गुप्तजी ने किस रचना को पढ़कर 'भारत-भारती' लिखने का निश्चय किया था?
उत्तर—गुप्तजी ने 'मुसद्दस' शीर्षक रचना को पढ़कर 'भारत-भारती' लिखने का निश्चय किया था।
प्रश्न- 8. 'सखि, वे मुझसे कहकर जाते' शीर्षक कविता गुप्तजी के किस महाकाव्य से ली गयी है?
उत्तर—'सखि, वे मुझसे कहकर जाते' शीर्षक कविता गुप्तजी के 'यशोधरा' महाकाव्य से ली गयी है।
प्रश्न- 9. 'सखि, वे मुझसे कहकर जाते' शीर्षक कविता में यशोधरा के दु:खी होने का प्रमुख कारण क्या है?
उत्तर—यशोधरा के प्रिय सिद्धार्थ सिद्धि प्राप्ति की आकांक्षा से पूरित होकर उससे बिना कहे ही वन को चले गये हैं।
प्रश्न- 10. 'सखि वे मुझसे कहकर जाते' शीर्षक कविता में यशोधरा का भारतीय नारी का कौन-सा रूप चित्रित हुआ है?
उत्तर—यशोधरा का स्वाभिमानी, पति-परायण, आस्थावादी, मर्यादापालक, शुभाकांक्षिणी, भारतीय नारी का रूप चित्रित हुआ है।
प्रश्न- 11. मैथिलीशरण गुप्त द्वारा रचित 'भरत-कैकेयी पश्चात्ताप' शीर्षक कवितांश उनके किस महाकाव्य से संकलित है?
उत्तर—'भरत-कैकेयी पश्चाताप' शीर्षक कवितांश मैथिलीशरण गुप्त द्वारा रचित 'साकेत' महाकाव्य से संकलित है।
प्रश्न- 12. 'हे आर्य, बता दो तुम्हीं अभीप्सित मेरा' यह कथन किसका, किसके प्रति है?
उत्तर—यह कथन भरत का राम के प्रति है।
प्रश्न- 13. कैकेयी ने दुर्बलता का विशेष चिह्न किसे बताया है?
उत्तर—कैकेयी ने दुर्बलता का विशेष चिह्न 'शपथ लेने को' बताया है।
प्रश्न- 14. 'जनकर जननी ही जान न पाई जिसको' यह कथन किसका और किसके सम्बन्ध में है?
उत्तर—यह कथन कैकेयी का भरत के प्रति है।
प्रश्न- 15. 'सौ बार धन्य वह एक लाल की माई' यह कथन किसका और किसके प्रति है?
उत्तर—यह कथन राम का कैकेयी के प्रति है।
प्रश्न- 16. 'नर हो न निराश करो मन को' शीर्षक कविता में कवि ने क्या प्रेरणा दी है?
उत्तर—कवि ने मनुष्य को कभी निराश न होकर निरन्तर कर्म करते रहने की प्रेरणा दी है।
प्रश्न- 17. कवि के अनुसार मानव जन्म कैसे सार्थक हो सकता है?
उत्तर—कवि के अनुसार निरन्तर कर्मरत रहने से ही मानव जन्म सार्थक हो सकता है।
प्रश्न- 18. मैथिलीशरण गुप्त के प्रमुख काव्य-ग्रंथों के नाम बताइए।
उत्तर—जयद्रथ-वध, भारत-भारती, पंचवटी, झंकार, साकेत, यशोधरा, द्वापर, जयभारत, विष्णु-प्रिया आदि प्रमुख ग्रन्थ हैं।

4.2.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न- 1. मैथिलीशरण गुप्त कृत 'भरत कैकेयी पश्चात्ताप' शीर्षक काव्यांश का भाव स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—'साकेत' के आठवें सर्ग में कविवर मैथिलीशरण गुप्त ने अयोध्यावासियों की सभा का आयोजन किया है। चित्रकूट की इस सभा में कैकेयी अपने ममतापूर्ण हृदय की कमजोरी स्वीकार करती है और अपनी भूल पर पश्चात्ताप व्यक्त करती है। इसी बीच कैकेयी कह उठती है कि ''तो अब लौट चलो तुम घर को''। कैकेयी के इस वाक्य को सुनकर सब चौंक पड़े। कैकेयी ने शपथ लेकर कहा कि इसमें भरत का कोई दोष नहीं है। मेरा मन स्वयं विश्वासी नहीं रहा। अब सारा संसार मुझ पर भले ही थूके। मैंने स्वार्थ से पूरित होकर यह घृणित कार्य किया था। कैकेयी अपनी भूल को स्वीकार करती हुइ कहती है कि मुझे कुछ भी कष्ट दिया जाए लेकिन माँ का अधिकार न छीना जाए। दुर्भाग्य ने आज मुझे अपयश दिया है। इसके बाद वह राम से कहती है कि आज मेरे दुख को बाँटने वाला कोई नहीं है। मैं तो अपना धर्म न पाल सकी लेकिन तुम अपने धर्म का पालन करो। मैं अपने पति को जीवन में कोई सुख न दे सकी। अब तो मुझे ऐसा करने दो ताकि मैं स्वर्ग में जाकर अपना मुख दिखा सकूँ।

प्रश्न- 2. 'सखि, वे मुझसे कहकर जाते' शीर्षक कविता के अन्तर्गत नारी के जिस स्वरूप को प्रस्तुत किया गया है उसको संक्षेप में लिखिए।

उत्तर—'सखि वे मुझसे कहकर जाते' शीर्षक कविता 'यशोधरा' काव्य से अवतरित है। इस काव्यांश में उस समय का वर्णन किया गया है जब सिद्धार्थ बुद्धत्व प्राप्त करने के लिए अपनी पत्नी यशोधरा से बिना कहे वन को चले गये। यशोधरा को यह जानकर दु:ख हुआ। उसी समय की भावनाओं का इस काव्यांश में वर्णन किया गया है। इस अंश में यशोधरा के दो रूप दिखाई पड़ते हैं—अनुरागिनी और मानिनी यशोधरा। अनुरागिनी रूप में यशोधरा यह मानती है कि मेरे पति ने मुझे आज तक बहुत माना इसलिए वे मुझसे बिना कहे चले गये क्योंकि यदि वे मुझसे कहकर जाते तो हो सकता था कि मैं उन्हें उनके पथ की बाधा के रूप में ही दिखाई पड़ती। दूसरे मानिनी रूप में यशोधरा कहती है कि यदि वे मुझसे कहकर जाते तो मैं क्षत्रिय धर्म का पालन करती हुई उन्हें स्वयं प्रसन्नता के साथ वन को भेज देती। यह मेरे अभागे भाग्य को सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ, लेकिन दु:ख इस बात का ही है कि वह बिना कहे चले गये। फिर भी वह जहाँ पर भी गये प्रसन्नता के साथ रहे, सिद्धि प्राप्त करे और लौटकर घर अवश्य आये। घर आते ही मैं उनका अश्रु जल से स्वागत करूँगी।

4.2.3 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न- 1. श्री मैथिलीशरण गुप्त के काव्य के भाव एवं कला पक्षों की विवेचना कीजिए।

उत्तर—राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त द्विवेदी युग के प्रमुख कवि थे। द्विवेदी जी ने गुप्त जी को उँगली पकड़कर काव्य के क्षेत्र में चलना ही नहीं सिखाया अपितु उनके भावों और विचारों को भी हमेशा अपने विचारों के अनुकूल ढालने का प्रयास किया और उन्हीं की प्रेरणा से मैथिलीशरण गुप्त काव्य जगत में इतना आगे बढ़कर जन-प्रिय एवं राष्ट्र कवि बन पाये।

गुप्तजी की आरम्भिक समस्त रचनाएँ द्विवेदी युग का पूर्णतया प्रतिनिधित्व करती हैं। उनमें नैतिकता, आदर्शवादिता, उपदेशात्मकता एवं इति वृत्तात्मकता विद्यमान है। उनमें पौराणिक गाथाओं के द्वारा अतीत का गुणगान किया गया है। इसके साथ ही वे साहित्य जगत में छायावादी, प्रगतिवादी और प्रयोगवादी युग के अन्तिम चरण तक विद्यमान रहकर अपने राष्ट्र प्रेम के भावों को युगानुकूल अभिव्यक्त करते रहे। गुप्तजी वरदहस्त कवि थे इसलिए उनकी काव्य कला में भाव एवं कला दोनों ही पक्षों की प्रधानता रही है। उनके काव्य की विशेषताओं को भाव एवं कलापक्ष के माध्यम से प्रस्तुत किया जा रहा है—

1. भाव पक्ष—गुप्तजी के महाकाव्य का भाव पक्ष गरिमा और गौरव से युक्त है। उसमें राष्ट्रप्रेम का सबल स्वर मुखरित हुआ है। उनके काव्य की कुछ महत्त्वपूर्ण विशेषताओं को निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर वर्णित किया जा सकता है।

भारतीय सभ्यता और संस्कृति—गुप्तजी का काव्य भारतीय सभ्यता और संस्कृति की विशेषताओं से पूरित है। उन्होंने अपने काव्य के माध्यम से जन-मानस में भारतीय सभ्यता और संस्कृति के प्रति प्रेम पैदा किया है। उन्होंने जन-जीवन को भारत के प्राचीन गौरव से परिचित कराया है और उसे राष्ट्रभाव से पूरित होने की प्रेरणा प्रदान की है। क्योंकि उन्होंने अपने काव्य में पौराणिक युग से लेकर वर्तमान युग तक की सभी प्रकार की आवश्यक बातों का समावेश किया है। यद्यपि गुप्तजी वैष्णव धर्म के अनुयायी थे लेकिन उनके मानस में संकीर्णता को कोई स्थान प्राप्त नहीं था। उनके लिए सभी धर्म और सम्प्रदाय समान थे तथा सबके प्रति उनके मन में प्रेम था। उन्होंने समाज के निम्न वर्गों को भी श्रेष्ठ एवं महान बनाने के लिए सचेत और सावधान किया तथा उन्हें उत्तरोत्तर प्रेरणा प्रदान करने के लिए कहा कि—

पूत कर्मकर मातृभूमि के बनो विशेष सपूत।
छूत बुरी है अहो भाग्य है यदि हम हुए अछूत॥

हिन्दू और मुसलमानों के मन में व्याप्त मनोमालिन्य को समाप्त करते हुए उन्होंने आपस में प्रेम से रहने का सन्देश देते हुए कहा कि—

हिन्दू-मुसलमान सब भाई, नित नवीन जयगान उदार।
वैष्णव बौद्ध जैन आदिक हम उस पर हिंसा करें कि प्यार॥[1]

2. राष्ट्रीय भावना—गुप्तजी को राष्ट्रीय कवि के रूप में स्मरण किया जाता है क्योंकि उनके काव्य में राष्ट्र प्रेम के भावों की प्रधानता विद्यमान है। गुप्तजी ने सर्वप्रथम 1912 ई. में भारत-भारती लिखकर देशवासियों का ध्यान उनकी वर्तमान दुर्दशा की ओर आकृष्ट किया और अतीत की गौरवमयी झाँकी प्रस्तुत करके उन्हें पराधीनता की बेड़ियों से मुक्त होने के लिए प्रोत्साहित किया। इसके साथ वैतालिक के जागरण गीतों के द्वारा उन्होंने भारतवासियों को प्रगति की ओर उन्मुख किया तथा भारतीय संस्कृति का पाश्चात्य संस्कृति के साथ

सामंजस्य स्थापित करने का संदेश दिया है। उन्होंने अतीत वर्णन के साथ वर्तमान का भी रूप प्रस्तुत किया है।

गुप्तजी की राष्ट्रीयता पर गाँधीजी की छाप है। उनकी यह कविता उनके साहित्य की अमर कृति है—

'अर्पित हो मेरा अनुज काय।
बहु जन सुखाय बहु जन हिताय।'

भक्ति-भावना—भक्ति के क्षेत्र में गुप्तजी ने तुलसी की राम शाखा को नवीनता प्रदान की है राम भक्ति उन्हें परमात्मा से प्राप्त है। उन्हें आधुनिक युग का तुलसी भी कहा जा सकता है। क्योंकि उनकी भक्ति में वही तन्मयता, वही एकाग्रता और वही चिन्तनशीलता पाई जाती है। जो तुलसी में विद्यमान थी। इसी कारण वे राम के प्रति अनन्य भक्ति भाव प्रदर्शित करते हैं—

धनुबाणि या वेणु लो श्याम रूप रे संग।

गुप्तजी राम के भक्त इसलिए नहीं हैं कि राम ईश्वर के अवतारी अंश हैं। अपितु वे राम-भक्ति में इसलिए श्रद्धा रखते हैं कि उनके राम इस पृथ्वी को ही स्वर्ग बनाने की आकांक्षा से अवतरित हुए हैं। तभी वे उनके इस रूप को साकेत में वर्णित करते हुए कहते हैं कि—

राम तुम मानव हो ईश्वर नहीं हो क्या?
विश्व में रमे हुए सभी कहीं नहीं हो क्या?
तो मैं निरीश्वर हूँ ईश्वर क्षमा करें।
मुझमें न रमो राम, तो मन में रमा करें॥

सामाजिक दृष्टिकोण—गुप्तजी ने सामाजिक क्षेत्र के प्रति अपना नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। उन्होंने तत्कालीन समाज में व्याप्त सामाजिक रूढ़ियों, अन्धविश्वासों के प्रति अपना विरुद्ध मत व्यक्त किया। वह समाज के पतित, दलित एवं निम्न वर्ग को भी समान आदर एवं समान प्रतिष्ठा दिलाने के पक्षधर थे—

उत्पन्न हो तुम प्रभु-पदों से जो सभी को ध्येय हैं।
तुम हो सहोदर सुरसरी के चरित जिसके गेय हैं॥

इतना ही नहीं कवि ने यहाँ तक कहा है कि यदि समाज में कहीं अन्याय एवं अतिचार दिखाई दे तो उसके विरुद्ध निर्भय होकर आवाज उठाओ और आन्दोलन करो—

न्याय धर्म के लिए बढ़ो तुम, ऋत हित समझो-बूझो।
अनय राज, निर्दय समाज में निर्भय होकर जूझो॥

वर्तमान भारतीय समाज में नारी की हीन दशा देखकर उनका हृदय करुणा से द्रवित हो उठा और यशोधरा में उन्होंने नारी का चित्र प्रस्तुत करते हुए कहा कि—

अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध और आँखों में पानी।

विविध भाव गरिमा—गुप्तजी का काव्य वृहत मानवीय भावनाओं का आगार है। इसीलिए उसमें मानव हृदय के विविध भावों का मर्मस्पर्शी प्रत्यक्षीकरण हुआ है। जयद्रथ-वध में वीरता और करुणा के भावों का, पंचवटी में क्रोध, जुगुप्सा और प्रेम का, साकेत में प्रेम, आत्मग्लानि, शोक, क्रोध, उत्साह आदि की चित्ताकर्षक व्यंजना हुई है। विरहिणी यशोधरा की यह उक्ति अत्यन्त मार्मिक है—

स्वयं सुसज्जित करके क्षण में,
प्रियतम को प्राणों के पण में।
हमीं भेज देती हैं रण में
क्षात्र धर्म के नाते।

कला पक्ष—गुप्तजी के काव्य का भावपक्ष जितना प्रबल और सशक्त है उतना ही कलापक्ष भी प्रभावी है। उन्होंने अपने काव्य का सफल परिपाक किया है। भावों की मृदुल व्यंजना और मर्म स्थानों का ज्ञान उनकी कुशलता का परिचायक है। गुप्तजी ने खण्डकाव्य, महाकाव्य तथा मुक्तककाव्य तो लिखे ही हैं। आधुनिक शैली के आधार पर गीत काव्य में भी पीछे नहीं रहे हैं। गुप्तजी ने पुरातनता के उपासक होते हुए भी प्रगतिवादी दृष्टिकोण को भी अपनाया है। मेरी मिट्टी, ऐटमबम नामक कविताएँ प्रगतिवादी ही हैं। गुप्तजी ने प्रारम्भ

में ही हरिगीतिका छन्द का प्रयोग किया है लेकिन साकेत महाकाव्य में छन्द प्रयोग में बहुलता दृष्टव्य है। उनकी विशेषता यह है कि उनके वर्ण वृत्त तुकान्त होने से मात्रिक लगते हैं। उनकी भाषा में प्रसाद, माधुर्य और ओज—तीनों गुणों का यथा स्थान प्रयोग हुआ है। आपकी काव्य भाषा विशुद्ध, प्रवाहमयी खड़ी बोली है। जिसमें एक ओर तत्सम शब्दों का प्राधान्य है तो दूसरी ओर तुकबन्दी के मोह में शब्दों की विकृति भी पाई जाती है। कहीं-कहीं तुक के लिए व्याकरण के नियमों की अवहलेना तक की है। अलंकार प्रयोग की दृष्टि से गुप्तजी का काव्य धनी है। वे सर्वत्र भावों की अभिव्यंजना में सहायक हुए हैं।

गुप्तजी ने मुख्य रूप से प्रबन्ध काव्य रचना में विशेष सफलता प्राप्त की है। उसमें वस्तु, चरित्र-चित्रण, संवाद सभी अच्छे एवं खरे उतरे है। साकेत उनका सबसे उत्तम प्रबंध काव्य है। कैकेयी और उर्मिला का चरित्र बहुत ही सुन्दर चित्रित हुआ है। पंचवटी में लक्ष्मण-शूर्पणखा का संवाद, साकेत में लक्ष्मण-उर्मिला संवाद उच्चकोटि के हैं। उदाहरणार्थ—

'पाप शान्त हो, पाप शान्त हो, कि मैं विवाहित हूँ बोले।
पर क्या पुरुष नहीं होते हैं। दो दो दाराओं वाले॥''

निष्कर्ष—उपर्युक्त वर्णनाधार पर संक्षेप में कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय कवि मैथिलीशरण गुप्त का काव्य राष्ट्रीयता, उच्चादर्श और भारतीय संस्कृति की गौरव और गरिमा से पूरित है। उनके काव्य में जहाँ अर्वाचीन भावनाओं का पाश्चात्य-प्रवाह प्रभावित है। वहीं उसमें प्राचीन आदर्श भी उपस्थित हैं। वे समाज में व्याप्त बुराइयों के कटु आलोचक हैं और भारत को वर्तमान दासता से मुक्त करने के लिए आतुर हैं। इस प्रकार उनके काव्य में प्राचीन व अर्वाचीन का सुन्दर समन्वय है।

प्रश्न- 2. आधुनिक हिन्दी काव्य में मैथिलीशरण गुप्त के योगदान पर प्रकाश डालते हुए उनका साहित्यिक महत्त्व प्रतिपादित कीजिए।

अथवा

'मैथिलीशरण गुप्त समन्वयकारी युग के प्रतिनिधि कवि हैं।' इस कथन की विवेचना उदाहरण सहित कीजिए।

उत्तर—मैथिलीशरण गुप्त को आर्य संस्कृति का वैतालिक कहा जाता है। राष्ट्रीय भावना का स्वर समयानुसार उनकी लेखनी के द्वारा मुखरित होता रहा है। उन्होंने अपने देश में होने वाले आन्दोलनों और प्रसारित होने वाले युग की चेतना को शब्दों में बाँधा है। इसके साथ ही राष्ट्रीय संस्कृति का समन्वय और उन्नयन गुप्तजी की रचनाओं का मूल स्वर है। गुप्तजी ने अपनी अनवरत काव्य साधना के परिणाम स्वरूप खड़ी बोली को काव्य के रंगमंच पर प्रतिष्ठित किया है। गुप्तजी ने प्रबन्ध, मुक्त एवं गीत—तीनों प्रकार के काव्यों की रचना की है।

गुप्तजी की लगभग सभी रचनाओं में भारत की गतिविधियों का सजीव चित्रण हुआ है। वह युग की विभिन्न मान्यताओं, रीति-रिवाजों, राजनीतिक विचारों, सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों की झलक दिखाकर आदर्शों का संकेत करते हैं तथा प्राचीन मर्यादा, समन्वय, प्रेम, कर्मण्यता आदि आदर्शों की पृष्ठभूमि में आधुनिक समस्याओं का हल खोजते हैं। उनके द्वारा रचित रंग भंग तथा भारत भारती तत्कालीन राष्ट्रीयता का शंखनाद है। राष्ट्रीय आन्दोलन के समस्त परिवर्तन गुप्तजी की रचनाओं में मिलते हैं। उनके काव्य में उनकी समन्वय की प्रवृत्ति दिखाई देती है। जिसको निम्नलिखित शीर्षकों के माध्यम से वर्णित किया जा सकता है—

1. अतीत एवं वर्तमान का समन्वय—गुप्तजी के काव्य में अतीत एवं वर्तमान का अपूर्व समन्वय दिखाई पड़ता है। जहाँ वे आर्य संस्कृति की आदर्श विशेषताओं की रंगीनियाँ अपने काव्य के माध्यम से प्रसारित कर जन-मानस को उद्बोधित करते हैं वहीं वे वर्तमान समय में भारतीय समाज को पिछड़ा हुआ देखकर खिन्न हो जाते हैं तथा उसकी आदर्श संस्कृति के पुन: अवतरण की कामना करने लगते हैं। भारत भारती, जयद्रथ-वध, साकेत, द्वापर आदि से ऐसे असंख्य उदाहरणों को चयनित किया जा सकता है। सिद्धराज में मध्यकालीन आर्य गौरव का निरूपण मिलता है। गुप्तजी अतीत आदर्श को अपनाकर वर्तमान का आयोजन करने और वर्तमान के आधार पर भावी जीवन को सम्भालने की सलाह देते हैं—

'वर्तमान, यह आयोजन है,
निज भावी जीवन का।
कुछ अतीत संकेत मिले तो,
अधिक लाभ वह जान का।'

यद्यपि गुप्तजी भारतीय संस्कृति के पोषक हैं लेकिन वे उसके आदर्श रूप को ही स्वीकार करने के हिमायती हैं। उसमें व्याप्त

बुराइयों और आडम्बरों को वे निकालने के ही पक्षपाती हैं और उसके सत्य स्वरूप को युगानुकूल स्वीकार करने पर ही बल देते हैं—

पुरखे नदियाँ तरते थे।
तब हे सिन्धु तरो तुम।

'साकेत' में आश्वस्त आर्य धर्म को प्रतिष्ठित देखकर वे प्रसन्नता से पूरित होकर कह उठते हैं कि—

'आर्य सभ्यता हुई प्रतिष्ठित, आर्य धर्म आश्वस्त हुआ।'

इसी प्रकार उनके काव्य में आधुनिक विचारधारा का प्रतिनिधित्व मिलता है, जैसे—

बुद्धिवाद—आज का युग पूरी तरह से बुद्धिवाद से प्रभावित हो रहा है। गुप्तजी के अनेक पात्र बुद्धिवाद के दरवाजे पर खड़े होकर ही दस्तक दे रहे हैं। यथा द्वापर के सभी पात्र बुद्धिवाद से प्रभावित हैं। परिणामस्वरूप वे कर्म को अत्यधिक महत्त्व प्रदान करते हैं इसी प्रकार साकेत के पात्र लक्ष्मण भी अपने अधिकारों के प्रति सजग होने के कारण स्व-जनक से भी उलझने को तैयार हो जाते हैं।

भारतीय समाज का प्रतिबिम्ब—गुप्तजी का काव्य पूरी तरह से भारतीय समाज का प्रतिबिम्ब है। हिन्दू और मुसलमान इस कथ्य का पोषण करते हैं। स्वदेश प्रेम का पूर्ण विकास उनके खण्ड-काव्य सिद्धराज में दिखाई पड़ता है। जगदेव कहता है कि—

जग उठे एक एक पत्ता जन्म भूमि का,
काँप उठे शून्य और कुग्रह हमारे वे।

इसी प्रकार उनके काव्य में स्वदेश प्रेम और भारतीय संस्कृति की विशिष्टताओं का समावेश सजीवता और आदर्श के रूप में हुआ है।

इसी तरह नारी भावनाओं का पूर्ण प्रतिनिधित्व उनके काव्य में प्रबलता और सहजता के साथ हुआ दिखाई पड़ता है। द्वापर में नारी का नाम प्रश्नमूलक ढंग से लिया गया। विभूत के स्वर में आधुनिक नारीप्रश्न करती हुई कहती है कि—

हाय वधू ने क्या कर विषयक
एक वासना पाई।
नहीं और क्या कोई उसका
पिता, पुत्र या भाई।

गुप्तजी ने अपने काव्य में आधुनिक समस्याओं का भी प्रतिनिधित्व किया है। उन्होंने चिरंतन समस्याओं के समाधान के रूप में समन्वय, मर्यादा-पालन, त्याग और कर्म-निष्ठा प्रदान की है। गुप्तजी सार तत्त्व प्रदान करते हुए कहते हैं कि जय और पराजय को भूलकर मनुष्य को स्वधर्म ही पालन करना चाहिए—

भूल जयाजय और भूलकर जीना-मरना।
हमको निज कर्त्तव्य पालन है पालन करना॥

उनके काव्य में जहाँ भारतीय संस्कृति की पावनता और राष्ट्र प्रेम की अनोखी झलक दिखाई देती है वहीं श्रृंगार, करुणा और वीर रस की अभिव्यक्ति भी दिखाई पड़ती है। यशोधरा के माध्यम से नारी हृदय की महानताओं को और कैकेयी की भूल स्वीकार के माध्यम से अकलंकित ठहरा कर नारी के प्रति श्रद्धा और आदर का भाव व्यक्त कर उसके पूर्ण रूपेण प्रतिष्ठित करने का भरसक प्रयत्न किया है। उर्मिला नारी जीवन के विश्वास त्याग की जीती जागती उदाहरण है। उनकी भाषा सरल, सुबोध और प्रवाहमयी है। छन्दों के विविध रूप उनके काव्य में सहज दिखाई पड़ते हैं। उनका काव्य सभी शैलियों का प्रतिनिधित्व करता है। उन्होंने यशोधरा काव्य की भूमिका में लिखा है।

''मेरी शक्ति का विचार किए बिना ही मुझको ऐसे ही, अनुरोध किया करते हो लो कविता लो, गीत लो, नाटक और गद्य-पद्य, तुकान्त-अतुकान्त सभी कुछ परन्तु वास्तव में कुछ नहीं।

4.3 सारांश

सार रूप में उपर्युक्त वर्णनाधार पर गुप्तजी के सम्बन्ध में यही कहना ठीक होगा कि भाषा, भाव, शैली और विषय की दृष्टि से वह युग प्रतिनिधि कवि हैं।

4.4 अभ्यास प्रश्नावली

1. सिद्ध कीजिए कि गुप्तजी समन्वयकारी युग के प्रतिनिधि कवि हैं।
2. गुप्तजी के काव्यों के भावपक्ष एवं कलापक्ष का विवरण दीजिए।

इकाई-5
जयशंकर प्रसाद

संरचना

5.0 कवि परिचय
5.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ
5.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर
5.2.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न
5.2.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न
5.2.3 निबंधात्मक प्रश्न
5.3 सारांश
5.4 अभ्यास प्रश्नावली

5.0 कवि परिचय

जयशंकर प्रसाद का जन्म वाराणसी के एक संभ्रान्त परिवार में हुआ था। 'सुंघनी साहु' के नाम से प्रसिद्ध बाबू देवी प्रसाद इनके पिता थे जिनकी मृत्यु प्रसाद के बाल्यकाल में ही हो गयी थी। प्रसाद जी का बचपन बहुत दु:ख में बीता था जिस समय पिता की मृत्यु हुई वे क्वींस कॉलेज में पढ़ते थे। बड़े भाई श्री शम्भुरत्न जी पर घर का सारा भार आ पड़ा। अत: प्रसाद जी को पढ़ाई छोड़कर भाई के साथ दूकान पर बैठना पड़ा। स्कूल की पढ़ाई छोड़ने के बाद भी प्रसाद अध्ययन में लगे रहे। घर पर ही रहकर उन्होंने अंग्रेजी, संस्कृत, हिन्दी और उर्दू, फारसी का अध्ययन किया।

प्रसाद जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उनकी लेखनी ने कविता, नाटक, उपन्यास, कहानी, निबन्ध सभी को समृद्ध किया। 'इन्दु' और 'जागरण' जैसी साहित्यिक पत्रिकाओं से भी वे जुड़े रहे। प्रसादजी ने प्रारम्भिक कविताएँ ब्रजभाषा में लिखीं। 'चित्राधार' ब्रजभाषा 'काननकुसुम' (1913), 'करूणालय' (1913), 'प्रेम पथिक' (1913), 'महाराणा का महत्त्व' (1914), 'झरना' (1918), 'आँसू' (1925), 'लहर' (1933) और 'कामायनी ' 1935 उनकी काव्य कृतियाँ हैं।

प्रसाद छायावाद के संस्थापक और उपासकों में से एक हैं। वे मूलत: प्रेम और सौन्दर्य के कवि हैं। प्रेम और सौन्दर्य की भूमि पर ही उनका काव्य रचा गया है। 'झरना', 'आँसू' और 'लहर' के गीतों में प्रेम की प्रधानता है। उनक काव्य में विषय की नवीनता, भावजगत का सूक्ष्म चित्रण, नवीन कल्पनाएँ, मानवीय और प्राकृतिक सौन्दर्य का अंकन, रहस्यात्मकता, लाक्षणिकता, वक्रता आदि सभी छायावादी विशेषताएँ मिलती हैं।

भारतीय इतिहास, दर्शन और संस्कृति से प्रसाद का गहरा अनुराग था। अपने समानधर्मा रोमेन्टिक कवियों में प्रसाद सबसे अधिक विचारशील व अन्तुर्मखी थे। उनका संस्कृति सम्बन्धी चिन्तन अत्यन्त प्रौढ़ है। सांस्कृतिक अध्ययन की छाप उनकी रचनाओं में उभरी है। भारतीय संस्कृति के उज्ज्वल पक्षों और इतिहास के गौरवपूर्ण पन्नों को अपनी कल्पना के रंग में रंगकर उन्होंने राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति की है। 'पेशोला की प्रतिध्वनि', 'शेरसिंह का आत्मसमर्पण', 'महाराणा का महत्त्व' आदि उनकी राष्ट्र-प्रेम से ओत-प्रोत कविताएँ हैं। उनकी दार्शनिक चेतना का सर्वोत्तम उदाहरण 'कामायनी' है जिसमें उन्होंने समरसता का दर्शन स्वीकारा है। जीवन में सामरस्य का दर्शन ही आनन्द तक पहुँचा सकता है। यही कामयानी का प्रतिपाद्य है।

5.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

अशोक की चिन्ता

(1)

इन प्यासी तलवारों से
इनकी पैनी धारों से,
निर्दयता की मारों से,
उन हिंसक हुंकारों से,

नत मस्तक आज हुआ कलिंग।
यह सुख कैसा शासन का?
शासन रे मानव मन का!
गिरि भार बना सा तिनका,
यह घटाटोप दो दिन का—
फिर रवि शशि किरणों का प्रसंग!

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक में संकलित महाकवि जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित उनके 'लहर' काव्य-संग्रह में संकलित 'अशोक की चिन्ता' शीर्षक कविता से उद्धृत है। कलिंग-विजय के बाद हुए नरसंहार को देखकर सम्राट अशोक के हृदय का पश्चात्ताप यहाँ वर्णित है।

व्याख्या—सम्राट अशोक सोचने लगा कि इन प्यासी तलवारों की तेज धारों से, निर्दयतापूर्वक मारे गये कलिंग के व्यक्तियों से और इन क्रूर हुंकारों से ही आज कलिंग का ऊँचा हुआ मस्तक नीचे झुक गया है अर्थात् मानवता के लिए ऊँचा होने वाला मस्तक इन हिंसक कार्यों के कारण शर्म से झुक गया है। यह कैसा शासन का सुख है, यह तो मुझे दु:ख प्रतीत हो रहा है। इस शासन में तो मानव मन के ऊपर शासन हो रहा है। यह तिनके के बराबर तुच्छ कलिंग देश ही आज मेरे लिए पर्वत के भार के समान हो रहा है। फिर मेरे सामने तो सूर्य और चन्द्रमा की किरणों का प्रसंग है जो जन-साधारण को भी सुख प्रदान करते हैं। फिर मैं ऐसे शासन का किस तरह उपभोग करूँ।

विशेष—1. अशोक की आत्म-ग्लानि का सफल चित्रण हुआ है।
2. अनुप्रास अलंकार का प्रयोग दृष्टव्य है।

(2)

करुणा गाथा गाती है,
यह वायु बही जाती है,
ऊषा उदास आती है,
मुख पीला ले जाती है,
बन मधु पिङ्गल सन्ध्या सुरंग।
आलोक किरन है आती,
रेशमी डोर खिंच जाती,
दृग पुतली कुछ नच पाती,
फिर तम पट में छिप जाती,
कलरव कर सो जाते विहंग।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण महाकवि जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित 'अशोक की चिन्ता' शीर्षक कविता से अवतरित है। कलिंग-युद्ध में हुए नरसंहार से सम्राट अशोक का मन व्यथित हो उठता है। परिणामस्वरूप वह अपने चारों ओर वेदना और उदासी का वातावरण देखने लगता है। उसे अनुभूति होती है कि कलिंग-युद्ध में हुआ नरसंहार एक करुण गाथा बनकर अपना गीत गुनगुना रहा है।

व्याख्या—सम्राट अशोक सोचने लगते हैं कि सारा प्राकृतिक वातावरण कलिंग-युद्ध में हुए नरसंहार से बाधित होकर करुण गाथा का गायन करने लगा है। कलिंग के नरसंहार को देखकर यह वायु भी करुण गाथा का गायन करती हुई बह रही है और ऊषाकाल भी उदासी से परिपूरित है। उसमें वही भाव अन्त तक समाया रहता है, जिससे वह अपने पीले व दु:ख से परिपूर्ण मुख को लेकर के जाती है। वह ऊषा उस समय सन्ध्याकाल के समान एकदम पीले वर्ण की हो जाती है। कहने का भाव यह है कि कलिंग-युद्ध में क्रूरतापूर्ण हुए नरसंहार को देखकर सारा वातावरण करुणा से पूरित हो उठा है और सर्वत्र उदासी एवं दु:ख छा गया है। अशोक पुन: चिन्तन करता है कि प्रात:काल के बाद सूर्य की किरणें चारों ओर विकीर्ण हो जाती हैं। उन किरणों के आने से सब ओर रेशमी डोर-सी खिंच जाती है।

उस वातावरण को देखकर कुछ समय के लिए आँखों की पुतलियों में प्रसन्नता का संचार होने लगता है। लेकिन यह स्थिति कुछ क्षण के लिए ही रहती है। फिर रात्रि के अन्धेरे में सूर्य की किरणें छिप जाती हैं और सभी पक्षी करुण स्वर में चहचहाते हुए सो जाते हैं। कहने का भाव यह है कि प्रसन्नता के क्षणभर बाद सम्पूर्ण वातावरण में पुन: उदासी छा जाती है।

विशेष—1. कवि ने प्रकृति पर मानव व्यापारों का आरोप करके मनोभावों की सुन्दर व्यंजना की है।

2. अनुप्रास तथा समासोक्ति अलंकारों का प्रयोग दृष्टव्य है।

कामायनी- चिन्ता सर्ग

(1)

अब न कपोलों पर छाया सी पड़ती मुख की सुरभित भाप,
भुज- मूलों में शिथिल वसन की व्यस्त न होती है अब माप।
कंकण क्वणित, रणित नूपुर थे, हिलते थे छाती पर हार,
मुखरित था कलरव, गीतों में स्वर लय का होता अभिसार।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण महाकवि जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित 'कामायनी' महाकाव्य 'चिन्ता सर्ग' से अवतरित है। जल- प्रलय के पश्चात् अकेले बैठे मनु जल- प्रलय के कारण के बारे में चिन्तन करते हुए चिन्ताग्रस्त हो जाते हैं। इसी का वर्णन यहाँ किया गया है।

व्याख्या—देव सृष्टि की विगत विलासिता की स्मृति को याद करते हुए मनु कहते हैं कि देव और देवांगनाओं की मुखों की सुगन्धित भाप, जो परस्पर चुम्बन करते समय एक- दूसरे के कपालों पर छाया की भाँति पड़ा करती थी, आज वह न जाने कहाँ लुप्त हो गयी है और परस्पर आलिंगन करते समय इन प्रेमियों के अंगों से घिरे होने पर, जो वस्त्र खिसक- खिसक कर उनके बगलों के इधर- उधर आ पड़ते थे, आज वह भी दिखाई नहीं देते हैं। इसके साथ रतिक्रीड़ा करते समय देवांगनाओं के कंगन अपनी आवाज करके बाजा करते थे और पायजेब मधुर झंकार करती थी, उनकी छाती पर सुन्दर बहुमूल्य हार हिला करते थे, जब वे गीत गाते थे तो उनका मधुर स्वर मुखरित होता रहता था और उनके गीतों में स्वर तथा लय का मिलन होता था। कहने का भाव यह है कि देव- संस्कृति का जीवन पूर्णत: विलासिता में डूबा हुआ था, जिसमें सर्वत्र मधुरता समाई हुई थी, परन्तु जल- प्रलय से वह विलास- लीला अब दिखाई नहीं देती है।

विशेष—1. कवि ने देव- संस्कृति के विलासी जीवन की व्यंजना की है।

2. यहाँ पर 'क्वणित' और 'रणित' शब्दों द्वारा कंगन और नूपुरों की यथार्थ ध्वनि को प्रस्तुत करने के कारण नाद- सौन्दर्य है। अत: यहाँ ध्वन्यार्थ व्यंजना अलंकार है।

(2)

दिग्दाह से धूम उठे, या जलधर उठे क्षितिज- तट के!
पवन गगन में भीमप्रकंपन, झंझा के चलते झटके।
अन्धकार में मलिन मित्र की धुँधली आभा लीन हुई,
वरुण व्यस्त थे, घनी कालिमा स्तर- स्तर जमती पीन हुई।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण कामायनी महाकाव्य के 'चिन्ता सर्ग' से उद्धृत है। कवि जयशंकर प्रसाद ने यहाँ अकेले बैठे मनु को प्रलयकालीन घटना का स्मरण करते हुए प्रस्तुत किया है।

व्याख्या—प्रलयकाल का वर्णन करते हुए मनु कहते हैं कि उस समय चारों ओर आकाश में इतने बादल छा गये थे कि जिन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो चारों दिशाएँ जल रही हैं और उनके जलने से यह धुआँ का समूह एकत्र हो गया है। उस समय बादलों से घिरा हुआ आकाश भयानक रूप से काँप रहा था और तेज आँधी बहुत झटकों के साथ चल रही थी। उस प्रलयकालीन अन्धकार में धुँधले सूर्य की ज्योति भी धुँधली पड़कर प्रकाशहीन हो गई थी। जल के देवता वरुण निरन्तर प्रलय- प्रवाह को तीव्र कर रहे थे। जिसके कारण अन्धकार की परत पर परत जमने से अन्धकार और भी गहरा हो गया था।

विशेष—1. कवि ने जल- प्रलय का स्मरणरूप में वर्णन कर मनु के माध्यम से उसकी विकरालता व्यंजित की है।

2. सन्देह तथा उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग दृष्टव्य है।

(3)

पंचभूत का भैरव- मिश्रण, शंपाओं के शकल- निपात,
उल्का लेकर अमर शक्तियाँ खोज रही ज्यों खोया प्रात।
बार- बार उस भीषण रव से कँपती धरती देख विशेष,
मानो नील व्योम उतरा हो आलिंगन के हेतु अशेष॥

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण महाकवि जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित 'कामायनी' महाकाव्य के 'चिन्ता' सर्ग से अवतरित है। जल- प्रलय काल के वातावरण को स्मरण करते हुए मनु चिन्तन करते हैं।

व्याख्या—जल- प्रलय काल का स्मरण करते हुए मनु सोचने लगे कि जो पंचभौतिक तत्त्व उचित अनुपात में मिलने पर सृष्टि निर्माण के कारक होते हैं, वे ही अनुचित- अनिश्चित अनुपात में मिलने लगे हैं। जिसके भयंकर परिणाम निकलने लगे हैं। इसी कारण आकाश से बिजलियों के खण्ड- खण्ड गिरने लगे हैं। बादलों के मध्य वे बिजली के खण्ड ऐसे लग रहे हैं कि मानो देवता प्रलय- काल के अन्धेरे में अपने हाथों में मशालें लेकर अपने सुखमय प्रभात को खोज रहे हों। उस प्रलयकालीन वातावरण में बादलों की भयंकर गर्जना से समस्त धरती काँप रही थी। धरती के अतिशय कम्पन्न को देखकर उस समय मानो नीले आकाश में समस्त सृष्टि- चक्र धरती का आलिंगन करते हेतु उतरा हो। आलिंगन करके काँपने वाले को सान्त्वना दी जाती है, उसी प्रकार काँपती हुई धरती का आलिंगन कर सृष्टि- चक्र मानो उसे सुस्थिर करना चाहता हो।

विशेष—1. बिजलियों के चमकने और बादलों के कड़कने का वर्णन कर कवि ने प्रलयकालीन वातावरण का चित्रण उपस्थित कर दिया है।
2. अनुप्रास तथा उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग हुआ है।

5.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

5.2.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न- 1. जयशंकर प्रसाद किस युग के प्रतिनिधि एवं विशिष्ट कवि माने जाते हैं?
उत्तर—जयशंकर प्रसाद छायावादी युग के प्रतिनिधि एवं विशिष्ट कवि माने जाते हैं।
प्रश्न- 2. प्रसाद जी ने अपनी प्रारम्भिक कविताएँ किस भाषा में रची थी?
उत्तर—प्रसाद जी ने अपनी प्रारम्भिक कविताएँ ब्रजभाषा में रची थीं।
प्रश्न- 3. छायावाद का पूर्ण प्रतिनिधित्व करने वाले प्रसाद की एक रचना का नाम बताइये।
उत्तर—छायावाद का पूर्ण प्रतिनिधित्व करने वाली प्रसाद की रचना 'कामायनी' है।
प्रश्न- 4. जयशंकर प्रसाद द्वारा ब्रजभाषा में रचित कविता- संग्रह का नाम बताइए।
उत्तर—जयशंकर प्रसाद द्वारा ब्रजभाषा में रचित कविता- संग्रह 'चित्रधार' है।
प्रश्न- 5. प्रसादजी द्वारा रचित प्रसिद्ध काव्यकृतियों के नाम बताइए।
उत्तर—प्रसादजी द्वारा रचित काव्यकृतियाँ कामायनी, लहर, आँसू, झरना, प्रेमपथिक आदि हैं।
प्रश्न- 6. 'कामायनी' महाकाव्य में मनुष्यता की दृष्टि से सबसे मानवीय पात्र किसे माना गया है?
उत्तर—'कामायनी' महाकाव्य में सबसे मानवीय पात्र श्रद्धा को माना गया है।
प्रश्न- 7. 'अशोक की चिन्ता' शीर्षक कविता प्रसाद जी के किस काव्य से ली गयी है?
उत्तर—'अशोक की चिन्ता' शीर्षक कविता प्रसाद जी के 'लहर' काव्य से ली गयी है।
प्रश्न- 8. 'नतमस्तक आज हुआ कलिंग' कलिंग के नतमस्तक होने का कवि ने क्या कारण बताया है?
उत्तर—कवि ने कलिंग के नतमस्तक होने का कारण हिंसक कार्यों को बताया है।
प्रश्न- 9. 'सुख दे प्राणी को मानव।' अशोक प्राणी को सुख देने की बात किस आधार पर सोच रहा है?
उत्तर—अशोक कलिंग- युद्ध के बाद अपने हुए हृदय परिवर्तन के आधार पर प्राणी को सुख देने की बात सोच रहा है।
प्रश्न- 10. 'चिन्ता सर्ग' शीर्षक कविता प्रसाद के किस काव्य से ली गई है।
उत्तर—'चिन्ता सर्ग' शीर्षक कविता प्रसाद के कामायनी महाकाव्य से ली गई है।

प्रश्न- 11. 'मद से पूर्ण अनन्त बसन्त' इस कथन से मनु ने किसके जीवन की ओर संकेत किया है?
उत्तर—इस कथन से मनु ने देव जाति विलासी जीवन की ओर संकेत किया है।
प्रश्न- 12. 'चिन्ता सर्ग' शीर्षक कविता में मनु ने किसके विध्वंस की स्मृति की है?
उत्तर—'चिन्ता सर्ग' शीर्षक कविता में मनु ने देव सृष्टि विध्वंस की स्मृति की है।
प्रश्न- 13. 'विकल वासना के प्रतिनिधि वे।' मनु ने विकल वासना के प्रतिनिधि किसे बताया है?
उत्तर—मनु ने विकल वासना का प्रतिनिधि देव जाति को बताया है।
प्रश्न- 14. 'हाहाकार हुआ क्रन्दनमय कठिन कुलिश होते थे चूर' मनु ने हाहाकार का प्रमुख कारण क्या बताया है?
उत्तर—मनुष्य ने हाहाकार का प्रमुख कारण जल-प्रलय को बताया है।

5.2.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न- 1. 'अशोक की चिन्ता' शीर्षक कविता का मूल भाव स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—'अशोक की चिन्ता' शीर्षक कविता में कलिंग-युद्ध की विजय के बाद सम्राट अशोक के हृदय में नरसंहार को देखकर हुए परिवर्तन को वर्णित किया गया है। सम्राट अशोक अत्यन्त दु:खी होकर सोचता है कि हिंसा और क्रूरता से तो पशुओं पर शासन किया जाता है। यह दानवी प्रवृत्ति है। यह सोचकर उसका मन वेदना से भर जाता है। यदि सभी प्राणियों पर दया का आचरण किया जाए तो मानवता का हित हो सकता है, वह ऐसा सोचने लगता है और संसार को आसार समझ करके हमेशा के लिए युद्ध से मुँह चिढ़ा लेता है। वह अहिंसक नीति अपनाकर बौद्ध धर्म में दीक्षित हो जाता है।

प्रश्न- 2. जयशंकर प्रसाद ने कामायनी के 'चिन्ता' सर्ग में जल-प्लावन का कैसा दृश्य उपस्थित किया है? अपने शब्दों में प्रकट कीजिए।

उत्तर—जयशंकर प्रसाद का कालजयी महाकाव्य 'कामायनी' का प्रारम्भ ही चिन्ता सर्ग से होता है जिसमें प्रलय तथा उसके बाद मानव सृष्टि के विकास की भूमिका तैयार होती है। जब एक बार पृथ्वी के इस भाग में (भारत-भूमि) खण्ड-प्रलय हुआ तो देवताओं के पशु-यज्ञ नष्ट हो गए। उनके यज्ञों की ज्वाला मानो समुद्र की लहरों में धधक रही थी। यह प्रलय का पानी मानो ध्वंस पर आँसू बहा रहा है। आकाश में बादल ऐसे उमड़ रहे थे, मानो सभी दिशाएँ जल रही हों, जिनका धुँआ उमड़कर आकाश में छा गया हो। सम्पूर्ण आकाश बादलों की गर्जना से कम्पित हो रहा था और प्रबल झंझावत-आँधी तूफान के थपेड़े लग रहे थे। चारों ओर घना अँधेरा छा गया था जिसके कारण सूर्य अत्यन्त निस्तेज, प्रभाहीन और मलिन लग रहा था। उसका प्रकाश कहीं गहरा डूब गया था। पानी के बादल पानी बरसा रहे थे। चारों ओर इतना सघन अँधेरा था मानो प्रत्येक अंतर पर कालिमा जम गई हो। प्रकृति के पाँचों तत्त्वों का परस्पर संघात हो रहा था। बिजलियाँ कड़कर कर टूट पड़ रही थीं। उल्काएँ इधर-उधर भटककर प्रात:काल की खोज कर रही थीं। भयंकर आवाज के कारण धरती काँप रही थी। उस प्रलय में ऐसा लगता था मानो आकाश ही आलिंगन हेतु धरती पर उतर आया हो।

5.2.3 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न- 1. प्रसाद कोमल कल्पना के कवि हैं। इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं?

उत्तर—जयशंकर प्रसाद बहुमुखी प्रतिभा के धनी कवि थे। उन्होंने साहित्य के विविध क्षेत्रों में अपनी लेखनी चलाकर साहित्य की अविस्मरणीय सेवा की है। उनकी रचनाओं का श्रीगणेश ब्रजभाषा से होकर के समय के प्रवाह में बहकर खड़ी बोली की ओर प्रवाहित हुआ। खड़ी बोली उनकी लेखनी में पड़कर परिष्कृत हुई। इसीलिए प्रसाद जी का शब्द चयन अद्वितीय है।

प्रसाद जी छायावाद के प्रमुख उन्नायक कवि के रूप में स्मरण किये जाते हैं। छायावादी काव्य का समस्त भाव सौन्दर्य एवं कला वैभव उनकी काव्य रचनाओं में अपने समुन्नत एवं समुज्ज्वल रूप में वर्तमान है। उनकी प्रारम्भिक रचनाओं में 'आँसू', 'झरना' और 'लहर' उल्लेखनीय हैं। कामायनी तो प्रसाद की रचनाओं में ही नहीं समस्त आधुनिक हिन्दी काव्यों में सर्वश्रेष्ठ स्थान का अधिकारी महाकाव्य है। प्रसाद ने ऐतिहासिकता को आधार बनाकर इस महाकाव्य में दर्शन और काव्य का अद्भुत सामंजस्य किया है। मनु, श्रद्धा और इड़ा के माध्यम से कवि ने मानवता के विकास की कथा को वर्णित किया है। प्रसाद के ऐतिहासिक नाटकों के अन्तर्गत आये गीतों का भी काव्यत्व की दृष्टि से विशिष्ट महत्त्व है। इनकी कविताओं को वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

1. रहस्यवादी भावनाओं की कविताएँ
2. प्रेम भाव से पूरित कविताएँ
3. ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं राष्ट्रीय भावनाओं से युक्त कविताएँ
4. मर्म भेदिनी ऐन्द्रिजालिक कविताएँ

प्रसाद जी के काव्य सौन्दर्य को भाव पक्ष और कला पक्ष के अन्तर्गत देखा जा सकता है—

भाव पक्ष—भाव पक्ष का सम्बन्ध काव्य के अनुभूति का हृदय पक्ष से होता है। प्रसाद प्रेम और सौन्दर्य के कवि हैं। उनके काव्य में प्रेम

और सौन्दर्य का उज्ज्वल स्वरूप देखने को मिलता है। उनका प्रेम अथवा शृंगार स्थूल एवं शारीरिक न होकर सूक्ष्म व आन्तरिक है। उनके काव्य में निम्न विशेषताएँ देखी जा सकती हैं—

1. प्रेम भावना—प्रसाद का काव्य प्रेम व सौन्दर्य से पूरित है। इसमें रीतिकालीन काव्य की सरसता और मादकता थी और पावनता की वह दिव्य ज्योति भी थी जो नवीन पीढ़ी को ग्राह्य थी। प्रेम को प्रसाद ने सृष्टि की मूल प्रेरणा तथा जगत की प्रथम संचालिका शक्ति माना है। प्रेम शक्ति को वर्णित करते हुए कवि ने कामायनी में कहा है कि—

यह लीला जिसकी विकस चली
वह मूल शक्ति थी प्रेमकला
उसका सन्देश सुनाने को
संस्कृति में आई वह अमला।

जीवन का यह स्रोत प्रेम साहित्य का भी प्रमुखतम प्रेरक है। प्रसाद के काव्य में प्रेम का विशद और उदात्त रूप में चित्रण हुआ है। डॉ. रामेश्वरलाल खण्डेलवाल के शब्दों में प्रेम प्रसाद काव्य का अत्यन्त वजनदार तत्त्व है। प्रसाद के प्रेम निरूपण को देखकर उनकी अनुभूति की तीव्रता, हृदय की विदग्धता, भाव विचार की उदात्ता, कल्पना की रमणीयता और शैली की प्रौढ़ता व मौलिकता से प्रभावित हुए बिना नहीं रहा जा सकता। प्रसाद की प्रेम सम्बन्धी धारणा रसवादी कवि की मौलिक विचारधारा है। वे न तो तप को ही जीवन का सत्य मानते हैं और न ही विलासिता का समर्थन करते हैं। 'कामायनी' में इस विचारधारा का प्रतिपादन है।

प्रसादजी ने नारी और प्रकृति दोनों का सौन्दर्य अंकित किया है। उनके सौन्दर्य चित्रों में स्थूलता एवं अश्लीलता का अभाव है। कामायनी में श्रद्धा का सौन्दर्यांकन इस तथ्य का द्योतक है—

'नीलपरिधान बीच सुकुमार।
खिल रहा मृदुल अधखिला अंग।
खिला हो ज्यों बिजली का फूल।
मेघ बन बीच गुलाबी रंग।'

प्रसाद के सौन्दर्य के सम्बन्ध में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन दृष्टव्य है—'प्रसाद के समान सौन्दर्य के प्रेमी कवि बहुत बिरले हैं और पार्थिव सौन्दर्य को स्वर्गीय महिमा से मण्डित करके प्रकट करने का सामर्थ्य तो किसी और में है ही नहीं।'

2. प्रकृति प्रेम—प्रसाद जी के काव्य में प्रकृति चित्रण का विशेष महत्त्व है। इसकी अभिव्यक्ति कवि के प्रारम्भिक काव्यों में ही हो गयी थी। यही प्रकृति प्रेम आगे विकसित होता चला गया था। चित्रधारा से लेकर कामायनी तक प्रसाद के समस्त काव्य में प्रकृति के विविध आयाम और रूप हैं। उन्होंने प्रकृति को आलम्बन, उद्दीपन, मानवीकरण, रहस्यात्मक, उपदेशिक अप्रस्तुत विधान, संवेदनात्मक आदि विविध रूपों में प्रस्तुत किया है। वस्तुतः प्रकृति प्रसाद के काव्य के समस्त सौन्दर्य की प्राण है। प्रकृति के आलम्बन गत कोमल रूप कामायनी में बिखरे पड़े हैं।

बाह्य एवं आन्तरिक प्रकृति का सामंजस्य सबसे अधिक प्रसाद काव्य में ही दिखाई पड़ता है। आन्तरिक प्रकृति को उन्होंने अधिक महत्त्व दिया है। झरना और आँसू में प्रकृति का उज्ज्वल स्वरूप देखने लायक है। 'होली की रात' कविता में इसके भव्य रूप को देखिये।

बरसते हों तारों के फूल
छिपे हो नील परी में कौन?
उड़ रही सौरभ की धूल
कोकिला कैसी रहती मौन?

प्रसाद की प्रकृति भी हँसती है, कभी वह विकराल लगती है तो कभी रहस्यात्मक संकेत देती है और कभी हमारा ध्यान विराट सत्ता के प्रति आकर्षित करती है। हम प्रकृति के कार्यों को नियमित रूप से चलते देखकर जिज्ञासा कर उठते हैं—

महानील इस परम व्योम में, अन्तरिक्षत में ज्योतिर्मान।
ग्रह नक्षत्र और विद्युत कण,
जिसका करते थे संधान।
छिप जाते हैं और निकलते।
आकर्षण में खिंचे हुए।
तृण विरुध लहलहे हो रहे,

जिसके रस में खिंचे हुए।

यहाँ प्रकति हमें विराट का आभास देकर आध्यात्मिकता की ओर उन्मुख करती है। कामायनी में प्रकृति का मानवीय रूप बिल्कुल स्पष्ट हो गया है। कामायनी में प्रकृति रमणी श्रृंगार भी करती है।

3. राष्ट्रीय भावना—प्रसाद काव्य में राष्ट्रीय भावनाओं को भी महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है। उनके हृदय में स्वाधीनता एवं राष्ट्रीयता के प्रति भी अपार प्रेम था। उनका यह राष्ट्रीय प्रेम उनके नाटकों में अधिक प्रकट हुआ है। चन्द्रगुप्त नाटक में 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' तथा स्कन्द गुप्त में निम्न गीत उनकी राष्ट्रीय भावना का द्योतक करता है—

हिमालय के आँगन में उसे
प्रथम किरणों का दे उपहार,
ऊषा ने हँस अभिनन्दन किया,
और पहनाया हीरक हार।
जगे हम लगे जगाने विश्व,
लोक में फैला फिर आलोक।
व्योमतम पुंज हुआ तब नष्ट,
अखिल संसृति हो उठी अशोक।

राष्ट्रीय भावनाओं से युक्त कविताएँ 'लहर' में भी वर्णित हैं।

4. नारी भावना—प्रसाद का नारी के प्रति कोमल दृष्टिकोण रहा है। इसीलिए उन्होंने नारी के अनेकानेक गुणों का उद्घाटन अपने काव्य में किया है। कामायनी में नारी को उन्होंने अनेक आदर्शों से सुसज्जित किया है—

नारी तुम केवल श्रद्धा हो।
विश्वास रजत नग पग तल में।
पीयूष, स्रोत सी बहा करो।
जीवन के सुन्दर समतल में॥

5. रहस्यवादी भावना—प्रसाद काव्य में रहस्यवादी भावना मुखरित हुई है। जो छायावाद की सीढ़ी बतायी गयी है। प्रकृति के क्रिया-कलापों में कौतूहल, जिज्ञासा और एक शक्ति का आरोपण है—

क्यों जुगनू का दीप जला है, पथ में पुण्य और आलोक।
किस समाधि पर बरसे आँसू किसका है वह शीतल शोक॥

कलापक्ष—प्रसाद के काव्य का भावपक्ष जैसा सबल और सशक्त है वैसा ही उनके काव्य का कलापक्ष भी प्रौढ़ और प्रभावी है। उनका काव्य रूप, भाषा, अप्रस्तुत विधान, छन्द, प्रतीकात्मक आदि सभी दृष्टियों से पर्याप्त कला समृद्ध है।

भाषा—प्रसाद की भाषा खड़ी बोली का अत्यन्त परिष्कृत एवं परिमार्जित रूप प्रस्तुत करती है। यद्यपि उन्होंने अपनी काव्य यात्रा बृजभाषा से प्रारम्भ की है। लेकिन बाद में उन्होंने युगानुकूल खड़ी बोली को ही अपनी काव्यभाषा के रूप में प्रतिष्ठित किया। उनकी भाषा मधुर, कोमल एवं सुसंस्कृत है एवं प्रसाद गुण सम्पन्न है। समग्रतः उनकी भाषा को प्रवाहपूर्ण, प्रांजल, समर्थ और संगीतात्मक कहा जा सकता है।

प्रसाद के काव्य की भाषा की एक प्रमुख विशेषता है—लाक्षणिकता। हृदय की सूक्ष्म अनुभूतियों को साकार रूप देने के लिए लक्षणा का प्रयोग सर्वाधिक उपयोगी रहता है। लाक्षणिक प्रयोगों के द्वारा विरोधाभास, मानवीकरण, विशेषण विपर्यय, प्रतीक आदि उपकरणों में सौन्दर्य उत्पन्न किया जाता है। प्रसाद के लाक्षणिक प्रयोग का एक उदाहरण देखिये—

'हे अभाव की चपल बालिके, री ललाट की खल रेखा।
हरी भरी- सी दौड़ धूप- औ- जलमाया की चल रेखा।'

'विरोधाभास' में विरोधी बातों के मिश्रण द्वारा अभिव्यक्ति में चमत्कार आ जाता है। छायावाद की 'विशेषण- विपर्यय' शैली भी लाक्षणिक प्रयोगों के अन्तर्गत आती है। प्रसाद के 'लहर' काव्य में विशेषण- विपर्यय के अनेक उदाहरण मिलते हैं। 'मानवीकरण' की प्रकृति भी छायावादी काव्य शैली का एक प्रमुख तत्त्व है। प्रसाद की 'कामायनी' में भावों का सुन्दर मानवीकरण हुआ है। प्रकृति के मानवीकरण में भी प्रसाद सिद्धहस्त हैं। मानवीकरण का एक उदाहरण देखिए—

'अम्बर पनघट में डुबो रही,

तारा घट उषा-नागरी।'

प्रतीकात्मकता छायावादी काव्य का प्राण है। प्रसाद जी ने प्रकृति के प्राय: सभी उपमानों को प्रतीकत्व प्रदान किया है। उनकी सभी रचनाओं में प्रतीकों के प्रभावपूर्ण प्रयोग देखे जा सकते हैं। प्रसाद जी की भाषा में चित्रात्मकता की विशेषता भी सहज मिल जाती है। 'कामायनी' में प्रसाद ने विविध भावों और मन:स्थितियों का चित्रवत् अंकन किया है। प्रकृति के कोमल और भयंकर रूपों के अंकन में भाषा की चित्रोपमता देखी जा सकती है। 'लज्जा' का एक चित्रमय अंकन देखिये—

छूने में हिचक, देखने में पलकें आँखों पर झूकती हैं।
कलरव परिहास भरी गूँजें अधरों तक सहसा रुकती हैं॥

'श्रद्धा' के सौन्दर्यांकन में भी भाषा की चित्रात्मकता मिलती है—

नील परिधान बीच सुकुमार खिल रहा मृदुल अधखिला अंग।
खिला हो ज्यों बिजली का फूल, मेघ बन बीच गुलाबी रंग॥

भाषा की संगीतात्मकता भी प्रसाद काव्य में अद्भुत रूप से मिलती है।

'कामायनी', 'आँसू', 'लहर' आदि सभी काव्यों में प्रवाहमयी शब्द योजना तथा झंकारमयी वर्णयोजना के माध्यम से भाषा में संगीतात्मकता का सामंजस्य हुआ है। इस प्रकार प्रसाद जी की भाषा में छायावादी काव्य-शैली के विविध तत्त्व समन्वित हैं।

अप्रस्तुत विधान (अलंकार-संयोजन) प्रसाद के काव्य में अलंकार संयोजन अथवा अप्रस्तुत-विधान उनकी गम्भीर अनुभूति का परिचायक है। प्रसाद जी की प्रवृत्ति शब्दालंकारों की अपेक्षा अर्थालंकारों में अधिक रमी है। अर्थालंकारों में भी कवि सादृश्यमूलक अलंकारों का ही अधिक प्रयोग करता है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा एवं रूपकातिशयोक्ति ऐसे ही अलंकार हैं। इन अलंकारों में कवि की मूर्तामूर्त विधान की प्रवृत्ति भी लक्षित होती है। उपमा एवं रूपकातिशयोक्ति के प्रयोग उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं—

1. मृत्यु अरी चिर निद्रा! तेरा अंक हिमानी-सा शीतल (उपमा)

2. आज तिरोहित हुआ कहाँ वह मधु से पूर्ण अनन्त बसन्त। (रूपकातिशयोक्ति)

इसके अतिरिक्त विरोधाभास, विशेषण-विपर्यय, मानवीकरण तथा स्वचर्थ व्यंजना जैसे अलंकार भी प्रसाद के काव्य में उनकी भाव व्यंजना के उत्कर्ष को बढ़ाते हैं।

छन्द योजना—भावों के अनुकूल छन्दों का चयन छायावादी शैली का विशिष्ट गुण है। प्रसाद की छन्द योजना स्वर और लय की मिठास से अनुप्राणित है। 'झरना' और 'लहर' में मुक्त और अतुकांत छन्द भी प्रयुक्त हैं। 'लहर' की 'शेरसिंह का शस्त्र समर्पण' 'प्रलय की छाया' आदि कविताएँ भिन्न तुकांत मुक्त की विशेषताओं से सम्पन्न हैं।

इस विवेचना के अनन्तर कहा जा सकता है कि प्रसाद का काव्य, रस और भाव की दृष्टि से जितना प्रौढ़ है कलापक्ष की दृष्टि से उतना ही उत्कृष्ट है। लाक्षणिकता, प्रतीकात्मकता, अलंकार सौष्ठव तथा उपयुक्त शब्द-विन्यास आदि इनके कला पक्ष की कतिपय उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी प्रसाद की मनोरम अभिव्यंजना पद्धति के सम्बन्ध में लिखते हैं—'प्रसाद की काव्य शैली में नवीनता और उनके भाषा प्रयोगों में पर्याप्त व्यंजक और काव्यानुरूपता है। प्रथम बार काव्योपयुक्त पदावली का प्रयोग 'कामायनी' में किया गया है। वस्तुत: प्रसाद आधुनिक युग के महान् कलाकार हैं। उनका काव्य अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों दृष्टियों से किसी भी विश्व कवि के काव्य में तुलनीय है। कवि प्रसाद का प्रकृति, संस्कृति, देश, मानवता आदि के प्रति अनुराग कवि-व्यक्तित्व और काव्य की अमूल्य भाव सम्पदा है। प्रसाद का जीवन दर्शन समरसता पर आधारित आनन्दवादी दर्शन है जिसमें कवि जीवन की सार्थकता मानता है। समन्वय भावना के आधार पर प्रसाद को तुलसी के बाद का मूर्धन्य कवि माना जा सकता है। उन्हें हिन्दी का रविन्द्र भी कहा गया है। छायावाद के तो वे प्रवर्तक और उन्नायक हैं ही। प्रसाद की 'कामायनी' उन्हें मानवता के सच्चे प्रतिष्ठायक कवि के रूप में गौरवान्वित करती है।

प्रश्न- 3. 'प्रसाद जी छायावाद के प्रतिनिधि कवि हैं।' इस कथन की सोदाहरण समीक्षा कीजिए।

अथवा

छायावादी प्रवृत्तियों को ध्यान में रखते हुए जयशंकर प्रसाद के काव्य का मूल्यांकन कीजिए।

उत्तर—छायावादी युग हिन्दी काव्य का ही गत्यात्मक विकास है। जिस उसके समीक्षक बंगला काव्य के प्रभाव से उद्भूत या पाश्चात्य रोमांटिक जिस्म के प्रभाव का एकमात्र प्रतिफलन कहते हैं। उनके वक्तव्य अतिरंजित हैं। छायावादी युग के कवि स्वदेशी, विदेशी काव्य

प्रवृत्तियों आदि से अपने प्रारम्भिक काल में अंशत: प्रभावित रहे हैं लेकिन उनके काव्य की मूलभूत प्रेरणायें और उपकरण भारत के राष्ट्रीय और सांस्कृतिक जीवन में ही अन्तर्निहित हैं। द्विवेदी युग के बाद छायावाद का उत्कर्ष काल आता है। महाकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर के गीतांजली पर विश्व का सबसे बड़ा नोबिल पुरस्कार मिल चुका था। कवि रवीन्द्र की यह रचना स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति से प्रभावित थी। हिन्दी के कवि भी उससे प्रभावित हुए बिना न रह सके। यहीं से हिन्दी में छायावाद का प्रारम्भ होता है।

छायावाद को परिभाषित करते हुए कई विद्वानों ने अपने अलग- अलग विचार व्यक्त किये हैं—

1. महादेवी वर्मा—'छायावाद तत्त्व की प्रकृति के बीच जीवन का उद्गार है।'

2. डॉ. रामकुमार वर्मा—परमात्मा की छाया आत्मा में पड़ने लगती है और आत्मा की परमात्मा में वही छायावाद है।

3. डॉ. नगेन्द्र—आशा के इस स्वप्न व निराशा के उन छाया चित्रों की काव्यगत समष्टि ही छायावाद कहलाता है।

छायावाद की विशेषताओं को प्रकाशित करते हुए प्रसाद जी ने कहा था कि छायावाद भारतीय दृष्टि से अनुभूति और अभिव्यक्ति की भंगिमा पर अधिक निर्भर करता है। ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौन्दर्य, प्रतीक विधान तथा उपचार वक्रता के साथ स्वानुभूति की निवृत्ति छायावाद की विशेषताएँ हैं। अत: छायावादी काव्य स्वच्छन्दतावादी जीवन दृष्टि है। कल्पनाशीलता तथा सौन्दर्य प्रियता के ही तत्त्व छायावादी काव्य के प्रमुख उपादान हैं।

प्रसाद- प्रमुख छायावादी कवि—छायावाद का आरम्भ महाकवि जयशंकर प्रसाद से माना जाता है। प्रसाद की रचनाओं—आँसू, झरना, लहर में छायावादी कविता की सम्पूर्ण विशेषताओं को देखा जा सकता है। प्रसाद के अतिरिक्त पन्त, निराला, महादेवी आदि छायावादी काव्य के शीर्षस्थ कवि माने जाते हैं। डॉ. रामकुमार वर्मा ने लिखा है—'श्री प्रसाद का काव्य हिन्दी में एक नये प्रयोग के मंगलाचरण के रूप में उपस्थित हुआ है। जिस प्रकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने रीतिकालीन काव्य की जड़ों से स्वस्थ प्रेम और राष्ट्रीयता के अंकुरों की सजगता और हरीतिमा उत्पन्न की, उसी प्रकार की प्रसाद ने द्विवेदी कालीन काव्य के बाह्य जगत की चेतना प्रतिष्ठित की।'

अत: छायावादी प्रकर्षता प्रदान करने वाले कवियों में जयशंकर प्रसाद का नाम शीर्षस्थ है। प्रसाद की प्रारम्भिक रचनाएँ भले ही छायावादी प्रवृत्तियों से अछूती रही हों किन्तु उनके काव्य संग्रह झरना तक आते- आते उनकी यह प्रवृत्ति स्पष्टत: उभरकर सामने आ जाती है। आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी ने इसे 'छायावाद की प्रयोगशाला का प्रथम आविष्कार कहा है।' झरना के पश्चात् आँसू प्रसाद की छायावादी गीतों की सशक्त रचना है। आचार्य शुक्ल ने कामायनी के रूप सौन्दर्य में छायावाद को स्पष्टत: परिलक्षित करते हुए लिखा है प्रसाद जी प्रबन्ध क्षेत्र में भी छायावादी की चित्र प्रधान और लाक्षणिक शैली की सफलता की आशा बँधा गये हैं।

छायावादी काव्य की विशेषताएँ—छायावादी काव्य की विशेषताओं को संक्षेप में निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर वर्णित किया जा सकता है—1. दार्शनिकता, 2. विस्मयपूरित भावना, 3. शैली, भाषा शैली सभी क्षेत्रों में प्राचीन रूढ़ियों के प्रति विद्रोह, 4. मुक्त कविता का बाहुल्य, 5. अनुभूति की तीव्रता और गम्भीर चिन्तन, 6. कल्पना की प्रचुरता, 7. भावों का गाम्भीर्य और उनकी प्रौढ़ता, 8. आत्माभिव्यक्ति की प्रधानता, 9. अपूर्व गत्यात्मकता, 10. प्रेम, विरह और करुणा की प्रधानता, 11. सौन्दर्य का अनोखा हाल, 12. अतीन्द्रिय सौन्दर्य की झलक, 13. लाक्षणिक वैचित्र्य, 14. सर्वचेतना की भावना, 15. प्रकृति के प्रति नवीन दृष्टिकोण, 16. नारी के प्रति नवीन दृष्टिकोण, 17. रहस्यवाद की ओर रुचि, 18. अद्वैतमूलक रहस्यवाद।

छायावाद के सुन्दरतम रूप के दर्शन प्रसाद के आँसू झरना में, पन्त के वीणा, पल्लव और गुंजन में तथा महादेवी के निहार, रश्मि और दीप शिखा में, निराला की परिमल, अनामिका आदि रचनाओं में होते हैं।

प्रसाद काव्य में छायावाद—प्रसाद जी को छायावादी काव्य का जन्मदाता स्वीकार किया जाता है। विद्वानों का मानना है कि उनकी आँसू नामक कविता से हिन्दी में सर्वप्रथम छायावाद का जन्म होता है। आँसू में प्रिय के वियोग में कवि की पीड़ा अत्यन्त उग्र रूप धारण कर लेती है। यही पीड़ा दुर्दिन में आँसू बनकर वर्षा की भाँति उमड़ पड़ती है। वियोग स्थिति का एक चित्र दृष्टव्य—

सुख आहत शान्ति उमंगें बेगार साँसढोने में,
वह हृदय समाधि बना है, रोती करुणा कोने में।

इसी प्रकार संयोगावस्था का चित्रण आँसू में मिलता है—

परिरम्भ कुम्भ की मदिरा, विश्वास मलय के झोंके।
मुख चन्द्र चाँदनी जल में, मैं उठता था मुँह धोके॥

प्रसाद काव्य में छायावाद की भावपक्षीय विशेषताएँ अनेक रूपों में दृष्टव्य होती हैं, जैसे—

1. सौन्दर्य निरूपण एवं श्रृंगारिक भावना—छायावादी काव्य में श्रृंगार प्रियता के दर्शन होते हैं। द्विवेदी युगीन काव्य पर नैतिकता का कठोर नियन्त्रण तथा शासन रहा। रीतिकालीन कविता स्थूल तथा उग्र श्रृंगार से युक्त थी। रीतिकाल के कवियों की सौन्दर्य दृष्टि भोग

प्रधान थी। छायावादी कवि अब चाहकर भी उस सीमा तक नहीं जा सकते थे। इस युग में श्रृंगार सौम्य होकर आया इसकी अभिव्यक्ति दो रूपों में हुई— 1. प्रकृति के प्रतीकों द्वारा, 2. नारी के स्थूल मांसल सौन्दर्य को प्रधानता दी गई तथा अंग-प्रत्यंग का वर्णन सात्विकता से करने का प्रयास किया गया।

प्रसाद के महाकाव्य कामायानी और मुक्तक काव्य आँसू में श्रृंगार भावना का भव्य रूप देखने को मिलता है। उदाहरणार्थ—

शशि मुख पर घूंघट डाले, आँचल में दीप छिपाये।
जीवन की गोधूली में, कौतूहल से तुम आये॥

2. प्रकृति प्रेम—कवि प्रकृति वर्णन में प्रकृति के आश्चर्यजनक व्यापारों को देखकर उनके पीछे किसी अज्ञात सत्ता का अस्तित्व स्वीकार करता है तथा उसके प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करता है। उसे उसके प्रति जिज्ञासा एवं कौतुहल है वह उसे अनन्त सौन्दर्य तथा प्रेम का आधार मानता है। डॉ. रामकुमार वर्मा ने लिखा है कि 'प्रकृति के बाहरी और भीतरी रूपों की जितनी सरस और रहस्यमयी व्यंजना झरना और लहर में हुई है उतनी आधुनिक हिन्दी काव्य में नहीं देखी जा सकती।'

3. व्यक्तिवाद की अभिव्यक्ति—छायावादी काव्यधारा में व्यक्तिवादी स्वर की प्रधानता है। प्रसाद काव्य में उनकी व्यक्तिवादी भावना प्रमुख रूप से झरना, लहर आदि में अभिव्यक्त हुई है। आँसू में कवि का व्यक्तिगत दु:ख ही अन्त में विश्व मंगल की योजना करता है। उदाहरण के लिए कवि अपनी प्रेयसी के समक्ष अपने निजी भाव इस प्रकार प्रस्तुत करता है—

रो रोकर सिसककर कहता मैं करुण कहानी।
तुम सुमन नोचते सुनते करते जानी अनजानी॥

4. मानवतावाद—छायावादी कवियों में मानवतावादी दृष्टिकोण मुखरित हुआ है। इसका कारण भारतीयों की अवतारवादी मानसिकता की विशेषता रही है। कामायनी में श्रेष्ठतम मानवीय गुणों का जो रूप श्रद्धा में दिखाई पड़ता है वह अन्यत्र दुर्लभ है—

समर्पण लो सेवा का सार, सजल संसति का लो पतवार।
दया, माया, ममता लो आज मधुरिमा लो अगाध विश्वास॥

इन्हीं समर्पित गुणों के आधार पर कामायनी में श्रद्धा का चरित्र विचित्र हो उठा है।

5. प्रकृति पर चेतना का आरोप—छायावाद में प्रकृति चित्रण की अपनी विशेषता रही है। प्रकृति को प्रसादजी ने सचेत मानकर उसका बड़ा सजीव चित्र प्रस्तुत किया है।

कवि प्रकृति की असीम श्रद्धा के प्रति जिज्ञासु है। वह इसके पीछे किसी अज्ञात सत्ता का अस्तित्व स्वीकार करता है और उसके प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करता है। उसका अनन्त सौन्दर्य तथा प्रेम का आधार मानता है। प्रसाद जी कामायनी में वर्णित करते हैं कि—

हे अनन्त रमणीय! कौन तुम? यह मैं कैसे कह सकता।
कैसे? क्या हो? इसका तो भार विचार न सह सकता।

इसी प्रकार एक भाव और देखने को मिलता है।

पगली हा, संभाल ले कैसे,
छूट पड़ा तेरा अंचल।
देख बिखेरती है मणी राशि,
अरी उठा बेसुध चंचल॥

6. वेदना और निराशा का स्वर—प्रसाद काव्य में वेदना और निराशा का स्वर सुनाई पड़ता है। सम्पूर्ण आँसू काव्य उनके असफल प्रेम की गाथा है। उसमें स्थान-स्थान पर विरह और प्रेम पिपासा की झलक दिखाई पड़ती है। वेदना का स्वर इतना तीव्र हो उठता है कि वे पुकार कर कह उठते हैं कि—

फिर विफल वेदना आई मेरे चौदहों भुवन में।
सुख कभी न दिया दिखाई विश्राम कहाँ जीवन में॥

7. नारी विषयक भावना—प्रसाद जी ने नारी को श्रद्धा भाव से देखा इसलिए वे नारी के मंगलमय रूप के ही उपासक हैं। वे जीवन में नारी की भूमिका इतनी महत्त्वपूर्ण मानते हैं कि वह न केवल भौतिक सुख, अपितु आध्यात्मिक आनन्द का मार्ग भी वह दिखाती है। उन्होंने नारी के सौन्दर्य का वर्णन किया है। लेकिन उसमें अमांसल सौन्दर्य की ही प्रधानता है।

8. कल्पता की मधुरता—छायावादी कवि प्रसाद ने कल्पना को परम्परा की धारा से मुक्त करके उसे स्वच्छन्दता का अवसर प्रदान

किया है। इसलिए उसकी कल्पना में मधुरता और सजीवता के दर्शन होते हैं। उदाहरण के लिए—

चंचल स्नान कर आवे चन्द्रिका पूर्ण में जैसी
उस पावन तन की शोभा आलोक मधुर थी ऐसी

9. रहस्यवादी भाव—प्रसाद जी रहस्यवादी भाव धारा में प्रकृति के सौन्दर्य से प्रभावित होकर के बहे हैं। इसीलिए उन्होंने आध्यात्मिक आधार खोजा और उसकी भाव प्रवणता को प्रोत्साहन दिया है। उदाहरण के लिए—

'उस असीम नीले अंचल में
देख किसी की मृदु मुस्कान।
मानो हंसी हिमालय की है,
फूट चली करती कलगान।'

इस प्रकार प्रसाद जी के काव्य में छायावादी काव्य की सम्पूर्ण विशेषताओं के दर्शन होते हैं।

प्रसाद के छायावादी काव्य की कलापक्षी विशेषताएँ—प्रसाद काव्य में छायावादी काव्य से सम्बन्धित समस्त कलापक्षीय विशेषताएँ दृष्टिगत होती हैं। उनकी कविता में लाक्षणिक वैचित्र्य प्रतीक विधान, मानवीकरण, विशेषण, विपर्यय, मूर्त के लिए अमूर्त उपमान, सार्थक विशेषण आदि छायावादी काव्य की प्रमुख कलात्मक प्रवृत्तियाँ प्रमुख आधार पर पायी जाती हैं। इसका संक्षेप में विवेचन इस प्रकार है—

1. नवीन अलंकारों का प्रयोग—प्रसाद जी ने अपने काव्य में मानवीकरण विरोध, चमत्कार, विश्लेषण, विपर्यय, ध्वन्यार्थ आदि पाश्चात्य अलंकारों का प्रयोग किया है जैसे ध्वन्यार्थ व्यंजना का एक उदाहरण देखिये—

'छप-छप सा होता शब्द विरल।
थर-थर कंप रहती दीप्ति तरल।'

छायावादी काव्य में अनेक नवीन अलंकारों का प्रयोग किया गया है। प्रसादजी ने प्राचीन उपमानों पर नवीनता का आचरण चढ़ाकर उसे आकर्षक ढंग से प्रस्तुत किया है।

2. नवीन छन्दों का प्रयोग—छायावादी कवि प्रसाद जी ने अपने भावों के अनुकूल नवीन छन्दों का अपने काव्य में प्रयोग किया है। इनकी छन्द योजना के सम्बन्ध में अपनी विचारधारा व्यक्त करते हुए डॉ. नगेन्द्र ने लिखा है कि वीर भावों के साथ उमड़कर चलते हैं, विकास भावनाओं के साथ इंगित पूर्ण नृत्य करते हैं और वेदना के साथ करुण रहते हैं।' अत: भावों के अनुरूप छन्दों का चयन करना प्रसाद जी की अपनी सिद्धहस्त प्रवृत्ति है। प्रसाद जी ने छन्दों की भाँति ही अपने काव्य में नवीन अलंकारों को अपनाया है।

प्रतीकात्मकता—प्रसाद जी ने काव्य में अपने भावों को प्रतीकों के माध्यम से प्रस्तुत करने में अद्भुत सफलता हासिल की है। इसलिए उनके भावों में गम्भीरता का सहज आगमन हो गया है। उनकी शैली में उनके व्यक्तित्व की स्पष्ट झलक दिखाई पड़ती है।

5.3 सारांश

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि उनके काव्य में छायावादी शैली की समस्त विशेषताएँ परिलक्षित होती हैं। उनकी भाषा में जहाँ लाक्षणिकता और ध्वन्यात्मकता विद्यमान है वही संगीतात्मकता का भी गुण विद्यमान है।

5.4 अभ्यास प्रश्नावली

1. प्रसाद कोमल कल्पना के कवि थे, सिद्ध कीजिए।
2. प्रसाद के काव्य की विशेषताएं बताइये।

Jain Vishva Bharati Institute Deemed University Ladnun

इकाई - 6
महादेवी वर्मा

संरचना

6.0 कवयित्री परिचय

6.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

6.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

6.2.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

6.2.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

6.2.3 निबंधात्मक प्रश्न

6.3 सारांश

6.4 अभ्यास प्रश्नावली

6.0 कवयित्री परिचय

छायावादी कवियों में महादेवी वर्मा की अपनी अलग पहचान है। अपने रहस्यात्मक और आत्मपरक गेय गीतों के कारण वे आधुनिक युग की मीरां कही जाती हैं। श्रीमती महादेवी वर्मा का जन्म उत्तरप्रदेश के फर्रूखाबाद शहर में हुआ था। इनके पिता श्री गोविन्द सहाय वर्मा इन्दौर के एक कॉलेज में अध्यापक थे और माता धर्म परायण महिला थीं। माता से रामायण और महाभारत की कथाएँ सुनते रहने के कारण शैशव से ही महादेवी जी के मन में साहित्य के प्रति आकर्षण उत्पन्न हो गया था। दर्शन का महादेवी जी ने विशेष अध्ययन किया था। संगीत तथा चित्रकला में भी इनकी अभिरूचि थी। महादेवी जी ने प्रयाग विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम.ए. किया। इसके पश्चात् वे प्रयाग महिलाविद्यापीठ की प्राचार्य व उपकुलपति भी रहीं।

महादेवी जी ने मुख्यत: गीतों की रचना की है जिसमें वेदना की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। उनके काव्य में वेदना और पीड़ा की शब्दावली भरी पड़ी है। आँसू, अश्रुकण, दृगजल उनकी कविता में बार-बार आते हैं। कविता में प्रयुक्त घन, घटा, निर्झर, मेघ जैसे प्रतीक पीड़ा को और घनीभूत करते हैं। महादेवी जी ने अपने गीतों में अदृश्य प्रियतम के प्रति प्रणय निवेदन किया है। अनेक काव्य में बीन और रागिनी, असीम और ससीम, रश्मि और प्रकाश का बार-बार उल्लेख हुआ है। उनके काव्य की ऐसी शब्दावली से आध्यात्मिक चेतना व्यक्त होती है। इसलिए कुछ लोग उनकी प्रेमानुभूति को अलौकिक मानते हैं।

महादेवी जी के काव्य की भाषा संस्कृतनिष्ठ तत्सम प्रधान है। अपने कथ्य को उन्होंने रूपकों, प्रतीकों या अन्योक्ति के माध्यम से व्यक्त किया है। साहित्य और संगीत का जैसा मणिकांचन योग इनके गीतों में मिलता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। 'नीहार' (1930), 'रश्मि' (1932), 'नीरजा' (1935), 'यामा' (1940), 'दीपशिखा' (1942), आदि उनकी प्रमुख काव्य कृतियाँ हैं।

6.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

मधुर-मधुर मेरे दीपक जल

(1)

विहँस- विहँस मेरे दीपक जल!
द्रुम के अंग हरित कोमलतम,
ज्वाला को करते हृदयंगम,
वसुधा के जड़ अन्तर में भी,
बन्दी है तापों की हलचल!
बिखर- बिखर मेरे दीपक जल!

मेरी निश्वासों से द्रुततर,
सुभग न तू बुझने का भय कर
मैं अंचल की ओट किए हूँ,
अपनी मृदु पलकों से चंचल!

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक में संकलित महादेवी वर्मा द्वारा रचित 'मधुर-मधुर मेरे दीपक जल' शीर्षक गीत से अवतरित है। इसमें कवयित्री ने अपने वेदनामय जीवन को निरन्तर जलते हुए अज्ञात प्रियतम का पथ आलोकित करने को कहा है।

व्याख्या—कवयित्री कहती है कि हे मेरे दीपक! तुम हँसते हुए हमेशा जलते रहो। यद्यपि इस संसार में सुखदायी क्षण भी होते हैं लेकिन दु:ख भी कम नहीं हुआ करता है। वृक्षों के हरे और नितान्त कोमल अंगों में भी अग्नि को अपने में समेटने की आकुलता होती है। पृथ्वी के चेतनाहीन (जड़) अन्तस (हृदय) में भी असंख्य तापों की हलचल छिपी है। मेरे जीवन दीप! तू बिखर-बिखर कर जलता रह (वृक्षों की पृथ्वी के समान आग को छिपाकर न रख) कवयित्री आगे कहती है कि हे मेरे सुन्दर जीवन-दीपक! प्रिय के विरह में मेरे हृदय से बड़ी तीव्रता से आहें निकल रही हैं। तू यह भय न करना कि तू मेरी आहों की वायु से बुझ जायेगा। मैं अपनी कोमल और चंचल पलकों से तुझे आँचल की ओट में छिपा लेती हूँ। तू अपनी स्वाभाविक गति से जलता रह।

विशेष—1. प्रकृति का उद्दीपनान्तर्गत चित्रण हुआ है।
2. प्रस्तुत अवतरण में रूप और पुनरुक्ति अलंकार दृष्टव्य है।

(2)

सहज-सहज मेरे दीपक जल,
सीमा ही लघुता का बंधन,
हे अनादि तू मत घड़ियाँ गिन,
मैं दृग के अक्षय कोषों से
तुझे में भरती हूँ आँसू जल।
सजल सजल मेरे दीपक जल
तम असीम तेरा प्रकाश चिर
खेलेंगे नव खेल निरन्तर,
तम के अणु अणु में विद्युत-सा,
अमिट चित्र अंकित करता चल।

प्रसंग—प्रस्तुत कवितांश कवयित्री महादेवी वर्मा विरचित कविता 'मधुर-मधुर मेरे दीपक जल' से उद्धृत है। इसमें कवयित्री ने अपने प्राणों रूपी दीपक को जलाकर अपने प्रियतम के पथ को आलोकित करने के साथ ही अन्धकार व प्रकाश के खेल का वर्णन किया है।

व्याख्या—हे मेरे दीपक! तू सरलता व स्वाभाविकता से बड़े आनन्द के साथ जलता रह। लघुता का बन्धन व्यक्ति की सीमा होती है, परन्तु तू अनादि है, इसलिए अपने आपको लघु व सीमित मत समझ और तू अपने जीवन की घड़ियाँ भी मत गिन। मैं अपनी आँखों के कभी समाप्त न होने वाले भण्डारों से तुझमें आँखों का स्नेह-जल भरती रहूँगी। हे मेरे दीपक! तू सरल और सजल होकर निरन्तर जलता रह।

हे मेरे दीपक! अन्धकार यद्यपि असीम है परन्तु तेरा प्रकाश भी चिरंजीवी है, अत: अन्धकार और प्रकाश के नये-नये खेल निरन्तर चलते रहेंगे। तू तो इस खेल ही खेल में अन्धकार के कण-कण में बिजली की तरह चमक कर अपना अमिट चित्र अंकित करते हुए निरन्तर जलता रह। अमिट चित्र के अंकन में तुझे अभिमान और अहंकार नहीं होना चाहिए। तू तो अत्यन्त सरलता के साथ निरन्तर जलता रहा।

विशेष—1. दीपक की सार्थकता पर प्रकाश पड़ता है। 2. रूपक अलंकार है।

मधुरिमा के मधु के अवतार

(1)

चाँदनी का शृंगार समेट
अधखुली आँखों की यह कोर,
लुटा अपना यौवन अनमोल
ताकती किस अतीत की ओर!
जानते हो यह अभिनव प्यार
किसी दिन होगा कारागार?
कौन वह है सम्मोहन राग
खींच लाया तुमको सुकुमार?
तुम्हें भेजा जिसने इस देश
कौन वह है निष्ठुर कर्त्तार?
हँसो पहनो काँटों के हार
मधुर भोलेपन के संसार!

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक में संकलित महादेवी वर्मा द्वारा रचित 'मधुरिमा के मधु के अवतार' शीर्षक गीत से अवतरित है। इसमें कवयित्री ने एक पुष्प के माध्यम से प्रकृति में अव्यक्त परमसत्ता का आरोप करते हुए अपनी भावनात्मक रहस्यवादिता का परिचय दिया है।

व्याख्या—कवयित्री प्रकृति में भी वेदना की छाया देखती हुइ पुष्प से कहती हैं कि हे पुष्प! तुम्हें देखकर लगता है जैसे तुम चाँदनी की शोभा को अपने में समेटने का प्रयत्न कर रहे हो। तुम अपनी अधखुली आँखों की कोर से न जाने विगत अतीत की किस घटना का स्मरण करते रहते हो। इस प्रकार जागते रहने, सोचते रहने, निरन्तर देखते रहने से निश्चय ही तुम अपना अमूल्य यौवन लुटाते हो। हो सकता है, तुम्हें चाँदनी से प्यार हो, पर शायद तुम यह नहीं जानते हो कि यह प्यार तुम्हारे लिए कभी कारागार भी बन सकता है—जब तुम पीड़ा से ग्रस्त रहा करोगे। क्या तुम जानते हो कि प्यार का अन्त केवल पीड़ा है? वह आगे कहती है कि हे पुष्प! वह कौन-सा मुग्ध करने वाला संगीत है जो तुम्हें यहां खींच लाया है। सुकुमार तो तुम हो ही आकृष्ट भी शीघ्र हुए होंगे। यह संसार बड़ा छली और मायावी है। वह कौन निष्ठुर कर्तार है जिसने तुम जैसे सुकुमार को इस मायावी संसार में भेज दिया है? तुम तो निरे भोले ही हो, जो इस संसार में चले आये। खैर, तुम्हें क्या मिलेगा यहाँ। बस यहाँ तो काँटों का हार ही पहनना पड़ेगा। उसे पहनकर हँसो और सब कुछ सहन करो।

विशेष—1. महादेवी की रहस्य भावना व्यक्त हुई है। 2. मानवीकरण तथा रूपक अलंकार का प्रयोग दृष्टव्य है।

चुभते ही तेरा अरुण बान

(1)

नव कुन्द-कुसुम से मेघ-पुंज,
बन गये इन्द्रधनुषी वितान,
दे मृदु कलियों की चटक, ताल,
हिम-बिन्दु नचाती तरलप्राण,
धो स्वर्ग-प्रात में तिमिर-गात,
दुहराते अलि निशि-मूक तान!

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक में संकलित महादेवी वर्मा द्वारा रचित 'चुभते ही तेरा अरुण बान' शीर्षक गीत से अवतरित है। कवयित्री ने प्रात:कालीन सुषमा की पृष्ठभूमि में प्रियतम-स्मरण की वेदना व्यक्त की है।

व्याख्या—कवयित्री कहती है कि प्रात:काल में नवीन कुन्द पुष्पों के समान दृष्टिगत होने वाले अरुणाव युक्त बादलों के समूह ऐसे लगते हैं कि मानो इन्द्रधनुषी चंदोबा तान दिया गया है। इस वातावरण में ओस की बूँदें कोमल कलियों को चटकाकर मानो इस प्रकार

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

ताल देखकर अपने चंचल प्राणों को नचाती हैं। तभी रात्रिभर कमलकोश में बन्द रहने वाले भँवरे सूर्य के दर्शन पाकर खिल जाने वाले कमल-पुष्पों से निकल कर अपना गुंजार करने लगते हैं। उस समय अन्धकार के समान कालिमा युक्त उनका शरीर सूर्य की रश्मियों के सुनहरे रंग से ऐसा प्रतीत होने लगता है मानो उन्होंने प्रात: उठकर अपने शरीर को भी धो लिया हो।

विशेष—1. कवयित्री ने प्रात:कालीन वातावरण का मूर्त चित्रण प्रस्तुत किया है।

2. उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा तथा अनुप्रास अलंकार दृष्टव्य हैं।

(2)

फैला अपने मृदु स्वप्न-पंख,
उड़ गई नींद-निशि-क्षितिज पार,
अधखुले दृगों के कंज-कोष,
पर छाया विस्मृति का खुमार,
रंग रहा हृदय ले अश्रु-हास,
यह चतुर चितेरा सुधि-विहान!

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक 'आधुनिक काव्य-संग्रह' में संकलित महादेवी वर्मा द्वारा रचित 'चुभते ही तेरा अरुण बान' शीर्षक गीत से अवतरित है। इसमें कवि ने प्रात:कालीन प्रकृति का चित्रण किया है।

व्याख्या—कवयित्री कहती है कि प्रात:काल होते ही नींद रात्रि और क्षितिज के पार न जाने कहाँ अपने मृदुल स्वप्न रूपी पंखों को फैलाकर उड़ गई है। कहने का भाव यह है कि जिस प्रकार प्रात: होते ही पक्षी अपने घोंसलों से अपने पंख फैलाकर उड़ जाते हैं, उसी प्रकार नींद भी मधुर-मधुर स्वप्नों से अपना अन्त करके जाने कहाँ चली गयी है। उस समय प्राणियों की नींद के कारण अधखुले नेत्रों के कमल के समान कोषों में कुछ भूलने का सा खुमार छाया रहता है। ऐसे समय में कवयित्री कहती है कि सुधि विहीन चतुर चित्रकार विधि मेरे हृदय को आँसुओं और हास्य से रंग देता है—कोई भूली-बिसरी स्मृतियाँ ऐसे समय में आकर कभी तो आँखों को आँसुओं से गीला कर जाती हैं और कभी होठों पर एक मुस्कान छोड़ जाती हैं। अनायास ही इस प्रकार अश्रुहास का रंग हृदय पर समा जाता है।

विशेष—1. कवयित्री ने प्रात:कालीन की मनभावन शोभा का सुन्दर चित्रण किया है।

2. मानवीकरण, रूपक तथा अनुप्रास अलंकार दृष्टव्य हैं।

6.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

6.2.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न-1. महादेवी वर्मा के जन्म स्थान का नाम बताइये।

उत्तर—महादेवी वर्मा का जन्म फर्रुखाबाद (उ.प्र.) में हुआ था।

प्रश्न-2. महादेवी वर्मा की प्रमुख काव्यकृतियों के नाम बताइए।

उत्तर—महादेवी वर्मा की प्रमुख काव्यकृतियाँ—नीहार, रश्मि, नीरजा, सान्ध्य-गीत, यात्रा, दीपशिखा आदि हैं।

प्रश्न-3. महादेवी वर्मा का सबसे पहला काव्य-संग्रह कौन-सा है?

उत्तर—महादेवी वर्मा का सबसे पहला काव्य-संग्रह 'नीहार' है।

प्रश्न-4. महादेवी वर्मा ने सबसे पहले किस भाषा में अपनी कविता प्रारम्भ की थी?

उत्तर—महादेवी वर्मा ने सबसे पहले ब्रजभाषा में अपनी कविता प्रारम्भ की थी।

प्रश्न-5. 'मधुर-मधुर मेरे दीपक जल' शीर्षक गीत किसके द्वारा रचित है?

उत्तर—'मधुर-मधुर मेरे दीपक जल' शीर्षक गीत महादेवी द्वारा रचित है।

प्रश्न-6. कवयित्री महादेवी वर्मा ने 'मधुर-मधुर मेरे दीपक जल' शीर्षक गीत में अपने जीवन को किस रूप में कल्पित किया है?

उत्तर—महादेवी वर्मा ने अपने जीवन को इस गीत में दीपक के रूप में कल्पित किया है।

प्रश्न-7. 'मधुर-मधुर मेरे दीपक जल' गीत में कवयित्री किसके मार्ग को आलोकित करना चाहती है?

उत्तर—'मधुर-मधुर मेरे दीपक जल' शीर्षक गीत में कवयित्री अपने जीवन रूपी दीपक से अपने प्रियतम परमात्मा के आगमन पथ को आलोकित करना चाहती हैं।

प्रश्न- 8. 'मधुरिमा के मधु के अवतार' शीर्षक गीत किसके द्वारा रचित हैं?

उत्तर—'मधुरिमा के मधु के अवतार' शीर्षक गीत महादेवी वर्मा द्वारा रचित है।

प्रश्न- 9. 'मधुरिमा के मधु अवतार' शीर्षक गीत में कवयित्री ने अपनी किस भावना का परिचय दिया है?

उत्तर—'मधुरिमा के मधु अवतार' शीर्षक गीत में कवयित्री ने अपनी भावात्मक रहस्यवादिता का परिचय दिया है।

प्रश्न- 10. 'मधुरिमा के मधु के अवतार' शीर्षक गीत में कवयित्री ने 'कोमल प्राण' कहकर किसको सम्बोधित किया है?

उत्तर—'मधुरिमा के मधु के अवतार' शीर्षक गीत में कवयित्री ने 'कोमल प्राण' कहकर पुष्प को सम्बोधित किया है।

प्रश्न- 11. 'चुभते ही तेरा अरुण बान' शीर्षक गीत किसकी रचना है?

उत्तर—'चुभते ही तेरा अरुण बान' शीर्षक गीत में कवयित्री ने प्रात:कालीन सौन्दर्य की पृष्ठभूमि में अपने प्रियतम की स्मृति की वेदना को प्रस्तुत किया है।

प्रश्न- 12. 'चुभते ही तेरा अरुण बान' शीर्षक गीत में कवयित्री ने मुख्य रूप से किसका चित्रण किया है?

उत्तर—'चुभते ही तेरा अरुण बान' शीर्षक गीत में कवयित्री ने मुख्य रूप से अरुण सूर्य किरणों का चित्रण किया है।

प्रश्न- 13. कवयित्री के अनुसार किसके आने तक अन्धकार का अथाह समूह सोता रहता है?

उत्तर—कवयित्री के अनुसार अरुण सूर्य के आने तक अन्धकार का अथाह सागर सोता रहता है।

6.2.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न- 1. 'मधुर-मधुर मेरे दीपक जल' गीत का मूल भाव स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—प्रस्तुत गीत कवयित्री महादेवी वर्मा की रहस्यवादी भावना पर आधारित है। इसमें कवयित्री ने अपने जीवन को एक दीपक के रूप में प्रस्तुत किया है। दीपक के निरन्तर जलते रहने के समान वह भी अपने जीवन को प्रिय की प्रतीक्षा में जला रही है। दीपक का प्रकाश जिस प्रकार प्रत्येक अणु- अणु को प्रकाशित करने में समर्थ रहता है उसी प्रकार कवयित्री दीपक से आकांक्षा करती है कि वह प्रतिक्षण जलकर प्रियतम का मार्ग प्रकाशित करता रहे, क्योंकि उसका जीवन रूपी दीपक परमात्मा के द्वारा प्रदत्त एक ऐसा साधन है जो हृदय में समाये अन्धकार को दूर करता है। अत: कवयित्री आकांक्षा करती है कि जब तक परमात्मा से मिलनेका समय नहीं आये तब तक जीवन रूपी दीपक जलता रहे और उनके आगमन के पथ को प्रकाशित करता रहे।

प्रश्न- 2. 'चुभते ही तेरा अरुण बान' शीर्षक गीत का मूल भाव लिखिए।

उत्तर—'चुभते ही तेरा अरुण बान' शीर्षक गीत महादेवीवर्मा द्वारा रचित है। इस गीत में कवयित्री ने प्रात:कालीन वातावरण का सुरम्य वर्णन किया है। सूर्य के उदय होते ही मधुर के सरस झरने पुष्पों से फूट- फूटकर बहने लगते हैं। अन्धकार समाप्त हो जाता है। पक्षियों का समूह कलरव करने लगता है। सूर्य की लाल किरणें क्रीड़ा करने लगती हैं। नये- नये फूल खिलकर इन्द्रधनुषी आभा फैलाने लगते हैं, कोमल कलियाँ चटकने लगती हैं, तितलियाँ उन खिले हुए पुष्पों का रसास्वादन करने लगती हैं और पत्ते हिलने लगते हैं। रात्रि में जिस नींद से सभी विमोहित हुए थे वह नींद उड़कर क्षितिज से पार चली गई है। इस प्रकार कवयित्री ने प्रात:कालीन परिवेश का सुन्दर चित्रण किया है।

6.2.3 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न- 1. 'महादेवी वर्मा की कविताओं में ससीम और असीम का लौकिक और अलौकिक का मिलन दिखलाई देता है।' इस कथन को ध्यान में रखते हुए उनकी कविताओं के काव्य को स्पष्ट समझाइए?

अथवा

महादेवी के रहस्यवाद की समीक्षा कीजिए।

उत्तर—आदि काल से ही भारतीय सभ्यता में लौकिकता की अपेक्षा आध्यात्मिकता की प्रधानता रही है। आत्मा की तुष्टि के लिए और जीवन में पूर्णता लाने के लिए हम बाह्य पार्थिक उपकरणों की अपेक्षा अन्तर के वैभव को अधिक महत्त्व देते थे। हमारी इसी

अन्त:वृत्ति ने में मानव-मानव में मानव प्रकृति में तथा बाह्य जगत के विभिन्न उपकरणों में एकता की खोज करना सिखलाया, हमें दु:ख में सुख, सुख में दु:ख, अपूर्णता में पूर्णता को खोजने की दृष्टि दी है। यही दृष्टि आत्मतुष्टि की द्योतक है। रहस्यवाद की अभिव्यक्ति अस्पष्ट, धूमिल और रहस्यमयी होने के कारण इसका एक आधार दर्शन-शास्त्र भी माने गए हैं। जीवात्मा प्रकृति और परमात्मा का तादात्म्य रहस्यवाद का विषय है। इसका एक आधार अद्वैतवाद भी है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है—'तर्क और ज्ञान के स्वर, बुद्धिवाद के क्षेत्र में जो अद्वैतवाद है, भावना और कल्पना के सहारे अनुभूति के क्षेत्र में वही रहस्यवाद है। अद्वैतवाद में उस असीम सत्ता के सान्निध्य की मूकुल प्रेरणा है, उस असीम चेतना का, असीम सौन्दर्य का परिचय मात्र है। अत: अद्वैतवाद रहस्यवाद का प्रथम सोपान है।'

हिन्दी में रहस्यवाद की अवतारणा सर्वप्रथम कबीर ने की। वही धारा आगे बढ़ती हुई जायसी के 'पद्मावत' को विकसित करती हुई आधुनिक युग में पहुँची। इस युग के प्रमुख कवि पंत, प्रसाद, निराला और महादेवी माने जाते हैं। महादेवी जी का रहस्यवाद वस्तु, शैली, भाव और अनुभूति की दृष्टियों से भारतीय भावना से अनुप्राणित है। उनके रहस्यवाद में शुद्ध, निर्मल दर्शन, आत्मीय भावना है। उनके दर्शन होते हैं।

उनका रहस्यवाद उपनिषदों का सार है, जिसे कबीर ने अपनी भावुक तन्यमता और उपासना की एकाग्रता से ओत-प्रोत कर दिया था। स्वयं महादेवी जी अपने रहस्यवाद का परिचय इस प्रकार देती हैं 'आज गीत में हम जिसे रहस्यवाद के रूप में ग्रहण कर रहे हैं। उस परा विद्या की अपार्थिवता ली है, वेदान्त के अद्वैत की छायामात्र ग्रहण की है। लौकिक प्रेम से तीव्रता ली, और इन सबको कबीर के सांकेतिक दाम्पत्य-सूत्र में बाँधकर एक निराले स्नेह की सृष्टि कर डाली, जो मनुष्य के हृदय को पूर्ण अवलम्ब दे सका, उसे पार्थिव प्रेम से ऊपर उठा सका तथा मस्तिष्क को हृदयमय और हृदय को मस्तिष्कमय बना सका। इस प्रकार महादेवी ने उस भारतीय रहस्यवाद को ग्रहण किया जिसमें उपनिषदों का शुद्ध सात्विक चिन्तन तथा कबीर और मीरा का मधुर भाव युक्त माधुर्यभाव था। महादेवी जी की सारी साधना उसी असीम और अव्यक्त का रहस्य सुलझाने की ओर उन्मुख हुई है। उनका कहना है—''मैं मतवाली, इधर, उधर प्रिय मेरा अलबेला सा है।'

रहस्यवाद के मूल में साधक के हृदय में अपने प्रियतम के प्रति मिलन की आकुल प्रेरणा होती है। राम कृष्ण दास जी ने नीरजा की भूमिका में लिखा है—कवि की आत्मा मानो इस विश्व में बिछुड़ी हुई प्रेयसी की भाँति अपने प्रियतम का स्मरण करती है। उनकी दृष्टि में विश्व की सम्पूर्ण प्राकृतिक शोभा-सुषमा एक अनन्त अलौकिक चिर सुन्दर छायामात्र है। इस प्रतिबिम्ब जगत को देखकर कवि का मन ललक उठा—

'बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ!
दूर तुमसे हूँ अखण्ड सुहागिनी भी हूँ।
तार भी आघात भी झंकार की गति भी,
पात्र भी मधु भी मधुप भी मधुप विस्मृति भी
अधर भी हूँ और स्मित की चाँदनी भी हूँ।'

यदि आत्मा और ब्रह्म के मिलन में 'योग' शब्द ही अधिक प्रिय है तो महादेवी जिस योग में रत हैं वही भाग 'योग' है। उन्होंने हृदय की भावना के आधार पर उस परम सुन्दर को प्रत्यक्ष किया है और उसी के बल पर अभिलाषा की है। महादेवी ने उसे जगत् के माध्यम से पहचाना है।

'कनक के दिन मोती सी रात,
सुनहली साँझ गुलाबी प्रात:
मिटाता रगता बारम्बार,
कौन जग का वह चित्राधार,

अपने प्रियतम से मिलने के लिए महादेवी को जिन-जिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ा है। विरहिणी को स्वयं तिल-तिल कर जलने की तनिक भी चिन्ता नहीं, उसे तो इस बात की चिन्ता है कि उसके दीपक के जलने से जो कालिमा उत्पन्न होगी उससे कहीं प्रियतम का पथ कालिमामय न हो जाय—आत्मा का भव्य रूप देखिए—

'यह न झंझा से बुझेगा,
बन मिटेगा मिट बनेगा,
भय यही है हो न जावे प्रिय तुम्हारा पंथ काला।'

मुग्धता सुधि की जननी है, सुधि पीड़ा की। किसी आलोचक ने लिखा—'वेदना महादेवी के काव्य-गगन में वायु सी व्याप्त है। पीड़ा उन्हीं के दर्शन से प्राप्त हुई है अत: वह त्याज्य नहीं। हार बनना है तो हृदय बिधवाना ही होगा।

रहस्यवाद का मूलाधार वास्तव में कठिनतम इन्द्रियदमन और योग साधना है। परन्तु कवियों ने उसमें अनुभूति मूलक विरह-मिलन प्रधान भक्ति का समावेश कर दिया है। इसके कारण उनकी रहस्यवादी भावना अत्यन्त आकर्ष और मधुर हो गई है। आधुनिक कवियों में इसीलिए रहस्यवाद की सबसे सुन्दर अभिव्यक्ति महादेवी की कविता में हुई। उनकी परवर्ती सभी कविताओं का एक ही विषय है—

एक अनन्त अज्ञात चिरसत्ता की उपस्थिति का अनुभव और उसके प्रति विरह मिलन का भाव। अपनी संकल्पात्मक अनुभूति के सहारे महादेवी ने विरह-मिलन के इस भाव को अधिक से अधिक स्पष्ट रूप से हमारे सामने रखा है। अपने रहस्य गीतों के सम्बन्ध में महादेवी जी स्वयं लिखती हैं—'रहस्य गीतों का मूलाधार भी आत्मानुभूति भी अखण्ड चेतना है पर वह साधक की मिलन-विरह की अनुभूतियों में इस प्रकार घुल-मिल गयी कि उसकी अलौकिक स्थिति भी लोकसामान्य हो गई। रहस्य गीतों में आनन्द की अभिव्यक्ति के सहारे हम चित् और सत् तक पहुँचते हैं। महादेवी जी अपने रहस्यवाद में सगुण की उपासिका नहीं हैं। उनका रहस्यवाद निर्गुण अनुभूति पर आश्रित हैं। अत: जन-साधारण के लिए थोड़ा अस्पष्ट भी है। उनका कहना है कि अलौकिक क्षणों में जीवात्मा अपनी प्राकृतिक बाधाओं से ऊपर उठकर अनन्त असीम के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। वे आँसू बहाकर कृतज्ञता प्रकट करती हैं—

'झरते नित लोचन मेरे हों।
जलती जो युग-युग से उज्ज्वल,
आभा से रच-रच मुक्ताद्दल,
वह तारक माला उनकी'

वह संकल्पात्मक विरह-मिलन, आत्मा का रुदन हास रहस्यवादी काव्य की मधुरतम सम्पत्ति है और महादेवी के काव्य में इस सम्पत्ति का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

निर्गुण रहस्यवादी कवियों की भाँति वे भी उस अनन्त का क्रीड़ा स्थान यह मानव-जीवन ही मानती हैं। साधक का अंग-अंग ही तो उसकी मधुरता, उसकी सुन्दरता को व्यंजित करता है। उसे पाने के लिए अपने से बाहर उसे कहीं नहीं जाना है—

क्या पूजा क्या अर्चन रे।
उस असीम का सुन्दर मन्दिर मेरा लघुतम जीवन रे।
मेरी श्वासें करती रहती निज प्रिय का अभिनन्दन रे।

महादेवी जी को छोड़कर आधुनिक कवियों में पंत, निराला, रामकुमार वर्मा आदि के गीतों में रहस्यवाद की मधुर झंकार पैदा हुई है। किन्तु वे सब केवल रहस्यवादी नहीं। महादेवी की कविता में तो रहस्यवाद के अतिरिक्त अन्य कोई झंकार मिलती ही नहीं। उनकी सारी कला, सारी अनुभूति, सारी कल्पना, सारा वैभव, केवल ससीम और असीम के सम्बन्ध को खोजने में ही समाप्त हुआ है। सत्य तो यह है कि पिछले पाँच हजार वर्षों की भारतीय रहस्यवादी परम्परा उनके गीतों में नये संगीत, नयी कल्पना और नयी मूर्च्छता के साथ फूट पड़ी है।

रहस्यवादी कवियों के काव्य में दु:खवाद की प्रधानता अधिक है। उनकी कविता की प्रतिपंक्ति में रुदन है। इसका एक प्रकार का आध्यात्मिक असन्तोष है। दु:ख की धारा 'प्रसाद' में 'आँसू' पन्त की ग्रन्थि से महादेवी के काव्य-क्षेत्र में आकर पूर्ण रूप से परिपुष्ट हो गयी है। महादेवी का दु:खवाद आध्यात्मिक है। दर्शन के गम्भीर अध्ययन, स्त्री स्वभाव और साहित्य परम्पराओं से प्राप्त हुई सुगमता ने उनके आध्यात्मिक दु:खवाद को अधिक परिपुष्ट रूप दे दिया। रामकृष्ण दास लिखते हैं—'उनकी काव्य साधना आध्यात्मिक है।

उसमें आत्मा का परमात्मा के प्रति आकुल प्रणय निवेदन है कि कवि की आत्मा मानो इस विश्व में बिछुड़ी हुई प्रेयसी की भाँति अपने प्रियतम का स्मरण करती है।'

'विरह का जल-जात जीवन विरह का जलजात,
वेदना में जन्म, करुणा में मिला आवास।
अपना जीवन दीप मृदुल तर,
वर्ती कर निज स्नेह सिक्त उर।
मधुर मिलन में मिट जाना तू
उसकी उज्ज्वल स्मित में घुल-खिल।
मंदिर-मंदिर मेरे दीपक जल। प्रियतम का पथ आलोकित कर।'

इनके रहस्यवाद के मूल में अद्वैतवाद की भावना निहित है। जीवन सदैव ब्रह्म के प्रति विकल रहता है, प्रतिक्षण सच्चे स्वरूप को पाने के लिए प्रयत्नशील होता है। महादेवी जी स्वयं को परब्रह्म ही का एक अंश मानती हैं। उनका अपना पृथक अस्तित्व कुछ नहीं। उन्हें अपने प्रियतम के सत्य स्वरूप का ज्ञान हो गया है। उनके दृष्टिकोण से अद्वैत की भावना तो उनके लिए है जो द्वैतवादी हैं। महादेवी तो अहम् ब्रह्मस्मि के सिद्धान्त को स्वीकार करती है, फिर प्रेयसी और प्रियतम के अभिनय की आवश्यकता ही क्या है? वे कहती हैं—

'तुम मुझ में प्रिय, फिर परिचय क्या।
मुझ में नित बनते मिटते प्रिय।
स्वर्ग मुझे क्या निष्क्रिय लय क्या?
काया छाया में रहस्यमय! प्रेयसी प्रियतम का अभिनय क्या।'

कबीर की भाँति महादेवी आत्मा की साधना में बहुत विश्वास रखती हैं। आत्मा अपनी इष्ट प्राप्ति के लिए कई प्रकार के प्रयत्न करती है। मिलनाकुलता में प्रतिक्षण आगे बढ़ती जाती हैं। महादेवी जी ने अपने ज्ञान का सूक्ष्म पथ चुना है। कर्मकाण्ड के पथ पर चलकर यज्ञादि को स्वीकार करना पड़ा है।

इसी प्रकार ज्ञानमार्ग में आध्यात्मिक प्यास की शांति के लिए चिंतन की आवश्यकता होती है। उनकी साधना हिमगिरि के समान महान् है। एक ओर जहाँ वे सांसारिक सुख-दु:ख से किसी प्रकार प्रभावित नहीं होती उन्होंने अपने आँसुओं से संसार के ताप को समाप्त करने का प्रयत्न भी किया है। महादेवी जी की साधना का मार्ग विवेक का मार्ग है। अत: उन्होंने स्थूल-पूजा का विरोध किया है। मूर्ति पूजा में जिन उपकरणों की आवश्यकता होती है, महादेवी जी को उनकी आवश्यकता नहीं। वे उपकरण उनके शरीर में सर्व सुलभ हैं—

'उस असीम का सुन्दर मन्दिर मेरा लघुतम जीवन रे,
मेरा श्वास करती रहती नित प्रिय का अभिनन्दन
पद रज को धोने उमड़े आते लोचन में जल कण रे,
स्नेह-भरा जलता है रिमझिम मेरा यह दीपक मन रे'

महादेवी जी ने वेदान्त के दर्शन (प्रतिबिम्बवाद) का ग्रहण भी कई स्थानों पर किया है। उन्होंने आत्मा के स्वरूप को संकुचित दायरे में निकाल कर उसे विराट् और व्यापक व्यक्तित्व प्रदान किया है। महादेवी जी की साधना इस स्थिति पर आकर चरम शोभा पहुँचती हुई ज्ञात होती है। उनकी आत्मानुभूति के उदाहरण—

नाश भी हूँ मैं अनन्त विकास का क्रम भी,
त्याग का दिन भी चरम आसक्ति का तप भी
तार भी आवाज भी झंकार की गति भी
पात्र भी मधु भी मधुप भी मधुर विस्तृत भी
अधर भी हूँ और स्मित की चाँदनी भी हूँ

इस प्रकार महादेवीजी ने धार्मिक रहस्यवाद को भी काव्य के रूप में ढालकर, कल्पना का पुट लगाकर जो रूप रखा है उसका कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है अपितु यह भारतीय दर्शन का प्राण तत्त्व है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल महादेवी जी की इस स्वाभाविक रहस्य साधना के विषय में लिखते हैं—'स्वाभाविक रहस्य साधना बड़ी मधुर और रमणीय है, इसमें सन्देह नहीं।'

रहस्यवादी कवियों ने प्रकृति के कोने-कोने में अपने प्रिय को खोजा है। अत: रहस्यवाद में भी प्रकृति के भव्य और उदात्त रूप का चित्रण करना, उसका संवेदनशील रूप दिखाना रहस्यवादी कवियों का मुख्य ध्येय रहा है। जायसी के पद्मावत और कबीर की उक्तियों में, पंत और प्रसाद के दार्शनिक दर्शन में प्रकृति का सहयोग निश्चित रूप से रहा है। महादेवी जी की रहस्य भावना और अनुभूतियों की वास्तविक अभिव्यक्ति में के लिए प्रकृति का मधुर संयोग आवश्यक है।

प्रश्न- 2. 'महादेवी जी के काव्य में जीवन की एकान्तिक अभिव्यक्ति है', इस कथन के आधार पर सिद्ध कीजिए कि महादेवी ने दु:खवाद को बड़े ही मधुर और कोमल शब्दों में व्यक्त किया है।

उत्तर—महादेवी जी के काव्य में जीवन की एकान्तिक अभिव्यक्ति हुई है। महादेवी के काव्य के लिए यह शिकायत प्राय: सभी कला प्रेमियों और साहित्यकारों ने की है। उनके कृतित्व में सामाजिक संघर्षण, वैषम्य तथा घात-प्रतिघात न होकर एक प्रकार की व्यथा व सम्मोहन तथा आंतरिक संघर्षण, वैषम्य तथा घात-प्रतिघात न होकर एक प्रकार की व्यथा का सम्मेलन तथा आंतरिक पीड़ा है। यह शिकायत पर्याप्त सीमा तक उचित है, परन्तु महादेवी जी का काव्य इसके लिए उत्तरदायी नहीं है। समाज, जीवन और तत्कालीन वातावरण में इस मर्म का तथ्य खोजना अधिक समीचीन होगा। कवि को दु:खवादी, निराशावादी घोषित करने से पहले यह आवश्यक है कि हम उस काल की परिस्थितियों से परिचय प्राप्त कर लें, जिस काल के माध्यम से उसने साहित्य साधना की और जिस काल में वह पनपा। यों तो विरह 'क्रन्दन कुरणा', विलाप आदि मनुष्य की चिरन्तन भावनाएँ हैं। मनुष्य पृथ्वी पर आकर कदाचित हँसा हो परन्तु उसके क्रन्दन से तो अखिल विश्व की करुणा द्रवीभूत हो चुकी है। महाकवि 'शैले' का यहाँ कहना था कि उसकी आत्मा चिरकाल से अपूर्णता से युद्ध करती हुई आगे बढ़ी। हमारे जीवन का मधुरतम गायन भी वही है जो हमारी प्रगाढ़तम वेदना की व्यंजना करने से समर्थ हो सके। महादेवी दु:खवाद को प्रकट करती हुई 'रश्मि' की भूमिका में लिखती हैं—'दु:ख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो समस्त विश्व को एक सूत्र में बाँधने की क्षमता रखता है। हमारे असंख्य सुख चाहे मनुष्य की पहली सीढ़ी तक भी न पहुँच सकें किन्तु हमारा एक बूँद आँसू भी जीवन को मधुर, अधिक उर्वर बनाए बिना नहीं गिर सकता। मनुष्य सुख को अकेला भोगना चाहता है परन्तु दु:ख सबको बाँट कर। विश्व जीवन में अपने जीवन को, विश्व-वेदना में अपनी वेदना को इस प्रकार मिला देना, जिस प्रकार एक जलबिन्दु समुद्र में मिल जाता है कवि का मोक्ष है।'

आदि कवि वाल्मिकी के आदि उद्गार के पीछे दु:खानुभूति ही कार्य कर रही थी। अलौकिक सौन्दर्य-प्रदर्शन से प्राप्त आनन्द में झूम-झूम कर गाने वाले माँ-भारती के अमर उपासक प्रसाद की वाणी भी वेदना से फूट पड़ी—

'वेदना निकल फिर आई चौदहों भुवन में
किन्तु उसे सुख लिया कहीं न दिखाई।'

कविवर पन्त का भी यही विश्वास है—

'वियोगी होगा पहला कवि
आह से उपजा होगा गान।'

इससे स्पष्ट है कि महादेवी जी ने भी दु:ख की व्यापक अनुभूत भूमि पर ही अपने काव्य जगत् की सृष्टि की है।

जीवन में पीड़ा की उत्पत्ति प्रिय दर्शन से होती है। प्रेमिका सदैव प्रिय दर्शन की बाट जोहती रहती है। परन्तु रहस्यवादियों के लिए एक बड़ी कठिनाई यह है कि उनका प्रिय अलक्ष्य और निराकार है जिसका साक्षात्कार असम्भव है। अत: जीवन में तड़पती रहकर भी महादेवी जी उर्मिला की भाँति लक्ष्मण से मिल नहीं सकती, गोपा की भाँति गौतम के दर्शन नहीं कर सकती। उनकी पीड़ा शाश्वत है। लौकिक प्रेम में विरह की सीमा होती है, वह सीमा जीवन व्यापिनी होती है। परन्तु यहाँ महादेवी जी के लिए दुहरी चोट है। फिर भी महादेवी जी ने वेदना अभिव्यक्ति में बड़े संयम से काम लिया है।

जिस समय 'नीहार' की रचना हुई उस समय उनकी अनुभूतियों में ठीक वैसी कौतुहल मिश्रित वेदना उमड़ आती थी जैसे बालक के मन में दूर दिखाई देने वली अप्राप्य सुनहरी उषा और दूर से सजल मेघों के प्रथम दर्शन से उत्पन्न होती है। किसी की दीन-दशा पर तुरन्त पिघल जाना महादेवी को अपनी करुणा हृदयामाता के विरासत में मिला था। वेदना के इस आरम्भिक रूप ने शीघ्र सहानुभूति को जन्म दिया और विश्व के दु:खी प्राणी उन्हें अपने दिखाई देने लगे। सहानुभूति ने उनके हृदय को दर्पण के समान ऐसा निर्मल कर दिया है कि उसमें उन्हें संसार के सुख-दु:ख अपने सुख-दु:ख के समान दिखाई देने लग गये थे। कवि मोक्ष की प्राप्ति के लिए ही मानो महादेवी जी स्वार्थ की संकुचित सीमा से परे हो गई है—

'अपनेपन की छाया तब देखी न मुकुर मानस ने,
उसमें प्रतिबिम्ब सबके दुःख लगते थे अपने।'

दुःखवादी अपने दुःखों को समस्त विश्व में व्यापक रूप में देखता है। महादेवी की प्रारम्भिक कविताओं में दुःख का यही स्वरूप है। मुरझाए फूल के दुःख से द्रवित हो वह कहती हैं—

मत व्यथित हो फूल! किसको सुख दिया संसार ने।
स्वार्थमय सबको बनाया है यहाँ करतार ने।
जब न तेरी ही दशा पर दुःख हुआ संसार को,
कौन रोयेगा सुमन हमसे मनुज निस्सार को?

महादेवी वेदना और दुःख को पर्यायवाची समझती हैं। उनके दुःख की व्यंजना सुख के अभाव के कारण नहीं वरन् हृदय में उठती हुई स्वाभाविक सहृदयता के कारण है, 'क्योंकि उनके जीवन में सुख का अभाव नहीं था। महादेवी जी सुख को महत्त्व नहीं देती। उनकी दृष्टि से सुख मरुभूमि में मृगमरीचिका सदृश्य है। जीवन की सबसे बड़ी प्रताडणा है जो मनुष्य को संकुचित, स्वार्थी, मदान्ध और संकर्ण बना देता है। सुख का आध्यात्मिक मूल्य कुछ नहीं। 'बलिहारी वा दुःखी की जो पलपल नाम रटाय' कबीर के इन शब्दों में दुःख की सार्थकता स्वतः सिद्ध है। महादेवी जी लिखती हैं—

'मृग मरीचिका के चिर पथ पर, सुख आता प्यासों के पगधर
रुद्ध हृदय के पट लेताकर,

गर्वित कहता—

'मैं मधु हूँ मुझसे पतझर का क्या नाता?'

दूसरी ओर दुःख हमारी प्रवृत्तियों को अधिक उदार तथा संवेदनशील बना देता है। अंग्रेजी कवि मेसफील्ड ने दुःख को उन्नति का संबल माना है—'चशा रीश ।खश सीशरीं ल्ॉहश ।ळसहीं ूषरश्रश्र' ग्रे ने भी दुःख को 'हुशी षिंहश हीशा हर्शीं' माना है। धीरे-धीरे दुःख का रूप इतना व्यापक हो जाता है कि दुःखी व्यक्ति की करुणा की स्रोतस्विनी समस्त चर विश्व में व्याप्त हो जाती है। महादेवी जी सुख का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं मानतीं। जब दुःख अपनी अन्तिम सीमा तक पहुँच जाता है तब वही दुःख सुख का रूप धारण कर लेता है। उन्होंने 'रश्मि' में लिखा है—

'चिर ध्येय यही जलने का ठंडी विभूति बन जाना,
है पीड़ा की सीमा यह दुःख का चिर सुख हो जाना!'

महादेवी जी चिर दुःख में ही अधिक सुख अनुभव करती हैं। वह अहर्निश दुःख का आह्वान करती हैं, उन्हें तो करुणानिधि का साक्षात्कार गहनतम अन्धकार में ही हो जाता है। इसलिए यदा-कदा जीवन में प्रकाशित होने वाली सुख तारिकाओं को बुझा देना चाहती हैं—

'करुणानिधि को भाता है
तम के परदे में आना,
हे नभ की तारावलियों तुम पल भर को छिप जाना!'

शाश्वत सुख की भावना सारे विश्व को, समस्त मानव जाति को एक सूत्र में बाँधने की क्षमता रखती है। उसके दुःख की व्यापक अनुभूति जब अपनी अन्तिम सीमा पर पहुँच जाती है तब एक बिन्दु अश्रु से न जाने कितने मरु हृदय उर्व हो उठते हैं—

'मैं नीर भरी दुःख की बदली! विस्तृत नभ का कोई कोना,
मेरा न कभी अपना होना परिचय इतना इतिहास यही
उमड़ी कल थी मिट आज चली!'

पीड़ा का संसार महादेवी के जीवन में अनजाने ही बस गया और महादेवी जी भी उसे संजोए चली जा रही हैं। क्योंकि वह उनके प्रियतम की देन है। दुःख इसलिए उन्हें प्रिय है। हार बनना है तो हृदय बिंधवाना ही होगा। महादेवी जी अपने जीवन में सदैव शून्यता का अनुभव करती हैं किन्तु उस सूनेपन में भी वह सदैव प्राणों का दीपक जलाकर उजाला करती रहती हैं—

'अपने इस सूने पन की मैं हूँ रानी मतवाली
प्राणों का दीपक जलाकर करती रहती दीवाली।'

महादेवी जी की पीड़ा और प्रियतम परस्पर इस प्रकार घुलमिल गए हैं कि दोनों में कोई अन्तर नहीं रह गया। इसलिए वह पीड़ा को सर्वस्व मानकर अपना और प्रियतम का मिलन नहीं चाहतीं—

'विरह का मत नाम ले मैं विरह में चिर हूँ।'

महादेवी जी को अभाव और अतृप्ति में एक प्रकार का उल्लास और आनन्द मिलता है। मिलन हो जाने पर जीवन में कोई हलचल नहीं रह जायेगी। जीवन सर्वथा मौन हो जायेगा और भावनाएँ हीन और जड़वत् हो जायेंगी। अत: महादेवी जी कहती हैं—

'एक करुण अभाव में चिर तृप्ति का संचार संचित
एक लघु कण दे रहा निर्वाण के वरदान शत-शत,
पा लिया मैंने किसे इस मधुर वेदना के क्रय में
कौन तुम मेरे हृदय में?'

इतना होने पर भी महादेवी जी का एक स्वप्न आवश्यक है जिसकी स्निग्धता से वे परिचित भी हैं। उनका विश्वास है आज का विषाद कभी सुख में अवश्य बदल जाएगा। जिस प्रकार जीवन के उषाकाल में मेरे सुखों का उपहास सा करती हुई विश्व के कण-कण में एक करुणा की धारा उमड़ पड़ी है उसी प्रकार संध्याकाल में जब लम्बी यात्रा से थका हुआ जीवन अपने ही भार से दबकर कातर क्रन्दन कर उठेगा तब विश्व के कोने-कोने में एक अज्ञात अपूर्व सुख मुस्करा उठेगा।' महादेवी जी का यही विश्वास है। 'नीरजा' में पहुँच कर महादेवी जी अपने इस कथन की सार्थकता सिद्ध करती हुई प्रतीत होती हैं। यहाँ कहीं-कहीं महादेवी दु:ख के साथ सुख का अनुभव कर लेती हैं। उनका विषाद 'सान्ध्यगीत' में जाकर मिट सा गया है और भावनाएँ परिष्कृत हो गई हैं। प्रियतम का कुछ-कुछ आभास होने से वह अपनी आत्मा को दीपक की भाँति कुछ-कुछ जलते रहने का आदेश देती हैं—

'मधुर-मधुर मेरे दीपक जल
युग-युग प्रतिदिन, प्रतिक्षण, प्रतिपल,
प्रियतम का पथ आलोकित कर!'

'सान्ध्यगीत' से आकर 'दीपशिखा' में उनकी साधना परमावस्था को पहुँच जाती है और विरह की घड़ियाँ उन्हें मधुर सी जान पड़ती हैं—विरह की घड़ियाँ हुई अलि मधुर मधुयामिनी सी।'

महादेवी के विरह-वेदन-समन्वित काव्य में आँसुओं का उल्लेख प्रचुर मात्रा में मिलता है। उनके काव्य में प्रवाहित पीड़ाधारा में आन्तरिक वृत्ति के देर तक निमग्न होते ही पाठक एक प्रकार की मनोव्यथा का अनुभव करने लगता है—

'पुलक-पुलक उर, सिहर-सिहर तन,
आज नयन आते क्यों भर-भर?
'शिथिल मधु-पवन गिन-गिन मधुकण
हर सिंगर झरते हैं झर-झर!
आज नयन आते क्यों भर-भर।'

महादेवी जी के अनुसार विश्व की सभी महान् विभूतियों में असीम वेदना और जलन छिपी है। वे सब विभूतियाँ इसलिए महान् हैं कि उनमें वेदना है, अनन्त पीड़ा है जिसकी स्पर्श बड़े-बड़े अचलों को भी चूर-चूर कर सकता है। कठोर से कठोर पत्थर को भी द्रवीभूत कर सकता है। एक छोटे से बीज में भी इतनी शक्ति है कि वह स्वयं को गलाकर असंख्य बीजों की सृष्टि कर दे। लघु दीपक भी स्वयं को जलाकर आलोक प्रदान कर सकता है। वसुन्धरा भी असंख्य तापों को अपने गर्भ में भरकर अपने क्षणिक उद्गारों से अनेक पर्वतों के वक्ष को हिला सकती है। फूल संसार को सुरभिपूर्ण करता हुआ झर पड़ता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि इस एक मिटने में सौ-सौ वरदान हैं और उनकी विफलताओं में ही उनका पूर्ति विकास है। यही सृष्टि का अमर विधान है—

'सृष्टि का है यह अमिट विधान,
एक मिटने में सौ वरदान,
नष्ट कब अणु का हुआ प्रयास,
विफलता में है पूर्ति विकास।'

महादेवी की कविता अपार्थिव चेतना के गिरि से फूटी हुई वेदना की मंदाकिनी है जो सहस्र- सहस्र अलौकिक भावनाओं की लहरियों को अपने क्रोड़ में खिलाती हुई अनन्त वेग से बढ़ी जा रही है। यद्यपि इनकी प्रत्येक कविता में अवसाद की भावना व्यक्त हुई है, परन्तु इन्होंने कहीं भी मुक्ति कामना प्रकट नहीं की 'चिर बटोही मैं', 'भाती तम की मुक्ति नहीं', 'प्यास ही जीवन', 'चिनगारी का भी मधु रस' आदि पंक्तियाँ उनकी चिर वेदना और विरह को प्रकट करती हैं। उनका हृदय जिसे अत्यन्त प्यार करता है उसके निकट पहुँचता है उसे प्यार करते हुए उसे स्पर्श करते हुए डरता है।

'रंगमय है देव पूरी
छू तुम्हें रह जाएगी यह चित्र मय क्रीड़ा अधूरी!
दूर रहकर खोलना पर मन न मेरा मानता है—
विरह का युग मिलन का पल
मधुर जैसे दो पलक चल
एकता इनकी तिमिर, दूरी खिलाती रूप शतदल।'

'रश्मि' की पूरी रचनाओं में कवयित्री की अतृप्ति से असन्तोष ही प्रकट हुआ है। इसी अतृप्ति के कारण महादेवी जी पीड़ा की ओर अग्रसर हुई हैं। ज्ञानी जैसे अन्तर में ब्रह्म का निवास बतलाते हैं वैसे ही महादेवी जी ने हृदय में पीड़ा का एकान्त और चिर निवास माना है। हठीली साधिका पीड़ा से छुटकारा नहीं चाहती। उसमें साधना करके फिर आनन्द प्राप्ति चाहती है—

'खोज हो फिर चिर प्राप्ति का वर,
साधना की सिद्धि सुन्दर।'
'अलि विरह के पथ में मैं तो न इति अथ मानती री।'
'मैं चिर पथिक वेदना का लिए न्यास।'

महादेवी जी को दु:ख का वह रूप प्रिय है जो मनुष्य के 'संवेदनशील हृदय को सारे संसार को एक अविछिन्न बन्धन में बांध देता है।' दूसरे शब्दों में समष्टिगत और व्यष्टिगत दोनों दु:ख महादेवी जी के प्रिय हैं। उन्होंने स्वयं अपने जीवन को दु:ख या पीड़ा से सिक्त माना है—

'चिन्ता क्या है हे निर्मम!
बुझ जाये दीपक मेरा,
हो जायेगा तेरा ही पीड़ा का राज्य अंधेरा!

अवश्य ही बचपन में दु:खवाद का जन्म इनके जीवन में हो गया था। क्योंकि असमय में इन्होंने महात्मा बुद्ध के आर्य सत्य को समझ लिया था कि इस संसार में दु:ख की सत्ता स्थूल और ठोस है। इसके साथ ही महादेवी भी बौद्धों के नैराश्यवाद को स्वीकार करती हैं।

अपने दु:ख की प्रतिच्छाया समस्त सृष्टि में देखने की प्रवृत्ति भी नयी नहीं है। महादेवी के काव्य में भी इसलिए ऐसी भावना मिलती हैं। इसी से प्रकट है कि महादेवी जी का व्यक्तिगत जीवन मानसिक संघर्ष अभाव तथा बुद्ध के दु:खवाद से प्रभावित था। महादेवी जी ने दु:ख को मधुर भाव के रूप में स्वीकार कर लिया है, जिसमें वे अपने परोक्ष प्रियतम के लिए सदैव आतुर रहती हैं। प्रिया-प्रियतम की इस आँख मिचौनी में उनका काव्य क्रीड़ामय हो गया है—

'प्रिय चिरन्तन है सजन, क्षण क्षण नवीन सुहागिनी मैं!'

तब से आज तक उनकी पीड़ा का अन्त नहीं हुआ। अत: वह कहती हैं—

इन ललचायीपलकों पर पहरा था जब पीड़ा का,
साम्राज्य मुझे दे डाला, उस चितवन ने पीड़ा का।

भारतीय सभ्यता में दु:खवाद कोई नयी क्रिया नहीं। इसकी आधारशिला प्राचीन- दर्शन शास्त्र है इसलिए यदि यह कहा जाए कि जहाँ तक महादेवी जी की दुखानुभूति का प्रश्न है वह प्राचीन पारिपाटी का अनुसरण है तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। इससे हमारा अभिप्राय यह कदापि नहीं कि महादेवी जी का दु:खवाद उनके जीवन के अभावों की प्रेरणा स्वरूप नहीं। यद्यपि उनके दु:खवाद की पुष्टि उनके जीवन के दु:खों ने ही की है, फिर भी उसकी आधारशिला प्राचीन ही है। स्वाभाविक रूप से दु:खवादी का ध्येय मुक्ति पाना या इसी प्रकार की कोई अवस्था है। यही भावना महादेवी की कई कविताओं में अभिव्यक्त है—

'रजत प्याले में निद्रा डाल,
बाँट देती जो रजनी बाल,
उसे कलियों में 'आँसू' घोल
चुकाना पड़ता किसका मोल?'
पीड़ा का साम्राज्य बस गया—
उस दिन दूर क्षितिज के पार—
'नहीं बस गाया जाता देव! थकी अंगुली हैं ढीले तार,
विश्ववीणा में अपनी आज मिला लो यह अस्फुट झंकार।'

इस प्रकार महादेवी जी का दु:खवाद कोई नवीन वस्तु नहीं। ठीक वैदिक काल के बाद इसी प्रकार के विचारों की धारा बहती चली आ रही है। भारतीय दर्शनों में जो संसार को निस्सार नश्वर मानने वाले संस्कार हैं वही बौद्ध, जैन आदि के दर्शनों की भी फिलासफी है। वहीं से दु:खवाद के सभी सिद्धान्त पनपे और पुष्ट हुए। महादेवी जी ने उस दु:खवाद को बड़े मधुर और कोमल शब्दों में व्यक्त किया है अत: उनकी कविता सब के आकर्षण का कारण बनी है।

प्रश्न- 3. 'महादेवी जी के काव्य में तीव्र विरहानुभूति के दर्शन होते हैं।' इस कथन के आलोक में महादेवी वर्मा की विरहानुभूति पर विचार कीजिए।

उत्तर—महादेवी वर्मा वेदना और करुणा की कवयित्री हैं। उन्होंने अपने काव्य में जो स्थान वेदना को दिया है वह किसी दूसरे तत्त्व को नहीं दिया। छायावादी परिवेश में महादेवी जी ने केवल वेदना को अपना आधार बनाया है किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि वेदना के अतिरिक्त और किसी भी तत्त्व के प्रति सजग और जागरूक नहीं हैं। वास्तव में महादेवी जी मूलत: तो वेदना की कवयित्री हैं किन्तु वेदना से जुड़ी हुई करुणा उनके काव्य का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। महादेवी जी के वेदनात्मक के दो पक्ष हैं दु:ख और आँसू। दु:ख वेदना का अनुभूति पक्ष है और आँसू उसका विरहात्मक परिणाम है। आँसू भी अंतर्दशा व्यंजक होने पर अनुभूति प्रवण हो सकता है। जहाँ तक महादेवी जी की वेदनाभूति अथवा विरहानुभूति का सम्बन्ध है, उसमें कुछ विशेष तत्त्व और प्रवृत्तियाँ मिलती हैं। महादेवी जी के समीक्षक कुमार विमल ने महादेवी जी की विरहानुभूति के सम्बन्ध में निम्नलिखित सात बातें कही हैं। जो इस प्रकार हैं—

विरहानुभूति की विशेषताएँ—1. वेदना महादेवी के काव्य की भाव सीमा है।

2. वेदनाभूति की तीव्रता के कारण महादेवी की कविताओं में उस आध्यात्मिक रचना की प्रचुरता है, जिसमें रोमांटिक अवसाद और रहस्यवादी पीड़ा (रोमांटिक मिल्टिक पेन) विद्यमान है।

3. महादेवी के विरह गीत जहां वेदना प्रवण अनुभूति के कारण अत्यन्त रसात्मक हो सके हैं वहां इनके दार्शनिक अनुभूत विचार सत्य नहीं बन सके हैं।

4. किन्तु इतना स्वीकार करना पड़ता है उनके वेदना- समन्वित विरह गीतों में मिलती जुलती करुणा अवश्य है।

5. विरह ही महादेवी का आराध्य है और कवयित्री में स्वयं उस विरह की आकुलता है इसलिए इनकी वेदनानुभूति भी विकलता से भरी हुई है—

'आकुलता ही आज हो गई तन्मय राधा।
विरह बना आराध्य द्वैत क्या कैसी बाधा?'

6. इस तरह विरह और वेदना की बहुलता के कारण हम महादेवी की रचनाओं में एक प्रकार की एकान्त निष्ठा पाते हैं—

'अपने इस सूनेपन की
मैं हूँ रानी मतवाली,
प्राणों का दीप जलाकर
करती रहती दीवाली।'

7. और अन्तिम विशेषता यह है कि महादेवी की वेदना कल्पनापरक नहीं है। इनकी वेदनानुभूति में कल्पना का वह माधुर्य है, जिसमें नारी भावनाओं का हृदय लावण्य भरा रहता है, जैसे—

'कौन आया था न जाने
स्वप्न में मुझको जगाने
याद में उन अंगुलियों के
हैं मुझे पर युग बिताने।'

स्वप्न में स्पर्श सुख देने वाली उन अंगुलियों की याद में जीवन व्यतीत करने की कल्पना अथवा साध कितनी मधुर है। सचमुच, ऐसी याद बड़ी मर्मान्तक होती है।

'चल तिवन के पूत सुना,
उनके पल में रहस्य की बात,
मेरे निर्निमेष पलकों में
मचला गये क्या-क्या उत्पात।
जीवन है उन्माद तभी से
निधियाँ प्राणों के छाले
माँग रहा है विपुल वेदना
के मन प्याले पर प्याले।'

महादेवी वर्मा की विरहानुभूति में वेदना की गहनता है, करुणा की प्रधानता है, भावोद्रेक की नैसर्गिकता है, नारी सुलभ सात्विकता है, अन्तर्दशाओं की विविधता है, विरह की आध्यात्मिकता है, भक्ति की तन्मयता है और विरह व्यथा की निरंतरता है। ये सभी विशेषताएँ महादेवी जी के काव्य में आसानी से देखी जा सकती हैं। इनका क्रमिक विवेचन इस प्रकार है—

1. प्रेम की गहनता—महादेवी की विरहानुभूति में प्रेम और वेदना की गहराई मिलती है। उनकी वेदना न तो कृत्रिम है और न आरोपित है। उसमें एक सहज स्वाभाविकता है समुद्र की गहराई है। महादेवी जी जहां भी कहीं देखती हैं वहीं उन्हें संसार दुख का सागर दिखाई देता है और सर्वत्र एक तड़प और एक टीस दिखलाई और सुनाई देती रहती है। वेदना में ही डुबी रहती हैं और उससे निकलकर बाहर आना नहीं चाहती हैं। कारण यह है कि उन्होंने वेदना को हृदय में छिपा रखा है।

2. करुणा की प्रचुरता—विरहानुभूति से जुड़ी हुई करुणा की भावना महादेवी जी के विरह काव्य की दूसरी प्रमुख विशेषता है। करुणा की गहराई और करुणा के प्रति आसक्ति भावना का विकास महादेवी जी के काव्य में कुछ तो वैयक्तिक कारणों से हुआ है और कुछ बौद्ध दर्शन के प्रभाव से। साथ ही यह भी भुलाने की चीज नहीं कि छायावाद एक प्रकार से उन्हीं के शब्दों में व्यथा का सबक था। उन्होंने अपनी करुणा भावना को अभिव्यक्ति करते हुए एक स्थान पर लिखा है—

'विरह का जलजात जीवन, विरह का जलजात,
वेदना में जन्म करुणा में मिला आवास,
अश्रु चुनता दिवस इसका अश्रु गिनती रात।'

इसी करुणा से ओत-प्रोत रहने के कारण महादेवी जी ने यह स्पष्ट कर दिया है कि करुणा के जल में स्नान करने के पश्चात् ही मानवीय दु:ख उज्ज्वल हो जाता है, वह विषाद की कालिमा से अलग हो जाता है और निजी सीमाओं को तोड़कर सर्ववाद का स्वरूप ग्रहण कर लेता है। इसी सन्दर्भ में उन्होंने लिखा है—

'शून्य मन्दिर में बनूँगी आज मैं प्रतिमा तुम्हारी,
अर्चना हो शूल भोले, क्षार दृग जल अर्घ होले।
आज करुणा स्नान उजला, दुख हो मेरा पुजारी।'

3. भावोद्रेक—महादेवी वर्मा की विरहानुभूति में भावोद्रेक की स्वाभाविकता के दर्शन होते हैं। इसका कारण यही है कि महादेवी जी की 'अनुभूतियाँ' न तो कृत्रिम हैं और न बाह्य आडम्बरों से युक्त हैं। उनके विरह में जो स्वाभाविकता, सरसता, सरलता मिलती है उससे उन्होंने कहीं भी वेदना को हाहाकार की सीमा तक नहीं जाने दिया है। यही कारण है कि उनकी वेदना में अतिशयोक्ति नहीं है अपितु एकाकीपन की नीरवता व्याप्त है। मात्र इसी गुण के कारण महादेवी जी के विरह भावना सहज, सरल, तरल और स्वाभाविक हो गई है। उन्होंने अनेक गीतों में इस भावोद्रेक को स्पष्ट किया है—

'जो तुम आ जाते एक बार,
कितनी करुणा कितने संदेश,
मन में छा जाते बार-बार।'

इतना ही नहीं महादेवी के 'कौन तुम मेरे हृदय में', 'दिया क्यों जीवन का वरदान', 'मैं नीर भरी दु:ख की बदली' और 'प्राण पिक पिय नामैं रे कह' जैसे गीतों में भी भावाद्रेक को देखा जा सकता है—

4. नारी जनोचित सात्विकता—महादेवीजी नारी हैं। इसी कारण उनके कोमल हृदय में जिस वेदना का संचार हुआ है वह नारी जनोचित है। उसमें न कहीं कटुता है, न कहीं द्वेष है, न कहीं घृणा है और न कहीं प्रतिकार की भावना है। डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना ने लिखा है कि 'महादेवी जी की वेदना तो अपनी सहज विवृत्ति में विश्व वेदना बन गई है जिसमें सम्पूर्ण मानवता का शोक भरा हुआ है, सम्पूर्ण जनता का विषाद भरा हुआ है और सम्पूर्ण दु:खी हृदयों का क्रन्दन समाया हुआ है। यह प्रेम वेदना एक कोमल नारी हृदय की तड़पन से आप्लावित है इसीलिए इसमें करुण भावों की कम्पन्न हिलोरें ले रही है' महादेवी जी की विरह युक्त वाणी में न केवल सात्विकता है अपितु एक प्रकार की सत्यानुभूति भी है। उन्होंने लिखा है—

'हँस उठते पल में आर्द्र नयन,
घुल जाता होंठों में विषाद,
छा जाता जीवन में बसंत,
लुट जाता चिर संति विराग।'

5. अन्तर्दशाओं की व्यापकता और विविधता—भारतीय आचार्यों ने कहा है कि विरह का सम्बन्ध विप्रलम्भ श्रृंगार से है और इसकी दस अन्तर्दशाएँ होती हैं। इन अन्तर्दशाओं में अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, गुण कथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मरण को स्थान प्राप्त है। महादेवी जी के काव्य में इन सभी अन्तर्दशाओं का वर्णन प्राप्त हो जाता है। कुछ अन्तर्दशाओं के उदाहरण इस प्रकार हैं—

चिन्ता और उद्वेग—

'किसमें देख सँवारूँ कुन्तल,
अंगराग पुलकों का मलमल,
स्वप्नों से आँसू पलकें चल,
किस पर रीझूँ किससे रूठूँ।
भर लूँ किस छवि से अन्तरम।
टूट गया वह दर्पण निर्मम।'

उन्माद—नयन श्रवणमय श्रवण नयनमय आज हो रही कैसी उलझन।
रोम रोम में होता री सखि एक नया उर का सा स्पन्दन।
पुलकों से भर फूल बन गये जितने प्राणों के छाले हैं।'
अलि क्या प्रिय आने वाले हैं।

गुण कथन—

बिछाती थी सपनों के जाल तुम्हारी वह करुणा की कोर,
गयी वह अधरों की मुस्कान मुझे मधुमय पीड़ा से बोर,
गये तब से कितने युग बीत हुए कितने दीपक निर्वाण,
नहीं पर मैंने पाया तुम्हारा सा मन मोहन गान।
भटक जाता पागल वात या धूलि में तुहिन कणों के हार,
सिखाने जीवन का संगीत, तभी तुम आये थे इस पार।
भूलती थी मैं सीखे राग, बिछले थे कर बारम्बार,
तुम्हें तब आता था करुणेश उन्हीं मेरी भूलों पर प्यार।

6. विरह की आध्यात्मिकता—महादेवी वर्मा प्रमुख रूप से रहस्यवादी कवयित्री हैं। यही कारण है कि उनकी विरह वेदना में आध्यात्मिकता अथवा रहस्यवादिता का पुट दिखाई देता है। महादेवी जी की आध्यात्मिकता नूतन है। अत: इस नूतन आध्यात्मिक अनुभूति ने उस वस्तुवादी दृष्टिकोण को भी अपनी ओर आकर्षित कर लिया है। जो व्यर्थ प्रतीत होता है। लौकिक प्रणय में अलौकिक प्रणयानुभूति का सामंजस्य करके महादेवी जी ने अपनी नव धारा को बड़ी सफलता के साथ व्यंजित किया है। अपनी आध्यात्मिक भावना के कारण ही वे चन्द्र ज्योत्सना को अपने प्रिय की मुस्कराहट से घटती हुई मानती हैं, तारों को प्रिय के नेत्र की पुतलियाँ मानती हैं, आकाश को उसके अवसाद का आभास मानती हैं और कहती हैं—

'स्मित तुम्हारी छलक यह ज्योत्सना अम्लान,
जान कब पायी हुआ उसका कहाँ निर्माण।
अमल पलकों जड़ी सी तारिकायें दीन,
ढूँढती उसका पता विस्मित निमेष- विहीन।
गगन जो तेरे विशद अवसाद का आभास,
पूछता किसने दिया यह नीलिमा का न्यास
निठुर क्यों फैला दिया, यह उलझनों का जाल,
आप अपने को जहाँ सब ढूँढते बेहाल।'

7. भक्ति की तन्मयता—महादेवी की विरह भावना में जितनी आध्यात्मिकता है। उतनी ही एक भक्त हृदय की तन्मयता दिखाई देती है। जिस प्रकार कोई भक्त अपने भगवान पर सब कुछ अर्पित कर देता है, उसी प्रकार महादेवी जी ने भी अपना सर्वस्व अपने प्रिय आराध्य के ऊपर अर्पित कर रखा है। इस समर्पण के पश्चात् वे अपने प्रिय की पूजा अर्चना में संलग्न रहती हैं। ध्यान देने की बात यह है कि उनका प्रियतम साकार नहीं निराकार है। ससीम नहीं असीम है और सगुण न होकर निर्गुण है। इसी भावना से प्रभावित होकर उन्होंने लिखा है—

'क्या पूजा क्या अर्चन रे?
उस असीम का सुन्दर मन्दिर मेरा लघुतम जीवन रे।
मेरी श्वासें करती रहती नित प्रिय का अभिनन्दन रे।
पदरज को धोने उमड़े आते लोचन में जल कण रे।
अक्षर पुलकित रोम, मधुर मेरी पीड़ा का चन्दन रे।
स्नेह भरा जल है, झिलमिल मेरा यह दीपक मन रे।
मेरा दृग के तारक में नव उत्पल का उन्मीलन रे।
धूप बन उड़ते जाते हैं, प्रतिपल मेरे स्पन्दन रे।
प्रिय प्रिय जपते अधर, ताल देता पलकों का नर्तन रे।'

8. विरह व्यथा की निरन्तरता—महादेवी वर्मा की विरह भावना किसी प्राकृतिक झरने की भाँति निरन्तर प्रवाहित होती रहती हैं। उसमें जल स्रोत की तरह अखण्ड गति है। आकाश की असीमितता है। सिन्धु की तरह व्यथा की गहनता है और पृथ्वी की तरह सहनशीलता है। कवयित्री वर्मा और उनकी विरह वेदना दोनों मिलकर एकाकार हो गई हैं। इसी एकाकार स्थिति के कारण वे अपने जीवन दीपक को निरन्तर जलाये रखने की कामना प्रकट करती हैं—

'मधुर- मधुर मेरे दीपक जल,
युग- युग प्रतिपल प्रिय का पथ आलोकित कर।'

इतना ही नहीं, महादेवी जी मिलन का तो नाम ही नहीं लेना चाहती और सदैव अपनी भावना में डूबी रहना चाहती हैं। निरन्तर विरह में डूबी रहने के कारण ही उन्होंने स्पष्ट रूप से यह लिखा है।

'शून्य मेरा जन्म था, अवसान है मुझको सवेरा।
प्राण आकुल के लिए संगी मिला केवल अन्धेरा।
मिलन का मत नाम ले मैं विरह में चिर हूँ।'

विरह में निरन्तर डूबी रहने के कारण ही उन्होंने अपने आपको नीर भरी हुई दु:ख की बदली कहा है। एक ऐसी बदली जिसके करुण-क्रन्दन में व्यथित विश्व हँसता दिखाई देता है। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में अपने विषय में घोषणा करते हुए यह गीत लिखा है—

'मैं नीर भरी दु:ख की बदली हूँ।
स्पन्दन में चीर निस्पन्दन बसा, क्रन्दन में आहत विश्व हँसा
नैनों में दीपक से जलते, पलकों से निरझरनी मचली।'

कहने का तात्पर्य यह है कि विरह की आराधना करते-करते महादेवी वर्मा स्वयं इसी तरह आराध्यमय हो गई हैं। उनकी विरह व्यथा अजस्र है। उन्होंने अपनी वेदना की इस स्थिति को स्पष्ट करते हुए लिख दिया है—

'मैं सजग चिर साधना ले।
सजग प्रहरी से निरन्तर, जागते अलि रोम निर्झर,
निमिष के बुद्बुद् मिटाकर एक रह हैं समय सागर।
हो गई आराध्यमय मैं विरह की आराधना से।'

6.3 सारांश

संक्षेप में कह सकते हैं कि महादेवी वर्मा की विरह वेदना अत्यन्त व्यापक और अनुभूतिपूर्ण है। उनकी अनुभूतियों का वेग है, भावुकता की चरम सीमा है, वेदना की सहजता है, करुणा और रहस्यात्मकता की अभिव्यंजना है तथा विरह की विविध अन्तर्दशाओं का निरूपण है। ऐसी स्थिति में यह कहा जा सकता है। महादेवी जी वेदना की कवयित्री हैं, करुणा की गायिका हैं और अपने कोमल मधुर भावों से पीड़ा का संसार लुटाती हुई सभी पाठकों को आकर्षत किए हुए हैं।

6.4 अभ्यास प्रश्नावली

1. महादेवी वर्मा के विरहानुभूति की विशेषताएँ बताइये।
2. महादेवी के काव्यों की विशेषताएँ बताइये।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई - 7
सुमित्रानन्दन पंत

संरचना

7.0 कवि परिचय

7.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

7.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

7.2.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

7.2.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

7.2.3 निबंधात्मक प्रश्न

7.3 सारांश

7.4 अभ्यास प्रश्नावली

7.0 कवि परिचय

सुमित्रानन्दन पंत का जन्म उत्तरप्रदेश के जिला अल्मोड़ा के कौसानी नामक गाँव में हुआ था। इनके पिता का नाम गंगादत्त पंत और माता का नाम सरस्वती देवी था। जन्म के 6 घंटे बाद ही माता की स्नेहमयी गोद से इन्हें वंचित होना पड़ा। मातृस्नेह से वंचित गुसाईं दत्त (सुमित्रानन्दन पंत) को अल्मोड़ा की प्राकृतिक सुषमा ने बचपन से ही अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। वाराणसी से हाईस्कूल की परीक्षा पास करके ये प्रयाग के म्योर सैण्ट्रल कॉलेज में प्रविष्ट हुए लेकिन असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ होने पर इन्होंने 1921 ई. में कॉलेज छोड़ दिया और साहित्य साधना में प्रवृत्त हुए।

पंत को 'प्रकृति का सुकुमार कवि' कहा जाता है। उनकी छायावादी कविताओं में प्रकृति और सौन्दर्य के अत्यन्त अभिभूत कर देने वाले चित्र मिलते हैं। पंत के काव्य में सर्वप्रथम कला उसके उपरान्त विचारों का और अन्त में भावों का स्थान रहता है। आशय यह है कि उनके काव्य में शिल्प का बहुत महत्व है। पंत जी की भाषा अत्यन्त चित्रमयी एवं अलंकृत है जिसमें प्रत्येक शब्द का अपना विशिष्ट महत्त्व है। वर्ण, गन्ध, ध्वनि, नाद का उन्होंने अपनी कविता में सजीव चित्रण किया है। 'उच्छ्वास' (1920), 'ग्रन्थि' (1920), 'वीणा' (1927), 'पल्लव' (1928) और 'गुंजन' (1932) उनके छायावादी काव्य संग्रह हैं।

छायावादी काव्य के प्रवर्तक कवियों में तो पंत का स्थान महत्त्व है ही साथ ही हिन्दी में प्रगतिवादी काव्य का सूत्रपात करने वाले कवियों में भी पंत प्रमुख हैं। उनकी काव्य साधना विषय एवं शैली की दृष्टि से सदैव गतिशील रही है। 'युगान्त' (1936), 'युगवाणी' (1939) और 'ग्राम्या' (1940) प्रगतिवादी एवं मार्क्सवादी दर्शन से प्रभावित काव्य कृतियाँ हैं। प्रगतिवाद के मुखपत्र 'रूपाभ' का सम्पादन भी नरेन्द्र शर्मा के साथ पंत ने किया। 'रूपाभ' में उनकी प्रगतिवादी विचारधारा की पोषक कविताएँ ही छपी हैं।

'ग्राम्या' से आगे की अपनी काव्य-यात्रा में पंत जी अरविन्द दर्शन से प्रभावित होकर भौतिकवाद और अध्यात्मवाद का समन्वय करना चाहते हैं। 'स्वर्ण किरण', 'स्वर्ण धूलि', 'उत्तरा', 'अतिमा' आदि रचनाओं में पंत ने अरविन्द वादी धारणाओं को रूपक या प्रतीक के माध्यम से व्यक्त किया है। 'लोकायतन' उनका महाकाव्य है और 'चिदम्बरा' उनकी चुनी हुई कविताओं का संकलन है जिस पर इन्हें 'भारतीय ज्ञानपीठ' पुरस्कार मिला था।

हिन्दी भाषा को प्राचीन रूढ़ियों से मुक्त कर नवीन दिशा की ओर मोड़ने तथा खड़ी बोली की रमणीयता प्रदान करने में पंतजी का विशेष योगदान है।

7.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

एक तारा

(1)

अब हुआ सांध्य स्वर्णाभ लीन,
सब वर्ण वस्तु से विश्व हीन!

गंगा के चल जल में निर्मल, कुम्हला किरणों का रक्तोत्पल
है मूँद चुका अपने मृदु दल!
लहरों पर स्वर्ण रेख सुन्दर, पड़ गई नील, ज्यों अधरों पर
अरुणाई प्रखर शिशिर से डर!
तरु शिखरों से वह स्वर्ण विहग, उड़ गया खोल निज पंख सुभग
किस गुहा नीड़ में से किस मग!
मृदु-मृदु स्वप्नों से भर अंचल, नव नील-नील कोमल-कोमल
छाया तरु-वन में तम श्यामल!

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक में संकलित सुमित्रानन्दन पंत द्वारा रचित 'एक तारा' शीर्षक कविता से अवतरित है। यहाँ कवि ने सूर्यास्त हो जाने के बाद बढ़ते हुए अन्धकार का चित्रण किया है।

व्याख्या—कवि कहता है कि सायंकाल जब अपनी सुनहरी आभा को संसार में फैलाने वाला सूर्य अस्त हो गया तो सम्पूर्ण जग नाम, रूप, रंग आदि विविधता से हीन हो गया। सूर्यास्त होने के कारण संसार में वस्तुओं का अस्तित्व लीन हो जाना भी स्वाभाविक है। इसलिए कुछ समय पूर्व जो सूर्य गंगा के चंचल और पवित्र जल पर प्रतिबिम्बत हो रहा था, अब उस स्वर्ण कमल ने संध्या के कारण अपनी कोमल किरणों को समेट लिया है। जिस प्रकार सायंकाल में कमल की पंखुड़ियाँ कुम्हला जाती हैं उसी प्रकार आकाश के स्वर्ण-कमल ने भी अपनी पंखुड़ियों को समेट लिया है। गंगा की लहरों पर क्रीड़ा-मग्न सुनहरी रेखाएँ भी धीरे-धीरे नीली पड़ने लगी हैं। जिस प्रकार कड़कती सर्दी के कारण किसी के कोमल, मधुर और गुलाबी होठ नीले पड़ जाते हैं, उसी प्रकार गंगा की तरंगों पर भी अन्धकार समा गया है। सूर्यास्त के पूर्व का दृश्य स्मरण करते हुए कवि आश्चर्य प्रकट करता हुआ कहता है कि अभी कुछ समय पहले वृक्षों की चोटियों पर जो सुनहरा पक्षी बैठा था वह अपने पंखों को खोलकर कोने के मार्ग से किसी घोसले में चला गया है। सूर्यास्त से पहले उसकी किरणों का प्रकाश ऊँचे-ऊँचे भवनों, पर्वत-शिखरों या वृक्षों के शिखरों पर पड़ता है। कवि ने उस सुनहरी आभा के छुप जाने पर यही आश्चर्य प्रकट किया है कि वो कैसे और किस मार्ग से कहाँ चला गया है। अब तो चारों ओर प्रकृति के कण-कण में नीला-नीला कोमल, श्यामल अन्धकार छा गया है। जो अपने आँचल में अनेक प्रकार के मधुर, आकर्षक और मादक सपनों को भरकर लाया है।

विशेष—1. कवि ने संध्याकालीन वातावरण की सजीव सृष्टि की है।
2. अनुप्रास, रूपक, पुनरुक्ति तथा मानवीकरण अलंकार का प्रयोग दृष्टव्य है।

(2)

चिर अविचल पर, तारक अमंद!
जानता नहीं वह छन्द-बन्ध!
वह रे अनन्त का मुक्त मीन, अपने असंग सुख में विलीन,
स्थित निज स्वरूप में चिर नवीन!
निष्कंप शिखा-सा वह निरूपम, भेदता जगत-जीवन का तम,
वह शुद्ध, प्रबुद्ध, शुक्र वह सम!
गुंजित अलि सा निर्जन अपार, मधुमय लगता घन अंधकार,
हलका एकाकी व्यथा भार!
जगमग-जगमग नभ का आँगन, लद गया कुंद कलियों से घन,
वह आत्म और यह जग-दर्शन!

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक 'आधुनिक काव्य-संग्रह' में संकलित प्रकृति के सुकुमार कवि सुमित्रानन्दन पंत द्वारा रचित 'एक तारा' शीर्षक कविता से अवतरित है। कवि ने अनन्त आकाश में एकाकी चमकने वाले नक्षत्र को ब्रह्म का स्वरूप देकर चित्रित किया है।

व्याख्या—कवि कहता है कि संध्याकाल में आकाश में हमेशा चमकने वाला यह नक्षत्र कभी मन्द नहीं पड़ता है। यह स्वतंत्र है और किसी प्रकार के नियम-उपनियमों में इसे बाँधा नहीं जा सकता है। जिस प्रकार अनन्त सागर में विहार करने वाली मछली निर्बाध गति से समुद्र में क्रीड़ा करती है उसी प्रकार अनन्त आकाश में यह एकाकी चमकता हुआ नक्षत्र अपनी प्रकाश-रश्मियों को विकीर्ण

करता रहता है। यह नक्षत्र योगी के समान सभी प्रकार के बन्धनों से रहित वीतरागी बनकर अपनी साधना में तन्मय रहता है। यह अपनी निर्मलता से हमेशा चिर नवीन ही रहता है। यह नक्षत्र उस परम तत्त्व ब्रह्म के समान शुद्ध, सात्विक, ज्ञानमय, तेजस्वी और समरस है। यह दीपशिखा के समान निरन्तर जलते हुए संसार के जीवन में परिव्याप्त अज्ञान रूपी अन्धकार को समाप्त करता रहता है। यह ज्योतिस्वरूप तारा एकान्त आकाश में भँवरे के गुंजन के समान और घने अन्धकार में बहुत ही सुन्दर लगता है। परन्तु वह अकेलेपन के कारण व्यथा से उक्षिप्त भी प्रतीत होता है। कवि कहता है कि उस एक तारे के प्रकाश से सम्पूर्ण आकाश उसी प्रकार जगमगाता रहता है जिस प्रकार ब्रह्म की पावन ज्योति से यह संसार आलोकित होता रहता है। वह कुन्द की श्वेत-सुन्दर कलियों के समान अपनी रश्मियों से इस धरा को पूरित करता है। वह नितान्त आत्मनिष्ठ होता हुआ भी समस्त संसार में नवीनता का संचार करता है।

विशेष—1. कवि ने तारे के माध्यम से सृष्टि-प्रक्रिया का प्रतिपादन किया है।

2. रूपक, अनुप्रास, उपमा, विरोधाभास तथा पुनरुक्ति अलंकार का प्रयोग दृष्टव्य है।

नौका विहार

(1)

अब पहुँची चपला बीच धार,
छिप गया चाँदनी का कगार!
दो बाँहों से दूरस्थ तीर धारा का कृश कोमल शरीर
आलिंगन करने को अधीर!
अति दूर, क्षितिज पर विटप-माल, लगती भू-रेखा सी अराल,
अपलक-नभ नील-नयन विशाल,
माँ के उर पर शिशु सा, समीप, सोया धारा में एक द्वीप,
उर्मिल प्रवाह को कर प्रतीप,
वह कौन विहग? क्या विकल कीर, उड़ता हरने निज विरह शोक?

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक 'आधुनिक काव्य-संग्रह' में संकलित सुमित्रानन्दन पंत द्वारा रचित 'नौका विहार' शीर्षक कविता से लिया गया है। कवि ने नौका-विहार के अन्तर्गत देखे हुए प्रकृति सुन्दरी के रूप का मनोहारी चित्रण किया है।

व्याख्या—कवि कहता है कि विहार करते हुए वह छोटी-सी नौका अपनी चपल गति से जब मध्य धारा में पहुँची तो उस समय चारों ओर अनन्त चन्द्रिका का विस्तार ही दिखाई देता था। उस वातावरण में किनारों का अस्तित्व भी जैसे लीन हो गया हो। कवि गंगा की धारा को नायिका का कोमल और दुर्बल शरीर मानकर शेष प्रकृति को उसके ही अंग-प्रत्यंग मानते हुए कहता है कि नदी के दो किनारे ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे किसी को आलिंगन पाश में लेने को आतुर होकर फैले हुए हों। परन्तु दूर वृक्षों की लम्बी और घनी पंक्तियां उस प्रकृति नायिका की लम्बी और टेढ़ी भौहों के समान देखने के लिए आतुरता के कारण फैली हुई हैं। आकाश भी अपने नीले नेत्रों से धरती की ओर निहार रहा है। पृथ्वी हो या आकाश, प्रेम की उत्सुकता सभी में है, किन्तु इस संसार में प्रेम की उत्सुता ही बनी रहती है, मिलन तो इस संसार में सम्भव नहीं हो पाता। गंगा की धारा में एक द्वीप देखकर कवि कहता है कि इस द्वीप से टकराकर लौटाने वाला मानता है। संसार में मातृत्व भाव के समक्ष अन्य भावनाएँ गौण पड़ जाती हैं, यही कारण है कि लहरें उस द्वीप से टकरा कर लौट जाती हैं। अचानक चकवे की आवाज सुन

कर कवि विचार करता है, क्या यह विरह-व्यथा से पीड़ित चकवा है जो अपनी छाया को ही चकवी मानकर अपने शोक को हल्का करने के लिए बोल रहा है। भ्रम के कारण ही चकवा अपने वियोग दु:ख को समझता है तो कवि उसके प्रति सहानुभूतिपूर्ण हो उठता है। क्योंकि वास्तविकता का ज्ञान होने पर उसकी व्यथा कई गुना अधिक हो जाएगी।

विशेष—1. कवि ने प्रकृति को सजीव व्यक्तित्व देकर साकार करने का सफल प्रयास किया है।

2. रूपक, मानवीकरण तथा उत्प्रेक्षा अलंकारों का प्रयोग दृष्टव्य है।

(2)

ज्यों-ज्यों लगती है नाव पार,
उर में आलोकित शत विचार!
इस धारा सा ही जग का क्रम, शाश्वत इस जीवन का उद्गम
शाश्वत है गति, शाश्वत संगम!
शाश्वत नभ का नीला विकास, शाश्वत शशि का यह रजत हास,
शाश्वत लघु लहरों का विलास।
हे जग-जीवन के कर्णधार! चिर जन्म-मरण के आर-पार,
शाश्वत जीवन-नौका विहार!
मैं भूल गया अस्तित्व ज्ञान, जीवन का यह शाश्वत प्रमाण,
करता मुझको अमरत्व दान!

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक 'आधुनिक काव्य-संग्रह' में संकलित सुमित्रानन्दन पंत द्वारा रचित 'नौका विहार' शीर्षक कविता से लिया गया है। इसमें कवि ने नौका-विहार को जीवन का रूपक प्रदान कर उसके गतिशील चक्र को शाश्वत बताया है।

व्याख्या—कवि कहता है कि गंगा की पावन-धारा से जैसे-जैसे नौका तट की ओर बढ़ती है, वैसे-वैसे उसके सम्बन्ध में हृदय में अनेक प्रकार के विचार उठने लगते हैं। उस समय ऐसी अनुभूति होती है कि गंगा की धारा के समान ही इस संसार की गति का भी क्रम है। गंगा की पावन धारा के उद्गम के समान जीवन का भी उद्गम अनवरत रूप से चला आ रहा है। यह एक शाश्वत प्रक्रिया है। जीवन की गतिशीलता शाश्वत है और संगम भी शाश्वत है। नीले आकाश का विकास भी शाश्वत है और चन्द्रमा की सफेद चाँदी जैसी चाँदनी का हास ही शाश्वत है। इसी प्रकार गंगा की छोटी-छोटी लहरों का उठना और मिटना भी शाश्वत है। कवि कहता है कि हे सांसारिक जीवन के कर्णधार, इस संसार में जन्म-मरण के क्रम में जीवन रूपी नौका की गतिशीलता भी हमेशा बनी रहती है अर्थात् जीवन रूपी नौका विहार भी शाश्वत है, किन्तु आज गंगा-विहार के माध्यम से मुझे जीवन की सत्यता का प्रमाण मिल गया है जो मुझे अमरत्व प्रदान कर रहा है।

विशेष—1. कवि ने नौका-विहार के माध्यम से जीवन की शाश्वतता की ओर संकेत किया है। इसमें कवि के जीवन-दर्शन की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है।

2. उपमा, रूपक, अनुप्रास तथा मानवीकरण अलंकारों का प्रयोग दृष्टव्य है।

7.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

7.2.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न- 1. 'प्रकृति का सुकुमार कवि' किसे कहा जाता है?

उत्तर—'प्रकृति का सुकुमार कवि' सुमित्रानन्दन पंत को कहा गया है।

प्रश्न- 2. पंतजी के प्रमुख काव्य-संग्रहों के नाम बताइए।

उत्तर—पंतजी के प्रमुख काव्य-संग्रह—उच्छ्वास, ग्रन्थि, वीणा, पल्लव, गुंजन हैं।

प्रश्न- 3. सुमित्रानन्दन पंत के बचपन का क्या नाम था?

उत्तर—सुमित्रानन्दन पंत के बचपन का नाम गुसाईं दत्त था।

प्रश्न- 4. पंत द्वारा रचित महाकाव्य का नाम बताइये।

उत्तर—पंत द्वारा रचित महाकाव्य 'लोकायतन' है।

प्रश्न- 5. पंत द्वारा रचित प्रथम कविता कौन-सी थी?

उत्तर—पंत द्वारा रचित प्रथम कविता 'तम्बाकू का धुआँ' थी।

प्रश्न- 6. पंत की मार्क्स दर्शन से प्रभावित कौन-कौनसी काव्यकृतियाँ हैं?

उत्तर—पंत की मार्क्स दर्शन से प्रभावित काव्यकृतियाँ—युगान्त, युगवाणी और ग्राम्या हैं।

प्रश्न- 7. पंतजी को किस काव्य- संग्रह पर भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला था?

उत्तर—पंतजी को 'चिदम्बरा' काव्य- संग्रह पर 'भारतीय ज्ञान पीठ' पुरस्कार मिला था।

प्रश्न- 8. 'एक तारा' शीर्षक कविता किस कवि द्वारा रचित है?

उत्तर—'एक तारा' शीर्षक कविता सुमित्रानन्दन पंत द्वारा रचित है।

प्रश्न- 9. कवि पंत ने 'एक तारा' को किस रूप में प्रस्तुत किया है?

उत्तर—कवि पंत ने 'एक तारा' को ज्योति, विवेक, योगी, मुक्त पुरुष और निरन्तर साधना में लीन रहने वाला साधक रूप में प्रस्तुत किया है।

प्रश्न- 10. 'नौका विहार' शीर्षक किस कवि की रचना है?

उत्तर—'नौका विहार' शीर्षक कवि सुमित्रानन्दन पंत की रचना है।

प्रश्न- 11. 'नौका विहार' शीर्षक कविता को किस काव्यधारा की प्रतिनिधि रचना माना जाता है?

उत्तर—'नौका विहार' रचना को छायावादी काव्यधारा की प्रतिनिधि रचना माना जाता है।

प्रश्न- 12. 'नौका विहार' शीर्षक कविता में कवि ने किसका चित्र प्रस्तुत किया है?

उत्तर—'नौका विहार' शीर्षक कविता में कवि ने चन्द्रिका-स्नात रात्रि में नौका विहार का वर्णनात्मक चित्र प्रस्तुत किया है।

प्रश्न- 13. 'माँ के उर पर शिशु- सा समीप सोया' इस कथन में कवि ने किसे शिशु बताया है?

उत्तर—इस कथन में कवि पंत ने नदी की धारा के मध्य स्थित लघु द्वीप को शिशु बताया है।

प्रश्न- 14. 'मैं नहीं चाहता चिर सुख' शीर्षक कविता के रचनाकार का नाम बताइये।

उत्तर—'मैं नहीं चाहता चिर सुख' शीर्षक कविता के रचनाकार सुमित्रानन्दन पंत हैं।

प्रश्न- 15. 'मैं नहीं चाहता चिर सुख' कविता में किसके समन्वय से कवि जीवन में परिपूर्णता लाना चाहता है?

उत्तर—'मैं नहीं चाहता चिर सुख' कविता में कवि सुख- दु:ख के मधुर मिलन से जीवन में परिपूर्णता लाना चाहता है।

प्रश्न- 16. 'मैं नहीं चाहता चिर सुख' शीर्षक कविता में कवि ने किस भावना की अभिव्यक्ति की है?

उत्तर—'मैं नहीं चाहता चिर सुख' शीर्षक कविता में कवि ने सुख- दु:ख की समन्यवादी भावना की अभिव्यक्ति की है।

7.2.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न- 1. 'नौका विहार' कविता के माध्यम से पंत जी ने जो संदेश दिया है, स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—'नौका विहार' शीर्षक कविता पंत जी द्वारा रचित एक सर्वश्रेष्ठ कविता है। इस कविता की रचना उन्होंने सन् 1932 में की थी जब उनको कुछ समय के लिए कालाकांकर के राजमहल में अतिथि और मित्र के समान रहने का अवसर प्राप्त हुआ था। ग्रीष्मकालीन गंगा में चन्द्रिका- स्नात रात्रि में नौका विहार करते हुए कवि के मन में जो अनुभूतियाँ जागृत हुईं वही इस कविता में लिपिबद्ध है। उनकी इस कविता को छायावादी काव्यधारा की प्रतिनिधि रचना भी माना जाता है। उन्होंने नौका विहार कविता के माध्यम से बताया है कि इस संसार का निरन्तर चलते रहने वाला क्रम गंगा की धारा के समान प्रभावशाली हैं। गंगा की धारा के समान जीवन का उद्गम शाश्वत है। नीले आकाश का अन्तहीन विस्तार, चन्द्रमा की तरह हँसती छोटी- छोटी लहरों और मरण के चिन्तन- पटलों के आर- पार जीवन रूपी नौका विहार अनादि और जीवन का क्रम कभी समाप्त नहीं होता है।

प्रश्न- 2. 'मैं नहीं चाहता चिर सुख' कविता में कवि के व्यक्त विचारों को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—'मैं नहीं चाहता चिर सुख' शीर्षक कविता में कवि ने जीवन में सुख- दु:ख के समन्वय का आस्थावादी भाव व्यक्त किया है कि जीवन में न तो अधिक सुख हो और न अधिक चिरकाल तक रहने वाला दु:ख हो। जीवन में सुख- दु:ख का सामान्य खेल चन्द्रमा और बादल की स्थिति के समान चलता रहना चाहिए, क्योंकि कवि का मानना है कि यह संसार अधिक सुख या अधिक दु:ख मिलने से व्यथित है। दोनों की अतिशयता से मनुष्य को कष्ट ही उठाना पड़ता है इसलिए कवि चाहता है कि मानव समाज में दु:ख और सुख आपस में इस तरह बट जाएँ कि उनसे किसी को किसी भी प्रकार की व्यथा न भोगनी पड़े। जिस प्रकार इस संसार में रात और दिन का क्रम चलता रहता है उसी प्रकार मानव जीवन में भी दु:ख और सुख का परिवर्तित क्रम होना चाहिए।

7.2.3 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न- 1. 'पंत प्रकृति के सुकुमार कवि हैं।' इस कथन के आधार पर पंत के प्रकृति- चित्रण पर अपने विचार प्रकट कीजिए।

उत्तर—प्रकृति मानव की रम्य क्रीड़ा स्थली ही नहीं क्रोड़ भी है। नव मानव के नयन उघाड़ते ही प्रकृति रानी ने अपनी आँचल की छाया उस पर डाल दी होगी। किलकारी भरता हुआ मानव जब भी प्रकृति की ओर, जिधर से भी दौड़ा होगा तो प्रकृति भी अपनी दोनों बाँहें फैलाए उसे अपने आलिंगन में ले लेती होगी। प्रकृति भी ममतामयी माँ के समान प्रारम्भ में मनुष्य को गोद में धारण कर पालन-पोषण करती रही होगी। प्रकृति अनादि काल से मानव की सहचरी रही है। मानव जीवन की अनुभूतियाँ प्रकृति की विविध शाखाओं से अपना स्नेह सम्बन्ध जोड़ सकी हैं। दोनों में एक प्राण और दो देह का सम्बन्ध है।

कविता कामिनी के श्रृंगार में प्रकृति ने अपना सर्वाधिक योगदान दिया है। देश और काल से प्रभावित होते हुए भी कवियों ने प्रकृति को विविध रूपों में निहारा है। प्रकृति के मुक्त प्रांगण में पले हुए कवि पंत ने प्रकृति को अपने काव्य का प्रमुख विषय बनाया। पंत स्वयं स्वीकार करते हैं—'मेरे किशोर प्राण मूक कवि को बाहर लाने का श्रेय मेरी जन्म भूमि के उस नैसर्गिक सौन्दर्य को है, जिसकी गोद में पलकर मैं बड़ा हुआ हूँ। प्रकृति निरीक्षण और प्रकृति प्रेम मेरे स्वभाव के विभिन्न अंग भी बन गये हैं, जिनसे मुझे जीवन के अनेक संकट क्षणों में अमोघ सांत्वना मिलती है।' यह 'बालसहचरी' प्रकृति आगे चलकर स्वप्न-प्रिया और 'कला-मुकुर' बन जाती है—

'जो बाल सहचरी रही तुम्हारी, स्वप्न- प्रिया,
जो कला मुकुर बन गई तुम्हारे हाथों में—
तुम स्वप्न धनी हो जिसके बने अमर शिल्पी!'

इस प्रकार पन्त और प्रकृति परस्पर एक-दूसरे के पूरक बन गये हैं। विशाल हृदया प्रकृति की ओर उन्मुख होकर 'सुकुमार कवि' ने प्रकृति बाला के सौन्दर्य पर प्रश्न चिह्न लगा दिया और यह कहा—

'बाले तेरे बाल जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन!'

इन पंक्तियों के साथ कवि ने साहित्यिक उद्यान को कलिकाओं से भर दिया।

प्रकृति के प्रति जैसा सघन और सहज अनुराग पंत की रचनाओं में परिलक्षित होता है वैसा अन्य कवियों में नहीं है। वे कहते हैं—'कविता करने की प्रेरणा मुझे सबसे पहले प्रकृति निरीक्षण से मिली है जिसका श्रेय मेरी जन्म भूमि कूर्माचल-प्रदेश को है। कवि जीवन से पहले भी मुझे याद है, मैं घंटों एकान्त में बैठा प्रकृति के दृश्यों को एकटक देखता रहता था और एक अज्ञात आकर्षण मेरे भीतर एक अव्यक्त सौन्दर्य का जाल बुनकर मेरी चेतना को तन्मय कर देता था।' प्रकृति की यह प्रेरणा कवि के लिए क्षणिक नहीं रही अपितु यह उसके कवि जीवन का अंग बन गयी।

पन्त जी काव्य चेतना का प्रकाशन सर्वप्रथम 'वीणा' के सरस, मृदुल और कोमल स्वरों से हुआ। इनके अधिकांश गीतों में प्रकृति के ही वैभव का गुणगान हुआ है। विश्वम्भर मानव ने कहा है—'छाया से वह प्रार्थना करता है कि विश्वम्भर उसका मनस्ताप हरे और अंधकार से वह कहता है कि उसे भी वह जीना सिखलाए। 'वीणा' में कवि की प्रकृति के प्रति जिज्ञासा, आश्चर्यजनक भावना व लालसा व्यक्त हुई है।' पन्त प्रकृति के कोमल और मंजुल रूप के कवि हैं। प्रकृति के भीषण रूपों में कवि पन्त का हृदय नहीं रमा। पन्त ने स्वयं स्वीकार किया है—'साधारणतया प्रकृति के सुन्दर रूप ने ही मुझे अधिक लुभाया है।' प्रकृति के अनुपम सौन्दर्य पर कवि पंत इतना मुग्ध थे कि उन्होंने अपनी प्रारम्भिक रचनाओं में नारी के सौन्दर्य को ठुकरा दिया है।

'छोड़ द्रगों की मृदु छाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया।
बाले! तेरे बाल जाल में,
कैसे उलझा दूँ लोचन।'

पंत की सभी रचनाएँ उनके प्रकृति प्रेम की परिचायिका हैं। उनकी पहली रचना 'वीणा' में अधिकांश कविताएँ प्रकृति चित्रण से सम्बन्धित हैं। 'ग्रन्थि' में प्रकृति का उद्दीपन रूप में वर्णन है। 'पल्लव' प्रकृति की चित्रशाला है, यहाँ कवि का प्रकृति प्रेम अधिक प्रांजल और परिपक्व रूप में मिलता है। 'गुंजन' की प्रकृति सम्बन्धी कविताओं में प्रकृति पर नारी-भावना का आरोप मिलता है। 'युगान्त' में कवि कोकिल को पावक कण बरसाने के लिए कहता है। 'युगवाणी' में कवि ने प्रकृति से अधिक मानव पर दृष्टि डाली है। 'ग्राम्या' में गाँव

की प्रकृति का अंकन है। स्वर्ण किरण, स्वर्ण धूलि, उत्तरा आदि रचनाओं में कवि प्रकृति की सभी विराट् कल्पनाओं का प्रेमी है। पंत के 'लोकायतन' में प्रकृति के यथार्थ और रम्य प्रकृति-चित्र मिलते हैं। इस प्रकार पन्त की प्राय: सभी रचनाओं में कवि का प्रकृति प्रेम मुखरित हो रहा है।

पन्त के प्रकृति चित्रण में विविधता भी दर्शनीय है। उन्होंने आलम्बन, उद्दीपन, मानवीकरण, उपदेशिका आदि विविध रूपों में प्रकृति के चित्र अंकित किए हैं।

साहित्य शास्त्रियों के अनुसार पन्त ने भी आलम्बन वर्णन को श्रेष्ठ प्रकृति चित्रण माना है। कवि ने 'पावस ऋतु' का वर्णन इसी शैली में किया है—

'पावस ऋतु थी पर्वत प्रदेश
पल-पल परिवर्तित प्रकृति वेश!
मेखलाकार पर्वत अपार,
अपने सहस्र दृग सुमन फाड़
अवलोक रहे हैं बार-बार
नीचे जल में निज महाकार
जिसके चरणों में पला ताल
दर्पण सा फैला है विशाल॥'

प्रकृति का यथा तथ्य वर्णन ही आलम्बन चित्रण कहा जाता है। इस प्रकार के प्रकृति चित्रण में वस्तु परिगणन और संश्लिष्ट दो प्रकार के चित्रण आते हैं। पन्त के काव्य में इन्हीं दोनों रूपों का वर्णन मिलता है।

प्रकृति वर्णन की दूसरी प्रमुख शैली उद्दीपन रूप है। भावों, विचारों आदि को उद्दीप्त करने के लिए जब प्रकृति का उपयोग किया जाता है, तो वह प्रकृति का उद्दीपन रूप कहलाता है। प्रकृति मानव की भावनाओं को उद्दीप्त-सी करती लगती हैं। हमारे साथ खिल-खिलाती है। दु:ख में आठ-आठ आँसू बहाती है। मानव अपनी भावनाओं के अनुसार प्रकृति को देखता है। कवि पन्त का हृदय भी कली-कली को मुस्कराता हुआ देखता है। ओस कणों के रूप में अपने आँसूओं को निहारता है। कभी-कभी प्रकृति की मनोरम क्रीड़ाओं को देखकर कवि के मन में एक टीस सी उठती है। पन्त की विरह प्रधान रचनाओं में प्रकृति इसी रूप में अंकित हैं—

धधकती है अलकों से ज्वाल,
बन गयी नील व्योम प्रवाल।
आज सोने का संध्याकाल,
जल रहा जन्तु गृह सा विकराल॥

अलंकारिक रूप में भी कवि पन्त ने 'प्रथम रश्मि' को देखा है। उसका प्रकृति-चित्रण ऐसी परिस्थितियों में परम्परागत बन जाता है। उन्होंने प्रकृति में नारी के अंगों को अनेक रूप में देखा है—

नील परिधान बीच सुकुमार,
खुल रहा मृदुल अध खुला अंग।
खिला हो ज्यों रश्मि का फूल,
अंग बीच गुलाबी रंग॥

प्रिया के लिए गुलाब और सेव कितने सुन्दर उपमान बने पड़े हैं। ऐसे ही अनेक उपमानों से कवि पन्त ने अपनी प्रिया के सौन्दर्य को जीवन प्रदान किया है।

प्रकृति का मानवीकरण रूप कालिदास ने सबसे पहले 'मेघदूत' में प्रस्तुत किया था। प्रसाद से चलकर यह मानवीकरण पंत तक चला आया। प्रकृति में समीपता का आरोप मानवीकरण कहलाया है। संध्या को देखकर नवयुवती के रूप का वर्णन पंत करते हैं।

कहो, तुम रूपसी कौन?
व्योम से उतर रही चुपचाप

छिपी निज छाया छवि में आप,
सुनहला फैला, केश कलाप,
मधुर, मंथर, मृदु मौन।

गंगा को देखकर कवि उसे नारी मान बैठते हैं—

'सैकत शैया पर दुग्ध धवल;
तन्वंगी गंगा ग्रीष्म विरल,
बैठी थी शान्त क्लान्त निश्चल।'

कवि का यही मानवीकरण रूप यत्र- तत्र बिखरा पड़ा है।

पंत ने प्रकृति के प्रति कौतुहल व जिज्ञासा का भाव भी व्यक्त किया है। पंत की 'मौन निमन्त्रण' कविता इस का सुन्दर उदाहरण है।

स्तब्ध ज्योत्स्ना में जब संसार,
चकित रहता शिशु सा नादान।
विश्व के पलकों पर सुकुमार;
विचरते हैं जब स्वप्न अजान।
न जाने नक्षत्रों से कौन,
निमन्त्रण देता मुझको मौन।

रहस्यवादी कवि पंत को अपने साये में लिए बिना न छोड़ सका। उन्होंने जीवन के रहस्य को प्रकृति के साथ बाँधने का प्रयत्न किया। कवि पंत ने अपनी रचनाओं में अनेक नए- नए प्रतीकों को प्रकृति से अपहृत कर नया आयाम दिया है। अपने कमरे की फर्श पर आयी हुई धूप को वे उपदेशिका और शिक्षिका एवं दूती मानते हैं। उसी की प्रेरणा से अपने जीवन में एक नवीन- रूप स्थापित करना चाहते हैं। उनकी 'संदेश' कविता में प्रकृति के इसी रूप का चित्रण मिलता है।

'वह मुझे देख स्नेहार्द्र दृष्टि, मुस्कुरा उठी!
वह विश्व प्रकृति की दूती बनकर आई थी।''

यही प्रकृति शिक्षिका भी है जिसने मानव जीवन को बहुत कुछ सिखलाकर सार्थक बनाया है—

जिसने कोयल बन सिखलाया तुम को गाना,
मृदु गुँजन भर सिखलाया मधु संचय करना,
फूलों की कोमल बाँहों के आलिंगन भर।'
फूलों के सदृश्य कोमल प्रकृति संदेश वाहिका भी है—
'लो मैं असीम का लाई हूँ संदेश तुम्हें!
आओ फिर खुली प्रकृति की गोदी में बैठो।'

जब मानव का मन पीड़ाओं के दुर्बोध भँवर में फँस जायेगा तब ये प्रकृति नव प्रकाश की संदेश वाहिका बन जायेगी—

जब होंगी मानस ग्लानि, घिरेंगी मोह निशा,
मैं नव प्रकाश संदेश वाह बन जाऊँगी।

प्राकृतिक विविध रूपों के अंकन के साथ- साथ कवि पंत में प्रकृति वर्णन विषयक पटुता भी है। प्रकृति के पदार्थों का एक- एक दो- दो पंक्तियों में कवि ने बड़ी खूबी के साथ चित्रण किया है। पंत के प्रकृति चित्रण में उच्च कोटि की भावना भी है, कल्पना भी है और साथ- साथ उच्चकोटि के विचार भी हैं। छायावादी कवि पंत के लिए प्रकृति काव्य की प्रेरणा, वर्ण्यवस्तु एवं श्रृंगार बन गई है। पंत के लिए प्रकृति प्रेयसी है। उनकी प्रेयसी के रूप को सजाने वाली सहचरी है और उनकी अभिव्यक्ति का माध्यम भी है, कवि की वाणी है, भाषा है, अलंकृति है, भावना है और विचारधारा है। कवि पंत ने काव्य की भावनाओं का समस्त आह्लाद, सौन्दर्य और वैभव प्रकृति से ही प्राप्त किया है। प्रकृति को अलग कर देने से पंत का काव्य सर्वथा सूना- सा प्रतीत होने लगता है।

'सिखा दो ना मधुप कुमारी ,
मुझे भी अपने मीठे गान।'

कवि पंत का प्रकृति प्रेमी हृदय शाश्वत प्यासा रहा है। नि:संदेह पंत प्रकृति के सुकुमार कवि हैं।

प्रश्न- 2. गीति काव्य की दृष्टि से पंत के काव्य की समीक्षा कीजिए।

उत्तर—हिन्दी साहित्य जगत में गीतिकाव्य का विकास भक्तिकाल से माना जाता है। वैसे तो तब मनुष्य का मन आनन्द विभोर हो उठता है तभी उसके मुख से निकलने वाला काव्य गीतों के स्वरों में फूट पड़ता है और ये गीत प्रत्येक व्यक्ति के लिए आनन्ददायी बन जाते हैं। जिन पदों में गेयात्मकता होती है, वे पद गीति काव्य की श्रेणी में रखे जाते हैं। मन की भावनाओं का वैयक्तिक स्वरूप गीति काव्य में मुखरित हो उठता है। प्रकृति के साथ अपने हृदय की भावनाओं का प्रसार किया जाता है। सामाजिक विसंगतियों से ऊबकर प्रकृति के रहस्यमय सौन्दर्य लोक से जब कवि प्रेरणा पाकर चहक उठता है तो उसका काव्य गीति काव्य की परिधि में आ जाता है।

भक्ति काल में गीति काव्य का पूर्ण विकास हुआ। भक्तों ने ईश्वर की स्तुति में अनेक पदों को गाया और अपने मन के उद्वेगों को ईश्वर के सम्मुख प्रस्तुत किया। भक्तिकाल से लेकर आधुनिक काल तक गीति काव्य की परम्परा निरन्तर चली आ रही है। छायावादी कवियों के स्वरों को पाकर गीति काव्य और सरस बन गया। पंत और महादेवी ने अपने गीतों में नयी जान फूँक कर गीति काव्य की श्री वृद्धि की। पंत प्रकृति के चितेरे कवि हैं। प्रकृति की नैसर्गिक सुषमा उन्हें बाल्यावस्था से ही प्राप्त हुई है। चिड़ियों को चहचहाता हुआ देखकर, पक्षियों के कलरव को सुनकर पंत जैसा सहृदय और प्रकृति पर्यवेक्षी कवि शान्त कैसे रह सकता था। उसके मन की भावनाएँ गीतों में फूट पड़ीं। प्रकृति के स्वर्णिम सानिध्य में अलौकिक सत्ता के दर्शन होने लगे और अंत में पक्षियों से पूछ बैठे—

'प्रथम रश्मि का आना रंगिणी!
तूने कैसे पहचाना!
कहाँ-कहाँ? हे, बाल विहंगिनी,
पाया तूने यह गाना!'

पंत का यह गीत सूर्योदय के समय चहचहाते हुए पक्षियों के साथ गुंजरित हो उठा।

गीत में निजी रागात्मकता कवि के हर्ष विषाद को अभिव्यक्त करती है। कवि पंत के काव्य में यही रागात्मकता फैली हुई है। कवि मधुप कुमारी से प्रार्थना कर उठता है—

सिखा दो ना हे मधुप कुमारी!
मुझे भी पीने मीठे गान।
कुसुम के चुने कटोरों से,
करा दो ना कुछ कुछ मधुपान।

समुचे गीत में प्रारम्भसे लेकर अंत तक एक ही थिरकन की भावना जब बनी रहे तो उसे भावात्मक एकता कहा जाता है। गीत किसी क्षणिक एवं तीव्र मनोयोग का ही तो परिणाम है। पंत की कुछ रचनाओं में भाव की इसी एकता की कमी है। जिससे वे इतनी प्रभावशाली नहीं बन सकीं जितनी अन्य। 'चाँदनी', 'नौका बिहार' ऐसी ही रचनाएँ हैं जिनमें एक भाव के साथ-साथ दूसरे भाव भी सरक आए हैं। भावों की एकान्विति के कारण कवि पंत की ये पंक्तियाँ पाठक को बाँध देती हैं—

'आज रहने दो यह गृह काज,
प्राण! रहने दो यह गृह काज!
आज उर के स्तर-स्तर में प्राण
सजग सौ-सौ स्मृतियाँ सुकुमार,
दृगों में मधुर स्वप्न संसार
मर्म में मन्दिर स्पृहा का भार।'

'गीत में लम्बाई सीमित होती है। गीत का प्राण ही भाव है। अत: जिस गीत में इस तत्त्व का अभाव हो, वह पाठक के हृदय को किसी भी दशा में नहीं छू सकता। पंत जी ने गीत के इस तत्त्व को स्वयं स्वीकार किया है। उनका अनुमान है कि आदि कवि का अन्तर किसी विशेष भाव से आक्रान्त हो गया होगा और तभी उसमें से कविता बह निकली होगी—

'वियोगी होगा पहला कवि,
आह से उपजा होगा गान।
उमड़ कर नयनों से चुपचाप
बही होगी कविता अनजान॥'

कवि पंत की 'प्रथम रश्मि' कविता का भाव इसी प्राण तत्त्व को दर्शाता है। छाया निहार कर कवि को सहसा दमयन्ती स्मरण हो आई। उसके हृदय से यकायक कविता फूट पड़ी—

'कौन पड़ी हो दमयन्ती सी
क्यों तरु के नीचे सोई?
हाय! तुम्हें भी त्याग गया क्या
अलि! नल सा निष्ठुर कोई?'

सच्चा गीति काव्य एक सरस, क्षणिक एवं तीव्र मनोवेग का परिणाम है। पंत के गीत छोटे भी हैं और बड़े भी। यह आश्चर्य की बात है कि उनके गीत लम्बे होने पर भी अन्त तक सौन्दर्य वहन करते हैं। 'वीणा' के गीत लम्बे नहीं हैं। 'पल्लव' के गीत लम्बे भी हैं और छोटे भी हैं। हाँ गुंजन में दो एक को छोड़कर सभी रचनाएँ लगभग छोटी है। विख्यात गीत तुम्हें मधुर-मधुर मन छोटा ही है।

उपर्युक्त सभी गुणों के होने पर भी यदि किसी गीत में कला का पूर्णतत्व नहीं है तो वह गीत व्यर्थ है। कला के अभाव में मन अधिक देर नहीं रम सकता। गीत अन्त:प्रेरित होता है। उसमें बनावटीपन का अभाव रहता है। पंत कलाकार पहले हैं, बाद में कुछ और। 'पल्लव' के गीत अपनी कला का जादू अवश्य छोड़ते हैं।

'बाँसों का झुरमुट,
संध्या का झुरपुट
हैं चहक रही चिड़ियाँ
टी, वी, टी, टुट-टुट!'

इन कोमल चित्रों से कवि पंत का गीतिकाव्य श्रेष्ठ बन गया है।

पंत के गीतों को विषयानुसार निम्नलिखित रूप से विभाजित किया जा सकता है—

1. प्रकृति सम्बन्धी गीत
2. जीवन मीमांसा सम्बन्धी गीत
3. आध्यात्मिक विरह-मिलन के गीत
4. राष्ट्रीय गीत
5. लौकिक प्रेम गीत

1. प्रकृति सम्बन्धी गीतों में पंत ने प्रकृति के संकेतों को समझा है। प्रकृति से तो उन्होंने काव्य पथ पर चलना सीखा है। दिनकर की प्रथम रश्मियों का देख कर जब पक्षी चहक उठते हैं तो वे पूछ बैठते हैं—

प्रथम रश्मि का आना रंगिणी!
तूने कैसे पहचाना?
कहाँ, कहाँ हे बाल विहंगिनी।
पाया तूने यह गाना?

और वह गाना भी ऐसा वैसा नहीं, अत्यन्त मनोहर, अत: कवि मनुहार कर उठा—

'सिखा दो ना हे मधुप कुमारी
मुझे भी अपना मीठा गान!'

2. जीवन मीमांसा सम्बन्धी गीत—इस प्रकार के गीत कवि पंत को छायावाद से आगे ले जाते हैं जहाँ वे रहस्यवादी हो उठते हैं। वे दु:खों से पीड़ित जनता के लिए कह उठते हैं—

'जग पीड़ित है अति दुख से
जग पीड़ित रे अति सुख से'

तो समूचा जगत यूँ ही पीड़ित रहेगा? क्या अति सुख अति दु:ख के गर्त में पड़ी हुई मानव जाति कूल पर नहीं आ सकेगी? क्यों नहीं। पंत के पास इसका समाधान है और वह यह है कि इन दोनों की मैत्री हो जाये—

'सुख दुख के मधुर मिलन से
यह जीवन हो परिपूरन
फिर घन में ओझल हो शशि,
फिर शशि से ओझल हो घन।'

3. आध्यात्मिक विरह मिलन के गीत—इस प्रकार के गीतों में भक्ति काल की तरह से आध्यात्मिकता का भी नाप दिखाई देता है। अज्ञान शक्ति के लिए बेचैन होकर कवि पंत कह उठते हैं—

'माँ! वह दिन कब आयेगा जब
मैं तेरी छवि देखूँगा,
जिसका यह प्रतिबिम्ब पड़ा है
इस जगती के दर्शन में'

इतना ही नहीं वे इस स्वर्णमय रूप को देखना चाहते हैं और विनती करते हुए कह उठते हैं—

'हे सुवर्णमय! तुम मानस में,
कमल खिलाते हो सुन्दर,
मेरे मानस में भी उसके
विकसा दो पद- पद्म अमर।'

4. राष्ट्रीय गीत—इस प्रकार के गीतों को देखकर लगता है कि कवि ने भारतेन्दु से प्रेरणा पायी थी। तत्कालीन परिस्थितियों को देखकर कवि पंत के मुख से राष्ट्रीय चेतना के स्वर फूट पड़े हैं—

'मैं मानवता का संदेश सुनाता,
स्वाधीन देश की गौरव गाथा गाता।'

5. लौकिक प्रेमगीत—इस प्रकार के गीतों में कवि ने अपने लौकिक प्रेम को अभिव्यक्त कर दिया है। 'वीणा' में ऐसे ही गीतों का संकलन है। एक मुग्धा नायिका से साक्षात होने पर कवि का हृदय बोल उठता है—

'तुमने अधरों पर धरे अधर,
मैंने कोमल वपु भरा गोद,
था आत्म समर्पण सरल- मधुर
मिल गए सहज मारुता मोद'

7.3 सारांश

निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि पंत के गीत गीति काव्य की दृष्टि से श्रेष्ठ हैं। उनके गीतों में प्रकृति के बाल्यावस्था से लेकर यौवनावस्था का समय चित्रण है। उनके गीतों में हृदय की भावना है और अपनी मौलिकता है। पंत का गीति काव्य हिन्दी साहित्य की अक्षुण्य निधि है।

7.4 अभ्यास प्रश्नावली

1. प्रकृति के सुकुमार कवि के रूप में पन्त के काव्यों की विशेषताएँ बताइये।
2. गीतकल्प की दृष्टि से पंत के काव्यों की समीक्षा कीजिए।

Veer Vishwa Bhadra Deemed University, Ladnun

इकाई - 8
गजानन माधव 'मुक्तिबोध'

संरचना

8.0 कवि परिचय

8.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

8.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

8.2.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

8.2.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

8.2.3 निबंधात्मक प्रश्न

8.3 सारांश

8.4 अभ्यास प्रश्नावली

8.0 कवि परिचय

मुक्तिबोध का जन्म श्योपुर ग्वालियर (मध्यप्रदेश) में हुआ। मराठी ब्राह्मण परिवार में जन्में मुक्तिबोध के पिता माधव मुक्तिबोध थानेदार थे और इस्पैक्टर के पद से सेवानिवृत्त हुए थे। मुक्तिबोध की प्रारम्भिक शिक्षा उज्जैन में हुई थी। सन् 1938 में उन्होंने होल्कर कॉलेज से बी.ए. पास किया और 1953 में नागपुर विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम.ए.।

मुक्तिबोध ने आजीविका के लिए बहुत संघर्ष किया, स्कूल की मास्टरी से लेकर कॉलेज के प्राध्यापक होने के बीच उन्होंने कई नौकरियाँ बदली। वे सन् 1945 में वाराणसी से प्रकाशित होने वाले साहित्यिक 'हंस' के सम्पादक नियुक्त हुए। 1948 में वे नागपुर आये और उन्होंने सूचना तथा प्रकाशन विभाग, आकाशवाणी एवं 'नया खून' में काम किया।

मुक्तिबोध ने कविता की शुरुआत सन् 1935 से की। सन् 1935 से 39 के बीच रखी गयी उनकी प्रारम्भिक कविताएँ 'कर्मवीर', 'वाणी' आदि पत्रों में छपी थीं। इस दौर की कविताओं पर माखनलाल चतुर्वेदी की शैली और संवेदना की छाप देखी जा सकती है। सन् 42-43 के बीच लिखी गयी अनेक महत्त्वपूर्ण कविताएँ अज्ञेय द्वारा सम्पादित 'तार सप्तक' (1943) में संकलित हैं। जीवन के अंतिम पड़ाव में उनका एक काव्य-संकलन 'चांद का मुँह टेढ़ा है' (1964 में) प्रकाशित हुआ। मरणोपरान्त सन् 1979 में उनकी कविताओं का दूसरा संकलन 'भूरी-भूरी खाक-धूल' प्रकाशित हुआ। मुक्ति बोध—रचनावली खण्ड 1-6 (1985) का सम्पादन करके नेमिचन्द्र जैन ने मुक्तिबोध के समग्र साहित्य को हिन्दी पाठकों के सामने रखा।

मुक्तिबोध नयी कविता के महत्त्वपूर्ण कवियों में से एक हैं। उनके पास एक वैज्ञानिक तथा सुसंगठित मार्क्सवादी जीवन-दृष्टि हैं। वे विरोध के कवि हैं। अन्याय का साथ देने वाली शक्ति के खिलाफ उन्होंने अपने तरीके से संघर्ष किया है। उनके यहाँ आत्म और बाह्य दोहरा संघर्ष दिखाई देता है। इस संघर्ष में मुक्तिबोध को जनता की शक्ति पर भरोसा है—

'याद रखो
कभी अकेले में मुक्ति नहीं मिलती
यदि वह है तो सबके साथ है।'

वे मूलतः लम्बी कविताओं के कवि हैं। किसी कथात्मक आख्यान का सहारा लिए बिना ही कल्पना और फैण्टेसी के सहारे उन्होंने लम्बी कविताओं की रचना की है। फैण्टेसी मुक्तिबोध की अभिव्यक्ति का अनिवार्य माध्यम थी। अपने समय के गतिशील, जटिल यथार्थ को वे जिस तरह उभारकर सामने रखना चाहते थे वह फैण्टेसी के माध्यम से ही संभव हो सकता था। आजादी के बाद के सामाजिक, राजनैतिक यथार्थ की अभिव्यक्ति मुक्तिबोध के यहाँ जटिल रूप में मिलती है।

काव्यात्मक भाषा के दायरे को तोड़कर मुक्तिबोध ने आपने कथ्य के अनुरूप काव्य भाषा का निर्माण किया है लेकिन भाषा के प्रति जो

जागरूकता व सजगता निराला के यहाँ देखने को मिलती है वह मुक्तिबोध के यहाँ नहीं है। उनकी भाषा में एकरूपता व एकरसता अधिक है।

8.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

बबूल

(1)

वृक्षों के अभिजात वर्ग की आँखों में वह सदा बहिष्कृत,
चिर- निर्वासित।
पर बसन्त के
अनियन्त्रित समीर के झोंके
उसको छू ही लेते हैं।
वह नग्न सुदामा, विवश क्या करे।
उसके सदा तुच्छ समझे जाने वाले
उस गहन हृदय में
गूढ़ आँसुओं में
वसन्त के वासन्ती रंग चमक- चमक जाते हैं
बरबस
उभर- उभर उठती हैं अन्तस्तल की छुपी लकीरें।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य- पुस्तक 'आधुनिक काव्य- संग्रह' में संकलित गजानन्द माधव 'मुक्तिबोध' द्वारा रचित 'बबूल' शीर्षक कविता से अवतरित है। कवि ने यहाँ बबूल के काँटेदार पेड़ के उपेक्षित एवं अपमानित जीवन में बसन्त ऋतु के प्रभाव का चित्रण किया है।

व्याख्या—कवि कहता है कि काँटेदार बबूल का पेड़ अच्छे पेड़ों के वर्ग में गिना नहीं जाता है। इसलिए वह अच्छे वर्ग के वृक्षों की आँखों में हमेशा ही तिरष्कृत रहता है। इस अनादर भाव के कारण ही वह दीर्घकाल से निर्वासन की व्यथा को भोग रहा है। फिर भी बसन्त की हवा के अनियन्त्रित झोंके उसका स्पर्श कर लेते हैं। वह बबूल तो नग्न है, सुदामा है (निर्धन है) तथा विवश है। अत: वह क्या करें? कहने का भाव यह है कि बसन्त ऋतु के हवा के स्पर्श के प्रभाव को व्यक्त नहीं कर सकता है। लेकिन बसन्त की हवा के स्पर्श से हमेशा से ही तुच्छ समझे जाने वाले उसके गहन गम्भीर हृदय में छिपे हुए आँसुओं में बसन्त के बसन्ती रंग चमक उठते हैं और इन वासन्ती रंग के अपने फूलों के रूप में उसके हृदय के अन्तस्तल में छिपी हुई लकीरें अपने आप ही उभर उठती हैं। उस बसन्त ऋतु में बबूल में अन्तस्थल में छिपी हुई लकीरें आकाश के सितारों, सलज्ज चन्द्रमा की, लाल रंग की सूर्य की आकृतियों में घिरकर, इन पर छा जाने के लिए उभर उठती है।

विशेष—1. अभिजात वर्ग के वृक्षों से तिरस्कृत होने पर भी बबूल में बसन्त का प्रभाव देखा जा सकता है। इसके माध्यम से कवि ने तिरस्कृत जीवन को हेय न मानकर आशा, हर्ष व उल्लासमय स्वीकार किया है।

2. बबूल के जीवन का यथार्थ अंकन किया है।

(2)

आह! त्याग की उत्कट प्रतिमा होरी महतो, भोली धनिया
जाग रहे हैं,
काम कर रहे हैं अब भी अपने खेतों में
उनकी श्वेत अस्थियों से इस युग का वज्र बनेगा भयंकर।
वह बबूल
जो चिर- निर्वासित

एक प्रतीक बना है केवल जन-जन के नि:सीम त्याग का।
मेरी खिड़की से दिखती है
होरी की वह याद।
जवानी में आया है,
पीले फूलों छिटकाता प्रिय बबूल वह
अपर्ण-आकुल, आत्म-चेतना में विह्वल हो
चाह रहा है मज्जित करना दिशा-कूल को।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक 'आधुनिक काव्य-संग्रह' में संकलित गजानन्द माधव 'मुक्तिबोध' द्वारा रचित 'बबूल' शीर्षक कविता से अवतरित है। इसमें कवि ने चिर पीड़ित, तिरस्कृत तथा उपेक्षित कृषक-श्रमिक वर्ग के भविष्य का चित्र उपस्थित कर जन-क्रान्ति का आह्वान किया है।

व्याख्या—कवि कहता है कि आह! आज भी त्याग की सर्वश्रेष्ठ मूर्ति के रूप में प्रेमचंद के 'गोदान' नामक उपन्यास का नायक होरी जाग रहा है और धनिया भी जाग रही है और वे अपने-अपने खेतों में अब भी काम कर रहे हैं। कवि यहाँ यह आशा तथा विश्वास व्यक्त करता है कि निरन्तर श्रमरत रहकर चीर-उपेक्षित व प्रपीड़ित रहने वाले इस कृषक-मजदूर वर्ग की सफेद हड्डियों से इस युग का भयंकर वज्र बनेगा जो समाज की समस्त असमानताओं, विषमताओं, असंगतियों से भरे शोषण व उसके पुरोधा शोषकों का नाश कर देगा। इस प्रकार यह दीर्घकाल से निर्वासित व तिरस्कृत बबूल जन-जन के सीमाहीन त्याग का प्रतीक बन गया है। मुझे मेरे मकान की खिड़की से मन के झरोखे से होरी की वह याद, जिसमें अजस्र कर्मण्यता तथा शाश्वत दु:ख भरे थे, दिखाई देती है। आज पीले-पीले फूलों को धरती पर गिराता हुआ वह बबूल अपनी जवानी में आया है। इस जवानी में वह अपने सर्वस्व तथा उत्कृष्ट का समर्पण करने के लिए आकुल-व्याकुल दिखाई देता है। उसकी आत्म-अर्पण की यह आकुलता इतनी अधिक है कि वह आत्म चेतना में ही विह्वल होकर समस्त दिशाओं के किनारों या अन्तिम सीमाओं को अपने में डुबो देना चाह रहा है। आशय यह है कि बबूल की भाँति ही चिर-निर्वासित, तिरस्कृत, उपेक्षित तथा पीड़ित जन-जन आज आत्म-विसर्जन तथा आत्मार्पण के लिए व्याकुल है। उनकी यह व्याकुलता एक-न-एक दिन अवश्य रंग दिखाएगी।

विशेष—1. बबूल को जन-जन के नि:सीम त्याग का प्रतीक बतलाया गया है। कवि ने यह मौलिक तथा नवीन उद्भावना की है।
2. बबूल का अस्तित्व तथा अन्तर्संघर्ष वर्णित है।

जन-जन का चेहरा एक

(1)

एशिया के, यूरोप के, अमरीका के
भिन्न-भिन्न वास-स्थान;
भौगोलिक, ऐतिहासिक बन्धनों के बावजूद,
सभी ओर हिन्दुस्तान, सभी ओर हिन्दुस्तान।
सभी ओर बहनें हैं, सभी ओर भाई हैं।
सभी ओर कन्हैया ने गायें चरायी हैं
जिन्दगी की मस्ती का अकुलाता भोर एक;
बंसी की धुन सभी ओर एक।
दानव दुरात्मा एक,
मानव की आत्मा एक।
शोषक और खूनी और चोर एक।

जन-जन के शीर्ष पर,
शोषण का खड्ग अति घोर एक।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक 'आधुनिक काव्य-संग्रह' में संकलित गजानन्द माधव 'मुक्तिबोध' द्वारा रचित 'जन-जन का चेहरा एक' शीर्षक कविता से अवतरित है। इसमें कवि ने मानव के निवास-स्थानों, दिशाओं, आत्मा व शोषण को एक रूप ही बताया है।

व्याख्या—कवि कहता है कि इस संसार में एशिया, यूरोप तथा अमरीका के निवास स्थानों के रूप भिन्न-भिन्न हैं और व्यक्तियों के सामने अनेक भौगोलिक तथा ऐतिहासिक बन्धन भी होते हैं, परन्तु सभी ओर हिन्दुस्तान, हिन्दुस्तान है; अर्थात् हम स्नेह-बन्धन की दृष्टि से एक हैं। सभी स्त्रियाँ हैं, वे बहनें हैं और जो पुरुष हैं वे भाई हैं; अर्थात् हम स्नेह-बन्धन की दृष्टि से एक हैं। सभी दिशाओं में कृष्ण-कन्हैया ने गायों को चराया है और अपनी बाँसुरी की एक ही धुन को सब ओर बजाया है। जीवन की मस्ती भरी अकुलाहट सर्वत्र एक है। दान हो या दुरात्मा हो, मानव की आत्मा एक ही है। शोषण करने वाला, खून करने वाला तथा चोर, घृणित कार्य करने की दृष्टि से एक हैं और प्रत्येक व्यक्ति के सिर पर लटकने वाली शोषण की तलवार अपनी अत्यधिक भयंकरता एवं भीषणता में एक है।

विशेष—1. कवि ने विश्व के समस्त देशों में रूप-भिन्नता स्वीकार करते हुए भी आत्मा की एकता का प्रतिपादन किया है।
2. सरल, सुबोध भाषा में विचित्र प्रवाह तथा प्रभाव है।

अपने ही

(1)

अपने सत्य की गोद में न बन्द हो।
कई ऐसे सत्य हैं (और, वे अनन्त हैं)
जिन्दगी के पहलू
जो हैं, जो बनते हैं, बढ़ते ही रहे हैं
उनके असंख्या रूप में अनगिन
चित्र हैं भिन्न-भिन्न।
काल के सिन्धु-शैल कूल पर खड़े हुए
एक विश्व-पुरुष ने,
दुनिया के साथी ने एक जगह कहा है—
जीवन अनन्त है
प्रतिपल सृजनशील उसका अनन्त वक्ष
अनन्त सम्पन्न है॥

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक 'आधुनिक काव्य-संग्रह' में संकलित गजानन्द माधव 'मुक्तिबोध' द्वारा रचित 'जन-जन का चेहरा एक' शीर्षक कविता से अवतरित है। इसमें कवि ने जीवन के अनन्त तथा सत्य के महत्त्व को स्पष्ट किया है।

व्याख्या—कवि कहता है कि व्यक्ति को अपने ही सत्य के दायरे में बन्द नहीं होना चाहिए, क्योंकि इस संसार में कई ऐसे सत्य हैं जो अनन्त हैं। इसके साथ ही वे मानव जीवन से जुड़े हुए हैं। उन सभी सत्यों से ही जीवन का निर्माण होता है। जीवन के ये पहलू हमेशा ही प्रतिक्षण बनते और बढ़ते रहते हैं और इस तरह से वे असंख्य रूप में अनगिनत हैं। इसके साथ ही उनके सामने भिन्न-भिन्न अनगिनत चित्र हैं। इसी तथ्य का उद्घाटन करते हुए कवि कहता है कि एक विश्व पुरुष ने समय रूपी सागर के ऊँचे शिलातल पर खड़े होकर संसार का मार्गदर्शन करने की भावना से पूरित होकर के कहा था कि मानव जीवन अनन्त है। उसके मन में सृजनशीलता की भावना भी अनन्त है। वह प्रतिफल जीवन सत्य का साक्षात्कार करता रहता है। इस कारण वह अनन्त सत्य से पूरित है। लेकिन मनुष्य अहम्भाव से

पूरित होने के कारण इस जीवन सत्य को समझ नहीं पाता है।

विशेष—कवि ने जीवन और सत्य के अनन्त सृजनशील रूपों के होने के तथ्य को उजागर किया है।

8.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

8.2.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न- 1. मुक्तिबोध का जन्म कब और कहाँ हुआ था?

उत्तर—मुक्तिबोध का जन्म श्योपुर, ग्वालियर (म.प्र.) में सन् 1917 में हुआ था।

प्रश्न- 2. मुक्तिबोध की प्रारम्भिक रचनाएँ किन पत्रों में छपी थीं?

उत्तर—मुक्तिबोध की प्रारम्भिक रचनाएँ कर्मवीर, वाणी आदि पत्रों में छपी थीं।

प्रश्न- 3. मुक्तिबोध के जीवन के अन्तिम पड़ाव में उनका कौन-सा काव्य-संकलन प्रकाशित हुआ था?

उत्तर—मुक्तिबोध के जीवन के अन्तिम पड़ाव में 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' काव्य-संकलन प्रकाशित हुआ था।

प्रश्न- 4. मुक्तिबोध किस विचारधारा से पूरित कवि थे?

उत्तर—मुक्तिबोध मार्क्सवादी विचारधारा से पूरित कवि थे।

प्रश्न- 5. फैण्टेसी किस कवि की अभिव्यक्ति का अनिवार्य माध्यम थी?

उत्तर—फैण्टेसी मुक्तिबोध की अभिव्यक्ति का अनिवार्य माध्यम थी।

प्रश्न- 6. 'बबूल' शीर्षक कविता किस कवि की रचना है?

उत्तर—'बबूल' शीर्षक कविता मुक्तिबोध की रचना है।

प्रश्न- 7. मुक्तिबोध की प्रारम्भिक कविताओं में किस कवि का प्रभाव दिखाई पड़ता है?

उत्तर—मुक्तिबोध की प्रारम्भिक कविताओं में माखनलाल चतुर्वेदी की शैली व संवेदना का प्रभाव दिखाई देता है।

प्रश्न- 8. मुक्तिबोध द्वारा रचित दीर्घ कविताओं के नाम बताइए?

उत्तर—मुक्तिबोध द्वारा रचित दीर्घ कविताएँ—चाँद का मुँह टेढ़ा है, मेरे सहचर मित्र, ओ काव्यात्मन सहचर, चकमक की चिनगारियाँ, इस चौड़े-ऊँचे टीले पर, एक स्वप्न कथा, चम्बल की घाटी में, और अन्धेरे में, विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

प्रश्न- 9. 'बबूल' शीर्षक कविता में बबूल किसका प्रतीक है?

उत्तर—'बबूल' शीर्षक कविता में बबूल समाज से उपेक्षित, दीन-हीन, निर्वासित एवं शोषित मानवता का प्रतीक है।

प्रश्न- 10. 'आह! त्याग की उत्कृष्ट प्रतिमा हीरो महतो, भोली धनिया जाग रहे हैं' उक्त वर्णित पात्र किस उपन्यास के हैं?

उत्तर—उक्त वर्णित पात्र प्रेमचन्द के गोदान उपन्यास के हैं।

प्रश्न- 11. 'जन-जन का चेहरा एक' शीर्षक कविता के रचनाकार का नाम बताइए।

उत्तर—'जन-जन का चेहरा एक' शीर्षक कविता के रचनाकार का नाम मुक्तिबोध है।

प्रश्न- 12. 'जन-जन का चेहरा एक' शीर्षक कविता का मूल भाव क्या है?

उत्तर—उक्त कविता का मूल भाव यह है कि समस्त संसार के मानवों में एकरूपता है और मानवता की दृष्टि से उनमें किसी भी प्रकार का कोई भेद नहीं है।

प्रश्न- 13. 'अपने ही' शीर्षक कविता किस कवि के द्वारा रचित है?

उत्तर—'अपने ही' शीर्षक कविता गजानन माधव 'मुक्तिबोध' द्वारा रचित है।

प्रश्न- 14. 'अपने ही' शीर्षक कविता का मूल भाव क्या है?

उत्तर—'अपने ही' शीर्षक कविता का मूल भाव यह है कि जीवन अनन्त है। इसकी सृजनशीलता अनन्त है। अतः इसे किसी छोटी-सी सीमा में रखकर नहीं देखना चाहिए।

8.2.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न- 1. 'जन-जन का चेहरा एक' कविता में व्यक्त कवि के विचारों को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—'जन-जन का चेहरा एक' शीर्षक कविता में कवि यह बताना चाहते हैं कि इस संसार में अनेक धर्म, देश तथा समाज आदि अपना अस्तित्व बनाये हुए हैं। इनमें रहने वाले लोगों की स्थितियाँ यद्यपि अलग-अलग हैं फिर भी उन सभी का चेहरा एक है। इस समतावादी दृष्टि से पूरित होकर हमें मानवतावादी मूल्यों की प्रतिष्ठा करनी चाहिए और हर स्तर पर एकता सिद्ध करने का सहज प्रयास करना चाहिए। अत: कहा जा सकता है कि इस कविता के माध्यम से कवि ने संसार के समस्त मानव समाज में समता और एकता की भावना बनाये रखनेका संदेश दिया है जो आज के परिवेश में अपने आपस में अति महत्त्वपूर्ण है।

प्रश्न- 2. 'अपने ही' शीर्षक कविता का मूल भाव स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—'अपने ही' शीर्षक कविता मुक्तिबोध द्वारा रचित है। इसमें कवि ने जीवन और सत्य के अनन्त सृजनशील व सम्पन्न रूपों के होने के तथ्य का उद्घाटन किया है। कवि कहता है कि जीवन में सीमित दृष्टिकोण व्यक्ति को कुंठित बना देता है इसलिए हमें जीवन में अनुभव किये गये सत्य के दायरे में बन्द होकर उसे ही पूर्ण सत्य नहीं मानना चाहिए, क्योंकि इस जीवन और जगत में ऐसे कई सत्य हैं जिनका हमें ज्ञान नहीं है और ऐसे सत्य अनन्त हैं तथा वे मानव जीवन के पहलू हैं। जीवन के ये पहलू सदा बनते और बढ़ते रहते हैं। इस प्रकार उनके रूप अनगिनत हैं। इनमें से हमें हमारी दृष्टि के आधार पर ही कुछ सत्य रूप दिखाई देते हैं लेकिन विडम्बना तब उपस्थित होती है जब हम अपने ही देखे गये सत्य को सत्य मानते हुए दुराग्रह कर बैठते हैं। इसीलिए कवि ने कहा है कि हमें अपने सत्य की गोद में या काव्य के दायरे में बन्द नहीं होना चाहिए। यही इस कविता का मूल प्रतिपाद्य है।

8.2.3 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न- 1. 'मुक्तिबोध' के काव्य की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए ?

अथवा

पठित कविताओं के आधार पर मुक्ति बोध के काव्य की कथनीय गुणवत्ता पर प्रकाश डालिए ?

उत्तर—मुक्तिबोध की कविताएँ अपने समय का प्रामाणिक इतिहास हैं। सभी अन्तर्विरोधों और त्रासदियों को झेलते हुए मुक्तिबोध यह चाहते रहे कि भारत के प्रत्येक आदमी की जिन्दगी कुछ जीने लायक हो जाय। समाज, वर्ग, विषमता, शोषण, अत्याचार और जड़ता की जकड़न से मुक्त होकर खुली हवा में सांस ले सके। मुक्तिबोध के काव्य का कथन है शोषण, अत्याचार और पीड़ा से मुक्त स्वस्थ व बन्धनहीन समाज का निर्माण व स्थापना इसके लिए उन्होंने काव्यात्मक धरातल पर पूरा प्रयत्न किया है। इसी काव्य को उन्होंने विभिन्न प्रवृत्तियों के माध्यम से अभिव्यक्ति प्रदान की है—

1. व्यक्तिपरकता—व्यक्तिपरकता छायावादी कविता की उल्लेखनीय प्रवृत्ति रही है। इस विशेषता के कारण वे कविताओं में निराशा, कुण्ठा, घनीभूत पीड़ा और मनोभग्नता के चित्रों में रंग भर पाये। कहीं-कहीं अकेलापन और अन्तर्मुखता की प्रवृत्ति भी झलक मारती है। वे स्पष्ट रूप से कहते हैं—

'याद रखो
कभी अकेले में मुक्ति नहीं मिलती
यदि वह है तो सबके साथ ही।'

यों मुक्तिबोध की कविताओं में अकेलेपन का बोध पनपा है। उनकी लम्बी कविताओं में अकेलेपन की भटकन, कुहासा और आंतरिक हलचल के बिम्ब आये हैं। वे स्वयं अपनी परिस्थितियों से लड़ते-लड़ते क्षीण से क्षीणतर होते गए। वेइतना लिख गये। 'प्राण की है बुरी हालत और जर्जर देह' यह है मेरी हालत इसी क्रम में ये पंक्तियाँ दृष्टव्य है—

'मैं एक मात्र थमा आवेग
रुका हुआ एक जबरदस्त कार्यक्रम
में एक स्थगित हुआ अगला अध्याय
अनिवार्य
आगे ढकेली गई प्रतीक्षित'

महत्त्वपूर्ण तिथि में एक शून्य में छटपटाता हुआ उद्देश्य तात्पर्य यह है कि मुक्ति बोध नि:सर्ग होकर भी अपने भावी उद्देश्य के साथ

हैं। कुछ पलों के लिए, वे इसलिए अकेले हैं ताकि आत्मान्वेष कर वास्तविक जीवन सत्यों को परिभाषित कर समाज को सौंप सकें।

2. समसामयिक परिवेश—मुक्तिबोध का काव्य सामाजिक जीवन के व्याख्या का काव्य है। वे जन- सामान्य को खुशहाल देखना चाहते थे। मुक्तिबोध की समाज संसक्ति से जिस सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति हुई है उसे हम तारसप्तक की ही नहीं, बल्कि चाँद का मुँह टेढ़ा है में भी देख सकते हैं। उनकी इस सामयिक चेतना में गांधी, तिलक जैसे समाज- सुधारकों के सिद्धान्त भी हैं। ब्रह्मराक्षस, स्वप्न कथा, मेरे लोग आदि ऐसी कविताएँ हैं। अत: यही कहना उचित प्रतीत होता है कि हमारे आस- पास का जगत और उससे निर्मित भयावह और त्रासदी इन कविताओं में कैद हैं।

'प्रत्येक चौराहे, दुराहे व राहों के मोड़ पर
सड़क पर खड़ा हूँ
कहीं आग लग गयी, कहीं गोली चल गयी।
सब चुप, साहित्यिक चुप और कविजन निर्वाक'

3. वर्ग हीन समाज स्थापना की ललक—मुक्तिबोध जानते थे कि मानवीय समाज, संस्कृति और जीवन दृष्टि को स्वस्थ जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा का स्वप्न साकार तभी होगा, जब हम शोषण और स्वार्थ के अधियारों को छोड़ देंगे।

'जहाँ सूखे बबूलों की कटीली पात
भरती है हृदय में धुंध- डूबा दु:ख
भूखे बालक के श्याम चेहरों के साथ
मैं भी घूमता हूँ, शुष्क
आती याद मेरे देश भारत की।'

4. पूँजीवादी व्यवस्था के प्रति घृणा—मुक्तिबोध शोषण और अत्याचार की चक्की में पिसते जन समाज के प्रति पर्याप्त सहानुभूति शील थे। मार्क्सवादी प्रगतिशीलता की छाया में पली मुक्तिबोध की आस्था का केन्द्र जन- मन है, मानव नहीं। चाँद का मुँह टेढ़ा है कविता में पूँजीवादी सभ्यता की प्रतीक चाँदनी है। कवि शोषण की सभ्यता का दुर्ग- रूप उद्घाटित करते हुए रेफ्रीजरेटर, विटामिनों और रेडियो ग्रामों के बाहर की गति वाली दुनिया के प्रति करुणा से भर उठा है।

5. शोषितों और दलितों के प्रति आर्द्र संवेदना—मुक्तिबोध का कवि सर्वहरा मजदूर वर्ग का अभिषेक सहानुभूति और करुणा जल से करता है, वहीं उसे ऊँचा भी उठाना चाहता है। आर्थिक शोषण से उसे मुक्त भी करना चाहता है।

'मैं तुम लोगों से दूर' कविता में कविता का कनफटा ऐढ़ा, तौलिया लिबास पहने शेवरलेट, डाज के नीचे लेटा हुआ आदमी भी है और शोषण के लिए जिम्मेदार होने की ग्लानि चेतना में अपराधी की भावना से पीड़ित यह शोषित मर्दित इन्सान भी है। जो न खड़ा हो सकता है, न नाच सकता है, किन्तु फिर भी उसकी छाती रौंदी जाती हैं। उसे जबरन अन्धेरे कमरों में लाया जाता है। और—

'टूटे से स्टूल पर बिठाया गया हूँ
शीश की हड्डी जा रही तोड़ी
लोहे की कील पर बड़े हथौड़े
पड़ रहे लगातार
शीश का मोटा अस्थि कवच ही निकाल डाला
चाबुक चमकदार, पीठ पर यद्यपि
उखड़े चर्म की कत्थई रेखाएँ उभरी।'

कई स्थानों पर नारी की शोषित अवस्थाओं का चित्र मिलता है। कहीं वह वासना का शिकार बनती है, कहीं विवशता में भी भ्रमरत रही।

6. सामान्य मानव के प्रति निष्ठा व समर्पण—मुक्तिबोध ने समाज में सभी वर्ग के लोगों को समदृष्टि से देखा था। उन्होंने समाज में सभी तबकों के व्यक्तियों की गतिविधियों, भावनाओं और अभिलाषाओं को गहरी नजर से देखा था। वे मामूली आदमी के आन्तरिक भावों को समझने बूझने वाले कवि थे। कवि ने मुझे याद आते हैं कविता में गर्भवती नारी, भ्रमरता नारी और कर्मठ नारी का जो चित्र

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अलग- अलग कोणों से उभारा है, उसमें भी जन- सामान्य के प्रति भावना को ही बताता है। वे सामान्य मानव की पीड़ा और घुटन के अनगिनत पाटों के बीच पिसते हुए मानवों की कसक को अनुभव भी करते हैं, उससे समाहित भी होते हैं। इस साहित्यिक डायरी में वे स्वयं स्वीकार करते हैं। मैं उस श्रम का चित्रण करना चहाता हूँ जिसका बदला कभी नहीं मिलता और जिसे आये दिन आत्म बलिदान और त्याग की नसीहत दी जाती है, अत: ध्यातव्य यह है कि मुक्तिबोध की कथनी और करनी में अन्तर नहीं है।

कवि ने आगे कहा कि आप साहूकार हों या सरकार मेरी तो उन्हीं सामान्य जनों के साथ पटरी बैठती है और उन्हीं के बदनसीब हाथों से मेरी दुनिया चलती है जो मेरे जैसे हैं।

7. वर्ग संघर्ष और क्रान्ति चेतना—सामान्य जन्म को चाहने वाला यह कवि वर्ग संघर्ष और क्रान्ति चेतना को वाणी दे सका है। 'लकड़ी का बना रावण' चकमक की चिनगारियाँ, शून्य माध्यम के रूप में 'पोस्टर' इस कविता में मुक्त चेतना का गवाह बनकर आया है। अंधेरे में कविता में अनेक स्थलों पर क्रान्ति की भावना दिखाई देती है। वह कवि की क्रान्ति धर्मी दृष्टि का ही निरूपक है। जब क्रान्ति के कारण सारा नगर आग को लपटों में जल रहा है।

'नगर से भयानक धुँआ उठ रहा है।
कहीं आग लग गई, कहीं गोली चल गई।
सड़कों पर मरा हुआ फैला है सुनसान
हवाओं में सदृश्य ज्वाला की गरमी
गरमी का आवेग।'.....।

मुक्ति बोध की दृष्टि द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी होती है और जीवन आदर्श सामाजिक आर्थिक परिवर्तन और उसकी वाहक जनक्रांति।

8. सत्चित वेदना—मुक्तिबोध का काव्य सत्चित वेदना का काव्य है उन्होंने जीवन में अनेक दु:ख झेले हैं। विद्यानिवास मिश्र ने लिखा है—'मुक्तिबोध मसीहा चेतना के कवि नहीं हैं, दु:ख उनके लिए प्रसाधन नहीं है जीवन है। वे दु:ख के सहारे नहीं दु:ख में जीने वाले कवि हैं। दु:ख भी उनके लिए सत्य है इसलिए कि इस दु:ख को समझने वाले वे चाहे अकेले हों, भोगने वाले अकेले नहीं हैं।' यह वेदना दु:ख को ही नहीं दु:ख के कारणों को भी अपने साथ लेकर चली है। मुसीबतों, त्रासदियों और विसंगतियों व विडम्बनाओं को अपने भीतर घटित होते देखते महसूस करते रहे। यही कारण है कि मुक्तिबोध ने सच्चाइयों का गला नहीं घोटा, अपने दाहकतम अनुभवों को छिपाया नहीं अपितु बेलाग और बेपर्द शैली में कह दिया।

वास्तविकता यह है कि मुक्तिबोध की वेदना हृदय में प्राकृतिक रूप लेकर जल रही है। उसमें बाहर भीतर के संघर्ष से पैदा होने वाली आग है। जिसमें जीवन शतदल भी खिलता है।

9. आधुनिकीकरण और विसंगतियाँ—वर्तमान समाज जिस आधुनिकता के दौर से गुजर रहा है या जैसा मुक्तिबोध ने उसे देखा था, वह घुटन आधुनिकता का सैलाब पाने था। वर्तमान समाज स्वार्थ कृत्रिमता, आडम्बर, अवसरवादिता की बैसाखियों के सहारे जी रहा है। मुक्तिबोध ने एक चेतन कवि की हैसियत से सामान्य जन की पीड़ा कथा और विषमता को काव्य बद्ध ही नहीं किया अपितु उससे गहरे जुड़े भी है। वर्तमान सभ्यता की विसंगतियों और विरूपताओं से परिचित होने के कारण ही मुक्तिबोध ने छद्म आधुनिकता पर आक्रमण किया है। 'चाँद का मुंह टेढ़ा है', 'बारह बजे रात' आदि आधुनिकता और उससे उत्पन्न विसंगतियों का त्रास शैली में भी अंकन हुआ है और व्यंग्य शैली में भी। कहीं जो पूंजीवादी व्यवस्था पर व्यंग्य है कहीं आधुनिकतम सभ्यता संस्कृति पर व्यंग्य है और कहीं मानव की विगलित विकृत चेतना पर जो मानवीय मूल्यों की स्वस्थता की बलि देकर विकसित हो रही है। समकालीन जीवन की बढ़ती हुई विभीषिकाओं और विसंगतियों को कवि ने तीखी गहरी नजर से देखा था। मुक्तिबोध की कविता हमारे आस-पास फैले जटिल, स्याह, सफेद परिवेश की प्रतिकृति है। कवि की तीखी गहरी दृष्टि से कुछ भी छिप नहीं सका है।'

10. आस्था और जिजीविषा—भविष्य के प्रति मुक्ति बोध के मन में प्रबल आस्था है। उनकी अस्था अखण्ड है, जिजीविषा अनवरत और अदम्य है। वर्तमान परिवेश की भयावहता की सियाही के अन्धेरे में डूबी हर आलोक किरण और हर मुरझाये पुष्प की गंध को पुन: पाने की ललक मुक्तिबोध को आस्था और जिजीविषा से जोड़े रही है। 'अंधेरे में', 'ओ काव्यात्मक फणिधर' और 'चांद का मुंह टेढ़ा है' की अनेक कविताओं में यही आस्था पुंज प्रकट हो रहा है। वे तो मानव भविष्य के प्रति सतर्क और चिन्तित थे। वे सर्वांगीण

विकास के इच्छुक थे। उन्हें विश्वास था कि इस अर्धमृत मानव की चेतना को पुन: जगाया जा सकता है उसे जीवनी शक्ति से जोड़ा जा सकता है। मुक्तिबोध के आस्थावाद में ही उनकी मानवतावादी दृष्टि निहित है। मुक्तिबोध जन की शक्ति के प्रति पूरी तरह आस्थावान थे, तभी तो उनकी हर एक कविता अपने अन्तिम भाग में सुखद चेतना भविश्य धर्मी आस्थायुक्त जिजीविषा से समाप्त हुई है।

11. वेदना का काव्य—मुक्तिबोध का काव्य सत्चित वेदना का काव्य है। विद्या निवास मिश्र ने लिखा है। 'मुक्तिबोध मसीही चेतना के कवि नहीं हैं। दु:ख उनके लिए प्रसाधन नहीं है, जीवन है। वे दु:ख के सहारे नहीं हैं दु:ख में उनके लिए प्रसाधन नहीं है, जीवन है। वे दुख के सहारे नहीं दु:ख में जीने वाले कवि हैं। दुख भी उनके लिए सत्य है। इसलिए कि इस दुख को समझने वाले वे अकेले चाहे हों, भोगने वाले अकेले नहीं है। वस्तुत: उनका वेदनाबोध न केवल गहरा अपितु व्यापक भी है। मुक्तिबोध ने अपनी वेदना को सत्चित् वेदना कहा है।

8.3 सारांश

मुक्तिबोध सच्चे जन कवि थे, यथार्थ के चित्रकार थे, जीवन की संगत असंगत स्थितियों के दिग्दर्शक कवि थे। वे अपनी पीढ़ी से काफी आगे सोचते थे। यह वह कवि था जो मूल्यहीनता, अमर्यादा, असंयम और मानवीय आदर्शों के विरोधी तत्त्वों और रूपों से उत्पन्न उस सत्रांस और मरी हुई आवाजों को भी सुन सका जो आजादी के बाद के वर्षों में उभरी हैं। वे बराबर अनुभूति करते रहे कि जड़ीभूत दबावों का भार मनुष्य की छाती सहन नहीं कर सकती है। मुक्तिबोध सच्चे अर्थों में जन कवि थे। उनकी कविताएँ मानव सभ्यता का इतिहास भी प्रस्तुत करती हैं और भारतीय जीवन के उस पक्ष को भी जिसमें वे स्वयं घिसते रहे। उन्होंने अधूरी जिंदगी बिताई पर कविता में उन्होंने पूरे जीवन को दर्शाया है।'

8.4 अभ्यास प्रश्नावली

1. मुक्तिबोध के काव्य की विशेषताएँ लिखिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई - 9

रघुवीर सहाय

संरचना

9.0 कवि परिचय

9.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

9.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

9.2.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

9.2.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

9.2.3 निबंधात्मक प्रश्न

8.3 सारांश

8.4 अभ्यास प्रश्नावली

9.0 कवि परिचय

रघुवीर सहाय का जन्म लखनऊ में हुआ। इन्होंने 1951 में अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. किया। लेखन की शुरुआत 1449 में की। सन् 1949 में लखनऊ से प्रकाशित 'दैनिक नवजीवन' से पत्रकारिता की शुरुआत की। 'दैनिक नवजीवन' में रघुवीर सहाय 1951 में संपादक और सांस्कृतिक संवाद्दाता बन गए। इसी वर्ष ये दिल्ली आए और 'प्रतीक' के सहायक संपादक (1951-52), आकाशवाणी के समाचार विभाग में उप संपादक (1953-57) के रूप में कार्य किया। रघुवीर सहाय ने 1957-58 तक 'कल्पना' (हैदराबाद) के सम्पादक मण्डल में सदस्य के रूप में, 1961-63 तक आकाशवाणी में विशेष संवाद्दाता के रूप में, 1968-69 तक 'दिनमान' में पहले समाचार संपादक, बाद में कार्यकारी संपादक, 1969-83 तक 'दिनमान' के संपादक के रूप में सेवाएँ प्रदान की। इसके बाद वे स्वतंत्र लेखन ही करते रहे।

रघुवीर सहाय 'दूसरा- सप्तक' के महत्त्वपूर्ण कवि हैं। उनकी कविताएँ, कविताओं के विरुद्ध बोलते आ रहे समाज की आंतरिक विसंगतियों और बाहरीपन मार्मिक व्यंग्य करती हैं। रघुवीर सहाय मानवीय पक्षधरता के जागरूक कवि हैं। 'दूसरा- सप्तक' के कवियों में इनका स्तर सबसे अलग दिखाई देता है। बहुत सहज भाषा में बोलचाल के लहजे में, जीवन के सत्यों को, कुछ मन:स्थितियों को व्यक्त कर देना इनकी कविता की विशेषता है। सन् 1960 के बाद लिखी गई रघुवीर सहाय की व्यंग्य प्रधान कविताओं में आज की दुनिया की पूरी तस्वीर देखी जा सकती है। ये कविताएँ न केवल राजनीति से सीधा साक्षात्कार प्रस्तुत करती हैं अपितु अपने परिवेश की विसंगतियों, विरूपताओं, विद्रूपताओं को सामने रखकर उनके भीतर छिपी अमानवीयता को भी उभारती है। 'आत्महत्या के विरुद्ध', 'नेता क्षमा करें', 'कोई एक और मतदाता', 'एक अधेड़ भारतीय आत्मा', 'नयी हंसी' आदि कविताएँ संसदीय प्रणाली, समाजवादी ढोंग और सुविधा की राजनीति का मखौल उड़ाती है। यही नहीं पुलिस, डॉक्टर, संपादक, पत्रकार, न्यायधीश, कुलपति आदि भी कवि की निगाह से बच नहीं पाये हैं। इनकी वास्तविक तस्वीर रघुवीर सहाय की कविताओं में देखने को मिलती है।

रघुवीर सहाय ने नयी कविता की बिम्ब व प्रतीक बहुल भाषा से मुक्त होकर बोलचाल की भाषा में रोजमर्रा के संसार की विडम्बनाओं व विसंगतियों को मूर्त्त किया है। उन्होंने नयी सहज, सरल गद्यात्मक भाषा अपनायी है जिसमें नाटकीयता का रूप विद्यमान है। ऊपरी तौर पर यह भाषा, सीधी, सपाट और हल्की- फुल्की लगती है लेकिन इसके पीछे अनुभव की वक्रता है और यही रघुवीर सहाय की भाषा की शक्ति है। 'सीढ़ियों पर धूप में', 'आत्महत्या के विरुद्ध', 'हँसो हँसो जल्दी हँसो', 'लोग भूल गए हैं', 'कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ' रघुवीर सहाय के प्रकाशित कविता- संग्रह हैं।

9.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

शोकसभा

(1)

आपकी मृत्यु पर मैं भी आ गया हूँ
आप मुझसे मिलने आये थे
मैंने सिर्फ उनके पाँव छुए
अब तुम लिखोगे
इनकी शोकसभा में इतनी भीड़ न थी
तुमने लिखा साठ के होने पर
किसी तरह का ढोल नहीं बजा
जब मेरा भाषण खत्म हो रहा था
तो श्रोता उसे वहीं पर समाप्त होते सुनना चाह रहे थे
जहाँ वे समझने से इन्कार कर देते हैं।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक 'आधुनिक काव्य संग्रह' में संकलित रघुवीर सहाय द्वारा रचित 'शोक सभा' शीर्षक कविता से अवतरित है। यहाँ कवि ने शोक सभा के यथार्थ को व्यक्त करते हुए उसकी विसंगतियों पर व्यंग्यात्मक चित्रण किया है।

व्याख्या—कवि कहता है कि शोकसभा में कुछ लोग इसलिए शामिल होने जाते हैं कि वह मृतक भी उसके यहाँ आयोजित हुई शोक सभा में आये थे। जब वे मेरे यहाँ आये थे तब मैंने उन्हें झुक कर प्रणाम किया था। इस प्रकार ये दिवंगत सज्जन मेरे लिए आदरणीय थे। उस दिवंगत की शोकसभा कोई किसी पत्रकार को सम्बोधित करके कहता है कि अब आप लिखोगे कि उनकी शोक सभा में उनकी प्रसिद्धि के आधार पर भीड़ कम थी। उनकी उम्र साठ वर्ष की हो गयी थी। लेकिन साठ वर्ष के होने पर भी इनके यहाँ कोई ढोल नहीं बजा था अर्थात् खुशी का आयोजन नहीं हुआ था। कवि कहता है कि जब मेरा सन्दर्भित विषय को लेकर भाषण चल रहा था तो उसे श्रोता नहीं सुनना चाहते थे। कहने का भाव यह है कि उस शोक सभा में उपस्थित लोग जल्दी से ही आने की रस्म पूरा करके चले जाना चाहते थे। इस प्रकार वे मात्र रस्म निभाने के लिए या अपनी उपस्थिति दर्ज कराने भर के लिए ही आये थे।

विशेष—शोक सभा में जाने वाले व्यक्तियों की मानसिकता का यथार्थ चित्रण करते हुए उस पर व्यंग्य किया गया है।

शहर से बाहर

(1)

एक दिन यों हुआ कि मैं शहर से दूर गया
और वहाँ आसमान मुझको दिखा
बरसी हुई दरकी हुई धरती पे झुका
अपने आप और अपने मन से,
बेकार।
मेरी वह खास-खास नफरत
जो लोगों के लिए मुझमें है, थी।
जैसे एक उजाला उजाड़-सा शीतल
और उसमें एक हरा अँसुआ
और उस पर आकाश के रंगों की झलक
जैसे कोई एक आँख से हँसे एक से रोये
वह मेरी नफरत थी वहाँ और मैं अकेला था और शाम थी
न कोई कोशिश थी न कोई काम था न कोई दर्द
क्या था वह अपने को खोले हुए आकाश में

जैसे एक पवित्र भय।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक 'आधुनिक काव्य संग्रह' में संकलित रघुवीर सहाय द्वारा रचित 'शहर से बाहर' शीर्षक कविता से अवतरित है। इसमें कवि ने शहर के बाहर के खुले परिवेश में एक पवित्र भय की अनुभूति की है।

व्याख्या—कवि कहता है कि एक दिन ऐसा हुआ कि मैं शहर से बाहर दूर चला गया। वहाँ मुझे आसमान खुला दिखाई दिया अर्थात् जब मैंने शहर से बाहर जाकर आसमान को देखा तो वह आसमान मुझे धरती के लोगों की वृत्तियों का ही प्रतिबिम्ब-सा नजर आया। वह जगह-जगह से तरारे पड़ी तथा फटी हुई धरती पर झुका हुआ था, लेकिन वह अपने आप और अपने मन से बेकार नजर आया अर्थात् धरती पर झुकने में आसमान का कोई प्रयोजन नहीं था। वह तो वैसे ही बेकार झुका हुआ था और इस धरती की हालत भी विचित्र रूप से दयनीय थी। जिससे वह जगह-जगह से फट गई थी और उसमें दरारें पड़ गई थीं। कवि कहता है जब मैं शहर के बाहर आसमान को देख रहा था तब मेरे मन में जो लोगों के लिए खास-खास नफरत है उस समय भी मेरे मन में समाई हुई थी। जैसे उजला-सा शीतल एक उजाला हो और उसमें एक हरा अर्थात् निरन्तर बढ़ने वाला आँसू हो और उस पर आकाश के रंगों की झलक पड़ रही हो। जैसे कोई व्यक्ति अपनी एक आँख से हँसता हो और एक आँख से रोता हो उसी प्रकार वहाँ मुझे आकाश नजर आया। परन्तु वहाँ उस समय मेरी नफरत थी जो मेरे मन में समाई हुई थी और मैं अकेला ही था तथा शाम का समय था। वहाँ न तो मेरी और न आकाश की ही कोई कोशिश थी, न कोई काम था और न मन में कोई डर था। तब मैंने विचार किया कि आखिर वह क्या था, जो मुझे शहर के बाहर आसमान में दिखाई दे रहा था। वह तो एक पवित्र भय था जो अपने को आकाश में खोले हुए था अर्थात् सम्पूर्ण आकाश एक पवित्र भय से आच्छादित था।

विशेष—1. कवि ने धरती और आकाश के सम्बन्धों का चित्रण किया है।

2. कवि ने अपने मन की नफरत का ही प्रतिबिम्ब आकाश में देखा है जो उसके पवित्र भय का कारण है।

3. कवि द्वारा प्रयुक्त नवीन उपमान दृष्टव्य है।

विदाई

(1)

''और अब अहंकार से पैदा कर रहा हूँ मैं क्या?
वक्त जब बदलता है
एक सिरे से मानक तेज बदल जाते हैं बहते हुए
जोर से पानी पर उतराते जाते हैं। वे चिकने खोपड़े
जो कल तक परिचित थे
आज उन्हें हम देखना नहीं चाहते;
सहसा पता चलता है वे ही सच हो गए
लेकिन इतिहास जो बनाते हैं, ये नहीं
वे जो हारे हैं इतिहास को बनाते हैं।
मैं रो नहीं रहा, मैं गा नहीं रहा अपना सुसंस्कार
जब मैं मेहमान को बताता हूँ कुछ नहीं
और उसके आने पर फूल बाँध देता हूँ
उसके रूमाल में
जबकि पार्टी में हैं सब कठोर चेहरों पर
तेजयुक्त मुस्कानें।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक 'आधुनिक काव्य संग्रह' में संकलित रघुवीर सहाय द्वारा प्रणीत 'विदाई' शीर्षक कविता से उद्धृत है। इसमें कवि युग-परिवर्तन के परिणामजन्य विदाई के स्वरूप को स्पष्ट करता है।

व्याख्या—कवि रघुवीर सहाय युग परिवर्तन के प्रभाव से ग्रस्त होने की स्थिति का चित्रण करते हुए कहते हैं कि ऐसी ढलती उमर

में, विदाई की बेला की प्रतीक्षा में, मैं सोचता हूँ कि अब मैं अपने अहंकार से क्या पैदा कर रहा हूँ अर्थात् मेरा समस्त अहंकार युग के प्रवाह में बह गया है अत: अहंकार व्यर्थ है। कवि फिर कहता है कि जब समय बदलता है तो पूर्व समय में स्थापित जीवन के सारे मानक और मूल्य एक किनारे से दूसरे किनारे तक बदल जाते हैं और प्राचीन मानक व उनको स्थापित करने वाले व्यक्तियों के चिकने खोपड़े समय के प्रवाह में जोर से बहते हुए पानी पर उतराने लगते हैं और जो कल तक हमारे परिचित व प्रिय थे, युग बदलने पर हम उन्हें देखना नहीं चाहते हैं। तब अचानक ही यह पता चलता है कि वे ही सच हो गए हैं—परन्तु जो इतिहास को बनाते हैं वे ये नहीं हैं। कवि यहाँ इतिहास बनाने वालों के सम्बन्ध में कहता है कि वे जो हारे हैं या हार गये हैं, वे ही इतिहास बनाते हैं—क्योंकि इतिहास का सम्बन्ध तो प्रमुख रूप से अतीत काल से ही होता है। कवि यहाँ अपने सुसंस्कार अर्थात् पूर्व संस्कार जो युग बदलने पर व्यर्थ सिद्ध होते हैं, उनके प्रति रुदन नहीं कर रहा हूँ अर्थात् उन्हें बुरे नहीं बता रहा हूँ और न गीत गाकर उनकी प्रशंसा ही कर रहा हूँ।

कविता के अंतिम अंश में कवि युग- परिवर्तन के कारण होने वाली विदाई का स्वरूप चित्रित करते हुए कहता है कि आज जब मैं मेहमान को कुछ नहीं बताता हूँ परन्तु जब वह विदाई लेकर जाता है तब उसके रूमाल में फूल बाँध देता हूँ, जबकि पार्टी में मुझे सब कठोर चेहरों पर तेज से पूर्ण मुस्कानें नजर आती हैं। कठोर चेहरे वालों के रूमाल में फूल बाँधने का कार्य कहाँ पर उचित है?

विशेष—1. कवि ने युग या समय के परिवर्तन के प्रभाव को चित्रित किया है।

2. कवि ने इतिहास बनाने के सम्बन्ध में अपना नया दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है।

3. पार्टी, जो युग परिवर्तन का ही रूप है—में विदाई में रूमाल में फूल बाँधना नया मुहावरा है।

4. भाषा में सरलता है।

5. प्रतीक व उपमान सर्वथा नवीन हैं।

9.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

9.2.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न- 1. रघुवीर सहाय का जन्म कहाँ हुआ था?

उत्तर—रघुवीर सहाय का जन्म लखनऊ में सन् 1929 में हुआ था।

प्रश्न- 2. रघुवीर सहाय को किस 'सप्तक' का महत्त्वपूर्ण कवि माना गया है?

उत्तर—रघुवीर सहाय को 'दूसरा सप्तक' का महत्त्वपूर्ण कवि माना गया है।

प्रश्न- 3. रघुवीर सहाय की कविताओं का वर्ण्य-विषय क्या है?

उत्तर—रघुवीर सहाय की कविताएँ, कविताओं के विरुद्ध बोलते आ रहे समाज की आन्तरिक विसंगतियों और बाहरीपन पर मार्मिक व्यंग्य करती है।

प्रश्न- 4. रघुवीर सहाय को उनकी किस रचना पर पुरस्कार प्राप्त हुआ है?

उत्तर—रघुवीर सहाय को 'लोग भूल गये हैं' शीर्षक रचना पर साहित्य अकादमी का पुरस्कार प्राप्त हुआ है।

प्रश्न- 5. रघुवीर सहाय की किन कविताओं में संसदीय प्रणाली तथा राजनैतिक ढोंग पर व्यंग्य किया है?

उत्तर—रघुवीर सहाय की 'आत्महत्या के विरुद्ध', 'कोई एक और मतदाता' तथा 'नेता क्षमा करें' शीर्षक कविताओं में संसदीय प्रणाली और राजनैतिक ढोंग पर व्यंग्य किया गया है।

प्रश्न- 6. 'शोकसभा' शीर्षक कविता किसके द्वारा रचित है?

उत्तर—'शोकसभा' शीर्षक कविता रघुवीर सहाय द्वारा रचित है।

प्रश्न- 7. 'शोकसभा' शीर्षक कविता में कवि ने किस पर व्यंग्य किया है?

उत्तर—'शोकसभा' शीर्षक कविता में कवि ने उसमें उपस्थित होने वाले लोगों की औपचारिकतापूर्ण मानसिकता एवं स्थितियों की विसंगतियों पर व्यंग्य किया है।

प्रश्न- 8. 'शहर से बाहर' शीर्षक कविता के रचयिता का नाम बताइए।

उत्तर—'शहर से बाहर' शीर्षक कविता के रचयिता रघुवीर सहाय हैं।

प्रश्न- 9. 'विदाई' शीर्षक कविता किसके द्वारा रचित है?

उत्तर—'विदाई' शीर्षक कविता रघुवीर सहाय द्वारा रचित है।

प्रश्न-10. 'युग बदलता है उम्र ढलती है।' इस कथन के माध्यम से कवि ने किस सत्य की ओर संकेत किया है?

उत्तर—इस कथन के माध्यम से कवि ने जगत के शाश्वत और प्राकृतिक सत्य की ओर संकेत किया है।

प्रश्न-11. 'सोचने लगते हैं क्या पतन ही जीवन जीने की कीमत है', 'विदाई' कविता की इस पंक्ति के अनुसार लोग ऐसा कब सोचते लगते हैं?

उत्तर—जब उनका यौवनकाल बीत जाता है, उम्र ढलने लगती है और थकावट महसूस करने लगते हैं, तब वे ऐसा सोचने लगते हैं।

9.2.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न-1. रघुवीर सहाय की कविताओं में आज की दुनिया की पूरी तस्वीर किस प्रकार देखी जा सकती है?

उत्तर—रघुवीर सहाय द्वारा रची कई कविताएँ, 'आत्महत्या के विरुद्ध', 'नेता क्षमा करे', 'कोई एक और मतदाता', 'एक अधेड़ भारतीय आत्मा', 'नयी हँसी' आदि कविताएँ संसदीय प्रणाली, समाजवादी ढोंग और सुविधा की राजनीति का उपहास करती हैं। यही नहीं, पुलिस, डॉक्टर, सम्पादक, पत्रकार, न्यायाधीश, कुलपति आदि भी कवि की निगाह से बच नहीं पाये हैं। इनकी वास्तविक तस्वीर कविताओं में देखी जा सकती है। सन् 1960 ई. के बाद रघुवीर सहाय की व्यंग्य-प्रधान कविताओं में आज की दुनिया की पूरी तस्वीर देखी जा सकती है। ये कविताएँ न केवल राजनीति से सीधा साक्षात्कार प्रस्तुत करती हैं अपितु अपने परिवेश की विसंगतियों, विरूपताओं, विद्रूपताओं को सामने रखकर उनके भीतर छिपी अमानवीयता को भी उभारती हैं।

9.2.3 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न-1. 'शोक सभा' कविता के मूल भाव को स्पष्ट करते हुए रघुवीर सहाय के काव्य के कला पक्ष को उद्घाटित कीजिए।

उत्तर—रघुवीर सहाय नयी कविता के सशक्त हस्ताक्षर है। उनकी कविताएँ 'अज्ञेय' द्वारा सम्पादित 'दूसरा सप्तक' में प्रथम बार प्रकाशित हुईं। इनके काव्य की सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि इन्होंने अपनी कविताओं में दैनिक जीवन से जुड़े प्रसंगों को उठाकर उन्हें अपनी विशिष्ट काव्यशैली में प्रासंगिक बनाया है। नयी कविता के विकास में इनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। इनके द्वारा रचित 'शोक सभा' कविता सामाजिक जीवन से जुड़ी हुई मानवीय भावना को उजागर करने वाली और जन-मानस की मानसिकता पर प्रकाश डालने वाली कविता है।

'शोक सभा' कविता का मूल भाव—'शोक सभा' शीर्षक कविता में कवि ने सामाजिक जीवन में सामान्यतया दिखाई देने वाले एक ऐसे दृश्य को वर्णित किया है जो शोक सभा में शामिल होने वाले व्यक्तियों की मानसिकता को उद्घाटित करता है। आजकल शहरी और कस्बाई जीवन में 'शोक सभा' में प्रायः मृतक के अप्रत्यक्ष और प्रत्यक्ष रूप से जुड़े सभी लोग आते हैं। उनमें से कुछ लोग ऐसे होते हैं जो मात्र उपस्थिति दर्ज कराने की दृष्टि से कार्यालय का समय पूरा होने पर अपने घर जाने की बजाय शोक सभा में चले जाते हैं। उस समय शोक सभा में जान-पहचान वाले होने पर भी वे उनसे कम बातें करते हैं और स्थानाभाव की दृष्टि से जरूरत पड़ने पर वे आगे की ओर सरक जाते हैं। यदि उस शोक सभा में कोई फोटोग्राफर उपस्थित होता है तो वे अपना छाया-चित्र खिंचवाने के लिए उत्सुक रहते हैं और छायाचित्र खिचने पर उसकी ओर ही वे अपना चेहरा घुमा लेते हैं ताकि इस बात का पता चलता रहे कि शोक सभा में अमुक व्यक्ति मौजूद था। इस प्रकार वे एक ओर शोक सभा में अपनी जहाँ उपस्थिति दर्ज कराते हैं वहीं दूसरी ओर वे अपना प्रचार भी करते हैं। कवि कहता है कि शोक सभा में दो तरह के लोग उपस्थित होते हैं; एक तो दिवंगतजन के परिवार वाले, जो अपनी विशेष पहचान बनाये रखने के लिए विशेष वेश-भूषा धारण करते हैं और दूसरे वे लोग होते हैं जो दिवंगत के साथ अपनी पसन्द के सम्बन्ध बनाते या मन में विचार करते हैं। कवि स्पष्ट करता है कि शोक सभा के प्रति भावात्मक लगाव लोगों के मन में नहीं रहा है। वे मात्र औपचारिकता निभाने के उद्देश्य से और अपने आपको उऋण करने की दृष्टि से ही आते हैं। कुछ लोगों की शोक सभा में भीड़ नहीं होती इसके साथ ही शोक सभा में लम्बा भाषण भी नहीं दिया जाता है क्योंकि इसके प्रति लोगों की रुचि नहीं होती है। इसके प्रति लोगों का यह भी मानना है कि लम्बे भाषण से शोक सभा में दुःख घटने से बजाय बढ़ जाता है। इस प्रकार 'शोक सभा' कविता में कवि ने वर्तमान जीवन में समाये दिखावटी व्यवहार और संवेदनहीनता पर करारा व्यंग्य किया है और आज के सामाजिक जीवन के यथार्थ की तस्वीर उपस्थित की है।

काव्य का कला पक्ष—रघुवीर सहाय नई कविता के एक महत्त्वपूर्ण कवि हैं। उनका भाव पक्ष जहाँ सामाजिक जीवन में समायी

विसंगतियों को उजागर करने में सक्षम है वहीं कला पक्ष सादगी और सरलता से पूरित है। उनका कला- पक्ष प्रतीक विधान और व्यंग्यपरक आदि की दृष्टि से सबल है। उनके कला- पक्ष को निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर इस प्रकार वर्णित किया जा सकता है—

1. भाषा सौष्ठव—रघुवीर सहाय की कविताओं की भाषा सरल तथा भाव संप्रेष्य से पूरित है। उन्होंने अपनी काव्य रचनाओं में दैनिक प्रयोग में आने वाली शब्दावली को अपनाया है जिसके कारण उनकी भाषा गद्यात्मक और सरल प्रतीत होती है। उनकी भाषा के सम्बन्ध में अज्ञेय जी का कथन है कि "उनकी सरल, साफ- सुथरी और अत्यन्त सधी हुई भाषा इसके सर्वथा अनुकूल है। उनका संस्कार शहरी है जो किसी कृत्रिमता के अर्थ में नहीं, अच्छे घर में रोज काम आने वाले बर्तनों में माँजते रहने के कारण जो चमक होती है, जो उन्हें अलमारी में सजाने की प्रेरणा न देकर सहज व्यवहार में लाने की प्रेरणा देती रहती है; कुछ वैसी ही प्रीतिकर सहज ग्राह्यता उनकी भाषा में है।"

2. बिम्ब- प्रतीक योजना—रघुवीर सहाय की रचनाओं में बिम्ब- प्रतीक योजना का सामान्य रूप से ही प्रयोग हुआ है। उन्होंने शहरी- कस्बाई जीवन के लिए जिन बिम्बों और प्रतीकों का प्रयोग किया है, वे आधुनिकता बोध के परिचायक हैं। 'विदाई' कविता में अतिथि के रुमाल में एक पुष्प बाँध देने को उसकी विदाई का प्रतीक बताया गया है—

जब मैं मेहमान को बताता हूँ कुछ नहीं और उसके जाने पर फूल
बाँध देता हूँ उसके रुमाल में
जबकि पार्टी में है सब कठोर चेहरों पर तेज युक्त मुस्कानें।

इसी प्रकार बिम्ब उनकी कविता में स्वत: उभर आये हैं—

एक दिन यों हुआ कि मैं शहर से दूर गया
और वहाँ आसमान मुझको दिखा
बररी हुई दरकी हुई धरती पे झुका
अपने आप और अपने मन से बेकार।

3. व्यंग्य- सौष्ठव—रघुवीर सहाय ने वर्तमान वातावरण की विसंगतियों के अन्दर छिपी अमानवीयता को उभारने के लिए अपने देश की संसदीय प्रणाली और राजनैतिक आडम्बर को व्यक्त करने के लिए सशक्त व्यंग्य प्रस्तुत किए हैं। उनके द्वारा प्रयुक्त व्यंग्य सटीक और सार्थक हैं। उदाहरण के लिए, 'शोक सभा' कविता में शहरी जीवन में समाये स्वार्थ भाव पर एक व्यंग्य देखिए—

देते हुए खबर सबको अपने होने की
मनपसन्द दूरी पर अपने
परे, विवंगत को सरकाते
कहीं छिपे कैमरे के लिए
अपना चेहरा आप घुमाते।

4. शैली- विधान—रघुवीर सहाय ने अपनी रचनाओं में सरल शब्दावली में सहज अभिव्यक्ति की है। उनके कथनों में व्यंग्यात्मकता की प्रधानता दृष्टिगत होती है। भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से उनकी रचनाओं में शैलीगत विविधता दृष्टिगत होती है।

9.3 सारांश

रघुवीर सहाय का कला- पक्ष सरल होते हुए भी उपमान विधान, प्रतीक, बिम्ब, विधान, व्यंग्य वक्रता आदि की दृष्टि से प्रभावशाली है। सरल भाषा में यथार्थ की अभिव्यक्ति उनकी मनोवृत्ति की परिचायक है। अत: कहा जा सकता है कि उनका कला- पक्ष अपने आप में प्रभावपूर्ण है।

9.4 अभ्यास प्रश्नावली

1. शोक सभा कविता का भाव लिखिए।

Vishwa Bharati (Deemed University) Ladnun

इकाई-10
शमशेर बहादुर सिंह

संरचना

10.0 कवि परिचय

10.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

10.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

10.2.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

10.2.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

10.2.3 निबंधात्मक प्रश्न

10.0 कवि परिचय

शमशेर बहादुर सिंह का जन्म देहरादून में हुआ था। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा देहरादून में हुई थी। 1933 में इलाहाबाद से बी.ए. उत्तीर्ण किया। 1935-36 में शमशेर उकील बंधुओं से कला विद्यालय में पेंटिंग सीखने गये। कई पत्रिकाओं के सहायक सम्पादक रहने के बाद ये सन् 1965 से 1977 तक दिल्ली विश्वविद्यालय में यू.जी.सी. के प्रोजेक्ट 'उर्दू-हिन्दी कोश' में हिन्दी संपादक रहे। सन् 1981-95 तक विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन के प्रेमचंद सृजनपीठ के अध्यक्ष रहे।

शमशेर बहादुरसिंह ने 1932-33 में लिखना प्रारम्भ किया था। इनकी प्रारम्भिक रचनाएँ 'सरस्वती', 'रूपाम' आदि में छपती थीं। शमशेर 'दूसरा सप्तक' के प्रमुख कवि माने जाते हैं। इन पर मार्क्सवादी और प्रयोगवादी दोनों प्रभाव देखने को मिलते हैं। वर्ग चेतना के साथ-साथ व्यापक जीवन मूल्यों को भी इन्होंने महत्त्व दिया है। इनकी रचनाओं में इन्होंने पीड़ित मानवता को विशेष रूप से चित्रित किया है। उर्दू भाषा का सम्यक् ज्ञान होने के कारण इनकी कविता में मिठास भी बहुत है। कहीं कहीं इनकी कविता में रूमानियत भी दृष्टिगोचर होती है। शमशेर के प्रतीक और बिम्ब सम्बंधी प्रयोग बड़े समर्थ हैं। डॉ. रामविलास शर्मा ने शमशेर की कविता के विषय में लिखा है—'शमशेर की रचनाओं में काव्य कौशल को लेकर उधेड़बुन ज्यादा है।' 'कुछ कविताएँ', 'कुछ और कविताएँ', 'चुका भी हूँ नहीं मैं', 'इतने पास अपने', 'उदिता' और 'बात बोलेगी' शमशेर के काव्य संग्रह हैं। 'चुका भी हूँ नहीं मैं' पर कवि को 1977 में साहित्य अकादमी पुरस्कार और मध्यप्रदेश साहित्य परिषद् का 'तुलसी पुरस्कार' मिला।

10.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

सागर तट

(1)

धून रही थी सिर
व्यर्थ व्याकुल मन लहरें
वहीं आ आकर
जहाँ था मैं खड़ा
मौन
समय के आघात से
पोली, खड़ी दीवारें
जिस तरह घहरें
एक के बाद एक सहसा
चाँदनी की उंगलियाँ चंचल
क्रोशिये से बुन रही थीं चपल
फेन-झालर बेल, मानो।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

प्रसंग—प्रस्तुत कवितांश श्री शमशेर बहादुर सिंह द्वारा विरचित 'सागर- तट' शीर्षक कविता से अवतरित है। सागर- तट पर खड़ा होकर कवि अपने भीतर चलने वाले द्वन्द्वों, तनावों, संघर्षों, प्रेम, विषाद, आह्लाद, आशय, आकाँक्षा को प्रकृति पर आरोपित करके व्यक्त करता है और लहरों तथा चाँदनी के माध्यम से प्रकट करता है।

व्याख्या—सागर- तटपर लहरों की पछाड़ों से तट की हड्डियाँ टूटने के दृश्य का अंकन करने के बाद कवि शमशेर बाहदुरसिंह उन ही लहरों का अन्य रूप में वर्णन करता हुआ कहता है कि सागर की वे पछाड़ खाती हुई, व्याकुल और मस्त लहरें तट से बार-बार टकराकर अपना सिर धुन रही थीं अर्थात् अपने मन के खेद को प्रकट कर रही थीं कि वे तट पर कोई प्रभाव नहीं डाल सकी और उनका श्रम बेकार ही चला गया। यह सारा दृश्य वहाँ घटित हो रहा था, जहाँ मैं चुपचाप खड़ा था।

लहरें एक के बाद एक उठकर किनारे पर आघात कर रही थीं परन्तु इन आघातों का तट पर कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा था। केवल लहरों की ध्वनि से धरधराहट का स्वर निकल रहा था। जैसे समय के आघातों से जीवन की बोली अर्थात् असक्त दीवारें घहरने लगती हैं, उसी तरह लहरों के आघात से सागर- तट धहरता था। लहरें एक के बाद एक उठ रही थीं। उन लहरों पर चन्द्रमा की चाँदनी बिखर पड़ रही थी। ऐसा लगता था मानो चाँदनी की चंचल अंगुलियाँ क्रोशिए पर झालरें, बेल आदि बुन रही हों। लहरों के उठने और टकराने से सागर- तट पर झाग और अन्य आकार बन रहे थे वे मानो समुद्र के अंचल पर चाँदनी द्वारा क्रोशिए से बेल- बूटे व झालरों के समान बुने हुए दिखाई दे रहे थे।

विशेष—1. कवि सपाट बयानी का साहस नहीं जुटा पाता दिखाई देता है। 2. उलझे बिम्बों के साथ कवि के मन की उलझी स्थिति का चित्रण है। 3. अंतिम चरण में उत्प्रेक्षा अलंकार है, जिसका रूप है—**क्रोशिए से बुन रही थीं चन्द्र। फेन- झालर बेल, मानो।"** 4. नये उपमान, नये बिम्ब हैं। 5. लहरों पर बिखरती चाँदनी को बेलबूटे व झालरें बुनती हुई बताना आधुनिक जीवन को साकार करता है। 6. हमारा संबंध और रागात्मक इन उपमानों से मुखर होती है। एक व्यापक कैनवास पर सुन्दर अलंकार करने में कवि समर्थ सिद्ध होता है। सागर- तट पर कवि की भावोत्तेजना में आत्मीयता के साथ ऐसा कुछ लगता है जो छायावाद का स्पर्श करते हुए भी छायावादी नहीं है।

टूटी हुई, बिखरी हुई

(1)

यह दुकान मैंने खोली है जहाँ 'प्वाइजन' का लेबुल लिए हुए
दवाइयाँ हँसती हैं—
उनके इंजेक्शन की चिकोटियों से बड़ा प्रेम है।
वह मुझ पर हँस रही हैं, जो मेरे होठों पर एक तलुए
के बल खड़ी है
मगर उसके बाल मेरी पीठ के नीचे दबे हुए हैं
और मेरी पीठ को समय के बारीक तारों की तरह
खुरच रहे हैं
उसके एक चुम्बन की स्पष्ट परछाई मुहर बनकर उसके
तलुओं के ठप्पे से मेरे मुँह को कुचल चुकी है
उसका सीना मुझको पीसकर बराबर कर चुका है।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य- पुस्तक 'आधुनिक काव्य- संग्रह' में संकलित शमशेर बहादुरसिंह द्वारा रचित 'टूटी हुई, बिखरी हुई' शीर्षक कविता से उद्धृत है। इसमें कवि ने अपने जीवन का एक अलग ही परिदृश्य प्रस्तुत किया है, जिसमें प्रवंचनाओं और विसंगतियों को स्थान दिया गया है।

व्याख्या—कवि कहता है कि यह दुकान मैंने खोली है जिसमें शिशियों में दवाइयाँ भरी पड़ी हैं। उन दवाइयों में 'प्वाइजन' के लेबिल लगी दवाइयाँ भी हैं, जिससे दवाइयाँ हँसती हैं, क्योंकि मैं यथा नाम तथा गुण नहीं हूँ, अत: दुकान पर दवाइयों की बिक्री नहीं होती है; क्योंकि आज भी नर्सें जो इंजेक्शन लगाती हैं उनसे चिकौटी काटने का जो दर्द होता है, लोगों को उससे बड़ा प्रेम है। परन्तु इंजेक्शन लगाने वाली वह नर्स मुझ पर हँस रही है, जो मेरे होठों पर एक तलुए के बल पर खड़ी हुई है अर्थात् इंजेक्शन लगाने के पश्चात् मुझे दवा पिलानी चाहती है। मगर उसके बाल मेरी पीठ के नीचे दबे हुए हैं और मेरीपीठ को समय के बारीक तारों की तरह खुरच रहे हैं। उसके एक चुम्बन की स्पष्ट परछाई ने उसके तलुओं से ठप्पे से मुहर बनकर मेरे मुँह को कुचल दिया है और उसका सीना मुझको पीसकर बराबर कर चुका है।

विशेष—1. कवि ने अपने विसंगति व प्रवंचनापूर्ण जीवन का चित्रण किया है।

2. विसंगतियों से ही जिन्दगी टूटती है और बिखरती है।

3. चिकित्सा-जगत का एक बिम्ब सा उभरता है, परन्तु बिम्ब में भी अस्पष्ट है, जो कविता की अस्पष्टता है।

(2)

मेरी याददाश्त को तुमने गुनाहगार बनाया—और उसका
सूद बहुत बढ़ाकर मुझसे वसूल किया। और तब
मैंने कहा—अगले जनम में। मैं इस
तरह मुझकराया जैसे शाम के पानी में
डूबते पहाड़ गमगीन मुस्कराते हैं।
मेरी कविता की तुमने खूब दाद दी—मैंने समझा
तुम अपनी ही बातें सुना रहे हो। तुमने मेरी
कविता की खूब दाद दी।
तुमने मुझे जिस रंग में लपेटा, मैं लिपटता गया;
और जब लपेट न खुले—तुमने मुझे जला दिया।
मुझे जलते हुए को भी तुम देखते रहे, और वह
मुझे अच्छा लगता रहा।
एक खुशबू जो मेरी पलकों में इशारों की तरह
बस गई है, जैसे तुम्हारे नाम की नन्ही-सी
स्पेलिंग हो, छोटी-सी प्यारी-सी, तिरछी स्पेलिंग।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक 'आधुनिक काव्य-संग्रह' में संकलित शमशेर बहादुरसिंह द्वारा रचित 'टूटी हुई, बिखरी हुई' शीर्षक कविता से उद्धृत है। यहाँ कवि अपने प्रिय की स्मृतियों का चित्रण करता हुआ अपने भावों को अनेक प्रकार से अभिव्यक्ति प्रदान करता है।

व्याख्या—कवि कहता है कि हे प्रिय! विरह के समय मुझे तुम्हारी याद आई और इस समय तुमने मेरी स्मृति को भी अपराधी बना दिया। तुमने अपनी उस स्मृति का ब्याज भी मुझसे बहुत अधिक वसूल किया और उस समय मैंने कहा कि अब तुम्हारी इस गुनहगार याद का ब्याज तो मैं अपने अगले जन्म में ही चुका पाऊँगा। यह कहते समय मैं इस प्रकार मुस्कराया था जैसे शाम के समय बरसते हुए पानी में डूबते पहाड़ गमगीन होकर मुस्कराते नजर आते हैं।

कवि कहता है कि हे प्रिये! तुमने मेरी कविता की खुलकर प्रशंसा की। तब मैंने समझा कि तुम अपनी ही बातें मुझे सुना रहे हो। तुमने मुझे जिस रंग में लपेटा मैं उसी रंग में लिपटता चला गया और वे लपेटे इतने घनीभूत हो गये कि खोलने के अनेक प्रयास किये जाने पर भी नहीं खुले। तब तुमने मुझे जला ही दिया। मुझे जलते हुए को भी तुम देखते रहे अर्थात् तुमने मेरे दु:ख-दर्द में मेरे प्रति कोई सहानुभूति व्यक्त नहीं की। फिर भी तुम्हारा यह कठोर व्यवहार मुझे अच्छा ही लगता रहा। तुम्हारे प्यार की एक खुशबू मेरी आँखों की पलकों में इस तरह बस गई है जैसे कि मेरे पलकों के ही इशारे हो और जैसे तुम्हारे नाम की छोटी सी स्पेलिंग हो। छोटी सी, प्यारी सी, तिरछी सी, तुम्हारे नाम की स्पेलिंग ही मेरे इशारे बन गई है।

विशेष—1. कवि ने अनुभूतिमय प्रेम के व्यापक प्रभाव का चित्रण किया है।

2. विशेषण, विपर्यय अलंकार नवीन उपमान प्रयोग के बीच दृष्टव्य है।

10.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

10.2.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न-1. शमशेर बहादुरसिंह कौन-से सप्तक के प्रमुख कवि माने जाते हैं?

उत्तर—शमशेर बहादुर सिंह 'दूसरा सप्तक' के प्रमुख कवि माने जाते हैं।

प्रश्न- 2. शमशेर बहादुरसिंह की प्रारम्भिक रचनाएँ किन पत्रिकाओं में छपती थीं?
उत्तर—इनकी प्रारम्भिक रचनाएँ 'सरस्वती' और 'रूपाम' नामक पत्रिकाओं में छपती थीं।
प्रश्न- 3. डॉ. रामनिवास शर्मा ने शमशेर बहादुरसिंह की कविताओं के बारे में क्या लिखा है?
उत्तर—डॉ. शर्मा ने लिखा है—''शमशेर की रचनाओं में काव्य-कौशल को लेकर उधेड़बुन ज्यादा है।''
प्रश्न- 4. शमशेर बहादुर को उनके किस काव्य-संग्रह पर साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला?
उत्तर—शमशेर बहादुर को उनके 'चुका भी हूँ नहीं मैं' काव्य-संग्रह पर साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला।
प्रश्न- 5. 'सागर-तट' शीर्षक कविता किसके द्वारा रचित है?
उत्तर—'सागर-तट' शीर्षक कविता शमशेर बाहदुर सिंह द्वारा रचित है।
प्रश्न- 6. 'सागर-तट' शीर्षक कविता का वर्ण्य-विषय क्या है?
उत्तर—'सागर-तट' शीर्षक कविता में कवि ने तूफानी सागर के माध्यम से हृदय में रह-रहकर उमड़ती, पछाड़ खाती भावनाओं का संक्षिप्त और प्रभावी चित्रण किया है।
प्रश्न- 7. 'टूटी हुई, बिखरी हुई' शीर्षक कविता किसके द्वारा रचित है?
उत्तर—'टूटी हुई, बिखरी हुई' शीर्षक कविता शमशेर बहादुर द्वारा रचित है।
प्रश्न- 8. 'देश के एकाकी हाथ' शीर्षक कविता के रचनाकार का नाम बताइए।
उत्तर—'देश के एकाकी हाथ' शीर्षक कविता के रचनाकार का नाम शमशेर बहादुरसिंह है।
प्रश्न- 9. 'देश के एकाकी हाथ' कविता का मूल भाव क्या है?
उत्तर—उक्त कविता के मूल भाव देश के वर्तमान शासनतंत्र का लिजलिजापन अर्थात् कमजोरी बताना और उसकी कमजोरियों पर व्यंग्य करना है।

10.2.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न- 1. शमशेर बहादुरसिंह के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डालिए।

उत्तर—शमशेर बहादुर सिंह का जन्म सन् 1911 ई. में देहरादून में हुआ था। उन्होंने पेन्टिंग तथा उर्दू भाषा की भी शिक्षा ली थी। शमशेर बहादुर ने 1932-33 से लिखना प्रारम्भ किया था। इनकी प्रारम्भिक रचनाएँ सरस्वती और 'रूपाभ' पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई थीं। शमशेर ने अपनी कविताओं की नवीनता और ताजगी के कारण अज्ञेय द्वारा सम्पादित 'दूसरा सप्तक' में स्थान पाया था। शमशेर बाहदुर की कविताओं में मार्क्सवादी और प्रयोगवादी दोनों प्रभाव देखने को मिलते हैं। वर्ग चेतना के साथ-साथ इन्होंने व्यापक जीवन मूल्यों को भी अपने काव्य में महत्त्व दिया है। इनकी रचनाओं में जीवन के विविध चित्र देखे जा सकते हैं। पीड़ित-शोषित मनुष्य के प्रति संवेदना-सहानुभूति इनकी कविताओं में पर्याप्त मात्रा में है। उर्दू भाषा का सम्यक् ज्ञान होने के कारण इनकी कविता में मधुरता भी है। काव्य में कहीं-कहीं प्रणय भाव भी दिखाई देते हैं। शमशेर के प्रतीक और बिम्ब बहुत समर्थ हैं। डॉ. रामविलास शर्मा का मत है कि शमशेर की रचनाओं में काव्य-कौशल को लेकर उधेड़बुन ज्यादा है। इनके कविता संग्रह 'चुका भी हूँ नहीं मैं' पर 1977 का साहित्य अकादमी पुरस्कार इन्हें मिल चुका है।

प्रश्न- 2. 'देश के एकाकी हाथ' शीर्षक कविता का मूल भाव स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—'देश के एकाकी हाथ' शीर्षक कविता में कवि ने आत्मनिरीक्षण करते हुए देश के वर्तमान प्रशासन की शिथिल स्थिति का चित्रण किया है। इस शिथिल शासनतंत्र को ऐसा ही एकाकी हाथ बताया है जो न तो अपने दायित्वों को भली-भाँति निभा पा रहा है और न जनता को ही किसी तरह से भला कर पा रहा है। कवि ने इस कविता के माध्यम से शासनतंत्र की कमजोरियों को उजागर करते हुए उस पर व्यंग्य किया है। आजादी की प्राप्ति के बाद भी जनता अपनी सुख-सुविधाएँ और मौलिक अधिकारों को प्राप्त करने के लिए अब तक आकांक्षी है लेकिन देश के समक्ष कुछ ऐसी विकट समस्याएँ हैं जिनके कारण शासनतंत्र अपने लिजलिजे हाथ जनता के समक्ष ही फैला रहा है। शासनतंत्र की इस प्रकार की कमजोरियों को देखकर जनता स्वयं को असुरक्षित महसूस कर रही है। इस प्रकार कवि ने हमारे शासनतंत्र के लिजजिले स्वरूप की वास्तविक स्थिति का इस कविता में चित्रण किया है। जो शासन व्यवस्था की दृष्टि से न तो जनहितकारी है और न सक्षम है।

इकाई-11
त्रिलोचन

संरचना

11.0 कवि परिचय

11.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

11.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

11.2.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

11.2.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

11.2.3 निबंधात्मक प्रश्न

11.0 कवि परिचय

त्रिलोचन का जन्म उत्तरप्रदेश के सुल्तानपुर जिले के एक ग्राम में हुआ था। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से इन्होंने बी.ए. तक शिक्षा प्राप्त की। जीविका के लिए कई वर्षों तक पत्रकारिता की और 'जनवार्ता', 'आज', 'समाज', 'प्रदीप', 'चित्ररेखा', 'हंस' और 'कहानी' आदि पत्रिकाओं और समाचार पत्रों का सम्पादन किया। 1952-53 में गणेशराय नेशनल, इण्टर कॉलेज, जौनपुर में अंग्रेजी के प्रवक्ता रहे। सन् 1970-72 के दौरान विदेशी छात्रों को हिन्दी, संस्कृत और उर्दू की शिक्षा प्रदान की। कुछ वर्ष उर्दू विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय की द्वैभाषिक कोष (उर्दू-हिन्दी) परियोजना में कार्य किया। इसके पश्चात् मुक्ति बोध पीठ, सागर विश्वविद्यालय, सागर के अध्यक्ष रहे।

त्रिलोचन हिन्दी के वरिष्ठतम कवियों में से एक हैं। साहित्यिक क्षेत्र में त्रिलोचन निराला के अनुयायी रहे हैं। इसलिए इनकी प्रारम्भिक रचनाओं में छायावादी काव्यशैली का प्रभाव मिलता है। सांस्कृतिक चेतना इनकी रचनाओं में व्याप्त हैं। धरती के रंग, रूप, गंध के साथ संघर्षरत मनुष्य के चित्र भी इनकी कविता में मिलते हैं। साधारण-जन की व्यथा और पीड़ा की अभिव्यक्ति त्रिलोचन की कविता में हुई है। त्रिलोचन की भाषा में वैविध्य है। ठेठ देसी शब्दों के प्रयोगों के साथ बोलचाल की सामान्य सार्वजनिक भाषा से लेकर संस्कृत के कठिन शब्दों के प्रयोग त्रिलोचन के काव्य में देखने को मिलेंगे। 'धरती', 'गुलाब' और 'बुलबुला', 'दिगंत', 'ताप के तायें हुए दिन', 'शब्द', 'उस जनपद का कवि हूँ' तथा 'अरघान' इनकी प्रकाशित काव्य कृतियाँ हैं।

11.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

एक पहर दिन आया होगा

(1)

सरदी के ठिठुरे शरीर के
अंग अंग को छू कर
सूरज की किरणों ने
बँधी मुट्ठियों को खोला
फिर अंग अंग की सिकुड़न हर कर
और रक्त का संचालन कर
स्वस्थ बनाया
आँख उठायी
देखा, कुहरा कहीं नहीं है
नहीं भाग कर चला गया वह दूर दृष्टि से
क्षितिज-शरण में
बीस कदम पर उन पेड़ों को खड़े निहारा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जो प्रकाश में
सहज समीरण की लहरों में खेल रहे थे।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक 'आधुनिक काव्य-संग्रह' में संकलित कवि त्रिलोचन द्वारा रचित 'एक पहर दिन आया होगा' शीर्षक कविता से अवतरित है। इसमें कवि ने सूर्य उदय के लगभग दो-तीन घंटे के बाद के वातावरण का चित्रण किया है।

व्याख्या—कवि कहते हैं कि सर्दी के मौसम में प्रात:काल ठण्ड के प्रभाव से मानव के शरीर के अंग ठिठुर जाते हैं और प्रकृति में चारों ओर कुहरा छा जाता है। परन्तु जब प्रात:काल समाप्त होता है और दिन लगभग तीन घंटे बीत जाता है अर्थात् एक प्रहर दिन आ जाता है तब सूर्य की किरणें चमकने लगती हैं और किरणों की गर्मी जब शरीर के अंग-अंग का स्पर्श करती हैं, तब ठण्ड से बन्द हुई मुट्ठियाँ खुल जाती हैं और शरीर के प्रत्येक अंग की सिकुड़न दूर हो जाती है तथा खून का प्रवाह समुचित रूप से संचालित होने लगता है तथा मानव स्वस्थ हो जाता है। आशय यह है कि एक प्रहर दिन आने पर सर्दी में मानव अपने को पूर्ण स्वस्थ अनुभव करने लगता है।

एक प्रहर दिन आने पर जब बाह्य प्रकृति को देखते हैं, तब जो कुहरा पहले सर्वत्र धुएँ की तरह छाया व फैला नजर आता था, वह नजर नहीं आता है और ऐसा लगता है कि वह मानव की आँखों से कहीं दूर क्षितिज की शरण में भाग कर चला गया है। उस समय जब बीस कदम दूर स्थित पेड़ों को देखते हैं तो वे सूर्य की किरणों के प्रकाश में मन्द-मन्द हवा की लहरों से खेलते हुए बड़े सुन्दर प्रतीत होते हैं।

विशेष—1. प्राकृतिक परिवर्तनों का यथातथ्य चित्रण है।, 2. शारीरिक चेष्टाओं से सर्दी दूर होने के संकेत प्राप्त होते हैं।, 3. सहज व सरल भाषा है तथा शैली अकृत्रिम है।

11.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

11.2.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न-1. साहित्यिक क्षेत्र में कवि त्रिलोचन किसके अनुयायी रहे हैं?

उत्तर—साहित्यिक क्षेत्र में कवि त्रिलोचन निरालाजी के अनुयायी रहे हैं।

प्रश्न-2. कवि त्रिलोचन की प्रारम्भिक रचनाओं पर किस शैली का प्रभाव मिलता है?

उत्तर—कवि त्रिलोचन की प्रारम्भिक रचनाओं पर छायावादी शैली का प्रभाव मिलता है।

प्रश्न-3. त्रिलोचन की प्रारम्भिक रचनाएँ किस काव्य-संग्रह में संकलित हैं?

उत्तर—त्रिलोचन की प्रारम्भिक रचनाएँ उनके 'धरती' नामक काव्य-संग्रह में संकलित हैं।

प्रश्न-4. कवि त्रिलोचन के काव्य-संग्रहों के नाम बताइए।

उत्तर—कवि त्रिलोचन के काव्य-संग्रहों के नाम—'धरती', 'गुलाब और बुलबुल', 'दिगन्त', 'ताप के तापे हुए दिन', 'शब्द', 'उस जनपद का कवि हूँ' तथा 'अरघान' हैं।

प्रश्न-5. 'चम्पा काले-काले अच्छर नहीं चीन्हती' शीर्षक कविता किसके द्वारा रचित है?

उत्तर—'चम्पा काले-काले अच्छर नहीं चीन्हती' शीर्षक कविता त्रिलोचन द्वारा रचित है।

प्रश्न-6. 'चम्पा काले-काले अच्छर नहीं चीन्हती' शीर्षक कविता के माध्यम से कवि ने किस ओर संकेत किया है?

उत्तर—कवि ने देश के ग्रामीण क्षेत्र की निरक्षरता की स्थिति की ओर संकेत किया है।

प्रश्न-7. कवि ने चम्पा के स्वभाव की क्या विशेषताएँ बताई हैं?

उत्तर—कवि ने चम्पा को अच्छी, चंचल, नटखट लड़की बताया है।

प्रश्न-8. 'आजकल लड़ाई का जमाना है' शीर्षक कविता के रचनाकार का नाम बताइए।

उत्तर—'आजकल लड़ाई का जमाना है' शीर्षक कविता के रचनाकार कवि त्रिलोचन हैं।

प्रश्न-9. 'आजकल लड़ाई का जमाना है' शीर्षक कविता त्रिलोचन के किस काव्य-संग्रह से संकलित है?

उत्तर—'आजकल लड़ाई का जमाना है' शीर्षक कविता त्रिलोचन के 'धरती' काव्य-संग्रह से संकलित है।

प्रश्न-10. 'आजकल लड़ाई का जमाना है' शीर्षक कविता का मूल कथ्य क्या है?

उत्तर—'आजकल लड़ाई का जमाना है' शीर्षक कविता का मूल कथ्य है—विश्व में युद्ध का छाया उन्माद मानवता की दृष्टि से समाप्त होना चाहिए और भारतवासियों को भाग्यवादी होने का भाव त्यागकर कर्मनिष्ठ बनना चाहिए।

प्रश्न- 11. कवि त्रिलोचन के किस काव्य- संग्रह की अधिकांश कविताओं में प्रकृति का सुन्दर चित्रण हुआ है?
उत्तर—त्रिलोचन के 'धरती' काव्य- संग्रह की अधिकांश कविताओं में प्रकृति का सुन्दर चित्रण हुआ है।
प्रश्न- 12. त्रिलोचन ने अपने किस काव्य- संग्रह में चतुर्दश पदी छन्द को अपनाया है?
उत्तर—त्रिलोचन ने अपने 'दिगन्त' काव्य- संग्रह में चतुर्दश पदी छन्द को अपनाया है।
प्रश्न- 13. 'एक पहर दिन आया होगा' शीर्षक कविता त्रिलोचन के किस काव्य- संग्रह से संकलित है?
उत्तर—'एक पहर दिन आया होगा' शीर्षक कविता त्रिलोचन के 'धरती' काव्य- संग्रह से संकलित है।
प्रश्न- 14. 'एक पहर दिन आया होगा' शीर्षक कविता में कवि ने क्या संदेश दिया है?
उत्तर—'एक पहर दिन आया होगा' शीर्षक कविता में कवि ने जीवन को सहज ढंग से जीने का सन्देश दिया है।

11.2.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न- 1. कवि त्रिलोचन के व्यक्तित्व का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उत्तर—कवि त्रिलोचन का जन्म 20 अगस्त, 1917 ई. को उत्तरप्रदेश के सुल्तानपुर जिले के एक ग्राम में हुआ था। आपने बी.ए. शिक्षा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से प्राप्त की और जीविकोपार्जन हेतु कई वर्षों तक पत्रकारिता की तथा 'अखबार', 'आज', 'प्रदीप', 'चित्ररेखा', 'कहानी', 'हंस' तथा 'समाज' आदि पत्रिकाओं तथा समाचार पत्रों का सम्पादन किया। वे जौनपुर में अंग्रेजी के प्रवक्ता भी रहे और विदेशी छात्रों को भी उन्होंने पढ़ाया और अन्त में मुक्तबोध पीठ, सागर विश्वविद्यालय, सागर के अध्यक्ष रहे। कुछ वर्षों तक आपने उर्दू विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय की द्वैमासिक कोश (उर्दू-हिन्दी) परियोजना में भी कार्य किया।

प्रश्न- 2. कवि त्रिलोचन की कविताओं के काव्य- सौन्दर्य को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—साहित्यिक क्षेत्र में त्रिलोचन निरालाजी के अनुयायी रहे और वे हिन्दी के वरिष्ठतम कवियों में से एक हैं। निरालाजी के अनुयायी होने से उनकी प्रारम्भिक रचनाओं में छायावादी काव्य- शैली का प्रभाव नजर आता है। धरती के रूप, रंग, गंध के साथ संघर्षरत मनुष्य के चित्र इनकी कविताओं में बहुतायत से मिलते हैं तथा इनमें सांस्कृतिक चेतना व्याप्त है। साधारण जन की पीड़ा और व्यथा को उन्होंने वाणी दी। उनकी भाषा में विविधता है। ठेठ देशी शब्दों के साथ संस्कृत के कठिन से कठिन शब्दों के दर्शन उनकी कविताओं में किये जा सकते हैं।

कवि त्रिलोचन की प्रकाशित कृतियाँ—'धरती', 'गुलाब और बुलबुला', 'दिगंत', 'ताप के तापे हुए दिन', 'शब्द', 'उस जनपद का कवि हूँ' तथा 'अरधान हैं।

चम्पा काले- काले अच्छर नहीं चीन्हती—शीर्षक में ही अच्छर तथा चीन्हती देशी शब्द हैं। इसमें समाज के निम्न वर्ग में व्याप्त अशिक्षा का चित्रण है और चम्पा नामक बालिका के सहज, नटखट रूप का अंकन है।

आजकल लड़ाई का जमाना है—शीर्षक कविता में लड़ाई के जमाने का यथार्थ चित्रण है जबकि जन- साधारण की जबान पर रूस, चीन, अमेरिका, इंग्लैण्ड, जर्मनी, जापान, इटली आदि देशों के नाम छाये रहते हैं और वे अपढ़ हों या सपढ़ हों, लड़ाई की चर्चा करते हैं तथा अपनी- अपनी अटकलें लगाते हैं। इस कविता में कवि ने भारत के लोगों की लड़ाई के प्रति एक भिन्न ही मानसिकता का चित्रण किया है। वे ईश्वर, अल्लाह पर भरोसा करते हैं और हाथ पर हाथ धरे बैठे रहकर यह सोचते रहते हैं कि भगवान हमें न जाने किसके पल्ले बाँधेंगे। कवि की यह मानसिकता ही उसका दर्द है। हवाई जहाज को देखकर लोगों की उत्सुकता का इसमें स्वाभाविक अंकन है।

एक पहर दिन आया होगा—कविता कवि की प्रकृति सम्बन्धी रचना है। इसमें शरद ऋतु में प्रातःकाल सर्वत्र व्याप्त होने जाने वाले कुहरे का चित्रण है और साथ ही एक प्रहर दिन चढ़ने पर सूर्य की किरणों द्वारा शरीर की ठिठुरन, अंग- अंग की सिकुड़न को हटाने तथा रक्त संचालन पर स्वस्थ बनाने का वर्णन किया गया है। कुहरे के हटने पर प्राकृतिक दृश्यों के भी भली- भाँति दिखाई देने की स्थिति इस प्रकार वर्णित है—

''बीस कदम पर उन पेड़ों को खड़े निहारा
जो प्रकाश में
सहज समीरण की लहरों से खेल रहे थे।''

उपर्युक्त तीनों कविताएँ 'धरती नामक काव्य- संग्रह में संकलित हैं और इनमें कवि त्रिलोचन की अकृत्रिम भाषा के साथ ही अभिव्यक्ति की स्पष्टता के स्पष्ट दर्शन होते हैं।

इकाई - 12
धूमिल

संरचना

12.0 कवि परिचय

12.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

12.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

12.2.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

12.2.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

12.2.3 निबंधात्मक प्रश्न

12.3 सारांश

12.0 कवि परिचय

धूमिल नाम से विख्यात कवि सुदामा पाण्डेय, बनारस के निकट खेवली गाँव के रहने वाले थे। इनके पिता शिवनायक पाण्डेय प्रारम्भ में जयशंकर 'प्रसाद' के यहाँ मुनीमी करते थे। जब वे 11 वर्ष के थे तब ही धूमिल के पिता का स्वर्गवास हो गया। परिवार का भार उनके कंधों पर आ गया। धूमिल का अर्थाभाव ने कभी पीड़ा नहीं छोड़ा। धूमिल स्वाभिमानी थे; अधिक दिन तक किसी की धौंस सहन करना उनके लिए कठिन था। नौकरी करते हुए वे अपने सहयोगियों के अधिकारों के लिए बराबर लड़ते रहे। इसलिए अधिकारियों का कोप स्थानान्तरण, कारण बताओ आदेश आदि के रूप में लगभग नियमित रूप से मिलता रहा। अनेक अनियमितताओं, अव्यवस्थाओं के कारण इन्होंने कई रोग भी पाल लिए। परिणाम स्वरूप 10 फरवरी, 1975 को लखनऊ के एक अस्पताल में इनकी मृत्यु हो गई।

धूमिल सन् 60 और उसके आस-पास के सबसे महत्त्वपूर्ण कवियों में रहे हैं। वर्तमान का गहरा ज्ञान इनकी कविता का मुख्य विषय है। निम्न मध्यवर्ग और मध्यवर्ग की संगति-विसंगति, मजदूर और किसान की दुर्दशा लोकतंत्र के खोखलेपन नेताओं की रोजी चलाने वाली बहसों का धूमिल को व्यापक स्तर पर अनुभव था। इसलिए वे अपने समय के सबसे निरीह और सताये हुए आदमी को संघर्ष के लिए तैयार करते से प्रतीत होते हैं। धूमिल आभिजात्य पर प्रहार करते हैं। उनकी आक्रामक भाषा व्यवस्था पर तीखा वार करती है और शोषण के विभिन्न रूपों, मुद्राओं व पर्तों की कलई खोलती है। अपने सपाट और गंवई वक्तव्यों से धूमिल ने अपने समय के सामाजिक और राजनैतिक अंतर्विरोधों का जिस खूबी से पर्दाफाश किया है वह धूमिल का निजी काव्य-मुहावरा है। 'पटकथा', 'मोचीराम', 'प्रौढ शिक्षा', 'नक्सलबाड़ी', 'रोटी और संसद' आदि कुछ ऐसी विशिष्ट रचनाएँ हैं जिनमें लोकतंत्र और सरकारी-तंत्र की पोल खुली है। डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने उनके विषय में लिखा है—''उनकी कविता की सारी शब्दावली सामाजिक और राजनीतिक संसार की शब्दावली है। वे सही अर्थों में सामाजिक-राजनीतिक चेतना के कवि हैं।''

'संसद से सड़क तक', 'कल सुनना मुझे' और 'सुदामा पाण्डेय का प्रजातंत्र' धूमिल के काव्य-संकलन हैं।

12.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

अकाल-दर्शन

(1)

यह सब कैसे होता है, मैं उन्हें समझाता हूँ
मैं उन्हें समझाता हूँ
वह कौनसा प्रजातांत्रिक नुस्खा है,

कि जिस उम्र में मेरी माँ का चेहरा
झुर्रियों की झोली बन गया है
उसी उम्र की मेरे पड़ोस की महिला
के चेहरे पर
मेरी प्रेमिका के चेहरे- सा लोच है
वे चुप चाप सुनते हैं.....
उनकी आँखों में विरक्ति है,
पछतावा है,
संकोच है,
या क्या है कुछ पता नहीं चलता
वे इस कदर पस्त हैं
कि तटस्थ हैं,
और मैं सोचने लगता हूँ कि इस देश में
एकता युद्ध की और दया
अकाल की पूँजी है।
क्रांति
यहाँ के असंग लोगों के लिए
किसी बोध बच्चे के
हाथों की जूजी है।

प्रसंग—प्रस्तुत कवितांश कवि धूमिल द्वारा विरचित 'अकाल दर्शन' शीर्षक कविता से अवतरित है। इसमें कवि अकाल दर्शन को न समझने वाले लोगों की खबर लेता है और देश में क्रांति न होने के कारण पर प्रकाश डालता है।

व्याख्या—कवि धूमिल कहते हैं कि सरकारी तंत्र के लोगों तथा अन्य लोगों को यह समझाता हूँ कि अनाज में 'वह आदमी' कैसे अपनी गिज़ा कभी 'गाय' से और कभी 'हाय' से वसूल करता है। ऐसे लोगों से प्रजातंत्र की दुहाई देते हुए कवि पूछता है कि ऐसा कौनसा प्रजातांत्रिक नुस्खा है कि जिस उम्र में मेरी माँ का चेहरा वृद्धावस्था के कारण झुर्रियों से भर गया है उसी उम्र में मेरे पड़ौस की स्त्री के चेहरे पर मेरी प्रेमिका के चेहरे सा लावण्य विद्यमान है। कारण या नुस्खा कवि ने पहले ही बता दिया है कि वे अपनी गिज़ा कैसे ही वसूल करते हैं और गिज़ा अर्थात् पौष्टिक खाद्य का उपयोग करने वाले व्यक्ति पर वृद्धावस्था का प्रहार विलम्बन से होता है अर्थात् ऐसे लोग देर में वृद्ध दिखाई देते हैं। गिज़ा शक्तिवर्द्धक ओं होती है।

मेरी इस बात को, इसके पीछे छिपे तर्क को वे लोग चुपचाप सुनते हैं अर्थात् वे मेरे कथन का प्रतिवाद नहीं करते हैं और उनका चुपचाप सुनना इस तथ्य को द्योतक है कि वे गिज़ा वसूल करते हैं। परन्तु ऐसी स्थिति हो जाने पर उनकी आँखों में विराग व संसार से मुक्ति की भावनाएँ भर जाती हैं, उन्हें अपने कार्यों अर्थात् अपनी गिज़ा वसूल करने के कार्य पर पछतावा होता है लज्जा है या और कुछ है, इस बात का पता ही नहीं चल पाता है। वे इतने व इस प्रकार निराश या पस्तहिम्मत हो जाते हैं कि वे कुछ भी नहीं कहते हैं, मेरे तर्क का प्रतिवाद नहीं करते हैं। उनके चुप रहने में उनकी तटस्थ रहने की प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं।

यह सब कह लेने के उपरान्त मैं यह सोचता हूँ कि इस भारतवर्ष नामक देश में युद्ध में ही एकता की तथा अकाल में ही दया की पूँजी नजर आती है। इस देश में ऐसी परिस्थितियों में क्रान्ति की कतई सम्भावना नहीं है, क्योंकि यहाँ के निस्संग लोगों के लिए क्रान्ति ठीक वैसी ही हो जाती है जैसे कोई निरीह बच्चे के हाथों में दिया गया कोई झुनझुना है। जैसे बालक के हाथों का झुनझुना, बच्चे के थोड़े से हिल डुल पर झुनझुना भी स्वर निकालने लगता है।

विशेष—1. भारतवर्ष की दीन- हीन दशा से मुक्ति क्रांति द्वारा ही सम्भव है।, 2. नवीन उपमानों का सुन्दर तथा सार्थक प्रयोग है।, 3. भाषा सरल व सुबोध तथा शैली में प्रवाह तथा प्रभाव है।, 4. उपमा अलंकार है।

मोचीराम

(1)

सच कहता हूँ—उस समय
राँपी की मूठ को हाथ में सँभालना
मुश्किल हो जाता है
आँख कहीं जाती है
हाथ कहीं जाता है
मन किसी झुँझलाए हुए बच्चे- सा
काम पर आने से बार- बार इनकार करता है
लगता है कि चमड़े की शराफत के पीछे
कोई जंगल है जो आदमी पर
पेड़ से वार करता है
और यह चौंकने की नहीं, सोचने की बात है।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण कवि धूमिल द्वारा रचित 'मोचीराम' शीर्षक कविता से अवतरित है। कवि मोचीराम के माध्यम से बसन्त ऋतु का मन पर पड़ने वाले प्रभाव का वर्णन करता है।

व्याख्या—कवि मोचीराम के माध्यम से कहता है कि इस समय में अर्थात् बसन्त ऋतु में राँपी की मूठ पकड़कर उसे सम्भालना और उससे काम करना बड़ा कठिन होता है। इसके आगे आपसे क्या कहूँ। इस समय आँख का लक्ष्य कहीं होता है और हाथ कहीं चला जाता है। मन काम करने में नहीं लगता। मन की स्थिति तो ऐसी जान पड़ती है कि जैसे किसी झुँझलाए बच्चे को जबरन काम पर भेजा जाए और वह बार- बार इनकार कर दे। मुझे तो ऐसा लगता है कि बाबूजी जैसे मेरी इस त्वचा की शराफत के पीछे कोई जंगल छिपा है जिस पर इस बसन्त के मौसम में मदमस्त पेड़ के माध्यम से हमला किया जा रहा हो। आप मेरी यह या ऐसी बात सुनकर चौंकिए मत क्योंकि वास्तव में ही मेरी यह बात सोचने और विचार करने की है कि आखिर हमारे भी तो मन है। कहने का भाव यह है कि बसन्त ऋतु मादकता से युक्त होती है और उसका प्रभाव मन पर पड़ता है।

विशेष—1. कवि बताना चाहता है कि मानवीय संवेदना से युक्त व्यक्ति का मन ईमानदारी का निर्वाह कर सकता है।
2. उपमा तथा आक्षेप अलंकार का प्रयोग दृष्टव्य है।

12.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

12.2.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न- 1. धूमिल कवि का नाम क्या था?
उत्तर—धूमिल कवि का नाम सुदामा प्रसाद पाण्डेय था।
प्रश्न- 2. धूमिल के काव्य- संग्रहों के नाम बताइए।
उत्तर—धूमिल के काव्य- संग्रहों के नाम हैं—संसद से सड़क तक, कल सुनना मुझे, सुदामा पाण्डेय का प्रजातन्त्र।
प्रश्न- 3. कवि धूमिल की प्रसिद्ध कविता का नाम बताइए।
उत्तर—कवि धूमिल की प्रसिद्ध कविता 'मोचीराम' है।
प्रश्न- 4. 'जनतंत्र के सूर्योदय में' शीर्षक कविता का मूल भाव क्या है?
उत्तर—इस कविता का मूल भाव लोकतंत्र में व्याप्त विसंगतियों एवं स्वार्थपरता पर करारा व्यंग्य करना है।
प्रश्न- 5. 'अकाल- दर्शन' कविता में कवि ने जनसंख्या- वृद्धि का क्या कारण संकेतित किया है?
उत्तर—'अकाल- दर्शन' कविता में कवि ने जनसंख्या- वृद्धि का कारण बेकारी को संकेतित किया है।
प्रश्न- 6. 'अकाल- दर्शन' कविता में 'चालाक आदमी' से क्या अभिप्राय है?

उत्तर—'अकाल- दर्शन' शीर्षक कविता में चालाक आदमी से अभिप्राय राजनेता, प्रशासक अथवा धर्मगुरु से है।

प्रश्न- 7. मोचीराम के अनुसार किन दो स्थितियों के बीच सन्तुलन का एक रिश्ता होना चाहिए?

उत्तर—मोचीराम के अनुसार पेशेवर हाथ और मरम्मत के लिए आया जूता इन दोनों स्थितियों के बीच एक सन्तुलन होना चाहिए।

प्रश्न- 8. 'मोचीराम' कविता में मोचीराम को किसका प्रतीक बताया गया है?

उत्तर—'मोचीराम' कविता में मोचीराम को श्रमनिष्ठ, वर्गविहीन, साम्यवादी चेतना का प्रतीक बताया गया है।

प्रश्न- 9. 'मोचीराम' शीर्षक कविता में कवि ने किसकी मार्मिक व्यथा का अंकन किया है?

उत्तर—'मोचीराम' शीर्षक कविता में कवि ने शोषित- पीड़ित जन की व्यथा का मार्मिक अंकन किया है।

1 2. 2. 2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न- 1. कवि धूमिल के व्यक्तित्व और कृतित्व पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।

उत्तर—धूमिल का वास्तविक नाम सुदामा पाण्डेय था। वे बनारस के निकट एक गाँव के रहने वाले थे। धूमिल का जन्म 9 नवम्बर, 1936 को तथा मत्यु 10 फरवरी, 1975 को हुई थी। धूमिल का सम्पूर्ण जीवन आर्थिक अभावों में बीता था। उनके पिता जयशंकर प्रसाद के यहाँ मुनीम थे। जब वे ग्यारह वर्ष के थे, तभी पिता की छाया इन पर से उठ गई थी। एक स्वाभिमानी व्यक्ति होने के कारण धूमिल को बार-बार नौकरी बदलनी पड़ी। अपने सहकर्मियों से उनका सदा संघर्ष चलता रहा। अर्थाभाव, अनियमित- अव्यवस्थित जीवन के कारण इन्हें अनेक रोगों ने घेर लिया था, जिससे बहुत कम उम्र ही में इनका देहान्त हो गया। धूमिल की कविता में वर्तमान का सम्यक् परिचय भरा पड़ा है। निम्न मध्य वर्ग और मध्य वर्ग की जीवनगत संगति- विसंगति, विरोधाभासों, लोकतंत्रों के खोखलेपन, नेताओं की स्वार्थपूर्ति हेतु की जाने वाली बहसों को धूमिल ने अपने काव्य में वाणी दी है। ऐसा लगता है धूमिल अपने काव्य से शोषित- पीड़ित व्यक्ति को संघर्ष के लिए तैयार करते हैं। उनकी भाषा में पैनापन और सीधा प्रहार करने की क्षमता है। 'संसद से सड़क तक', 'कल सुनना मेरी' और 'सुदामा पाण्डेय का प्रजातंत्र' उनके काव्य- संकलन हैं।

प्रश्न- 2. कवि धूमिल द्वारा विरचित कविता 'मोचीराम' के भाव सौन्दर्य पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।

उत्तर—'मोचीराम' शीर्षक कविता धूमिल द्वारा रचित है। इस कविता में एक वर्ग- चरित्र के माध्यम से हमारे जीवन की उन वास्तविकताओं का मार्मिक उद्घाटन है, जो बहुत ही शिक्षित कहे जाने वाले सभ्य और उच्च मध्यमवर्गीय व्यक्तियों तक के अनुभव से हटकर है। कवि धूमिल ऐसे ही चरित्रों की सृष्टि कर समाज को उसका वास्तविक चेहरा दिखलाते हैं। रामकृष्णन पाण्डेय ने इस कविता की विशेषताएँ बतलाते हुए कहा है कि ''धूमिल की लघु कविताओं में 'मोचीराम' कविता सर्वाधिक प्रभावशाली कविता है। नाटकीय कौशल, तीखे व्यंग्य, गहन चिन्तन और सजीव उज्ज्वल बिम्ब इस कविता की विशेषता है। शिल्प की दृष्टि से यह कविता सुगठित है। अर्थतत्व की दृष्टि से कहा जा सकता है कि वर्ग दृष्टि सम्पन्न लेखक ही ऐसी कविता की रचना कर सकता है।''

'मोचीराम' शीर्षक कविता में कवि धूमिल ने समतावादी दृष्टिकोण शोषित- पीड़ित वर्ग की व्यथा का अंकन, काम की नैतिकता, सौन्दर्य- बोध की अनुभूति का प्रतिपादन करते हुए प्रगतिवादी भावधारा की अभिव्यक्ति की है। मोचीराम कहता है—

मेरी निगाह में
न कोई छोटा है
न कोई बड़ा है
मेरे लिए हर आदमी एक जोड़ी जूता है।
जो मेरे सामने मरम्मत के लिए खड़ा है।

इसका अभिप्राय यह नहीं कि मोचीराम को कोई आदमी ही नजर नहीं आता है, सारे लोग उसे एक जोड़ी जूते के रूप में ही नजर आते हैं। आदमी वही है, जहाँ आदमियत है। इसलिए वह आदमी के जूते के माध्यम से और उस आदमी के व्यवहार से उनके वर्ग चरित्र को बतलाता है। जैसे आदमी का रूप देखिए—

पेशेवर हाथों और फटे हुए जूतों के बीच
कहीं- न- कहीं एक अदद आदमी है।
जिस पर टाँके पड़ते हैं।
जो जूतों से झांकती हुई अंगुली की चोट छाती पर,

हथोड़ों की तरह सहता है।

1 2. 2. 3 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न- 1. धूमिल की प्रसिद्ध कविता 'मोचीराम' के भाव सौन्दर्य को उद्घाटित करते हुए इसके शिल्प पर प्रकाश डालिए।

उत्तर—'मोचीराम' शीर्षक कविता धूमिल द्वारा रचित है। इस कविता में एक वर्ग-चरित्र के माध्यम से हमारे जीवन की उन वास्तविकताओं का मार्मिक उद्घाटन है, जो बहुत ही शिक्षित कहे जाने वाले सभ्य और उच्च मध्यमवर्गीय व्यक्तियों तक के अनुभव से हटकर है। कवि धूमिल ऐसे ही चरित्रों की सृष्टि कर समाज को उसका वास्तविक चेहरा दिखलाते हैं। रामकृपाल पाण्डेय ने इस कविता की विशेषताएँ बतलाते हुए कहा कि ''धूमिल की लघुकविताओं में 'मोचीराम' कविता सर्वाधिक प्रभावशाली कविता है। नाटकीय कौशल, तीखे व्यंग्य, गहन चिन्तन और सजीव ज्वलंत बिम्ब इस कविता की विशेषता है। शिल्प की दृष्टि से यह कविता सुगठित है। अर्थतत्त्व की दृष्टि से कहा जा सकता है कि वर्ग दृष्टि सम्पन्न लेखक ही ऐसी कविता की रचना कर सकता है।''

'मोचीराम' शीर्षक कविता में कवि धूमिल ने समतावादी दृष्टिकोण शोषित-पीड़ित वर्ग की व्यथा का अंकन, काम की नैतिकता, सौन्दर्य-बोध की अनुभूति का प्रतिपादन करते हुए प्रगतिवादी भावधारा की अभिव्यक्ति की है। मोचीराम कहता है—

मेरी निगाह में
न कोई छोटा है
न कोई बड़ा है
मेरे लिए हर आदमी एक जोड़ी जूता है।
जो मेरे सामने मरम्मत के लिए खड़ा है।

इसका अभिप्राय यह नहीं है कि मोचीराम को कोई आदमी ही नजर नहीं आता है, सारे लोग उसे एक जोड़ी जूते के रूप में ही नजर आते हैं। आदमी वही है, जहाँ आदमियत है। इसलिए वह आदमी के जूते के माध्यम से और उस आदमी के व्यवहार से उनके वर्ग चरित्र को बतलाया है। जैसे आदमी का रूप देखिए—

पेशेवर हाथों और फटे हुए जूतों के बीच
कहीं न कहीं एक अदद आदमी है।
जिस पर टाँके पड़ते हैं।
जो जूतों से झांकती हुई अंगुली की चोट छाती पर,
हथोड़ों की तरह सहता है।

'मोचीराम' कविता का भाषा-शिल्प—धूमिल की भाषा सरल और सीधी है। उन्होंने 'मोचीराम' शीर्ष कविता में जिन शब्दों का प्रयोग किया है, वे हमारे आस-पास के परिवेश से ही लिए गये हैं। रामकृपाल पाण्डेय ने धूमिल की कविता की अभिव्यक्ति एवं शिल्पगत विशेषताएँ बतलाते हुए लिखा है—

1. धूमिल की अभिव्यक्ति एकदम खरी है। इससे अनुमान किया जा सकता है कि वे तेज स्वभाव के आदमी रहे होंगे। निर्भीकता उनकी कविता की भाँति उनके चरित्र की भी एक खास खासियत रही होगी। वे जो कुछ अनुभव करते हैं और जो कुछ सोचते हैं, उसके कहने में जरा भी नहीं हिचकते।

2. धूमिल की काव्यकला का मुख्य आधार वक्रोक्ति है। उनकी भाषा में प्राय: सर्वत्र चमत्कारपूर्ण वक्रता पाई जाती है। चुस्त दुरुस्त मुहावरेदार वक्र कथन उनकी कविता में स्थान-स्थान पर फ्लेशेज पैदा करते हैं। समूची कविता उन्हीं से चमकती दीखती है। कुल मिलाकर कवि की भाषा ताजा और जानदार है।

3. कवि धूमिल का बिम्ब विधान बेहद प्रभावोत्पादक है। नवीनता और भावानुकूलता उनके बिम्ब विधान की प्रमुख विशेषताएँ हैं।

4. इसके साथ ही धूमिल कलात्मकता के प्रति इतने सजग नहीं हैं जितने कि अपने विचारों के प्रति।

1 2. 3 सारांश

उपर्युक्त विवेचना के आधार पर निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि धूमिल द्वारा रचित 'मोचीराम' शीर्षक कविता भाव-सौन्दर्य की दृष्टि से जितनी श्रेष्ठ और यथार्थ बोधक है उतनी ही कला-शिल्प की दृष्टि से प्रभावी है।

इकाई-13
सर्वेश्वरदयाल सक्सेना

संरचना

13.0 कवि परिचय

13.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

13.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

13.2.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

13.2.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

13.2.3 निबंधात्मक प्रश्न

13.0 कवि परिचय

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का जन्म उत्तरप्रदेश के बस्ती जिले में हुआ था। इन्होंने 1949 में प्रयाग विश्वविद्यालय से एम.ए. किया। इसके पश्चात् सर्वेश्वर आकाशवाणी में काम करते रहे और फिर 'दिनमान' साप्ताहिक में प्रमुख उप सम्पादक रहे। 'तीसरा-सप्तक' के वक्तव्य में सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने अपना परिचय इस प्रकार दिया है–

''कस्बेनुमा छोटे से शहर के बाहर, चारों तरफ दूर-दूर तक फैले खेतों, तालों और छोटे-छोटे गाँवों के बीच बचपन बीता जिसमें खेतों की मेड़ों, घर पास अनाथाश्रम के बच्चों के अलावा आर्थिक संघर्ष से उत्पन्न पारिवारिक कलह भी बचपन के साथी रहे।''

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना नई कविता के प्रमुख कवि माने जाते हैं। नई कविता के जिन कवियों ने बदलते हुए यथार्थ के साथ अपने ढंग के रिश्ते बनाने की पेशकश की है उनमें सर्वेश्वर दयाल सक्सेना प्रमुख हैं। उनके व्यापक काव्य-संसार में करुणा की प्रधानता है। गाँव और शहर की जिन्दगी उनके काव्य में जिस ढंग से व्यक्त हुई है उसकी भीतरी दुनिया में प्रवेश करते समय एक करुणा की प्रतीति पाठकों को होती है। करुणा वह दृष्टि है जो उनके काव्य-संसार को देखने के लिए जरूरी है। दूसरे शब्दों में यह वह कुंजी है जिसे लगाने से उनके काव्य-मर्म का द्वार अनायास खुल जाता है। जीवन की विषमता और व्यर्थ के आडम्बर पर उनकी व्यंग्यपूर्ण रचनाएँ हैं।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना प्रारम्भ से ही भावुक और संवेगमूलक कवि रहे हैं। इनकी कविता में प्रारम्भ में लोक-जीवन की झाँकी अधिक मिलती है। जैसा कि उन्होंने स्वयं कहा है खेत, ताल, मेड उनसे आज तक नहीं छूटे। सर्वेश्वर अपनी कविता में बिम्बों और प्रतीकों का बहुत अधिक प्रयोग करते हैं। टुकड़ों में उनके बिम्ब बड़े आकर्षक और सशक्त लगते हैं। 'काठ की घंटियाँ', 'बाँस का पुल', 'एक सूनी नाव', 'गर्म हवाएँ', 'कुआनो नदी', 'जंगल का दर्द', 'खूँटियों पर टँगे लोग', 'कोई मेरे साथ चले' इनके काव्य-संकलन हैं। 'खूँटियों पर टँगे लोग' काव्य-कृति पर सर्वेश्वर को साहित्य-अकादमी का पुरस्कार प्राप्त हुआ।

13.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

मैंने कब कहा

(1)

मैं नया कवि हूँ–
इसी से जानता हूँ
सत्य की चोट बहुत गहरी होती है
मैं नया कवि हूँ–
इसी से मानता हूँ

चश्मे के तले की दृष्टि बहरी होती है,
इसी से सच्ची चोटें बाँटता हूँ—
झूठी मुसकानें नहीं बेचता।
वह भावी मानव की धाती है, भू पर है,
बर्बरता में भी देवत्व की कड़ी है वह,
इसीलिए ध्वंस और नाश से बड़ी है वह,
अंतराल है वह—नया सूर्य उगा लेती है,
नये लोक, नयी सृष्टि, नये स्वप्न देती है,
वह मेरी कृति है
पर मैं उसकी अनुकृति हूँ,
तुम उसको मत वाणी देना।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक 'आधुनिक काव्य-संग्रह' में संकलित कवि सर्वेश्वरदयाल सक्सेना द्वारा रचित 'मैंने कब कहा' शीर्षक कविता से उद्धृत है। यहाँ कवि ने नई कविता को परम्परागत कविता से अलग करते हुए नये कवि के कर्म पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है।

व्याख्या—कवि कहता है कि मैं नया कवि हूँ इसलिए मैं यह अच्छी तरह से जानता हूँ कि सत्य की चोट बहुत गहरी होती है। नया कवि होने के नाते मेरी मान्यता यह है कि आँखों पर लगाये जाने वाले चश्मे के नीचे की नजर बहरी होती है अर्थात् वह देखती है परन्तु सुनती नहीं इसलिए उसका हृदय पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। वह केवल दिखावटी प्रदर्शन की वस्तु मात्र रह जाती है और संवेग नहीं बन पाती है। मानव जीवन के सत्य को जानने के कारण ही मैं सत्य की गहरी व सच्ची चोटों का चित्रण कर उनका विवरण करता हूँ। इसलिए मैं झूठी मुस्कानें नहीं बेचता हूँ। या थपकी देकर सुलाता नहीं हूँ, वरन् जीवन का यथार्थ सत्य चित्रित करता हूँ। कवि आगे कहता है कि सत्य की चोट को गहरा समझना और उसका चित्रण करना इस पृथ्वी पर आने वाले मनुष्य की धरोहर है। यह धरोहर असभ्य या जंगलीपन में देवत्व की कड़ी है। इसी कारण वह भयानक नाश और विनाश से बढ़कर बड़ी होती है। वह मानव के हृदय में नये सूर्य का उदय करती है। उसे नये जगत नये संसार और नये स्वप्न प्रदान करती है। मेरी नई कविता ऐसी ही शक्ति धारण करती है परन्तु मैं उसका अनुकरण करता हूँ। अर्थात् मेरे कवि व्यक्तित्व में नई कविता समाई हुई है अब तुम उसको वाणी मत देना, क्योंकि वह मेरी कृति है और मैं उसकी अनुकृति हूँ।

विशेष—1. कवि ने अपने नये दृष्टिकोण से नई कविता के तथ्य व विशेषताओं की ओर संकेत किया है।

कलाकार और सिपाही

(1)

किन्तु ऐ दोस्त!
इनको मैं क्या कहूँ.....
जो मौत की खोज में
अपनी अपनी बन्दूकें, मशीन-गनें लिए हुए
नदियों, पहाड़ों, बियाबानों, सुनसानों में
फटे-हाल, भूखे प्यासे
टकराते फिरते हैं।
दूसरे की आज्ञा पर
चन्द पैसों के वास्ते।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश कवि सर्वेश्वरदयाल सक्सेना विरचित 'कलाकार और सिपाही' शीर्षक कविता से अवतरित है। इसमें

कवि ने सिपाही के जीवन तथा उसके उद्देश्य को स्पष्ट किया है।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि आज के इस युग में कलाकारों को पागल कहा जाता है। इसलिए कवि ऐसे ही लोगों से प्रश्न कर रहा है कि मेरे दोस्तों, जब तुम कलाकार को तो पागल कहते हो, लेकिन ऐसे लोगों को मुझे क्या कहना उचित होगा जो अपनी मौत का खोजते रहते हैं, साथ ही अपनी- अपनी बन्दूकें और मशीनगनें साथ लिए रहते हैं। वे इस अवस्था में नदियों, पहाड़ों, भयानक जंगलों, सुनसान स्थानों में फटे हाल, भूखे प्यासे रहते हुए अन्य लोगों से लड़ने के लिए घूमते रहते हैं। और उनके इस तरह लड़ने को तैयार रहने के पीछे दूसरों की आज्ञा रहती है तथा वे थोड़े से पैसों के लिए दूसरों की आज्ञा मानकर अपनी जान को भी जोखिम में डाल लेते हैं। कवि यह कहना चाहता है कि जब आत्मा की आज्ञा पर, मानवता के रक्षार्थ भटकने वाले कलाकारों को पागल कहकर पुकारा जाता है तो फिर ऐसे सिपाहियों को क्या कहना चाहिए। आशय यह है कि आज के तथाकथित सैनिक तो उन कलाकारों से भी हीन ही समझे जाने चाहिए, जिन्हें लोग पागल कहते हैं।

विशेष—1. कलाकार और सिपाही के अन्तर को स्पष्ट किया है।, 2. भाषा सरल व सुबोध है।, 3. 'टकराते फिरते थे और टकराते फिरते हैं' से शैली में विशिष्टता आती है।, 4. प्रश्न पूछकर कवि ने अपने कथ्य का महत्त्व प्रतिपादित किया है।, 5. व्यंग्य विद्यमान है और यथार्थ का चित्रण है।

नए वर्ष पर

(1)

नया वर्ष
जो यह अनुभव करा सके कि उसका हर क्षण नया है
हर घण्टा, हर दिन, हर सप्ताह,
हर माह नया है।
जिसका नयापन
एक वर्ष की गहरी नींद के बाद
चौंककर जगी हुई
एक क्षणिक अनुभूति मात्र ही न हो,
जिसका नयापन
किताबों की धूल झाड़कर
उन्हें करीने से सजा देने,
मेज का मेजपोश बदल देने,
खिड़कियों और दरवाजों के परदे
परिवर्तित कर देने के समान ही
क्षणिक स्फूर्ति और क्षणिक ताज़गी
का ही मात्र द्योतक न हो,
जिसका नयापन
ओस की बूँदों के समान न हो
जो देखते ही देखते उड़ जाती हैं,
कुहरे के जाल के समान न हो
जो बातों- बातों में ही छँट जाता है।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य- पुस्तक 'आधुनिक काव्य- संग्रह' में संकलित सर्वेश्वरदयाल सक्सेना द्वारा रचित 'नये वर्ष पर' शीर्षक कविता से अवतरित है। यहाँ कवि ने नववर्ष पर समस्त प्रकार का नयापन प्रदान करने की अपनी उत्कृष्ट अभिलाषा की

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अभिव्यक्ति की है।

व्याख्या—कवि नये वर्ष पर वह इच्छा व्यक्त करता है कि नया वर्ष हम सबको यह अनुभव कराने में समर्थ हो सके कि उसका हर क्षण, हर घण्टा, हर दिन, हर सप्ताह तथा हर महीना नया है और उसका यह नयापन एक वर्ष की गहरी नींद के बाद चौंक कर जगी हुई एक क्षण की अनुभूति मात्र ही नहीं हो बल्कि नयेपन की अनुभूति स्थाई हो। उसका यह नयापन ऐसा न हो कि जैसे कमरे में रखी हुई किताबों पर पड़ी धूल को झाड़कर उन्हें अच्छी तरह से सजाकर रख देने, मेज का मेजपोश बदल देने, खिड़कियों और दरवाजे के पर्दे बदल देने के समान क्षणिक फुर्ती और क्षणिक ताजगी का प्रकाशक मात्र ही न हो। उसका यह नयापन ऐसा न हो जो ओस की तरह देखते-देखते ही उड़ जाये और कोहरे की उस धुंध के समूह की तरह न हो जो बहुत शीघ्र थोड़े ही समय में हट जाये व दूर हो जाए। कवि के कहने का आशय यह है कि नये वर्ष का नयापन क्षणिक न होकर स्थायी प्रकृति का हो।

विशेष—1. कवि नववर्ष में सर्वत्र स्थायी रूप में नयापन देखने की आकांक्षा से पूरित दिखाई पड़ता है।, 2. उपमान अलंकार का प्रयोग दृष्टव्य है।

1 3. 2 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

1 3. 2. 1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न- 1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना किस सप्तक के कवि माने जाते हैं?

उत्तर—सर्वेश्वरदयाल सक्सेना 'तीसरा सप्तक' के कवि माने जाते हैं।

प्रश्न- 2. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना को किस कृति पर साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला?

उत्तर—सर्वेश्वरदयाल सक्सेना को 'खूंटियों पर टँगे लोग' नामक काव्य-कृति पर 'साहित्य- अकादमी' पुरस्कार मिला।

प्रश्न- 3. 'मैंने कब कहा' शीर्षक कविता के रचनाकार का नाम बताइए।

उत्तर—'मैंने कब कहा' शीर्षक कविता के रचनाकार सर्वेश्वरदयाल सक्सेना हैं।

प्रश्न- 4. 'मैंने कब कहा' शीर्षक कविता में कवि ने कवि का क्या धर्म बतलाया है?

उत्तर—'मैंने कब कहा' शीर्षक कविता में कवि ने कवि का धर्म वास्तविक जीवन की अनुभूति कराना बताया है।

प्रश्न- 5. 'नये वर्ष पर' शीर्ष कविता के रचयिता का नाम बताइए।

उत्तर—'नये वर्ष पर' शीर्षक कविता के रचयिता का नाम सर्वेश्वरदयाल सक्सेना हैं।

प्रश्न- 6. 'नये वर्ष पर' शीर्षक कविता का मूल कथन क्या है?

उत्तर—नया वर्ष सभी के लिए मंगलमय, आस्था और विश्वास का वर्ष हो।

प्रश्न- 7. 'हर दर्द आशा की शक्ति बढ़ा जाता है।' 'नये वर्ष पर' शीर्षक कविता के इस कथन के माध्यम से कवि हमें क्या सन्देश देना चाहता है?

उत्तर—कवि हमें सन्देश देना चाहता है कि असफल होने पर निराश होने के स्थान पर निरन्तर प्रयास करते रहना चाहिए।

1 3. 2. 2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न- 1. 'कलाकार और सिपाही' कविता के मूलभाव को वर्णित कीजिए।

उत्तर—कवि सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने कलाकार और सिपाही कविता के माध्यम से आज के युग में कलाकारों के प्रति सामान्य मान्यता का चित्रण करते हुए जीवन में अर्थ की प्रधानता पर व्यंग्य किया है। आज के युग में कलाकार का महत्त्व बहुत कम हो गया है। यद्यपि वे सत्य, शिव और सुन्दर जीवन तथा उसकी पावन विधियों की खोज करने के लिए नदियों, पहाड़ों, भयानक जंगलों और सुनसान स्थानों में फटे हाल और भूखे-प्यासे रहकर जूझते रहते हैं और अपनी आत्मा की आज्ञा पर निर्लोभ भाव से मानवता के लिए प्रयास करते रहते हैं। लेकिन कुछ लोग उन्हें पागल कहते हैं। दूसरी ओर कवि सिपाही के जीवन तथा उसके उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए कहता है कि सिपाही अपनी ही मौत की खोज करने के लिए अपनी बंदूकें और मशीनगनें लिए हुए नदियों, पहाड़ों, सुनसान जंगलों में फटे हाल भूखे-प्यासे जूझते हुए फिरते हैं। उनका इस तरह का कार्य दूसरों की आज्ञा से होता है और वे थोड़े से पैसों के लिए दूसरों की आज्ञा मानकर अपनी जान को भी जोखिम में डाल देते हैं। इस प्रकार कवि ने सिपाही की अपेक्षा कलाकार के जीवन को श्रेष्ठ बताया है, क्योंकि

कलाकार अपनी आत्मा की आवाज पर कार्य करता है, जबकि सिपाही दूसरों की आज्ञा मानते हुए चंद पैसे के लिए कार्य करता है।

प्रश्न- 2. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की कविता में ऐसा कौनसा नयापन है जो उन्हें और कवियों से अलग करता है?

उत्तर—सर्वेश्वरदयाल सक्सेना 'तीसरा सप्तक' के प्रमुख कवि रहे हैं। यह 'तीसरा सप्तक' ही था जिसने नयी कविता के राजमार्ग को प्रशस्त किया था। सर्वेश्वरदयाल सक्सेना पहले आकाशवाणी से जुड़े रहे और बाद में दिनमान के प्रमुख उप- सम्पादक रहे हैं। नई कविता में उनकी पहचान अलग ही दिखाई देती है। उन्होंने यथार्थ को एक गहरी कचोट के साथ व्यंग्य में मुखर किया है। एक भावुक और संवेदनशील कवि होने के कारण लोक- जीवन के रंग-बिरंगे दृश्यों को भी इन्होंने अपनी कविताओं में चित्रित किया है। उनके काव्य- संसार में करुणा की सृजनात्मक दृष्टि है। यह दृष्टि ही उन्हें अन्य नये कवियों से पृथक् करती है। जहाँ अन्य कवि बौद्धिक सहानुभूति प्रकट करके मानवीय कष्टों को दूर करना चाहते हैं, सर्वेश्वर अपनी मानव- आस्था का आन्तरिक आवेश उत्पन्न कर करुणा से सबको आर्द्र करते हैं और सोचने को भी विवश करते हैं। करुणा का लोपन ही उनकी कविताओं का मर्म है। जीवन की विषमता और व्यर्थ के आडम्बरों पर व्यंग्य भी उनकी कविताओं में दिखाई देता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

दीर्घ कविता

इकाई- 14

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'

संरचना

14.0 कवि परिचय

14.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

14.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

14.2.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

14.2.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

14.2.3 निबंधात्मक प्रश्न

14.3 सारांश

14.0 कवि परिचय

हिन्दी की प्रयोगवादी कविता के प्रवर्त्तक अज्ञेय का जन्म उत्तरप्रदेश के देवारिया जिले में हुआ था। इनके पिता पं. हीरानन्द शास्त्री प्रसिद्ध पुरातत्त्वविद थे। अज्ञेय का बचपन लखनऊ, कश्मीर, बिहार और मद्रास में बीता। शिक्षा मद्रास और लाहौर में हुई। क्रान्तिकारी आन्दोलन से सक्रिय रूप से जुड़े रहने के कारण इन्होंने एक महीना लाहौर किले में तथा साढ़े तीन साल दिल्ली और पंजाब की जेलों में बिताये।

प्रकृति के यायावर अज्ञेय ने देश-विदेश की अनेक यात्राएँ की और अनेक नौकरियाँ बदलीं। उन्होंने 'सैनिक', 'विशालभारत', 'प्रतीक', 'दिनमान' तथा 'नवभारत टाइम्स' आदि हिन्दी पत्रों और अंग्रेजी साप्ताहिक 'थॉट' तथा अंग्रेजी त्रैमासिक पत्रिका 'वाक्' का भी सम्पादन किया। आकाशवाणी तथा जोधपुर विश्वविद्यालय में कार्यरत रहने के पश्चात् अज्ञेय ने हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, दिल्ली के निदेशक के रूप में भी कार्य किया।

अज्ञेय का व्यक्तित्व बहुआयामी था। वे उच्च कोटि के साहित्यकार होने के अलावा कुशल चित्रकार, मूर्तिकार और फोटोग्राफर भी थे। सन् 1943 में 'तारसप्तक' का सम्पादन करके अज्ञेय ने आधुनिक हिन्दी कविता को एक नया मोड़ दिया। इसके अतिरिक्त उन्होंने 'दूसरा सप्तक' (1951), 'तीसरा सप्तक' (1959) और 'चौथा सप्तक' (1979) निकालकर नयी कविता को एक गति प्रदान की। 'भग्नदूत' (1935), 'चिन्ता' (1942), 'इत्यलम' (1946) 'शरणार्थी' (1948) 'हरी घास पर क्षणभर' (1949), 'बावरा अहेरी' (1954), 'इन्द्रधनु रौंदे हुए ये' (1957), 'अरी ओ करुणा प्रभामय' (1959), 'आंगन के पार द्वार' (1961), 'कितनी नावों में कितनी बार' (1967), 'क्योंकि मैं उसे जानता हूँ' (1969), 'पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ' (1973), 'महावृक्ष के नीचे' (1977), 'नदी के बाक पर छाया' (1981) उनके काव्य-संकलन हैं। 'कितनी नावों में कितनी बार' पर उन्हें भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार भी मिला।

अज्ञेय व्यक्तिनिष्ठ कवि हैं। उनकी कविता में सत्यान्वेषण, आत्मन्वेषण, बौद्धिकता यथार्थचेतना के साथ शिल्पगत प्रयोगों की नवीनता दिखाई देती है। व्यक्ति स्वतंत्रता, जिजीविषा की छटपटाहट और अस्तित्व की पहचान ही अज्ञेय की कविता का मूल स्वर है। जिजीविषा की तड़प 'सोन-मछली', 'मछलियाँ टेर रहा सागर', 'बना दे चितेरे' आदि कविताओं में व्यक्त हुई है। मछली उनके यहाँ अस्तित्व और जिजीविषा का प्रतीक बन गयी हैं। अज्ञेय जिजीविषा या जीने के आग्रह के कारण ही क्षण को महत्त्व देते हैं। सामाजिक और नैतिक वर्जनाओं का विरोध उनकी कविता में खूब मिलेगा।

अज्ञेय मूलतः रोमांटिक भावबोध के कवि हैं। प्रारम्भिक कविताओं से ही उनका रोमांटिक दृष्टिकोण दिखाई देने लगता है। 'चिन्ता' का विषय ही नारी और पुरुष का चिरन्तन सम्बन्ध है। 'हरी घास पर क्षण भर', 'इन्द्र धनु रौंदे हुए ये' और 'अरी ओ करुणा प्रभामय' की अधिकांश कविताएँ रूमानियत से भरी हुई हैं। लेकिन उनका रोमांटिक दृष्टिकोण छायावादी कवियों से भिन्न हैं। उनकी कविताओं में शुरू से ही प्रकृति-सौन्दर्य के चित्र मिलने लगते हैं। चूँकि अज्ञेय आत्मनिष्ठ कवि हैं इसलिए उनकी कविताओं में प्रकृति का वस्तुनिष्ठ सौन्दर्य कम, आत्मनिष्ठ सौन्दर्य ही अधिक उद्घाटित हुआ है। अज्ञेय ने अपनी प्रयोगशील प्रवृत्ति के कारण ही प्रकृति के नए-नए प्रतीकों का चयन किया है। प्रेयसी के लिए 'बिछली-घास' तथा 'कलगी-बाजरे' को जैसे प्रतीक हिन्दी कविता के लिए नए हैं।

भाषा के प्रति जो सजगता व जागरूकता अज्ञेय के यहाँ मिलती है वैसी उनके समान-धर्मा किसी भी कवि के यहाँ नहीं है। शब्दों को सही और नया अर्थ प्रदान करने में वे रचना की सबसे बड़ी सार्थकता मानते हैं। 'ये उपमान मैले हो गए' में कवि ने इसी विचार की अभिव्यक्ति की है।

14.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

(1)

राजा जागे।
समाधिस्थ संगीताकर का हाथ उठा था—
काँपी थी उँगलियाँ।
अलग अँगड़ाई लेकर मानो जाग उठी थी वीणा :
किलक उठे थे स्वर-शिशु।
नीरव पद रखता जालिक मायावी
सधे करों से धीरे धीरे धीरे
डाल रहा था जाल हेम-तारों का।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक 'आधुनिक काव्य-संग्रह' में संकलित कवि अज्ञेय द्वारा रचित 'असाध्य वीणा' शीर्षक कविता से उद्धृत है। प्रियंवद बहुत समय तक ध्यानमग्न रहा। उस समय राजसभा एकदम शान्त रही। तभी अचानक प्रियंवद ने वीणा को बजाना प्रारम्भ किया। यहाँ इसके आगे का वर्णन किया गया है।

व्याख्या—कवि कहता है कि प्रियंवद द्वारा असाध्य वीणा को साधने के उपक्रम को देखकर राजा भी सावधान हो गया। ध्यान में स्थित प्रियंवद का हाथ वीणा को बजाने के लिए उठ गया था। उसकी उँगलियाँ वीणा को झंकृत करने के लिए काँपने लगी थीं। उस समय तक ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो अभी तक वीणा सोई हुई थी और अब वह आलस्य को त्यागकर अँगड़ाई लेकर मानो जाग उठी थी। प्रियंवद द्वारा बजाये जाने पर वीणा के स्वर इस प्रकार से सुनभोवन लग रहे थे जैसे शिशु की किलकारियाँ हों, स्वररूपी शिशु किलकारी कर रहा हो। जैसे धोखेबाज बहेलिया या मछुआरा चुपचाप कदम बढ़ाता हुआ आता है तथा अपने सधे हुए हाथों से धीरे-धीरे अपने जाल को फैला देता है, उसी प्रकार वह प्रियंवद भी अपने सधे हुए अनुभवी हाथों से धीरे-धीरे असाध्य वीणा के सुनहरे तारों के जाल को छेड़ रहा था और निकलने वाले इस मधुर स्वर के द्वारा सभी को अपनी संगीत-कला का चमत्कार दिखा रहा था।

विशेष—1. प्रस्तुत अवतरण में निस्तब्ध वातावरण में धीरे-धीरे गूँजने वाली वीणा के स्वर को उतारा गया है।
2. उत्प्रेक्षा, रूपक तथा उपमा अलंकार दृष्टव्य हैं।

(2)

डूब गये सब एक साथ।
सब अलग-अलग एकाकी पार तिरे।
राजा ने अलग सुना :
जयदेवी यश:काय
वरमाला लिये
गाती थी मंगल-गीत,
दुंदुभी दूर कहीं बजती थी
राजमुकुट सहसा हलका हो आया था, मानो हो फूल सिरिस का
ईर्ष्या, महत्वाकांक्षा, द्वेष, चाटुता
सभी पुराने लुगड़े से झर गये, निखर आया था जीवन-कांचन
धर्मभाव से जिसे निछावर वह कर देगा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य- पुस्तक 'आधुनिक काव्य- संग्रह' में संकलित कवि अज्ञेय द्वारा रचित 'असाध्य वीणा' शीर्षक कविता से अवतरित है। प्रियंवद द्वारा बजाई जाने वाली उस असाध्य वीणा की स्वर- लहरी सुनकर सभी को अलग- अलग अनुभूति हुई। इसी का चित्रण यहाँ किया गया है।

व्याख्या—कवि कहता है कि उस संगीत स्वर में सभी एक साथ डूब गये और अपने- अपने में आत्मविस्मृत हो गये। राजा ने जब इस स्वर को सुना तो उसे ऐसा लगा जैसे यश और विजय की देवी जयमाला लिये मंगल गीत गा रही हो और दूर कहीं विजय की दुंदुभी बज रही हो। उसे अपने सिर पर रखा हुआ राजमुकुट हल्का लगने लगा, मानो वह सिरिसा का पुष्प हो। उनकी जलन, महान आकांक्षाएँ, द्वेष, चाटुकारिता आदि की समस्त दुर्भावनाएँ अचानक ही समाप्त हो गईं और उनमें जीवनरूपी स्वर्ण का धर्म- भाव निखर आया था जिसमें ज्योति एवं प्रकाश विद्यमान था।

विशेष—1. शान्त वातावरण में धीरे-धीरे गूँजने वाली वीणा के स्वर को उतारते हुए कवि ने सुन्दर भावों की अभिव्यक्ति की है।
2. रूपक तथा उपमा अलंकारों का प्रयोग हुआ है।

14.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

14.2.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न- 1. पाठ्यक्रम में संकलित अज्ञेय द्वारा रचित दीर्घ कविता का नाम बताइए।
उत्तर—पाठ्यक्रम में संकलित अज्ञेय द्वारा रचित दीर्घ कविता 'असाध्य वीणा' है।
प्रश्न- 2. हिन्दी साहित्य में प्रयोगवादी कविता का उन्मेष किसके द्वारा हुआ है?
उत्तर—हिन्दी साहित्य में प्रयोगवादी कविता का उन्मेष अज्ञेय द्वारा हुआ है।
प्रश्न- 3. कवि अज्ञेय को उनकी किस रचना पर भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला?
उत्तर—कवि अज्ञेय को 'कितनी नावों पर कितनी बार' शीर्षक रचना पर भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला।
प्रश्न- 4. 'असाध्य वीणा' दीर्घ कविता में वीणा किसकी प्रतीक है?
उत्तर—'असाध्य वीणा' कविता में वाणी व्यक्ति के भौतिक अस्तित्व की प्रतीक है।
प्रश्न- 5. 'असाध्य वीणा' को कौन बजा सकता था?
उत्तर—असाध्य वीणा को महामौन या ब्रह्म साधक ही बजा सकता था।
प्रश्न- 6. 'असाध्य वीणा' शीर्षक कविता में वीणा किसके द्वारा निर्मित बताई गयी है?
उत्तर—'असाध्य वीणा' शीर्षक कविता में वीणा करीटी- तरु से निर्मित बताई गयी है।
प्रश्न- 7. 'असाध्य वीणा' शीर्षक कविता अज्ञेय के किस काव्य- संग्रह से संकलित है?
उत्तर—'असाध्य वीणा' शीर्षक कविता अज्ञेय के काव्य- संकलन 'आँगन के पार द्वार' में से संकलित की गयी है।
प्रश्न- 8. अज्ञेय की प्रमुख काव्य- रचनाओं के नाम बताइए।
उत्तर—'अरी ओ करुणा प्रभामय', 'आँगन के पार द्वार', 'बावरा अहेरी', 'कितनी नावों में कितनी बार, हरी घास पर क्षण भर', 'इन्द्र धनु रौंदे हुए ये', 'एहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ' आदि अज्ञेय जी की प्रमुख रचनाएँ हैं।
प्रश्न- 9. अज्ञेय जी का पूरा नाम बताइए।
उत्तर—अज्ञेय जी का पूरा नाम सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' है।

14.2.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न- 1. अज्ञेय के बहुआयामी व्यक्तित्व के कौन- कौन से पक्ष हैं?

उत्तर—अज्ञेय का जन्म सन् 1911 ई. में उत्तरप्रदेश के देवरिया जिले में हुआ था। उनकी मृत्यु सन् 1987 में हुई। इस अवधि में अज्ञेय ने अपने बहु- आयामी व्यक्तित्व की छाप कई क्षेत्रों में छोड़ी है। अज्ञेय के पिता पंडित हीरानाथ शास्त्री पुरातत्त्वविद् थे। अज्ञेय का पूरा नाम सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्सायन अज्ञेय है। अज्ञेय के व्यक्तित्व का एक पक्ष यह है कि वे एक सैनिक भी रह चुके हैं और फिर भारत के क्रांतिकारी आन्दोलन से जुड़ गए। उन्होंने चन्द्रशेखर आजाद, यशपाल आदि क्रांतिकारियों के साथ काम किया है। इसी

कारण उन्होंने लाहौर किले में एक माह तक तथा दिल्ली और पंजाब की जेलों में साढ़े तीन वर्ष बिताये थे। अज्ञेय के व्यक्तित्व का एक और अनूठा पक्ष उनकी यायावरी वृत्ति है, जिसके अन्तर्गत देश-विदेश की यात्रा करना और व्यवसाय बदलना आता है। वे सैनिक, विशाल भारत, प्रतीक, दिनमान, नवभारत टाइम्स आदि हिन्दी पत्रों तथा 'थॉट' और 'वाक' नामक अंग्रेजी पत्रों के सम्पादक भी रहे हैं। उनके व्यक्तित्व का सबसे महान् पक्ष उनका युग-प्रवर्तक साहित्यकार होना है। साहित्यकार के साथ-साथ वे चित्रकार, मूर्तिकार और फोटोग्राफर भी थे। सन् 1943 ई. में तार सप्तक का सम्पादन दूसरा, तीसरा और चौथा सप्तक का सम्पादन कर नई कविता के पुरोधा बने। वे स्वयं उच्चकोटि के कवि, कहानीकार, उपन्यासकार, निबंधकार और भाषाविद् थे। उन्हें 'कितनी नावों में कितनी बार' पर ज्ञानपीठ पुरस्कार भी मिला है।

प्रश्न- 2. 'असाध्य वीणा' कविता का वर्ण्य- विषय क्या है?

उत्तर—अज्ञेय ने 'असाध्य वीणा' नामक कविता एक दीर्घ कविता के रूप में लिखी है। इस कविता को 'आँगन के पार द्वार' नामक संकलन में संकलित किया गया है। अज्ञेय ने 'असाध्य वीणा' नामक कविता में एक आख्यान का आश्रय लेकर एक साधक के मौन समर्पण का स्वाभाविक चित्रण किया है। इस कविता में कवि यह कहना चाहता है कि पूर्ण समर्पण से ही कोई साधक सत्य का साक्षात्कार कर सकता है। जब उसे सत्य का साक्षात्कार हो जाता है, तब उसे अभिव्यक्त करने की क्षमता प्रायः मौन हो जाया करती है।

14.2.3 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न- 1. ''अज्ञेय छायावादोत्तर काल की कविता में सुमेरु पुरुष हैं।'' इस कथन के परिप्रेक्ष्य में उनके काव्य की प्रमुख विशेषताएँ स्पष्ट कीजिए।

अथवा

''अज्ञेय में संवेदनशील और बौद्धिकता का अनूठा सन्तुलन है।'' कथन की समीक्षा कीजिए।

उत्तर—अज्ञेय का व्यक्तित्व बहुआयामी है। वे छायावादोत्तर के प्रमुख कवि माने जाते हैं। उन्होंने 'तार सप्तक' के सम्पादन से एक नई काव्य धारा का सूत्रपात किया। इस काव्य धारा को 'प्रयोगवाद' नाम दिया गया और 'तार सप्तक' के प्रकाशन की तिथि से इसका शुभारम्भ माना गया। अज्ञेय जी ने प्रथम 'तार सप्तक' की भूमिका में इस नूतन काव्य धारा की वकालत करते हुए कविता विषयक अपनी मान्यताओं का उद्घाटन किया। इसलिए वे हिन्दी कविता को एक नया मोड़ देने वाले प्रथम कवि माने जाते हैं।

अज्ञेय न केवल इस प्रयोगवादी नूतन काव्यधारा के यशस्वी कवि हैं अपितु इस धारा के कवियों को पाठकों के समक्ष लाने वाले, उन्हें नूतनता की ओर प्रेरित करने वाले, उनके लिए काव्य भूमि तैयार करने वाले, उनकी मान्यताओं की वकालत करने वाले कवि नेता भी हैं। उन्होंने छायावाद और प्रगतिवाद पर आक्रमण करके नूतन वस्तु एवं नूतन शिल्प दृष्टि सम्पन्न इस नूतन प्रयोगवादी काव्यधारा का प्रवर्तन किया। अज्ञेय के काव्य में संवेदनशीलता और बौद्धिकता का अनूठा सन्तुलन है। उन्होंने अपने काव्य में बौद्धिकता व्यंग्य, नये उपमान, प्रतीक, बिम्ब तथा मुक्त छन्द आदि विशेषताएँ अपनाई हैं। उनके काव्य में प्रमुख रूप से निम्नलिखित विशेषताएँ पाई जाती हैं—

1. प्रणयानुभूति—अज्ञेय के काव्य का श्रीगणेश ही प्रणय की टीस से हुआ। वे प्रणय के वासनात्मक रूप को ही महत्त्व देते हैं। इसलिए उन्होंने संयोग के क्षणों की उन्मादक स्थिति तथा वियोग के क्षणों की विरह व्यथा और तड़पन को अत्यधिक प्रवीणता के साथ चित्रित किया है। कवि ने प्रेम को मानवीय रूप में ही स्वीकारा है। कवि को दुःख है कि लोग ऐसे नैसर्गिक प्रणय को भी छिपाया करते हैं—

हाय तुम्हारी नैसर्गिकता! मानव नियम निराला है।
वह तो अपने से ही अपना प्रणय छिपाने वाला है।

2. क्षणानुभूति—अज्ञेय की दृष्टि में एक क्षण का बहुत महत्त्व है। क्षण-क्षण से ही जीवन और दिन अपनी-अपनी अन्तिम गति को प्राप्त हो जाते हैं। इसलिए वे वर्तमान क्षण को ज्यादा मूल्यवान मानते हैं। उसे वे व्यर्थ कल की चिन्ता में गंवाना नहीं चाहते हैं। हमारा मौजूदा क्षण हो तो हमारे लिए योग्य है—

फूल को प्यार करो
झरे तो झर जाने दो

जीवन का रस लो
देह मन आत्मा की रसना से
पर जो मरे उसे मर जाने दो।

वे अन्य कविता में क्षण के अस्तित्व को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि—

नहीं बाँध कर रखा जा सकता
छोटा सा पल छिन
चल डोले पर चढ़ी जा रही
काल की दुलहिन।

3. सौन्दर्य बोध—अज्ञेय जी ने अपनी कविताओं में प्रणय और सौन्दर्य दोनों को साधा और बाँधा है। प्रणय भावनाओं में सौन्दर्य बोध भी स्पष्ट होता गया है। उन्होंने सौन्दर्याभिव्यक्ति में पुरानी उपमाओं का उपयोग नहीं किया है। उनकी सौन्दर्याभिव्यक्ति में नवीन पद्धति को अपनाया गया है। सौन्दर्य चित्र का एक उदाहरण देखिए—

अगर मैं यह कहूँ
बिछली घास हो तुम
लहलहाती हवा में कलंगी छरहरी बाजरे की?

'नख-शिख' कविता में उन्होंने पारम्परिक उपमानों को भी नवीन सन्दर्भों में प्रस्तुत किया है—

तुम्हारे नैन
पहले भोर की दो ओस बूंदे हैं
अछूती ज्योतिमय
भीतर द्रवित
तुम्हारे ओंठ
पर उस दहकते रक्तिम पुहुप को
मत ताकता रह सकूं मैं।

4. आध्यात्मिकता—अज्ञेय ने जहाँ मानव जीवन की कुण्ठाओं और विषमताओं को अपनी कविताओं में वर्णित किया है वहीं उन्होंने आत्मा और परमात्मा के रूप को भी स्वीकार किया है। उन्होंने आत्मा को परिणीत वधू एवं परमात्मा को महाशून्य के रूप में स्वीकार कर उनके विवाह का चित्रण करते हुए कवि कह रहा है—

अरी री आत्मा री,
कन्या भोली क्वारी,
महाशून्य के साथ भाँवरें तेरी रची गयी।

कवि ने परमात्मा को महाशून्य के रूप में स्वीकार किया है। इसके साथ ही वह इस संसार को भी शून्य मानता है क्योंकि यह संसार महाशून्य से ही प्रकट हुआ है। अन्त में इसी में विलीन हो जाता है। इसी कथ्य को स्पष्ट करते हुए कवि ने कहा है कि—

न कुछ में से वृत्त यह निकाला कि जो फिर
शून्य में जा विलय होगा
किन्तु वह जिस शून्य को बाँधे हुए है
उसमें एक रूपातीत ठंडी ज्योति है।

5. बुद्धि तत्त्व की प्रधानता—अज्ञेय जी कोरी भावुकता के स्थान पर बौद्धिकता को प्रधानता देते हैं। क्योंकि आज मात्र भावुकता के सहारे जीवन-यापन नहीं किया जा सकता है। इसके लिए बुद्धितत्त्व की प्रमुखता अति आवश्यक है। इसलिए अज्ञेय जी की कविताओं में बौद्धिकता भावुकता का हिस्सा नहीं है बल्कि भावुकता के साथ-साथ बौद्धिकता की प्रधानता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि उनकी कविताओं में कोरी बौद्धिकता ही हो। उनमें संवेदनशीलता और बौद्धिकता का स्वस्थ सन्तुलन परिलक्षित होता है। इसका एक उदाहरण

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

नदी के द्वीप कविता के अंश में देखिए—

हम नदी के द्वीप हैं।
हम नहीं कहते कि हमको छोड़कर स्वगोतस्विनी बह जाय।
वह हमें आकार देती है।
हमारे कोण, गलियाँ, अन्तरीप, उभार, सैकतकूल।
सब गोलाइयाँ उसकी गढ़ी हैं।
माँ वह है उसी से हम बने हैं।

6. संवेदनशीलता—जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि अज्ञेय जी केवल संवेदनशील कवि ही नहीं, उनकी संवेदनशीलता में ज्ञान चेतना भी सहयोगिनी है, उदाहरण—

मैंने कहा—
डूबा चाँद!
रात को सिहरने दे
कुहयाँ को भरने दे
अक्षितिज तम फैल जानेदे
पर तम
थमा और मुझी में जम गया।

7. क्रान्ति की भावना—कवि ने समाज में व्याप्त आर्थिक असमानता, शोषण, अन्याय और विषमता के प्रति दु:ख व्यक्त नहीं किया है। उसने इस असमानता को मिटाने के लिए संघर्ष करने की प्रेरणा दी है। वह भयंकर वैषम्य को हटाने के रक्तमयी क्रान्ति का भी आह्वान करता है—

हमने न्याय नहीं पाया है, हम ज्वाला से न्याय करेंगे।
धर्म हमारा नष्ट हो गया, अग्नि धर्म हम हृदय धरेंगे॥

8. प्रकृति चित्रण—अज्ञेय ने प्रकृति का चित्रण विविध रूपों में किया है। कभी वह प्रकृति के अनिद्य सौन्दर्य की रमणीय झाँकियाँ प्रस्तुत करता है तो कभी वह सागर, पर्वत और घाटियों की पावन झाँकियों को निहारता है और कभी वह सोते के साथ बहना पसन्द करता है, पक्षियों के साथ गाना पसन्द करता है। इसका उदाहरण देखिए—

मैं सोते के साथ बहता हूँ
पक्षी के साथ गाता हूँ
वृक्षों की कोपलों के साथ थरथराता है
और उसी अदृश्यक्रम में भीतर ही भीतर
झरे पत्तों के साथ गलता और जीर्ण होता रहता है
नये प्राण पाता हूँ।

9. शहरी चित्रण एवं व्यंग्य—अज्ञेय जी ने अपने काव्य में वर्तमान परिवेश की व्यस्तता, घुटन और स्वार्थमयी भावनाओं का चित्रण किया है। उन्होंने शहरी जीवन की निर्जीव सामाजिकता, धोखेबाजी और अहमवादी भावनाओं को नजदीक से देखा और उन्हें अपनी कविता का विषय बनाया है। उनकी 'साँप' शीर्षक कविता शहरी व्यक्तियों के स्वार्थीपन और कठोर आचरण पर व्यंग्य के माध्यम से प्रकाश डालती है—

साँप तुम सभ्य तो हुए नहीं, न होंगे,
नगर में बसना भी तुम्हें नहीं आया,
एक बात पूँछें (उत्तर दोंगे)
फिर कैसे सीखा डँसना,

विष कहाँ पाया!

10. काव्य की भाषा—अज्ञेय के काव्य में भाषा की विविधता पाई जाती है। वैसे तो उनके काव्य में शुद्ध साहित्यिक खड़ी भाषा का प्रयोग हुआ है किन्तु कहीं-कहीं पर अत्यन्त सरल, सुबोध एवं तद्भव शब्द प्रधान सीधी-सीधी भाषा का भी प्रयोग किया गया है। उनकी भाषा में ग्राम्य एवं देशज शब्दावली के साथ-साथ नूतन एवं नवीन पदावली का भी प्रयोग हुआ दिखाई पड़ता है। कवि ने अपनी भाषा में अंग्रेजी के लोक प्रचलित शब्दों को भी स्थान दिया है। कहीं-कहीं नूतन प्रयोगों के फलस्वरूप भी कवि की भाषा कृत्रिम, अस्वाभाविक एवं दुरुह हो गयी है।

11. लाक्षणिकता एवं प्रतीक योजना—कवि ने अपने काव्य में लाक्षणिकता लाने के लिए मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग किया है। इसके साथ ही अभिधयार्थ से भिन्न लक्ष्यार्था की द्योतक पदावली का भी प्रयोग हुआ है।

अज्ञेयजी ने अर्थ चमत्कार की दृष्टि से अपनी कविताओं में नये-नये प्रतीकों का प्रयोग किया है। इन प्रतीकों को मुख्य रूप से तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। पहले वर्ग में प्रतीक आते हैं जिनका सम्बन्ध कवि के निजी जीवन से है जिन्हें हम 'आत्म प्रतीक' कह सकते हैं। दूसरे वर्ग में वे प्रतीक आते हैं जिनका प्रयोग कवि ने प्रेम भावना में किया है। उन्हें हम प्रेम सम्बन्धी प्रतीक कह सकते हैं। तीसरे वर्ग में संस्कृतिक प्रतीक आते हैं जिनका सम्बन्ध कवि की ऐतिहासिक, वैज्ञानिक, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक विचारधारा से है।

12. बिम्ब विधान—कवि अज्ञेय ने प्रतीकों की भाँति अपने काव्य को विविध प्रकार के बिम्बों से भी सजाया है। कवि ने मूल रूप से चार प्रकार के बिम्बों का प्रयोग अपनी कविताओं में किया है—1. ऐन्द्रिय बिम्ब, 2. केतुपरक बिम्ब, 3. भाव बिम्ब और 4. आध्यात्मिक बिम्ब का एक उदाहरण देखिए—

दूर बासी मीत मेरे
पहुँच क्या तुम तक सकेंगे काँपते ये गीत मेरे।

छन्द विधान—अज्ञेय जी के काव्य में छन्द प्रयोग की भी सुन्दर विविधता दिखाई पड़ती है। उन्होंने पहले तो अपनी अधिकांश कविताएँ वार्णिक और मात्रिक छन्दों में रचीं, परन्तु धीरे-धीरे कवि की छन्द प्रयोग में विचारधारा परिवर्तित हुई। उन्होंने अपने स्वतंत्र विचारों को व्यक्त करने के लिए 'मुक्त छन्द' अपनाया जो बाद में उनके काव्य की निधि बन गया।

14.3 सारांश

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि अज्ञेय जी प्रयोगशील नूतन काव्यधारा के प्रवर्तक थे। इसलिए उन्होंने नूतन विषयों को स्वतंत्रता पूर्वक अपनी कविताओं में स्थान दिया और उन्हें नूतन उपकरणों से सजाया भी तथा नयी धारा के कवियों को प्रेरित भी किया।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University)

इकाई—15

नरेश मेहता

संरचना

15.0 कवि परिचय

15.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

15.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

15.2.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

15.2.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

15.2.3 निबंधात्मक प्रश्न

15.0 कवि परिचय

नरेश मेहता का जन्म शाहजहाँ, मालवा के सम्पन्न ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इन्होंने उज्जैन के माधव कॉलेज के इंटरमीडिएट करने के बाद काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से एम.ए. किया। नरेश मेहता को एक ओर पांडित्य पूर्ण पारिवारिक वातावरण मिला तो दूसरी ओर आचार्य केशवप्रसाद मिश्र, पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र और पं. नन्दुलारे वाजपेयी का सान्निध्य।

नरेश मेहता ने सन् 42 से स्वाधीनता संग्राम में सक्रिय भाग लिया। ये छात्र आंदोलन तथा कांग्रेस कम्प्युनिस्ट पार्टी से लगभग 15 वर्षों तक सम्बद्ध रहे। दिल्ली में ट्रेड यूनियन के एक साप्ताहिक के सम्पादन के अलावा 'कृति' जैसे प्रमुख मासिक के सम्पादक रहे। आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों पर छः वर्षों तक कार्यक्रम अधिकारी रहने के बाद 59 में स्वतंत्र लेखन का निर्णय लिया।

नरेश मेहता 'दूसरा सप्तक' के प्रमुख कवि हैं। इनके काव्य में उदात्ता तथा कल्पना में एक ऊँचाई देखने को मिलती है। स्वस्थ सामाजिकता, विचारशीलता, मानवमूल्य बोध, प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति इनकी कविता की विशेषताएँ हैं। नरेश मेहता ने पौराणिक व्याख्यानों को आधुनिक रूप में प्रस्तुत करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है जिसका उदाहरण 'संशय की एक रात' में देखा जा सकता है।

कवित्व से लबालब भरे नरेश मेहता का महानतम शक्ति बिम्ब रचना में दिखाई देता है। इनके यहाँ ऐसी कविताएँ बहुत कम मिलेंगी जिनमें कोई नया बिम्ब या कोई नई कल्पना अथवा कोई विलक्षण अनुभव न हो। लोक-भाषा जैसी सहज छवि का आत्मीय मीठास जो नरेश मेहता के काव्य में भरी है, नई कविता में दुर्लभ है। उनकी रचनाओं में बड़े प्रभावशाली प्रतीक पाये जाते हैं। ये अपनी वैचारिक और शैली के लिए एक विशिष्ट कवि माने जाते हैं। उन्होंने स्वयं 'दूसरा सप्तक' में कहा है—''नया तो मेरा युग है, मेरी प्रकृति है तथा सबसे नया मैं हूँ।'' बेधड़क होकर इतनी बड़ी बात कहना और उसका निर्वाह भी करना कवि के विचारों की प्रौढ़ता ही मानी जायेगी। नरेश मेहता में संलग्न एक नयापन है भी जो अन्य लोगों में नहीं है। 'बोलने दो चीड़ को', 'वन पाखी सुनो', 'मेरा समर्पित एकांत', 'प्रार्थना पुरुष', 'संशय की एक रात', 'उत्सवा' इत्यादि इनकी प्रकाशित रचनाएँ हैं।

15.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

(1)

''सोने की वह मेघ-चील
अपने चमकीले पंखों में
ले अन्धकार अब बैठ गई दिन अण्डे पर।
नदी वधू की नथ का मोती चील ले गयी।
गगन बीड़ से सूरज ग्वाला हाँक रहा है दिन की गायें।

'नभ' का नीलापन चुप है,
दिशि के कन्धों पर सिर धर।''

प्रसंग—प्रस्तुत कवितांश कवि श्री नरेश मेहता द्वारा विरचित 'समय देवता' शीर्षक दीर्घ कविता से उद्धृत है। इसमें कवि ने प्रकृति के वातावरण का मौलिक चित्रण किया है।

व्याख्या—कवि नरेश मेहता कहते हैं कि वह बादल रूपी चील, जिसका वर्ण सुनहरी या स्वर्णिम है, अपने चमकीले पंखों में अन्धकार को लेकर अर्थात् अंधकार को समेट कर इस समय दिन रूपी अण्डे पर बैठ गई है। जिस प्रकार चील के अण्डे पर बैठने से अण्डे के भीतर विद्यमान जीवन- तत्त्व की वृद्धि होती है उसी प्रकार दिन के प्रकाश में वृद्धि होती रही थी और अन्धकार सिमट रहा था। नदी रूपी वधू की नथ का मोती वह चील ले गयी है अर्थात् बादलों ने सूर्यातप द्वारा नदी के सौन्दर्य सम्पन्न जल को अपनी ओर खींचना प्रारम्भ कर दिया है। आकाश रूपी जंगल से निकलकर सूरज रूपी ग्वाला दिन की गायों को हाँक रहा है। आकाश का नीलापन इस समय चुप है और उसने दिशाओं के कन्धों पर अपना सिर रख दिया है।

विशेष—1. समस्त उपमान प्राकृतिक होते हुए भी कविता के क्षेत्र में नवीन तथा मौलिक कल्पना की उपज हैं।
2. रूपक अलंकार की सर्वत्र व्याप्ति है।
3. प्राकृतिक वातावरण का भव्य चित्रण है जो परम्परागत समस्त प्रकार के भेदों से भिन्न है।
4. भाषा सरल है तथा भावों व विचारों को प्रभावी बनाने वाली शैली है।

(2)

समय देवता।
हटा ले गये तुम अपनी आलोक- भुजा बरसा कर दिन का पानी।
अब नील तुम्हारी ग्रहण- भुजा की श्याम अँगुलियाँ
पृथ्वी की सारस ग्रीवा पर फौलादी बन बैठ गयी हैं।
यूनानी मुनि प्लेटो की मुद्रा में बैठे समय सनातन।
घूम रही मेरी धरती में आँख गड़ाये देख रहे क्या?
बिछा हुआ है देव! तुम्हारी प्रलय- सृजन की आँखों का आकाश हमारे
देशान्तर औ 'अक्षांशों औ' देशान्तर
के इन लम्बे बाँसों पर।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य पुस्तक में संकलित नरेश मेहता द्वारा रचित 'समय देवता' शीर्षक कविता से अवतरित है। इसमें कवि समय देवता को सम्बोधित करते हुए यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो की स्मृति करवा रहा है।

व्याख्या—कवि समय रूपी देवता को सम्बोधित करता हुआ कहता है कि हे समय देवता! तुम तो दिन का पानी बरसा कर अपनी प्रकाश रूपी बाँह को हटाकर ले गये और अब तुम्हारी ग्रहण- भुजा की अँगुलियाँ, काली- काली अँगुलियाँ, पृथ्वी की सारस की भाँति लम्बी गर्दन पर फौलाद की बनी हुई होकर बैठ गई हैं, जो हटाने पर भी हटने का नाम ही नहीं लेती हैं। हे शाश्वत रहने वाले समय देवता! आपने तो यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो की मुद्रा बनाकर बैठ जाने का उपक्रम कर लिया है। तुम इस तरह अपनी आँखें गड़ाए हुए मेरी इस धरती पर घूमते हुए क्या देख रहे हो? हे समय देवता! इस धरती के देशान्तरों और अक्षांशों के बीच के इन बाँसों पर तुम्हारे द्वारा प्रलय करने वाला आकाश फैला हुआ है।

विशेष—1. कवि ने यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो का सन्दर्भ यहाँ प्रस्तुत किया है।
2. अक्षांशों व देशान्तरों को लम्बे बाँसों से उपमित किया गया है।
3. रूपक तथा उपमा अलंकारों का प्रयोग दृष्टव्य है।

(3)

यह केसर सूरज की धरती, भरत भूमि,

इस स्वर्ण धूप में मन्त्रपाठ- सी करती लगती।
वे सन्थाली गीत, असम के जंगल गाते,
बंग देश की वंशी को वह अण्डमान सुनता आया है,
गोदावरी का गीत उठ रहा और त्रिवेन्द्रम के कूलों पर खिली पड़ रही
वह धीवर की वंशी।
विन्ध्या के घर बादल आये, रेवा गाती सोहर, राजपूतनी,
ऊँटों को नूपुर पहनाकर रेत वनों में हरी दूब- सी चमकी
पड़ती।
अमराई में बौर आ गये, लाज आ गयी,
मेरे उस जलते बिहार को ताड़ों ने हँस छाया कर दी,
उज्जयिनी को खोजा करते मेघदूत सन्देश कलश ले।

प्रसंग—यह अवतरण हमारी पाठ्य- पुस्तक 'आधुनिक काव्य- संग्रह' में संकलित नरेश मेहता द्वारा रचित 'समय देवता' शीर्षक दीर्घ कविता से उद्धृत है। इसमें कवि भारत की विशेषताओं से समय देवता को परिचित कराता है।

व्याख्या—कवि कहता है कि हे समय देवता! यह केसर जैसे बहुमूल्य पदार्थ और सूर्य की सुनहरी धरती है। यह सम्राट भरत की प्रसिद्ध भारत भूमि है, जो इस सुनहरी धूप में मन्त्र- पाठ- सी करती हुई दिखाई दे रही है। यहाँ के आसाम प्रदेश के जंगल संथाली नामक आदिवासी के गीत गाते हैं और बंगाल प्रदेश की मधुर बाँसुरी की तानों को अण्डमान- निकोबार द्वीपसमूह सुनते ही आये हैं। गोदावरी नदी के प्रवाह से गीत की ध्वनि उठ रही है और त्रिवेन्द्रम के किनारों पर मछुआरे लोगों का अपनी बंशी से मछलियों को पकड़ने की कला दिखाई दे रही है। यहाँ के विन्ध्याचल के घर बादल आते हैं और रेवा नदी सोहर के गीत गाती है। यहाँ के राजस्थान की राजपूतानियाँ ऊँटों को नूपुर पहनाकर जब चलती हैं तो वनों की रेत भी दूब के समान चमकने लगती है। आम्रवृक्षों के कुंज बौरों से लदकर महकते हैं और जलते हुए बिहार प्रान्त को ताड़ों के वृक्ष हँसकर छाया प्रदान करके उसकी जलन को शान्त करते हैं। हे समय देवता! इस भारत की उज्जयिनी नामक नगरी को दूत बने हुए बादल किसी विरही यक्ष के सन्देश से भरे घड़ों को लेकर खोजते रहते हैं।

विशेष—1. कवि ने भारत की प्राकृतिक सुषमा का वर्णन कर विभिन्न प्रान्तों की सांस्कृतिक विशेषताओं का भी अंकन किया है।
2. उपमा तथा मुद्रा अलंकार का प्रयोग दृष्टव्य है।

15.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

15.2.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न- 1. नरेश मेहता द्वारा रचित 'समय देवता' किस प्रकार की कविता है?
उत्तर—नरेश मेहता द्वारा रचित 'समय देवता' दीर्घ कविता है।
प्रश्न- 2. नरेश मेहता द्वारा रचित काव्य- संग्रहों के नाम बताइए।
उत्तर—नरेश मेहता द्वारा रचित काव्य- संग्रह—'वन पाखी सुनो', 'बोलने दो चीड़ को', 'मेरा समर्पित एकान्त', 'प्रार्थना पुरुष' तथा खण्डकाव्य 'संशय की एक रात' हैं।
प्रश्न- 3. 'समय देवता' शीर्षक कविता के बारे में नरेश मेहता ने क्या कहा है?
उत्तर—'समय देवता' शीर्षक कविता के बारे में नरेश मेहता ने कहा है कि यह नई कविता की पहली लम्बी कविता है।
प्रश्न- 4. 'समय देवता' को कवि क्या देकर विदा करता है?
उत्तर—'समय देवता' को कवि चमकीले वस्त्र में मिट्टी का विश्वास देकर विदा करता है।
प्रश्न- 5. 'समय देवता' शीर्षक कविता का सर्वप्रथम किसमें प्रकाशन हुआ?
उत्तर—'समय देवता' शीर्षक कविता का सर्वप्रथम दूसरा 'तार सप्तक' में प्रकाशन हुआ।

प्रश्न- 6. नरेश मेहता द्वारा रचित खण्डकाव्यों के नाम बताइए।

उत्तर—नरेश मेहता द्वारा रचित खण्डकाव्य—'महाप्रस्थान', 'प्रवाहपर्व', 'शबरी' और 'संशय की एक रात' हैं।

प्रश्न- 7. 'समय देवता' शीर्षक कविता नरेश मेहता के किस काव्य-संग्रह से संकलित है?

उत्तर—'समय देवता' शीर्षक कविता नरेश मेहता के 'मेरा समर्पित एकान्त' काव्य-संग्रह से संकलित है।

प्रश्न- 8. प्रगतिवादी युग के दो कवियों के नाम बताइए।

उत्तर—प्रगतिवादी युग के दो कवि नागार्जुन एवं शिवमंगल सिंह हैं।

प्रश्न- 9. प्रयोगवादी कविता का पुरस्कार प्राप्त कर्त्ता किसे कहा गया है?

उत्तर—प्रयोगवादी कविता का पुरस्कार प्राप्त कर्त्ता अज्ञेय को कहा जाता है।

प्रश्न- 10. छायावादी काव्यधारा के प्रमुख दो कवियों के नाम बताइए।

उत्तर—छायावादी काव्यधारा के प्रमुख दो कवि जयशंकर प्रसाद तथा सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' हैं।

प्रश्न- 11. आधुनिक काल की दो प्रमुख कवयित्रियों के नाम बताइए।

उत्तर—आधुनिक काल की दो प्रमुख कवयित्री महादेवी वर्मा और सुभद्रा कुमारी चौहान हैं।

प्रश्न- 12. नयी कविता का प्रवर्त्तन कब से माना जाता है?

उत्तर—नयी कविता का प्रवर्त्तन सन् 1956 से तीसरा सप्तक के प्रकाशन और प्रयोगवाद के साथ ही माना जाता है।

प्रश्न- 13. दीर्घ कविताओं का प्रारम्भ किस युग से माना जाता है?

उत्तर—दीर्घ कविताओं का प्रारम्भ छायावादी युग से माना जाता है।

प्रश्न- 14. नरेन्द्रमेहता द्वारा रचित देश-विभाजन की त्रासदी पर आधारित दीर्घ कविता का नाम बताइए।

उत्तर—नरेन्द्रमेहता द्वार रचित देश-विभाजन की त्रासदी पर आधारित दीर्घ कविता का नाम 'एक अग्निकाण्ड जगह बदलता' है।

15.2.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न- 1. 'समय देवता' कविता में नरेश मेहता ने कौन-कौन से देशों को लक्ष्य कर उनके सम्बन्ध में क्या संकेत दिया है?

उत्तर—'समय देवता' कविता नरेश मेहता की एक दीर्घ कविता है। इस कविता में कवि ने ध्रुव प्रदेश, सोवियत भूमि, चीन, जापान, भारत, तिब्बत, बर्मा, हिमाचल प्रदेश, अफ्रीका, मिस्र, इंग्लैण्ड, अमरीका, फ्रांस, स्विट्जरलैण्ड, जर्मन, ऑस्ट्रेलिया, इटली, सिसली आदि देशों की राजनीतिक तथा सांस्कृतिक स्थितियों का चित्रांकन किया है। 'समय देवता' कविता में इन विविध देशों को निरूपित करते समय कवि नरेश मेहता ने यह संकेत किया है कि मनुष्य की महिमा सर्वोपरि है और उसके साथ धरती का महत्त्व भी कम नहीं है। इन दोनों तत्त्वों को समझकर मनुष्य विनोश-विध्वंस से बच सकता है। इस कविता के माध्यम से यह संकेत दिया गया है कि समय की शक्ति अमोघ है। वही सबसे बड़ा देवता है। उसके समक्ष कोई नहीं टिक सकता है। समय का परिवर्तन व्यक्तियों के सोच और उनकी मानसिकता से बदल सकता है।

प्रश्न- 2. 'समय देवता' कविता पर संक्षिप्त परिचयात्मक टिप्पणी लिखिए।

उत्तर—'समय देवता' शीर्षक कविता श्री नरेश मेहता के 'मेरा समर्पित एकान्त' काव्य-संग्रह से संकलित एक दीर्घ कविता है। इसे कवि ने नई कविता की पहली दीर्घ कविता कहा है। इस कविता में कोई आख्यान नहीं है। कवि ने समय को मानवीकृत कर अपनी अनुभूतियों को क्रमशः विस्तृत करते हुए बिम्बों की शृंखला प्रस्तुत की है। कविता को पढ़कर ऐसा लगता है कि कवि की कल्पना में सम्पूर्ण विश्व आकर सिमट गया हो। विश्व का ऐसा कोई प्रमुख देश नहीं है जिसकी ओर इस कविता में कवि की दृष्टि न गई हो। इसी कारण यह कहा जाता है कि 'समय देवता' शीर्षक दीर्घ कविता में धरती के विभिन्न भागों की सांस्कृतिक, राजनैतिक स्थितियों का 'सीनिरियों' को प्रस्तुत किया गया है। इस कविता में कवि ने यह संकेत दिया है कि समय की शक्ति आबेध है, वही सबसे बड़ा देवता है, उसके समक्ष कोई नहीं टिक सकता है।

इकाई- 16

रस अवयव और रस निष्पत्ति

प्रश्न- 1. रस के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए तथा बताइये कि विभाव का रस प्रक्रिया में क्या स्थान है?

अथवा

रस की परिभाषा देकर सभी रसों का उल्लेख कीजिए।

अथवा

रस की निष्पत्ति कहाँ होती है? इस प्रक्रिया में निष्पत्ति का क्या स्वरूप है? उदाहरण दीजिए।

अथवा

साहित्य के सभी रसों और उनके स्थायी भावों का नामोल्लेख कीजिए। एक रस का उदाहरण भी दीजिए।

उत्तर—साहित्याचार्यों ने रस को काव्य की आत्मा माना है—'वाक्यं रसात्मक काव्यम्'। सरसता जैसे जीवन में आवश्यक है, वैसे ही काव्य में साहित्य में भी है। परम्परागत अर्थ में 'रस' का अर्थ है सरसता और उसके कारण प्राप्त होने वाला आनन्द। इस प्रकार भारतीय परम्परा में रस की धारणा काव्य में अत्यन्त प्राचीन है। आचार्य भरत के नाट्य-शास्त्र के अनुसार ''न हि रसादृते कश्चिदर्थ: प्रवर्तते' अर्थात् रस के बिना किसी अर्थ का जब प्रवर्तन ही नहीं होता तो काव्य की कल्पना कैसे की जा सकती है? इतना ही नहीं यहाँ रस को जीवन का सार और जीवन को रस प्राप्ति के लिए ही परिकल्पित किया गया है।

रस का व्युत्पत्तिपरक अर्थ—संस्कृत के आचार्यों के द्वारा 'रस्यते इति रस:' कहा गया है। उपनिषदों में कहा गया है—'रस: सार: चिदानन्दप्रकाश:' अर्थात् रस का सार चिदानन्दप्रकाश की उपलब्धि है। डॉ. सकरने के अनुसार—''जिस प्रकार योगी उस चिदानन्द प्रकाश का अपनी आत्मा में सहज साक्षात्कार कर पूर्णत: तन्मय होकर ब्रह्मानन्द का अनुभव करता है उसी प्रकार सहृदय भी अपने मानस में नाटक या काव्य के सौन्दर्य का सहज साक्षात्कार कर काव्यानन्द का अनुभव करता है।

रस- स्वरूप—सुख- दु:खात्मक किसी भी प्रकार के दृश्यावलोकन, काव्य या साहित्य के पठन- श्रवण से द्रवीभूत होकर पाठक एवं श्रोता के मन में जो एक विशेष प्रकार की अनिर्वचनीय अदृश्य या अमूर्त अनुभूति सी स्वत: प्रकाशित हो जाया करती है, उसी का नाम रस है। उसका कोई मूर्त या साकार रूप नहीं है। उसकी अनुभूति के क्षण में व्यक्ति की मनोदशा और चेहरे के हाव- भाव में एक प्रकार का स्वाभाविक परिवर्तन आ जाया करता है। उसे स्थिति में अनायास निकल पड़ने वाले आह! ओह! वाह! अरे! आदि भावों के व्यंजक शब्द ही रस की अभिव्यक्ति करते हैं।

वास्तव में रस का स्वरूप और स्रोत प्राय: प्रत्येक व्यक्ति के भीतर ही समाया रहता है। वह बाहर से आरोपित की जाने वाली कोई वस्तु नहीं है। यदि हमारे भीतर रस रूप की अनुभूति की क्षमता नहीं होगी तो कोई भी जागतिक स्थिति हमें प्रभावित नहीं कर पायेगी। अनुभूति के क्षण में हमारी अनेकविध चेष्टाएँ ही रस- स्वरूप का निर्माण करती हैं। हमारे आचार्यों ने रस की निष्पत्ति के विषय में लिखा है—

''विभावानुभाव संचारि संयोगाद्रसनिष्पत्ति'' अर्थात् विभाव, अनुभाव तथा सचारी भावों से व्यक्त हुआ स्थायी भाव ही रस का रूप धारण करता है। तात्पर्य यह है कि स्थायी भाव ही उदबुद्ध होने पर रस कहलाता है। इसके उद्बोधक विभाव, अनुभाव और संचारी भाव हैं। अत: रस की परिभाषा या स्वरूप का वर्णन इन शब्दों में किया जा सकता है।

जिस प्रकार नाना प्रकार के व्यजनों में स्वाद पृथक्- पृथक् होता है उसी प्रकार जीवन में बनने वाले भाव पृथक्- पृथक् होते हैं। ये भाव हैं—हर्ष, शोक, सुख, दु:ख, करुणा, भय, विस्मयादि भाव, जो मनुष्य में स्थायी रूप से विद्यमान रहते हैं। भरत मुनि के मतानुसार वास्तव में रस एक भाव मूल कलात्मक स्थिति है अत: वह अनुभूति है। वह कवि निबद्ध विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के संयोग से स्थायी भाव को उद्बुद्ध कर देती है। उसकी जागृति से जो अनुभूति होती है, सुख दु:खादि का मन जो अनुभव करने लगता है, उसकी संपृक्त स्थिति ही रस है। उक्त सूत्र में एक शब्द है संयोग, दूसरा है निष्पत्ति। विभावादि का संयोग किस में होता है, रस की उत्पत्ति होती है या अनुभूति होती है? आचार्य भरत के इन दो शब्दों को लेकर विद्वानों ने अपने मत स्थापित किए हैं। इनमें भट्टलोल्लट, शंकुक, भट्ट नायक और अभिनव गुप्त आदि प्रमुख हैं। इन आचार्यों का प्रमुख प्रश्न है कि रस निष्पत्ति कहाँ होती है?

आचार्य भरत ने रस का आश्रय नट अथवा रंगमंच को ही स्वीकार किया है। वहीं रस सृष्टि होती है और सहृदय पाठक या दर्शक

उसका आस्वादन करते हैं।

भरत रस को आस्वाद्य मानते हैं। उनका स्पष्ट मत है कि नट के अनुभवों द्वारा उपेत नट आदि के द्वारा प्रदर्शित स्थायी भाव ही रस है। इस प्रकार आचार्य भरत के मत में संयोग का अर्थ हुआ विभाव अनुभाव और संचारी भावों का स्थायी भाव के साथ संयोग, जबकि निष्पत्ति का अर्थ हुआ इन सबसे विनिर्मित होने वाला रस। इन दोनों क्रियाओं के कर्त्ता मंच पर हुआ करते हैं, अत: उन्हीं में रस निष्पत्ति होती है। रस की अनुभूति भी वे ही करते हैं और उन्हीं के माध्यम से प्रेषकों को भी रस की आस्वाद्य अनुभूति हुआ करती है।

भट्ट लोल्लट के अनुसार—इन्होंने 'निष्पत्ति' का अर्थ 'उत्पत्ति' किया है और 'संयोग' का अर्थ सम्बन्ध किया है। इसलिए इनके मत में रतिभाव नायिका आदि (आलम्बन विभाव) द्वारा उत्पन्न होकर, उपवन आदि (उद्दीपन विभावों) द्वारा उद्दीप्त होकर (आलिंगन, कटाक्ष) आदि अनुभावों द्वारा अनुभूत एवं औत्सुक्य आदि संचारी भावों के द्वारा पुष्ट होकर रस रूप में परिस्थितियाँ उत्पन्न हुआ करती हैं। यह उत्पत्ति नट या सामाजिक के हृदय में न होकर राम, दुष्यन्त आदि मूल पात्रों में होती है। वे ही रस की स्थिति का अनुभव कर पाते हैं। अभिनय के समय उस रस का आरोप नट आदि पात्रों पर हो जाया करता है। तात्पर्य यह है कि रस मूल पात्र में ही स्थित रहता है। नट तो मात्र उसका प्रदर्शन करते हैं। आरोप के कारण प्रेक्षक आनन्दित होते हैं।'' विभाव से रस उत्पन्न हुआ करता है, अत: विभाव और रस में उत्पाद्य-उत्पादक सम्बन्ध है। व्यभिचारी भाव और रस में पोष्य-पोषक सम्बन्ध है क्योंकि व्यभिचारी भाव रस का पोषण करते हैं। अनुभाव रस प्रतीति के साधन हैं। इन्हीं के द्वारा सहृदय प्रेक्षकों को भावानुभूति या रसानुभूति होती है।

आचार्य शंकुक का मत—इन्होंने भट्ट लोल्लट के मत का सर्वप्रथम खण्डन किया और अपने मत 'अनुमितिवाद' की स्थापना की। इससे भरत के सूत्र को एक नया आयाम प्राप्त हुआ। इनके अनुसार विभाव, अनुभाव और संचारी भाव रस की अनुमिति उसी प्रकार करते हैं जैसे जहाँ-जहाँ धुँआ रहता है वहाँ आग भी रहती है। इस बात का अनुमान (अनुमिति) हो जाता है। उसी प्रकार नटादि में रामदिपात्रों के जैसे अनुभाव आदि लक्षित करके हम वहाँ रस की स्थिति का अनुमान कर लिया करते हैं। इस प्रकार विभावादि और रस में उत्पादक-उत्पाद्य भाव न रहकर अनुमापक-अनुमाप्य सम्बन्ध रहता है। अत: आचार्य शंकुक के मत में विभाव, अनुभाव और संचारी भावों से अनुमाप्य-अनुमापक भाव से रस की अनुमिति होती है। अनुमान की प्रमुखता के कारण ही आचार्य शंकुक का मत अनुमिति नाम से अभिहित किया जाता है। सारांश यह है कि शंकुक के अनुसार स्थायी भाव की मूल एवं वास्तविक अनुभूति तो ऐतिहासिक पात्रों में ही रहा करती है परन्तु अभिनेता आदि मंच पर उनका अभिनय इतनी कुशलता से किया करते हैं कि 'चित्र-तुरग न्याय' से उन्हें ही वास्तविक मानकर दर्शक अभिनय का रसास्वादन करते हुए मूलभाव का अनुभव करते हैं। नायक-नायिका उस सरलभाव का अनुभव करते हैं जबकि प्रेक्षक (दर्शक) उसका अनुमान करते हैं। अत: इन्होंने अनुकरण और अनुमान पर बल दिया है। अनुकरण तो मात्र अनुभावों और वेश-भूषा का ही हुआ करता है। आचार्य शंकुक के मत की इन्हीं सीमाओं के कारण इस मत को विशेष मान्यता नहीं मिल पायी।

भट्टनायक के अनुसार—इन्होंने माना है कि विभावादि रस के भोजक होते हैं, रस उनका भोग होता है। रस की उत्पत्ति या प्रतीति नहीं होती। अभिव्यक्ति भी नहीं होती क्योंकि अनुभव और स्मृति के अभाव में रस की प्रतीति सम्भव हो ही नहीं सकती। इस दृष्टि से भट्टनायक ने निष्पत्ति शब्द का अर्थ लिया है 'भुक्ति' और 'रस-भुक्ति' से। इस प्रकार उन्होंने रस भुक्ति की क्रमश: तीन शक्तियाँ मानी हैं—अभिधा, भावकत्व और भोजकत्व। अभिधा नाटक या काव्य के सामान्य अर्थ का ज्ञान कराती है। भावकत्व व्यापार से दर्शक या पाठक रस भाव का साधारणीकरण कर लेता है। यह साधारणीकृत भाव ही अनविल रस हुआ करता है। अत: इसके पश्चात् ही रस का भोग या भोजकत्व होता है। इनके मत की प्रमुख विशेषता यह है कि रसास्वाद के स्वरूप की तात्विक व्याख्या इन्होंने ही की है। साधारणीकरण का सिद्धान्त इनके मत की सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि है।

अभिनवगुप्त के मतानुसार—यह व्यंजनावादी आचार्य थे। इन्होंने भोजकत्व, भावकत्व, व्यापारों को मिथ्या सिद्ध करके रस की व्यंजना को प्रतिष्ठापित किया है। इनकी दृष्टि में संयोग का अर्थ है ध्वनित या व्यंजित करना। 'निष्पत्ति' का अर्थ है आनन्दरूप में प्रकाशित होना। विभाव, अनुभाव संचारी भाव सभी रस के व्यंजक हैं, उसे ध्वनित करते हैं। इस प्रकार विभावादि तो व्यंजक भाव हैं, जबकि रस उनका व्यंग्य भाव है। अत: रस की प्रतीति सामाजिक की आत्मा ही करती है। ये भाव उसकी आत्मा में विद्यमान रहा करते हैं और आस्वाद्य भावों की प्रतीत ही रस है।

रस की स्थिति प्रत्येक व्यक्ति के भीतर रहा करती है। विशेष परिस्थितियों में विशेष भाव जागृत होकर उसे अपने भीतर जिस वस्तु की सरस सुन्दर अनुभूति कराता है वही रस है। उसी अनुभूति के सरस-सौन्दर्य से ही हमें हर्षादि की प्राप्ति होती है। अत: रस को

अभिव्यक्ति कहना ही उचित है। इस दृष्टि से उन्होंने 'संयोग' का अर्थ व्यंग्य भाव माना है। अत: उनके अनुसार—''विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के साहचर्य से व्यंग्य-व्यंजक भाव से ही रस की अभिव्यक्ति होती है।'' वास्तव में साहित्य में अभिव्यक्ति ही प्रमुख होती है। रस निष्पत्ति के सम्बन्ध इनके इस विश्लेषण को संगत माना जाता है—प्रत्येक प्राणी में स्थायी भाव रहते हैं, वही स्थिति विशेष में पहुँच कर रस रूप में या अनुभूति के रूप में व्यक्त हो जाया करते हैं। मूल पात्रों में तो रसात्मक स्थिति होती है, नट नटादि में भी वह रहा करती है तभी तो वे सजीव अभिनय कर पाते हैं। कवि या लेखक में रसात्मक स्थिति होती है तो वह सजीव रचना करता है, सहृदय में रसात्मक स्थिति होती है तो वह सब-कुछ ग्रहण करता है।

रस के भेद अथवा प्रधान रस और उसके अंग—मुख्य रूप से रसों की संख्या 9 मानी गई है। शृंगार रस, हास्य रस, वीर रस, भयानक रस, करुण रस, वीभत्स रस, अद्भुत रस, रौद्र रस और शान्त रस। नीचे प्रत्येक रस के स्थायी भाव आलम्बन व उद्दीपन विभाव, अनुभाव, संचारी भाव आदि का परिचय दिया जा रहा है।

1. शृंगार रस—

यह दो प्रकार का होता है—संयोग शृंगार और विप्रलम्भ शृंगार।

(क) संयोग शृंगार—

स्थायीभावा—रति

आश्रय एवं आलम्बन—नायक-नायिका।

उद्दीपन—(परकीय) बसन्त, चन्द्र, एकान्त, केलि, कुंज, उद्यान, कोकिल, भ्रमर, पुष्प, सखी, सखा, चित्रपट-अवलोकन (स्वकीय) सौन्दर्य, उत्कृष्ट गुण, समानवय।

अनुभाव—नायक-नायिका का परस्पर दर्शन, कटाक्ष-विमोचन, विवर्ण।

संचारी भाव—उन्माद, ब्रीड़ा, हर्ष, उत्सुकता आदि।

उदाहरण—'दूलह श्री रघुनाथ बने' आदि।

(ख) विप्रलम्भ शृंगार—

भेद—पूर्णराग, मान, प्रवास और करुण।

स्थायीभाव—रति।

आश्रय आलम्बन—नायक-नायिका।

उद्दीपन—(परकीय) बसन्त, उद्यान, कोकिल, सखी, शैया (स्वकीय), सौन्दर्य, उत्कृष्ट, गुण, समानवय।

अनुभाव—अश्रु विमोचन, वैवर्ण्य।

संचारीभाव—उग्रता, मरण।

दस काम दशायें—अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, गुणकथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और धृति।

उदाहरण—श्री मैथिलीशरण गुप्त का 'यशोधरा' काव्य विप्रलम्भ शृंगार से परिपूर्ण है।

2. हास्य रस

स्थायी भाव—हास

आलम्बन—भद्दा वेश, भद्दी आकृति।

उद्दीपन—विकृत चेष्ट आदि।

अनुभाव—हँसना, मुँह खोलना आदि।

संचारीभाव—निद्रा, हर्ष आदि।

भेद—स्मित, हसित, विहसित, अवहसित, अपहसित, अति हसित।

उदाहरण—विनोद शंकर व्यास की कविता 'आराम करो आराम करो'।

3. वीर रस

स्थायी भाव—उत्साह।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

आलम्बन—शत्रु, प्रतिद्वन्द्वी, दीनयाचक, तीर्थ, पर्व आदि।
उद्दीपन—विपक्षी का उत्साह प्रदर्शन, ओजपूर्ण वचन, दु:खावस्था, याचक की दीनावस्था।
अनुभाव—रोमाँच, गर्व युक्त वाणी, आदर सत्कार, दयापूर्ण शब्द।
संचारी भाव—उत्कण्ठा, हर्ष, गर्व, धृति, स्मृति, असूया, आवेग, दया।
भेद—युद्धवीर, दानवीर, दयावीर, धर्मवीर।
उदाहरण—

''हे सारथे, हैं द्रोण क्या देवेन्द्र भी आकर अड़ें।
यह खेल क्षत्रिय बालकों का व्यूह भेदन कर लड़ें।''

4. भयानक रस
स्थायी भाव—भय
आलम्बन—अन्धेरा, सिंह, सर्प, व्याघ्र, हिंसक प्राणी, श्मशान, भूत-प्रेत की आशंका, बलवान शत्रु, निर्जन स्थान।
उद्दीपन—असहाय अवस्था, हिंसक जीव की चेष्टा, निर्जनता, विस्मयोत्पादक ध्वनि।
अनुभाव—रोमांच होना, पसीना आना, भागना, स्वर-भंग होना, मूर्च्छा आदि।
संचारी भाव—आवेग, चिन्ता, त्रास, मृत्यु-शंका आदि।
उदाहरण—'यहीं बड़ा एक भीषण व्याल था
स्वरूप जो था विकराल काल का।

5. करुण रस
स्थायीभाव—शोक
आलम्बन—मृत बन्धुजन, प्रियजनों का विछोह, विनष्ट ऐश्वर्य आदि।
उद्दीपन—प्रियजन का मृत शरीर, उसके गुण, कार्य और रूप का स्मरण, आभूषण, वस्त्र, चित्र-दर्शन आदि।
अनुभाव—रोना, प्रलाप करना, भाग्य को दोष देना, मूर्च्छित हो जाना आदि।
संचारी भाव—मोह, अपस्मार, व्याधि, चिन्ता, ग्लानि, विषाद, उन्माद, दैन्य, जड़ता, अश्रु, स्वर-भेद।
उदाहरण—रोहिताश्व के मरण पर उसकी माता शैव्या का विलाप।

6. वीभत्स रस
स्थायी भाव—घृणा
आलम्बन—घृणा को उत्पन्न करने वाली वस्तुएँ।
उद्दीपन—माँस आदि का सड़ना, उनसे दुर्गन्ध आना, कुत्तों, सियारों आदि का माँस के लिए लड़ना, मक्खियों का भिनभिनाना आदि।
अनुभाव—थूकना, मुँह फेरना, नाक सिकोड़ना, रोमाँच होना, आँख, नाक का बन्द कर लेना आदि।
संचारीभाव—मूर्च्छा, व्याधि, जड़ता, चिन्ता आदि।
उदाहरण—सिर पर बैठ्यो काग, आँख दोउ खात निकारत।
खींचत जीभहि स्यार, अतिहि आनन्द उर धारत।

7. अद्भुत रस
स्थायीभाव—विस्मय।
आलम्बन—अद्भुत दृश्य, असाधारण वस्तु, अलौकिक कार्य।
उद्दीपन—विचित्र दृश्यों का वर्णन, देखना व सुनना।
अनुभाव—रोमाँच, स्तम्भ, स्वरभंग, किंकर्त्तव्य-विमूढ़ता।
संचारीभाव—हर्ष, वितर्क, जड़ता, औत्सुक्य, आवेग आदि।
उदाहरण—देख यशोदा शिशु के मुख में, सकल विश्व की माया,

क्षण भर को वह बनी अचेतन, हिल न सकी कोमल काया।

8. रौद्र रस

स्थायी भाव—क्रोध।

आलम्बन—अपराधी शत्रु या अन्यायी व्यक्ति की चेष्टाएँ व क्रियाकलाप।

उद्दीपन—शत्रु या अन्यायी व्यक्ति के अनुचित कार्य, तिरस्कार, गर्वोक्ति आदि।

अनुभाव—मुख और नेत्रों का लाल हो जाना, दाँत और होठों का चबाना, गर्जन, तर्जन, कम्पन आदि।

संचारीभाव—अमर्ष, गर्व, आवेश, क्रूरता, असूया, श्रम, चपलता आदि।

उदाहरण—शठ, शीघ्र बता मुझको अभी, किसने धनु खण्डन किया?
तो परशुराम मैं हूँ नहीं, यदि उसको दण्ड न दिया।

9. शान्त रस

स्थायी भाव—निर्वेद, शम।

आलम्बन—संसार की असारता, पाप-पुण्य का ज्ञान।

उद्दीपन—धर्मोपदेश, तीर्थ-भ्रमण, वेदान्त अध्ययन, सत्संग।

अनुभाव—रोमाँच, शत्रु-मित्र में समभाव, गृह-त्याग, अश्रुपात, विषयों में सरुचि आदि।

संचारीभाव—स्मृति, निर्वेद, हर्षद्व असूया, ग्लानि, दैन्य आदि।

उदाहरण—

इस मध्य निशा में ओ अभाग,
तुझ को तेरे ही अर्थ त्याग—
जाता हूँ मैं यह वीत राग।
दयनीय ठहर तू झीण क्षाण,
ओ क्षण भंगुर भव राम-रोम।

प्रश्न- 2. रस- सामग्री में स्थायी भाव, संचारी भाव तथा अनुभाव की परिभाषा और उदाहरण दीजिए।

अथवा

रस की परिभाषा देकर उसके प्रमुख अवयवों का परिचय दीजिए।

अथवा

स्थायीभाव और संचारी भाव का अन्तर स्पष्ट करते हुए संचारी भावों का नामोल्लेख कीजिए।

उत्तर—विभाव, अनुभाव तथा संचारी भावों से व्यक्त हुआ स्थायी भाव ही रस रूप धारण करता है अर्थात् जब स्थायी भाव ही जाग्रत, उद्दीप्त हो जाता है तो वह रस कहलाता है। इसके उद्‌बोधक हैं विभाव, अनुभाव और संचारी भाव। इसलिए रस को समझने के लिए स्थायी भाव आदि को अलग-अलग समझना आवश्यक है।

भाव—निर्विकार चित्त में आने वाले पहले विकार को भाव कहते हैं। इसकी उत्पत्ति, हर्ष, शोकादि के कारणों के योग से होती है। भाव एक प्रकार की मानसिक तरंगें हैं, जो कारण एवं परिस्थिति के अनुसार मन में उदित एवं अस्त होती रहती हैं। इसलिए हम किसी मनुष्य को हर समय प्रेम, घृणा, शोक, क्रोध आदि की अभिव्यक्ति करते हुए नहीं पाते। समय एवं परिस्थिति के अनुसार ही उसके हृदय में उपर्युक्त भावों की जागृति होती है।

मनुष्य का हृदय समुद्र के समान है जिसका विश्लेषण करना सहज काम नहीं। इसी तरह हृदय से उत्पन्न होने वाले भावों का पूरा-पूरा विवरण प्राप्त करना असम्भव है। हमारे साहित्याचार्यों ने भावों को दो भागों में विभक्त किया है—स्थायी और संचारी। स्थायी भावों की कोटि में केवल वही भाव लिये जाते हैं, जो मनुष्य के अन्तस्थल में स्थायी रूप से सुप्त रहते हैं और कारण सामने होने पर उद्‌बुद्ध हो जाते हैं। संचारी भाव स्थायी भावों के साथ ही उत्पन्न होते हैं। ये उत्पन्न एवं नष्ट होते रहते हैं। ये पानी के बुलबुले की तरह क्षण भंगुर होते हैं।

Jai Narain Vyas University (Deemed University) Ladnun

स्थायी भाव का उद्बुद्ध होना रस के विकास की पहली सीढ़ी है।

स्थायी भाव—काव्य में प्रधान स्थायी भाव दस माने गए हैं। रति (प्रेम), हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, विस्मय, निर्वेद और वात्सल्य। स्थायीभाव मनुष्य के हृदय में सुप्त अवस्था में विद्यमान रहते हैं। ये ही भाव अवसर पाकर जाग्रत हो जाते हैं। जब हम रो को नंगे पाँव वनवासियों के वेष में जंगल की धूल छानते देखते हैं तो हमारा सोया हुआ स्थायीभाव (शोक) जाग पड़ता है। हम भी ग्रामवासियों की तरह दु:खी होते हैं। हमारे हृदय में इस प्रकार शोक का स्वत: उद्रेक, कारण और परिस्थिति के अनुकूल ही होता है।

विभाव—विभाव स्थायी भावों को जागृत करने वाला साधन है। विभाव प्राय: मूर्त पदार्थ होते हैं जो बाह्य इन्द्रियों द्वारा उपभोग किये जाते हैं। स्थायी भावों को यही गहरी नींद से जगाते हैं। विभाव शब्द का अर्थ भी यही है जो विशेष रूप से जगा दें। विभाव को स्थायी भाव का कारण, निमित्त अथवा हेतु भी कहा जा सकता है। जिसके प्रति ये भाव जागृत होते हैं उसे आलम्बन विभाव कहते हैं। इसी तरह जिस व्यक्ति के हृदय में भाव जागृत होते हैं उसे आश्रय कहते हैं। जैसे—तपोवन में शकुन्तला को देखकर दुष्यन्त प्रेम पाश में बँध जाता है। ऐसी अवस्था में शकुन्तला प्रेम भाव का आलम्बन है और दुष्यन्त आश्रय। शकुन्तला के कारण ही दुष्यन्त रूप (आश्रय) के हृदय में रति या प्रेम रूपी स्थायी भाव का जागरण हुआ।

विभाव के भेद—विभाग दो प्रकार के होते हैं। आलम्बन विभाव और उद्दीपन विभाव। आलम्बन का अर्थ है सहारा। जिसका सहारा प्राप्त करके रति आदि स्थायी भाव जागृत होते हैं, उसे 'आलम्बन विभाव' कहते हैं। जैसे—दुष्यन्त के स्थायी भाव को जागत करने का कारण शकुन्तला है। इसलिए शकुन्तला आलम्बन विभाव हुई। इसी प्रकार सीता बनवास गमन में लक्ष्मण के हृदय में स्थायी भाव शोक को जगा देने वाली सीता आलम्बन विभाव है।

उद्दीपन विभाव—आलम्बन विभाव द्वारा जगाये हुए स्थाई भाव को तीव्र करने वाले साधन 'उद्दीपन विभाव' कहलाते हैं। ये स्थायी भावों को उत्तेजित करने का कार्य करते हैं। सुरभित एवं एकांत तपोवन में शकुन्तला को देखकर दुष्यन्त के हृदय में रति स्थायी भाव का उद्बोधन हुआ उसका कारण है शकुन्तला। परन्तु उस रति स्थायी भाव को एकांत सुरभित तपोवन ने ही तीव्रता प्रदान की है। इसलिए वह एकांत तपोवन उद्दीपन हुआ। सीता वनवास में लक्ष्मण के हृदय में शोकरूपी स्थायी भाव को उद्दीपन करने वाला भयानक वन ही उद्दीपन है। उद्दीपन विभाव अनेक होते हैं। उनकी गिनती सम्भव नहीं है। इनका सम्बन्ध बाह्य प्रकृति से होता है। आलम्बन की चेष्टाएँ भी उद्दीपन होती है, जैसे नायिका का मुस्कराना।

अनुभाव—आलम्बन विभाव से जागृत और उद्दीपन विभाव सशक्ति सम्पन्न स्थायी भाव की बाह्य-प्रक्रिया 'अनुभाव' कहलाती है। ये भावों के कार्य हैं और उनका अनुभव कराने के कारण अनुभाव कहलाते हैं। ये भाव के बाद होने से ही अनु-भाव कहलाते हैं। अनुभाव आश्रय की चेष्टाएँ हैं, जिन्हें देखकर हमें उसके मनोविकारों का यथार्थ बोध होता है। उद्दीपन की सहायता से वह (स्थायी भाव) प्रदीप्त होता है। जब ऐसी अवस्था होती है तो आश्रय के शरीर में कुछ ऐसी चेष्टाएँ व्यक्त होने लगती हैं जिनमें हमें विदित हो जाता है कि स्थायी भाव प्रदीप्त हो रहा है। भिन्न-भिन्न स्थायी भावों के अनुसार शारीरिक चेष्टाएँ भी भिन्न-भिन्न होती हैं। जैसे प्रेम या रति स्थायी भाव के उद्दीप्त होने पर शरीर में रोमांच, मुस्कराना, आलम्बन की ओर देखते रहना इत्यादि चेष्टाएँ स्वयं व्यक्त हो जाती हैं जिन्हें प्रत्येक दर्शक भली-भाँति समझ लेता है। ऐसे ही भय स्थायी भाव के प्रदीप्त होने पर शरीर में कंपन, चेहरा पीला पड़ जाना इत्यादि चेष्टाएँ स्वयं व्यक्त हो जाती हैं जिन्हें प्रत्येक दर्शक भली-भाँति समझ लेता है। ऐसे ही भय स्थायी भाव के प्रदीप्त होने पर शरीर में कंपन, चेहरा पीला पड़ जाना आदि चेष्टाएँ प्रकट होने लगती हैं। अनुभवों की संख्या अपरिमित है। जिस प्रकार आलम्बन अनेक हैं या भावों के उद्बोधन के फलस्वरूप उत्पन्न चेष्टाएँ अनन्त हैं उसी तरह उनका परिणमन भी सम्भव नहीं।

अनुभाव के भेद—अनुभाव दो प्रकार के होते हैं—कायिक और सात्त्विक।

कायिक अनुभाव—हाथ पटकना, संकेत करना आदि चेष्टाएँ कायिक अनुभाव हैं। इनको यत्नज भी कहते हैं। कायिक अनुभावों की अभिव्यक्ति का उदाहरण—

बहुरि बदन- बिधु अंचल ढांकी।
पियतन चितै भौंह करि बांकी॥
खंजन मंजु तिरीछै नैननि।
निज पति कहेउ तिनहिं सिय सैननि॥

यहाँ पर सीताजी का अँचल से मुख ढकना, मनोहारी चितन से रामचन्द्र जी को देखना, तिरछे नेत्रों से वन की स्त्रियों को पति का

परिचय देना आदि सब कायिक अनुभाव हैं।

सात्विक अनुभाव—इनको अयत्नज भी कहते हैं। ये सत्त्व से उत्पन्न होकर शरीर के यंत्रों पर अंकित हो जाते हैं। सत्त्व अन्त:करण को कहते हैं। सात्विक अनुभाव अकृत्रिम होते हैं और आश्रय के शरीर में स्वयं उत्पन्न हो जाते हैं। आश्रय द्वारा किसी तरह भी इनको रोका नहीं जा सकता—उदाहरण देखिए—

कहिंन सकत कुछ लाज तें, अकथ अपनी बात।
ज्यों-ज्यों निशि नियरात हैं, त्यों-त्यों तिय पियरात॥

यहाँ पर नायिका का 'पीला पड़ जाना' अकृत्रिम सात्विक अनुभाव है। यह विकार स्वयं उत्पन्न हुआ है। आश्रय का इसमें कोई यत्न नहीं है। सात्त्विक अनुभाव आठ प्रकार के होते हैं—

1. स्वेद,	2. स्तम्भ,	3. रोमांच,	4. स्वरभंग,
5. कम्प,	6. विवर्णता,	7. अश्रु,	8. मूर्च्छा।

स्वेद—(पसीना आना) क्रोध, भय, दु:ख, अनुराग, श्रम आदि से इसकी उत्पत्ति होती है।

स्तम्भ—(अंगों की जकड़न) हर्ष, भय, लज्जा, विस्मय आदि से उत्पन्न होकर यह शरीर के अंगों की गति को अवरुद्ध कर देता है।

रोमांच—(रोंगटे खड़े होना) यह हर्ष, श्रम, शीत, क्रोधादि से उत्पन्न होता है।

स्वरभंग—(स्वर का टूट जाना) यह भय, क्रोध, हर्ष, मद आदि से उत्पन्न होता है।

कम्प—(काँपना) क्रोध, आनन्द, शीत तथा भय से इसकी उत्पत्ति होती है।

विवर्णता—(चेहरे पर हवाइयाँ उड़ना) क्रोध, भय, काम, शीत, तप आदि से यह उत्पन्न होता है।

अश्रु—(आँसू बहना) आनन्द, शोक, भय आदि से इनकी उत्पत्ति होती है।

मूर्च्छा—(होश गुम होना) काम, मोह, मद आदि से इसकी उत्पत्ति होती है।

संचारी भाव—स्थायी भावों के साथ उत्पन्न होने वाले क्षणिक मनोविकार ही संचारी भाव कहलाते हैं। इनका उदय केवल स्थायी भावों को पुष्ट करने के लिए होता है। जिस प्रकार शोक स्थायी भाव के साथ उत्पन्न होने वाले संचारी भाव- प्रेम आदि स्थाईभावों में लज्जा आदि संचारी भाव तरंगित होते रहते हैं। यदि स्थायी भावों को जल मान लिया जाय तो संचार भाव बुदबुदे कहे जायेंगे।

इनका कार्य केवल स्थायी भावों की परिपुष्टि करना है। संचारी भावों की पूरी- पूरी संख्या जानना कठिन है। जिस प्रकार पानी में उठने वाले बुदबुदे अनन्त होते हैं, इसी तरह ये भी गिने नहीं जा सकते। फिर भी इनमें प्रमुखों की संख्या 33 मानी जाती है—

1. निर्वेद	2. स्मृति	3. चिन्ता	4. ग्लानि	5. शंका	6. दीनता
7. असूया	8. श्रम	9. मोह	10. मद	11. आलस्य	12. चपलता
13. ब्रीड़ा	14. गर्व	15. उग्रता	16. हर्ष	17. अपस्मार	18. वितर्क
19. जड़ता	20. स्वप्न	21. उन्माद	22. धृति	23. व्याधि	24. अमर्ष
25. आवेग	26. विबोध	27. मृत्यु	28. औत्सुक्य	29. अविहत्थ	30. निद्रा
31. त्रास	32. विषाद	33. मति।			

संचारी भावों का सम्बन्ध अन्त:प्रकृति से होता है।

प्रश्न- 3. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए—

1. रसाभास **2. भावाभास।**

उत्तर—1. रसाभास—जहाँ वर्णन में औचित्य के अभाव के कारण रस का पूर्ण परिपाक न हो सके, वहाँ रसाभास होता है। औचित्य से अभिप्राय धर्म, सामाजिक व्यवस्था, लोक मर्यादा आदि के अनुकूल चलने से है। इनमें से किसी एक की अवहेलना भी अनुचित समझी जायेगी।

उदाहरण के लिए—पिता के प्रति क्रोध, महात्माओं से हास्य, पर स्त्री या पर पुरुष में रति आदि औचित्य की सीमा का उल्लंघन होने के कारण रस-व्यंजक होते हुए भी रसाभास समझे जायेंगे। प्रत्येक रस का आभास होता है। यह रसाभास के कुछ रूपों को बताया जा रहा है—

श्रृंगार—पति-पत्नी से भिन्न स्त्री-पुरुषों का प्रेम, वेश्या में रुचि, पुरुष और स्त्री दोनों में से एक का उदासीन होना, किसी नीच पात्र से प्रेम, अनेक का एक से अथवा एक का अनेक से प्रेम आदि वर्णन श्रृंगार रसाभास के उदाहरण होंगे—

केसव केसनि अस-करि, जस अरिहु न कराहिं।
चन्द्र वदनी मृगलोचनि, बाबा कहि-कहि जहिं॥

यहाँ कवि की परस्त्रियों में अनुरक्ति का वर्णन है। दूसरे, एक पुरुष अनेक स्त्रियों के प्रति प्रेम प्रकट करता है। इसके अतिरिक्त प्रेम भी एकांगी है, अतः यहाँ श्रृंगार रसाभास है।

हास्य—गुरु, पिता, बड़ा भाई और वृद्धों से किए गए उपहास का वर्णन हास्य रसाभास होगा।

करुण—संसार से विरक्त व्यक्ति में करुणा उत्पन्न होने का वर्णन करुण रसाभास का उदाहरण होगा।

रौद्र—गुरु, पिता, बड़ा भाई और वृद्धों पर किए गए क्रोध का वर्णन रौद्र रसाभास होगा।

वीर—किसी नीच पात्र के उत्साह का वर्णन वीर रसाभास है।

भयानक—उच्च पात्र में भय का संचार भयानक रसाभास है।

वीभत्स—यज्ञ के बलि पशु आदि में घृणा होने से वीभत्स-रसाभास होगा।

अद्भुत—साधारण-सी बात पर आश्चर्य प्रकट होने का वर्णन अद्भुत रसाभास कहलायेगा।

2. भावाभास—

रसोद्रेक में जिस प्रकार धर्म, लोक, मर्यादा-सामाजिक व्यवस्था आदि का ध्यान रखना पड़ता है, उसी प्रकार भावों के वर्णन में भी औचित्य का पालन आवश्यक है। भाव के किसी अंश में भी औचित्य की झलक आ जाने से भावाभास हो जाता है। भावाभास काव्य के सौन्दर्य के लिए हानिकारक है। इससे काव्य में अस्वाभाविकता आ जाती है और वर्णन का प्रभाव नष्ट हो जाता है।

उदाहरण—

दरपन में निज छाँह संग, लखि प्रीतम की छाँह।
खरी ललाई रोस की, ल्याई आँखियन माँह॥

यहाँ क्रोध का भाव वर्णित है। क्रोध प्रियतम के प्रति प्रकट किया गया है। अतः लोक-मर्यादा के अनुकूल न होने के कारण अपनी कोटि से गिरकर भावाभास हो गया है।

प्रश्न- 4. रस के भेदों का उल्लेख करते हुए उसके लक्षण व उदाहरणों को स्पष्ट लिखिए।

अथवा

रस के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए शान्त रस अथवा वीर रस के कुछ उदाहरण प्रस्तुत कीजिए।

उत्तर—साहित्यकारों ने दस स्थायी भाव माने हैं। इन्हीं की परिपक्वता रस कहलाता है। इसलिए जितने स्थायी भाव हैं उतने ही रस हैं। क्रमानुसार उनका नाम प्रस्तुत है—

स्थायी भाव—1. रति, 2. हास, 3. शोक, 4. क्रोध, 5. उत्साह, 6. भय, 7. जुगुप्सा, 8. विस्मय, 9. निर्वेद, 10. वात्सल्य।

रस—1. श्रृंगार, 2. हास्य, 3. करुण, 4. रौद्र, 5. वीर, 6. भयानक, 7. वीभत्स, 8. अद्भुत, 9. शान्त, 10. वात्सल (बात्सल)।

'श्रृंगार रस'

श्रृंगार रस रसों में रस-शिरोमणि कहलाता है। भरत आदि मुनियों ने इसे रसराज माना है। भरतमुनि के अनुसार इसकी परिभाषा इस प्रकार है—'जो कुछ लोक में पवित्र, उत्तम, उज्ज्वल एवं दर्शनीय है, वह श्रृंगार रस कहलाता है।' इसका आधार प्रेम है। जिस प्रकार प्रेम भावों में प्रमुख है उसी प्रकार श्रृंगार भी रसों में प्रमुख है। जीवन में प्रेम का स्थान सर्वोच्च है। एक अंग्रेजी विद्वान ने कहा है—'प्रेम

और जीवन एक ही अर्थ के द्योतक शब्द हैं। यहाँ प्रेम का तात्पर्य केवल शुद्ध दाम्पत्य प्रेम से है। विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के संयोग से अभिव्यक्त होने वाला दाम्पत्य रति स्थायी भाव शृंगार रस कहलाता है। अशुद्ध अवैध प्रेम शृंगार कभी नहीं बन सकता। शृंगार में मर्यादा का विशेष ध्यान रखा जाता है।

शृंगार के भेद—दो हैं। संयोग और वियोग (विप्रलम्भ)।

संयोग शृंगार—नायक और नायिका के परस्पर मिलन, प्रेमपूर्वक वार्तालाप, दर्शन, स्पर्श आदि का वर्णन शृंगार का संयोग पक्ष कहलाता है।

वियोग शृंगार—जब नायक नायिका परस्पर वियुक्त हों, वे इच्छा होने पर भी न मिल सकें, ऐसे प्रेम का वर्णन वियोग शृंगार कहलाता है। विप्रलम्भ और विरह भी इसी के पर्याय हैं।

संयोग शृंगार का उदाहरण—

एक पल मेरे प्रिया के दृग- पलक
थे उठे ऊपर, सहज नीचे गिरे।
चपलता ने इस विकम्पित पुलक से,
कह दिया मानो प्रणय- सम्बन्ध था॥

इस पद्य में नायक-नायिका के पारस्परिक रतिभाव का वर्णन है। यही रति स्थायी भाव है। आश्रय नायक, आलम्बन प्रिया, उद्दीपन प्रिया का सौन्दर्य, अनुभाव दृग पलकों का ऊपर उठना तथा संचारी भाव लज्जा है। इस प्रकार विभावादि से पुष्ट होकर यहाँ संयोग शृंगार रस की व्यंजना हुई है। वियोग शृंगार का उदाहरण—

शांति- स्थान महान कण्व मुनि के पुण्यस्याश्रमोद्यान में,
बाह्य ज्ञान विहीन लीन अति ही दुष्यन्त के ध्यान में,
बैठी मौन शकुन्तला सहज थी सौंदर्य में मोहती
मानो होकर चित्र में खचित- थी चित्त को मोहती।

इस उदाहरण में रति स्थायी भाव, दुष्यन्त आलम्बन, कण्वमुनि का शांत एकांत आश्रम उद्दीपन, शकुन्तला का मौन बैठना अनुभाव तथा चिन्ता आदि संचारी भाव हैं।

हास्य रस

किसी व्यक्ति या पदार्थ की असाधारण आकृति, विचित्र वेशभूषा अथवा चेष्टाओं को देखकर हृदय में जो विनोद का अनुभव होता है, उसी की प्रगाढ़ अवस्था हास्य रस कहलाती है। भरत मुनि ने हास्य रस की उत्पत्ति शृंगार से मानी है। वास्तव में हास्य रस का क्षेत्र अधिक विस्तृत है, इसलिए हास्य रस एक स्वतंत्र रस है। हास्य रस के वर्णन पाठकों या दर्शकों को प्रसन्न करते हैं। उनके स्वास्थ्य पर भी इसका अच्छा प्रभाव पड़ता है। हास्य में कोमलता और सहानुभूति अवश्य होनी चाहिए नहीं तो वह रस नहीं कहला सकता।

हास्य रस के छः भेद हैं—

1. स्मित—इसमें नेत्रों में कुछ चमक उत्पन्न होती है। ओंठ कुछ-कुछ हिलते हैं।

2. हसित—इसमें नेत्रों की चमक और ओंठ हिलने के साथ कुछ-कुछ दाँत भी दिखाई देते हैं।

3. विहसित—मुस्कुराहट के साथ-साथ यदि मधुर शब्दों का भी उच्चारण किया जाय तो इसे विहसित कहेंगे।

4. अवहसित—जोर की हँसी में जब कन्धे, सिर आदि भी हिलने लगते हैं तो इसे अवहसित कहते हैं।

5. अपहसित—इतनी जोर की हँसी, जिससे हँसने वाले की आँखों में आँसू निकल आये, अपहसित हास्य होता है।

6. अति हसित—इसमें जोर से हँसने के साथ-साथ हाथ-पैर भी पटके जाते हैं। अपहसित और अतिहसित निम्न कोटि का हास्य होता है। निम्न श्रेणी के पात्र ही इसे प्रयुक्त करते हैं। इसके अतिरिक्त अट्टहास भी एक प्रकार का हास्य ही है, जिसका अन्तर्भाव अतिहसित में होता है।

उदाहरण—

दामिनी दमक रही धन मांही। जिमि लीडर की मति थिर नाहीं।

बरसहित जलद भूमि नियराये। लीडर जिमि चन्दा धन पाये॥

आधुनिक युग में हास्यपरक रचनाओं का बाहुल्य है। इनमें सामाजिक तत्त्वों पर व्यंग्य किया जाता है। ऐसी कविताओं में व्यंग्यात्मक उक्तियाँ ही हास्य रस का आलम्बन रहती हैं।

करुण रस

प्रिय व्यक्ति या इष्ट वस्तु के नष्ट होने पर हृदय को जो पीड़ा होती है वह शोक कहलाता है। यह शोक ही करुण रस का स्थायी भाव है। वियोग-शृंगार में भी हृदय को पीड़ा पहुँचाने का वर्णन मिलता है किन्तु वहाँ पुनिर्मिलन की आशा बनी रहती है। इसलिए वहाँ करुण रस की अभिव्यक्ति नहीं हो सकती। करुण रस का अपना ही महत्त्व है। भवभूति तो करुण को ही रस मानते हैं—''एको रसः करुण एव।'' उनका कथन है।

उदाहरण—

अरे अमरता के चमकीले पुतलों! तेरे वे जयनाद।
काँप रहे हैं आज प्रतिध्वनि बनकर मानो दीन विषाद।
वे सब डूबे डूबा उनका विभव, बन गया पारावार।
उमड़ रहा है, देव- सुखों पर दुःख जलनिधि का नाद अपार।

कामायानी की इन पंक्तियों में बताया गया है कि प्रलय के कारण देवसंस्कृति ध्वस्त हो गई। देव संस्कृति का एक मात्र प्रतिनिधि मनु अपनी संस्कृति के विनाश पर शोक संतप्त होकर विलाप कर रहा है। इस पद्यांश में विनष्ट देवसंस्कृति करुण रस का आलम्बन, चारों ओर फैला हुआ प्रलयसागर उद्दीपन विभाव, मन की दयनीय स्थिति अनुभाव और स्मृति, आवेग संचारी भाव हैं।

रौद्र रस

शत्रु अथवा प्रतिपक्षी की अनुचित चेष्टाओं या उसके द्वारा किए गए अनिष्ट से उत्पन्न हृदय के क्रोध का वर्णन रौद्र-रस कहलाता है। गुरुजनों की निन्दा और देश, धर्मादि के अपमान को देखकर भी आश्रय के हृदय में क्रोध का संचार होने लगता है। उदाहरण—

भीष्म भयानक प्रचरयो रण भूमि आनि
छाई छित छत्रिन की राशि उठि जायेगी।
कहै 'रत्नाकर' रुधिर सौ रुँधेगी धरा
लोथनि पै लोथनि की पाँति उठि जायगी।

वीर रस

शत्रु, अत्याचारी अथवा धर्म विरोधी पुरुष की विपरीत चेष्टाओं को देखकर जब किसी के हृदय में उसके नाश की भावना उठती है और उसके कार्यरूप में परिणत होने का वर्णन होता है, तब वीर रस का संचार होता है। वीर रस में त्याग की भावना सब रसों की अपेक्षा अधिक होती है। वीर रस के भेद हैं— 1. युद्ध वीर, 2. दया वीर, 3. दान वीर, 4. धर्म वीर।

1. युद्ध वीर—उदाहरण—

बड़े- बड़े वीरन को पकरि पछारि देत
भरी- भारी भीरन हनत- है पल भर में।
रोम- रोम छिदे छनौ छोरत उछाह नांहि
छत लगे हाथी को उघारत अधर मैं।

2. दया वीर—उदाहरण—

पापी अजामिल पार कियो,
जेहि नाम लियो सुत ही को नारायण
त्यों, 'पद्माकर' लात लगे पर

विप्रहु के पग चौगुने चायन॥
को अस दीन दयाल भयो
दशरथ के लाल से सूधे सुभायन
दौरे गयन्द उबारिबे को प्रभु
बाहण छाँडि उपाहने पायन।

इस पद्य में भगवान की दयालुता का वर्णन है। दीन- दुखियों के प्रति दया दिखाने का उत्साह स्थायी भाव है।

3. दान वीर—उदाहरण—

हाथ गह्यो प्रभु को कमला कहै, नाथ कहा चितधारी
तन्दुल खाय मुठी दुइ, दीन कियो तुमने दु:लोक बिहारी
खाय मुठी तिसरी अब नाथ कहा निजवास की आस बिसारी?
रंकहि आप समान कियो तुम चाहत आपहि होन भिखारी।

4. धर्म वीर—उदाहरण—

महिमा महतन की मति को करति मंजु,
संतन की संगता असंगता हरति है।
पावनता पर से अपावनता दूर होति,
देव रुचि दुरति दुरतता दरति है।

भयानक रस

भय उत्पन्न करने वाली वस्तुओं को देखने या भयानक आवाज सुनने या शत्रु से वास्ता पड़ने पर भय छा जाय तो उस स्थिति में भयानक रस होता है। भयानक रस की उत्पत्ति उन्हीं पदार्थों से हुआ करती है जिनसे अवश्य ही दु:ख पहुँचता है। भय का प्रभाव शरीर और मन दोनों पर शीघ्र ही पड़ता है। मनुष्य अधीर हो जाता है, मुँह सूखने लगता है, आँखों के आगे अँधेरा छा जाता है। सामना करने की शक्ति के क्षीण होने से भय का संचार होता है।

उदाहरण—

एक ओर अजगरहिं लखि एक ओर मृगराय
विकल बटोही बीच ही, परयो मूर्छा खाय।

वीभत्स रस

गन्दी, दुर्गन्धपूर्ण तथा मैली वस्तु को देखने या ऐसी वस्तुओं का वर्णन सुनने से हृदय में जो घृणा का भाव परिपुष्ट होने लगता है, उसमें वीभत्स रस होता है।

उदाहरण—

सिर पर बैठ्यो काग, आँख दोइ खात निकारत,
गिद्ध जाँघ कह खोदि खोदि कर माँस उपारत,
श्वान अंगुरिन काटि काटि के खान विचारत।
बहु चील नोंच ले जाति तुंड़ मोद बढ्यो सबके हियो
मनु ब्रह्म- भोज जिजमान कोउ आज भिखारिन कहँदियो।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई- 17

आधुनिक काव्य का प्रवृत्तिगत इतिहास से संबंधित महत्त्वपूर्ण निबंधात्मक प्रश्न एवं उत्तर

प्रश्न- 1. प्रयोगवादी कविता का संक्षिप्त परिचय देते हुए उसकी प्रमुख विशेषताएँ बताइये।

उत्तर—डॉ. विनयमोहन शर्मा का कहना है कि "आधुनिक हिन्दी कविता में एक नये वाद का स्वर सुनाई देने लगा है और यह है, प्रयोगवाद। इस वाद का जन्म छायावाद युग की अति भावविभोरता और प्रगतिवाद काल की शुष्क बौद्धिकता की प्रतिक्रिया जान पड़ती है। प्रगतिवाद ने हिन्दी साहित्य की ऐसी कोई चीज प्रदान नहीं की जिसका प्रभाव स्थायी हो सके। हिन्दी कवि प्रगतिवाद के राजनीतिक बन्धनों से मुक्त होने के लिए छटपटा उठा है। इसलिए वह अपने ढंग से नये प्रयोग करना चाहता है और अपने को प्रयोगवादी कहलाने में गौरवान्वित अनुभव करता है। उसे हृदय-वीणा की झंकार जितनी वासी और बेसुरी मालूम होती है उतनी ही फावड़े की खनखनाहट भी कानों को विदीर्ण करने वाली प्रतीत होने लगती है।"

इस प्रकार प्रयोगवाद साहित्य की आधुनिक प्रवृत्ति है और जिस प्रकार प्रगतिवाद को छायावाद की प्रतिक्रिया कहा जाता है, उसी प्रकार प्रयोगवाद प्रगतिवाद की प्रतिक्रिया है। प्रयोगवाद का उद्भव और विकास मूल रूप में कविता में हुआ है और सन् 1943 से 1953 ई. तक की दस वर्षों की काव्यधारा में जो नवीनतम प्रयोग हुए उन्हें नयी कविता कहा जाता है। अतः नयी कविता और प्रयोगवाद दोनों को हम अभिन्न ही समझते हैं।

प्रयोगवादी काव्यधारा के स्वरूप पर विचार करते समय सबसे पहला प्रश्न यह उठता है कि इस काव्यधारा को प्रयोगवादी क्यों कहा जाता है? इसके उत्तर के लिए यह कहना उपयुक्त होगा कि आज का युग वैज्ञानिक युग है। जिस प्रकार एक वैज्ञानिक युक्ति और तर्क द्वारा पदार्थों का विश्लेषण करता है उसी प्रकार प्रयोगवाद मानव के शरीर और मस्तिष्क तत्त्व का विश्लेषण करता है। मानसिक भावनाओं का विश्लेषण करने के लिए वह अपने प्रयोग करता है और उसे कविता में उतारता है।

प्रयोगवादी काव्यधारा का अपना छोटा-सा इतिहास है। इस सम्बन्ध में **डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी** का कहना है—ऐतिहासिक दृष्टि से हिन्दी कविता में आधुनिकता का प्रवेश अज्ञेय द्वारा सम्पादि 'तार सप्तक' (1943) के प्रकाशन के साथ होता है। यही प्रयोगवाद के प्रारम्भ की तिथि मानी जाती है। स्वचेतना तथा आधुनिकता इस नवीन साहित्य चेतना की अनन्यतम विशेषता थी। कविता मात्र प्रेरणा का क्षेत्र नहीं रह गई थी, कवि ने अपने दायित्व का अनुभव करना प्रारम्भ कर दिया था। इस क्षेत्र में प्रगतिवाद का दिशा संकेत महत्त्वपूर्ण है।

प्रयोगवादी कविता की विशेषताएँ (प्रवृत्तियाँ)—प्रयोगवादी कविता की प्रमुख रूप से निम्न विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

1. अहंनिष्ठ व्यक्तिवाद—इस काव्यधारा में घोर अहंनिष्ठ व्यक्तिवाद के दर्शन होते हैं और प्रयोगवादी कवि सामाजिक जीवन के साथ किसी प्रकार से सामन्जस्य का सम्बन्ध नहीं कर सकता। सच तो यह है कि प्रयोगवादी काव्य में वैयक्तिकता, आत्मविज्ञापन एवं प्रत्यापन बनकर रह गयी है। उदाहरणार्थ—

साधारण नगर के
एक साधारण घर में
मेरा जन्म हुआ
साधारण खान-पान

2. अनास्था की भावना—प्रयोगवादी कविता में अनास्था की भावना भी प्रबल रूप से दिखाई पड़ती है। यथा—

आखिर कब तक
लड़ने वाली मुट्ठी जेबों में बन्द
नया दौर लाने में असफल हर छन्द
कब तक
आखिर कब तक?

3. अति यथार्थवाद—प्रयोगवादी कविता में यथार्थवाद की भी प्रधानता है। कहीं-कहीं तो अति नग्न यथार्थवाद के दर्शन होते हैं—

मेरे मन की अन्धियारी कोठरी में

अतृप्त आकांक्षाओं की वेश्या बुरी तरह से खांस रही है

4. अति बौद्धिकता—प्रयोगवादी काव्यधारा में अति बौद्धिकता के दर्शन होते हैं। इसमें विचारात्मकता की अधिकता पाई जाती है। इस क्रम में धर्मवीर भारती ने कहा है कि प्रयोगवादी कविता में भावना है। किन्तु हर भावना के सामने प्रश्न चिह्न लगा हुआ है। इसी प्रश्न चिह्न को आप बौद्धिकता कह सकते हैं। प्रयोगवादी कवि बौद्धिकता की झोंक में यहाँ तक कहता है—

चांदनी चन्दन सदृश
हम क्यों लिखें?
हम कहेंगे जोर से
मुँह घर—अजायब है
जहाँ पर बेतुके, अनमोल, जिन्दा और मुर्दा
भाव रहते हैं।

5. पीड़ा और दर्द की अभिव्यक्ति—प्रयोगवादी कवियों में पीड़ा और दर्द की अनुभूति को वेग के साथ व्यक्त किया है। यह एक जीवन दर्शन के रूप में व्यक्त की गई है। सियारामशरण गुप्त की पीड़ा विषयक पंक्तियाँ देखिये—

तुझे होगा जो पीड़ा बोध
वही तेरे पथ- क्षण का शोध।

6. क्षणवादी भावनाएँ—प्रयोगवादी कवियों ने जीवन के एक क्षण को बहुत ही महत्त्वपूर्ण माना है। जीवन का एक क्षण अपने में इतना पूर्ण और समग्र है कि उसे भोग लेने के बाद भविष्य में और भी आशा रखना मूर्खता है। इसी क्षणवादी विचार ने ही प्रयोगवादी कवि को भोगवाद की ओर प्रेरित किया।

7. निराशा, कुण्ठा और घुटन—प्रयोगवादी कविता में सामाजिक विषमताओं से संघर्ष करने के कारण प्राप्त असफलता के कारण मन की निराशा, कुण्ठा और घुटन की अभिव्यक्ति हुई है। जगदीश गुप्त की काव्य पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं—

छू सकी नहीं कोई ज्योति हृदय की धड़कन को
एक भी किरन दे सके नहीं दो सौ सौ।

8. उपमानों की नवीनता—प्रयोगवादी काव्य में उपमानों की नवीनता दिखाई देती है। कवि नवीन उपमानों, प्रतीकों और बिम्बों के माध्यम से कम से कम शब्दों में ज्यादा से ज्यादा अभिव्यक्ति देना चाहता है—

चांदनी रात है किसी अबोध कुमारी के सरल नैनों सी
अथाह, मदभरी रंगीली.....।

9. दुरुहता—प्रयोगवादी काव्य में दुरुहता भी परिलक्षित होती है। इसके विचारों और अनुभूतियों को सहजता से समझना कठिन-सा प्रतीत होता है। इसमें संकेतमयी भाषा के प्रयोग ने दुरुहता को बढ़ा दिया है। अज्ञेय जी की कविता का एक उदाहरण देखिये—

देखो
रूप—
नामहीन
एक ज्योति
अस्मिताहता की ज्वाला
अपराजिता अनावृत्ता

10. शैलीगत प्रवृत्तियाँ—प्रयोगवादी कविता में विषयगत शैलियों को कोई स्थान नहीं दिया गया है। इन कवियों ने अपने काव्य को गद्य शैली में लिखकर नवीन कल्पना का समावेश किया है। बिम्ब, प्रतीक, उपमान आदि सभी क्षेत्रों में उन्होंने नवीन प्रयोग प्रस्तुत किये हैं। उन्होंने नवीन शब्दावली का भी प्रयोग किया है।

निष्कर्ष रूप में यह कहना ठीक होगा कि प्रयोगवादी कविता पाश्चात्य काव्य से प्रभावित है। महाकाव्य अपनी सम-सामयिक तथा पूर्व की परिस्थितियों की देन रहा है। इसमें कविता को प्रयोग का विषय माना गया है और नये बोध, नई संवेदनाएँ तथा सम्प्रेषण

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

के लिये गये शिल्प के प्रयोग किये गये हैं।

प्रश्न- 2. प्रगतिवादी काव्य की सामान्य प्रवृत्तियों की सोदाहरण विवेचन कीजिए।

अथवा

प्रगतिवाद का अर्थ स्पष्ट करते हुए प्रगतिवादी कविता की विशेषताएँ बताइये।

उत्तर—प्रगतिवादी काव्य का उद्भव छायावादी काव्य की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ, जैसा कि **डॉ. नामवरसिंह** का कहना है—''छायावाद के गर्भ से सन् 30 के पास-पास नवीन सामाजिक चेतना के युक्त जिस साहित्य धारा का जन्म हुआ, उसे सन् 36 में प्रगतिशील साहित्य अथवा प्रगतिवादी की संज्ञा दी गई।''

काव्य में प्रगतिवाद एक विशिष्ट राजनीतिक विचारधारा का द्योतक है। वह विचाराधारा काल मार्क्स के द्वन्द्वात्मक और ऐतिहासिक पर आधारित है। मार्क्स की प्रगतिवादी विचारधारा सामाजिक व्यवस्था के आर्थिक दृष्टिकोण से सम्बन्धित है।

कुछ लोग प्रगतिवाद और प्रगतिशील साहित्य में भेद रखते हैं। उनके अनुसार मानवीय सौन्दर्यशास्त्र का काव्य प्रगतिवाद है और आदिकाल से लेकर अब तक की समस्त साहित्यिक परम्परा प्रगतिशील साहित्य है। इस तरह वे केवल छायावाद के बाद की साहित्यिक प्रवृत्ति के लिए प्रगतिशील साहित्य नाम का प्रयोग अनुचित मानते हैं। दूसरी ओर कुछ लोग ऐसे हैं जो मार्क्सवादी साहित्य-सिद्धांत तथा इस सिद्धांत के अनुसार रचे साहित्य को प्रगतिशील साहित्य कहते हैं और छायावाद के बाद की व्यापक चेतना वाले समस्त साहित्य को प्रगतिशील साहित्य कहते हैं। जिसमें विभिन्न राजनैतिक मतों के बावजूद एक सामान्य मानवतावादी भावना व्याप्त है। लेकिन जिस तरह छायावाद और छायावादी कविता भिन्न नहीं है उसी तरह प्रगतिवादी साहित्य भी भिन्न नहीं है। इसलिए प्रगतिवाद में भेद करने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

भारत में सन् 1936 के आस-पास छायावाद का विकास लगभग रुक गया था। कवि कुछ नये विचारों और व्यंजनों के माध्यमों की खोज में थे। ऐसे समय में विदेशों से लौटे हुए हिन्दुस्तानी लेखकों ने प्रगति की आवाज उठाई। फलतः पंतजी ने छायावाद का युगान्त घोषित करके, प्रगति करके, प्रगतिवाद को युगवाणी के रूप में तुरन्त अपना लिया।

प्रगतिवाद के प्रति प्रारम्भ में जितनी ललक कवियों की रही उतनी उपन्यासकारों की नहीं। फिर भी उपन्यासकारों ने दिल खोलकर प्रगतिशीलता को स्वीकार किया। इस तरह प्रगतिवाद रचनात्मक साहित्य और आलोचनात्मक मानदण्ड दोनों है। इस प्रकार हिन्दी साहित्य की वह आधुनिकतम प्रवृत्ति प्रगतिवाद साहित्य को नूतन ढंग से सजाने का अभिनव प्रयास ही है। चूँकि प्रगति शब्द का अर्थ आगे बढ़ाना है और एक ऐसा परिवर्तन लाना है जिससे कि किसी वस्तु या विषय के गुण या परिणाम में वृद्धि हो सके। अतः प्रगतिवादीसाहित्य का मूल लक्ष्य परिवर्तन ही है।

प्रगतिवादी जीवन के प्रति एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। उसका यह दृष्टिकोण पूर्णतः भौतिकतावादी है। वह ईश्वर या आत्मा को मान्यता नहीं देता है। वह साहित्य में व्यक्ति पर समाज की सत्ता का अंकुश चाहता है।

प्रगतिवादी काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ (विशेषताएँ)

1. रूढ़ियों का विरोध—प्रगतिवादी साहित्य में रूढ़ियों का विरोध किया गया है। प्रगतिवादी कलाकार धर्म, ईश्वर व परलोक का विरोध सा करता हुआ दिखाई पड़ता है। वह अंधविश्वासों, मिथ्या परम्पराओं एवं रूढ़ियों पर तीव्र प्रहार करके मानव रूप में देखना चाहता है—

भ्रांत यह अतिरंजित इतिहास
व्यर्थ के गौरवगान
दर्पण से एक महान
अर्पण सुख म्लान
किसी को आर्य अनार्य
किसी को यवन
किसी को हूण-यहूदी-द्रविड़
किसी को शीश

किसी को चरण
मनुज को मनुज न कहना आह!

2. शोषकों के प्रति आक्रोश—प्रगतिवादी कवि का यह विश्वास है कि जब तक पूँजीवादी रहेगा तब तक समाज का शोषण होता रहेगा। वह पूँजीवाद के पोषकों, व्यापारियों, जमींदारों और सूदखोरों के प्रति घृणात्मक भाव भी प्रकट करता है।

3. जीवन की वैषम्यता—प्रगतिवादी कवियों ने जीवन की वैषम्यता को नजदीक से देखा है। एक ओर उन्होंने कुत्तों को दूध पिलाते हुए देखा तो दूसरी ओर दूध के लिए तड़पते बालकों को। दिनकर जी की भावभूमि इस तथ्य को स्पष्ट करती है—

श्वानों को मिलता दूध-वस्त्र, भूखे बच्चे अकुलाते हैं।
माँ की हड्डी से चिपक ठिठुर, जाड़े की रात बिताते हैं।
मालिक जब तेल-फुलेलों पर, पानी सा द्रव्य बहाते हैं।
पापी महलों का अहंकार, देता मुझको तब आमन्त्रण।

इस प्रकार पूँजीवादी वर्ग के प्रति उनके हृदय में स्वाभाविक आक्रोश और घृणा पैदा होती है, इतनी ही उनके हृदय में शोषकों के प्रति सहानुभूति की भावनाओं की अभिव्यक्ति के साथ-साथ क्रान्ति की भावना दिखाई पड़ती है।

4. नवीन क्रान्ति का स्वर—प्रगतिवादी विचारधारा के पोषक कवियों ने अपने काव्य में क्रांति को नवीन स्वर दिया है। उनकी वह क्रान्ति पूँजीपातियों के प्रति खुला विद्रोह है—

कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ,
जिससे उथल-पुथल मच जाये।

इसी क्रम में 'पन्त' की भावनाएँ देखिये—

आ कोकिला बरसा पावक कण,
नष्ट-भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन।

5. मानवतावादी दृष्टिकोण—सामाजिक पदार्थ को प्रस्तुत कर प्रगतिवादी कवियों ने अपना मानवतावादी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। उन्होंने ईश्वर की तुलना में मानव को महत्त्व दिया है। यथा—

जाने कब तक घाव भरेंगे, इस घायल मानवता के।
जाने कब तक सच्चे होंगे, सपने सबकी समता के॥

6. प्रेम और वेदना—प्रगतिवादी कवियों की प्रेम और वेदना छायावादी काव्य की तरह दुरुहता पर आधारित न होकर सामाजिक कार्य की भावभूमि पर आधारित है। केदारनाथ अग्रवाल की प्रणयानुभूति में उनका यथार्थ दृष्टिकोण देखिए—

तेरी तो सुधि आती प्यारी, वैसे ही सुधि आती।
जैसे नन्दन वन की मृग को, रह रह कर सुधि आती॥

7. अभिव्यक्तिगत विशेषताएँ—प्रगतिवादी काव्य का अभिव्यक्ति पक्ष भी अनुभूति पक्ष की तरह ही प्रगतिवादी विचारधारा का पोषक रहा है। प्रगतिवादी कवियों ने अपनी विचारधारा को सरल भाषा के माध्यम से आम आदमी तक पहुँचाने का प्रयास किया है। प्रगतिवादी काव्य में वस्तु-प्रधान बिम्बों का प्रयोग किया गया है। वे अपनी सरलता से ही काव्य सौन्दर्य बढ़ाते हैं।

छन्दों की दृष्टि से प्रगतिवादी काव्य में परम्परागत और मुक्त छन्द दोनों का ही प्रयोग किया गया है। रुढ़ उपमानों का परित्याग करके नये-नये रूपक और उपमानों से इस काव्य का कलात्मक सौन्दर्य बढ़ाया गया है। अलंकारों की दृष्टि से प्रगतिवादी काव्य में अलंकार प्रयोग के लिए कोई विशेष हठ नहीं किया गया है। स्वाभाविकताधार पर जहाँ कहीं अलंकार आये हैं वे काव्य सौंदर्य का वर्द्धन करते हैं।

प्रश्न- 3. छायावादी कविता के उद्भव और विकास पर सोदाहरण प्रकाश डालिए और बतलाइये कि उसके प्रवर्तन और नामकरण के विषय में आपका क्या मत है?

अथवा

छायावादी काव्य की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

उत्तर—मानव प्रकृति में नवीनता के प्रति सहज आकर्षण तथा अनुकरणप्रियता विद्यमान है। वह अपनी प्रत्येक वस्तु को अभिनव सौन्दर्य प्रदान करना चाहता है। कभी स्वकल्पित रूप विधानों द्वारा और कभी अनुकरण के आधार पर। अतएव उनकी समस्त अभिव्यक्तियाँ भी अभिनव सौन्दर्य प्रसाधन की ओर प्रवृत्त दिखाई पड़ती है। साहित्य में वीर या गाथा काल से लेकर आज तक हम उसकी इसी प्रवृत्ति का दर्शन पाते हैं।

छायावादी प्रवृत्ति का प्रधान प्रभाव हमारे यहाँ सन् 1920 से 40 तक रहा। इस शैली के विकास का प्रधान कारण द्विवेदी युग के काव्य की इतिवृत्तात्मकता है जिसमें वस्तु या व्यक्ति की स्थूल रेखाओं का अभिधात्मक वर्णन हुआ जिसमें सूक्ष्मता, संकेतात्मकता एवं व्यंजकता का अभाव था। अत: प्रसाद, निराला, पंत आदि कवियों ने हिन्दी खड़ी बोली काव्य में माधुर्य एवं अभिव्यंजना भरने के उद्देश्य से इस शैली का प्रयोग किया। इसका विकास टैगोर की बंगला कविताओं एवं अंग्रेजी की रोमांटिक कविताओं में सम्पर्क से हुआ।

अब प्रश्न उठता है कि इस काव्य का नाम छायावाद क्यों पड़ा? इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। इस सम्बन्ध में आचार्य शुल्क का कहना है कि बंगला में प्रतीकात्मक आध्यात्मवादी रचनाओं को छायावादी कहा जाता था अत: उसके अनुकरण पर हिन्दी में ऐसी रचनाओं के लिए छायावादी नाम प्रचलित हो गया। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी का कहना है कि बंगला में छायावाद का नाम प्रचलित हो गया। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी का कहना है कि बंगला में छायावाद का नाम कभी चला ही नहीं। कहा जाता है कि द्विवेदी युगीन कवि मुकुटधर पांडेय ने सर्वप्रथम व्यंग्यात्मक रूप में छायावाद शब्द का प्रयोग स्वचछन्दतावादी नवीन अभिव्यक्तिमय रचनाओं के लिए किया जो कालान्तर में इस कविता के लिए रुढ़ हो गया और इस प्रकार की कविताएँ छायावादी कविता कहलाने लगीं। इसके बाद रामचन्द्र शुल्क ने छायावादी शब्द के प्रयोग के सम्बन्ध में अपने भावों को व्यक्त करते हुए कहा—''छायावाद शब्द का प्रयोग दो शब्दों में समझना चाहिए। यह रहस्यवाद के अर्थ में जहां उसका सम्बन्ध काव्य वस्तु से होता है अर्थात् जहां कवि उस अनन्त और अज्ञान प्रियतम को आलम्बन मानकर अत्यन्त चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है। छायावाद का दूसरा प्रयोग काव्य शैली या पद्धति विशेष के व्यापक अर्थ में है।''

छायावाद काव्यधारा की विशेषताएँ व प्रमुख प्रवृत्तियाँ

1. व्यक्तिवाद—छायावाद काव्यधारा की प्रमुख विशिष्टताओं व प्रवृत्तियों पर विचार करते समय सर्वप्रथम हमारा ध्यान इस ओर आकृष्ट होता है कि छायावाद में व्यक्तिवाद की प्रधानता विशेष रूप से दिखाई पड़ती है। छायावाद की कविता को मुख्य रूप से व्यक्तिवाद की कविता कहा जाता है। छायावाद में अहं भावना सर्वप्रमुख विशेषता बन गई और इस प्रकार छायावादी काव्य में वैयक्तिक सुख-दु:ख की अभिव्यक्ति खुलकर हुई।

2. सौन्दर्यप्रियता—वस्तुत: सौन्दर्यप्रियता छायावाद काव्य की एक प्रमुख प्रवृत्ति है। छायावादी कवि प्रत्येक सुन्दर वस्तु के साथ अपने हृदय के रोगात्मक सम्बन्ध को स्थापित करने के लिए सदैव उत्सुक रहता है। इसलिए स्वाभाविक ही छायावादी कवियों ने बाह्य और आभ्यांतरिक दोनों ही प्रकार के सौन्दर्य चित्रण अपनी कृतियों में अंकित किए हैं तथा प्रकृति-चित्रण में तो उनका मन बहुत अधिक रमा है। उन्होंने प्रकृति पर चेतनता का आरोप भी किया है।

3. श्रृंगारिकता—डॉ. नगेन्द्र ने लिखा है—''छायावाद की कविता प्रधानत: श्रृंगारिक है, क्योंकि उसका जन्म हुआ है, व्यक्तिगत कुण्ठाओं से और व्यक्तिगत कुण्ठाओं प्राय: काम के चारों ओर केन्द्रित होती हैं।''

छायावाद में श्रृंगार के प्रति उपभोक्ता का भाव न मिलकर विस्मय का भाव मिलता है, क्योंकि कवि प्रेम की रहस्यमयी चेतना को समझता है। नारी के अंगों के प्रति उसका आकर्षण नैतिक ढंग से सहमकर जैसेएक अस्पष्ट कोतूहल में परिणित हो गया हो गया हो। इसके साथ ही उनमें विरह-भावना की अधिकता है इसलिए वे विषादहीन जीवन की कल्पना नहीं कर सकते। महादेवी वर्मा की विरहभावना का चित्रण देखिये—

मैं नीर भरी दु:ख की बदली।
विस्तृत नभ का कोई कोना।
उमड़ी थी कल मिट आज चली
मैं नीर भरी दु:ख की बदली।

4. प्रकृति-सौन्दर्य—प्रकृति के सौन्दर्य का वर्णन इन कवियों की शृंगारिकता का दूसरा रूप है। वे प्रकृति के रूप में किसी नवयौवन के चंचल सौन्दर्य को देखते हैं। उनकी आवाजों में किशोरियों के अर्द्ध-स्फुट हास की प्रतिध्वनि उन्हें सुनाई पड़ती है। कवि प्रकृति का मानवीकरण करके उससे उन्मुक्त नहीं होना चाहता है। उन्होंने प्रकृति के सौन्दर्य को देखकर उसके सौन्दर्य का चित्रण नहीं किया है बल्कि उन्हें जो अनुभूति हुई उसको चित्रित किया है। महादेवी वर्मा की भावभूमि का अवलोकन किया जा सकता है—

धीरे-धीरे उतर क्षितिज से आ वसंत-रजनी
तारकमय नव वेणी-बन्धन
शीशफूल कर शशि का नूतन
रश्मिवलय सित नव अवगुंठन
मुक्ताहल अभिराम बिछाये चितवन से अपनी।

5. राष्ट्रीयता की भावना—छायावादी काव्यधा में राष्ट्रीयता की भावना भी विद्यमान है। कवियों ने ओजपूर्ण कविताएँ लिखने के साथ-साथ राष्ट्रीय भावनापरक कविताओं की भी रचना की है। 'प्रसाद' जी का एक उदाहरण देखिए। इसमें उनकी मानवतावादी भावनाओं की अभिव्यक्ति हुई है—

औरों को हँसते देखो मनु
हँसो और सुख पाओ।
अपने सुख को विस्तृत कर लो,
सबको सुखी बनाओ।

6. रहस्य भावना—छायावादी काव्य में रहस्यवाद की भावना ही पायी जाती है। महादेवी वर्मा और प्रसाद का काव्य इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। पन्त के प्रकृति-चित्रण में भी अभिव्यक्ति भी छायावादी काव्य की रहस्यभावना ही है—

प्रिय चिरन्तन है सजनि
क्षण-क्षण नवीन सुहागिनी मैं।

7. मानवतावादी विचारधारा—छायावादी कवि मानवतावादी विचारधारा के पोषक हैं। उन्होंने मानव को मात्र मानव रूप में ही देखने का प्रयास किया है। संकीर्णता को स्थान नहीं दिया गया है। कवि पन्त तो मानवता में ही स्वर्ग के दर्शन करते हैं—

मनुज प्रेम में जहाँ रह सके मानव ईश्वर
और कौन-सा स्वर्ग चाहिए मुझे धरा पर।

8. शैलीगत विशिष्टता—छायावादी कवियों में प्रतीकात्मकता और बिम्बात्मकता की विशिष्ट छवि है। आचार्य शुक्ल जैसे छायावाद के विरोधी समीक्षकों ने भी यह स्वीकार किया है कि छायावादी शैली की चित्रात्मकता, लाक्षणिकता व व्यंग्यात्मकता के कारण हिन्दी की अभिव्यंजना शक्ति में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। यद्यपि छायावादी काव्यधारा में शब्दों के अशुद्ध प्रयोग, अस्पष्टता, दुर्बोधता की वृद्धि हुई है। यद्यपि छायावादी काव्यधारा में शब्दों के अशुद्ध प्रयोग, अस्पष्टता, दुर्बोधता व कहीं-कहीं अस्वाभाविकता आदि दोष भी दीख पड़ते हैं। छायावादी कवियों ने मुक्तक गीत शैली को अपनाया है।

प्रतीक विधान की दृष्टि से छायावादी काव्य में प्रकृति को माध्यम बनाया गया है। कुछ प्रतीक रहस्यवाद की सृष्टि करते हुए प्रतीक होते हैं—

तुम गन्ध-कुसुम कोमल पराग
मैं मृदु गति मलय समीर।

छन्द विधान की दृष्टि से छायावादी कवियों ने मांत्रिक छन्द और मुक्तक छन्द को अपनाया है। सबसे अधिक काव्य रचनाएँ मुक्तक छन्द में सधी और बंधी हुई हैं।

निष्कर्ष—सार रूप में कहा जा सकता है कि छायावादी कविता का गौरव अक्षय है। छायावाद हिन्दी साहित्य में एक महान आन्दोलन के रूप में आया और छायावाद आधुनिक हिन्दी कविता के स्वाभाविक विकास की एक महत्त्वपूर्ण मंजिल है। जयशंकर प्रसाद इस काव्यधारा के प्रमुख प्रवर्तक हैं और प्रसाद, पन्त, निराला तथा महादेवी जी इसके चार स्थायी स्तम्भ हैं।

प्रश्न- 4. नई कविता की प्रमुख विशेषताएँ का विश्लेषण प्रस्तुत कीजिए।

उत्तर—नई कविता को वास्तव में प्रयोगवाद का व्यवस्थित और विकसित रूप कहा जा सकता है। 'तार सप्तक' के प्रकाशन के बाद ही अनेक कवियों की कविताओं में कुछ ऐसी विशिष्टताएँ दिखाई देने लगी थी जो प्रयोगवादी कविता से अपना अस्तित्व अलग सिद्ध कर रही थीं। अनेक कवियों ने अज्ञेय की प्रयोग सम्बन्धी मान्यताओं को स्पष्ट रूप से अस्वीकार कर दिया था इसलिए यह अनुभव किया जाने लगा कि ऐसी कविता को दिशा दी जाए जो प्रयोगवादी कविता के दोषों को दूर कर सके। इसी उद्देश्य से अभिप्रेरित होकर 'साहित्य सहयोग' नामक संस्था द्वारा 'नई कविता' नामक पत्रिका का प्रकाशन किया गया था। ये कविताएँ, पूर्व की कविताओं से शिल्प, विषय-वस्तु और स्वरूप की दृष्टि से भिन्न थीं इसलिए इन कविताओं को 'नई कविता' नाम से सम्बोधित किया गया।

यद्यपि 'नई कविता' के सम्बन्ध में अलग- अलग मत हैं। कई विद्वानों ने इसे अपनी परिभाषा में बाधा है। कुछ परिभाषाएँ यहाँ उसको स्पष्ट करने हेतु दी जा रही हैं—

पन्तजी के अनुसार—''नई कविता विश्व वर्चस्व से प्रेरणा ग्रहण करके तथा आज प्रत्येक पल बदलते हुए युगपट को अपने मुक्त छन्दों पर तीव्र शैली में अभिव्यक्त कर युग मानव के लिए नव भावभूमि प्रस्तुत कर रही है।''

मुक्तिबोध के अनुसार—''नई कविता वैविध्यमय जीवन के प्रति आत्मचेतन व्यक्ति प्रतिक्रिया है। नई कविता के स्वर एक नहीं विविध हैं।''

नई कविता का कथ्य इसके कवियों ने अपने युग के सत्य की यथार्थ भूमि से ग्रहण किया है। नई कविता उस मानव को अभिव्यक्त करती है जो आज भी विषमता को एक ओर भोग रहा है तो दूसरी ओर अपने अस्तित्व और व्यक्तित्व को भी सुरक्षित रखना चाहता है।

नयी कविता की प्रमुख विशेषताएँ या प्रवृत्तियाँ

1. पीड़ाबोध—नई कविता में पीड़ा बोध का स्वर प्रमुख रूप से मुखरित हुआ है क्योंकि नई कविता प्रयोगवाद की देन है। इसलिए यह कुण्ठा, निराशा, मृत्युबोध के स्वरों को मुखरित करती है। इस नई कविता में पीड़ाबोध के कई स्तर रहे हैं। मुक्तिबोध और राजकमल चौधरी की पीड़ा में शोक का घनत्व है जबकि भवानीप्रसाद मिश्र पीड़ा को अपरिहार्य मानते हैं। कुछ कवि पीड़ा को जीवन का सत्य मानते हैं। कुछ कवियों ने पीड़ा को जीवन का सत्य मानते हुए भी उसे अस्वीकार कर दिया है। आन्तरिक विषाद का एक उदाहरण देखिए—

तड़के ही रोज
कोई मौत का पठान
माँगता है जिन्दगी जीने का ब्याज
अनजाना चाज

प्रयोगवादी कवि निराश, कुण्ठा और पराजय को ही सत्य मान बैठे थे जबकि नई कविता का कवि इनमें से भी प्रकाश प्राप्त करता है। अज्ञेय जी की कविता का एक उदाहरण देखिए—

दुःख सुख को माँजता है
और
चाहे स्वयं सुख को मुक्ति देना न जाने किन्तु
जिसको माँजता है
उन्हें वह सीख देता है कि
सबको मुक्त रखें।

2. जीवन के प्रति आस्था—नई कविता की यह वह विशेषता है जो उसे प्रयोगवादी कविता से अलग करती है। प्रयोगवादी कविता में जीवन के प्रति अनास्था और निराशा के भावों की अभिव्यक्ति हुई है जबकि नई कविता जीवन के अन्तिम क्षणों तक आस्था व्यक्त करके उसे भोगने का संकल्प दोहराती है। नई कविता में जीवन के प्रति आस्था व्यक्त की गई है और जीवन को जीवन के रूप में ही स्वीकारा गया है। यथा—

इस दुःखी संसार में जितना बने हम सुख लुटा दें।
बन सके तो निष्कपट मृदुहास के दो पल जुटा दें॥

3. क्षण का उपभोग—नई कविता में क्षण के महत्त्व को स्वीकारा गया है। वह क्षणवाद पाश्चात्य काव्य की देन है। क्षणों की अनुभूतियां जीवन में बाधक न होकर साधक बनकर जीवन को जोड़ती है। कवि क्षणवाद में समस्त अनुभूतियों, संवेदनाओं और विचारों

को सूक्ष्म और स्थल रूप से अभिव्यक्त करता है। अज्ञेय द्वारा लिखित कविता को उदाहरण के रूप में देखिए—

आज के विभक्त अद्वितीय क्षण को
हम पूरा जी लें, पी लें, आत्मसात कर लें
इसकी विवक्ति अद्वितीयता
आपको, किमपि को, क ख ग को
अपनी- सी पहिचनवा सके
रसमय कर दिखा सके
शाश्वत हमारे लिए वहीं है
अजर- अमर है।
वेदितव्य
अक्षर
एक क्षण- क्षण प्रवाहमान
व्याप्त सम्पूर्णता।

नई कविता का अन्वेषण करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि जीवन की अनुभूति को क्षणों में पकड़ती हैं, ये अनुभूतियां किसी बाहरी परिवेश की उपज न होकर उसके ही परिवेश की उपज होती हैं। इससे स्पष्ट होता है कि नई कविता जो क्षण- बोध और उसके उपभोग के सत्य की अनुभूति कराती है।

4. आधुनिक भावबोध—नई कविता में आधुनिक भावबोध की व्याप्ति है। इसके बिना नई कविता की कल्पना नहीं की जा सकती है। नई कविता में व्यक्ति आधुनिक बोध से मुक्त यथार्थ से सीधे साक्षात्कार पर आधारित है। मुक्तिबोध, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना और गिरजाकुमार माथुर आदि कवियों में व्यक्ति और समाज दोनों के यथार्थ के प्रति अधिक लगाव है। 'काल दृष्टि से जो बंध न सका' में गिरिजाकुमार माथुर कहते हैं—

जैसे किसी अटूट,
महाद्वीपीय यात्रा में
हर रोम में
वेश की गूँज
सीसे सी भर जाये
बाहर की चीजें
दिख कर भी अदेखी रहें
दूर फिर पास
जैसे वह सारी सृष्टि
यह अशब्द, अस्तहीन, अन्धकार
बार- बार।

5. काव्य की व्यापकता—नई कविता की यह महत्त्वपूर्ण विशेषता है कि इसका कथ्य व्यापक है। चूँकि इस कविता के कवि प्रगतिवाद और प्रयोगवाद के ही कवि रहे हैं। इन कवियों ने पूर्व में भी कथ्य को बढ़ाया था लेकिन नई कविता में यह बढ़ी हुई सीमा और विस्तृत दिखाई पड़ती है। इसका परिणाम यह हुआ कि जीवन और जगत से सम्बन्धित समस्त विषय कविताओं में समा गये हैं। यथा— समुद्रों का विस्तार, आकाश की गहनता के साथ विज्ञान के आविष्कार, उपयोगी वस्तुएँ—थरमस, टार्च, पैन, चाय का कप, बीड़ी, सिगरेट, पिन, अणु, गन्दा नाला और दैनिक जीवन के लघुतम क्रिया- कलाप आदि अनेक विषयों का विस्तृत चित्रण हुआ है—

मुक्ति से संवार यह बन्धन
तोड़ दे सीमा सकरी, बुझा बत्तियाँ लाल- हरी
चुन तारे, कलियाँ, कड़ी भी पथ पर बिखरी,

Vishwa Bharati Rohilkhand (Deemed) University, Ladnun

उपजीव्य तेरा जीवन।

6. व्यंग्यबोध—नई कविता में व्यंग्य के तीखे बाण छोड़कर समाज, राजनीति, व्यक्ति, नागरिक सभ्यता और असंगतियों पर गहराई से व्यंग्य प्रस्तुत किया गया है। अज्ञेय द्वारा 'सांप' कविता में नगर-जीवन की कटु आलोचना के कारण इसमें युग की अनुभूति का सजीव चित्रण मिलता है। 'गीतफरोश' कविता में इसका एक उदाहरण देखिए—

जी, पहले कुछ शर्म लगी मुझको
पर बाद में ये अम्ल जगी मुझको
जी, लोगों ने बेच दिए ईमान
मैं सोच समझकर आखिर
अपने गीत बेचता हूँ
जी, हाँ हजूर मैं गीत बेचता हूँ
मैं तरह-तरह के गीत बेचता हूँ।

7. यथार्थ की स्वीकृति—नई कविता में, कवि ने अपने युग की कुण्ठा, निराश, विकृतियों और विषमताओं को अपनी कविताओं में स्थान देकर यथार्थ को स्वीकार है। नई कविता के अनुयायी सभी कवियों की कविताओं में ये स्वर विद्यमान है।

8. आस्थावादी स्वर—नई कविता की एक विशेषता उसकी आस्थावादिता है। भारती, अज्ञेय, सर्वेश्वर, माथुर और मुक्तिबोध की कविताओं में इस आस्थावादिता का सशक्त स्वर सुनाई पड़ता है। अज्ञेय जी ने इस सम्बन्ध में कहा है कि यदि आस्था न कांपे तो मिट्टी का मानव भी देवता हो जाता है। नई कविता में अनास्था और कुण्ठा के साथ-साथ आस्था और विश्वास की प्रवृत्तियाँ भी रही हैं। धर्मवीर भारती इसे यों अनुभूत करते हैं—

हम सबके दामन पर दाग
हम सबकी आत्मा में झूठ
हम सबके माथे पर शर्म
हम सबके हाथों टूटी तलवारों की मूठ।

9. सौन्दर्यानुभूति—नई कविता यथार्थ की कविता है। उसमें जो भी सौन्दर्य अभिव्यक्त हुआ है वह यथार्थ पर आधारित है और असुन्दर में सुन्दर खोजता है। प्रकृति के प्रति आत्मीयभाव इस काव्य की प्रमुख विशेषता है। कहीं-कहीं सजीवता के आग्रह में चमत्कारी उपमानों की भी प्रधानता दिखाई देती है—

सुबह नीले व्योम से
हवा का फेंका हुआ
जो धूप का गुच्छा
अचानक आ गिरा मेरी मेज पर
जी हुआ
उस मुलायम मासूम गुच्छे को उठाकर
जेब में रख लूँ
बहुत भली चिड़ियों के
बीच में धर दूँ॥

10. अभिव्यंजना-शिल्प भाषा—नई कविता की विशेषता उसकी यथार्थ भावभूमि है। इसी भावभूमि पर नये कवि विचारों को संवाहित करने वाली भाषा का प्रयोग करते हुए उतरे हैं। भाषा भावों के अनुकूल अपने साधारण स्तर से उठकर काव्य-भाषा के रूप में आ गयी है। इसकी गोद में कहीं संस्कृतनिष्ठ शब्दावली, तो कहीं-कहीं अरबी, फारसी और अंग्रेजी की शब्दावली सुशोभित हुई है। शब्द समूह और वाक्य विन्यास बोलचाल के अनुरूप हैं—

मित्रों की खीझ
रिश्तेदारों की झिड़कियाँ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

ईर्ष्या पड़ौसियों की
शत्रुओं की चालबाजी
अफसरों की धमकियाँ
मुखों की बर्राहट
—कविता की मात है।

उपमान विधान—नई कविता में नये-नये अछूते और संवेदनशील उपमान वैचित्र्य की सृष्टि करते प्रतीत होते हैं। प्रयोगों को साध्य मानकर उपमानों का प्रयोग किया गया है—

1. धूप माँ की हँसी के प्रतिबिम्ब सी
2. मेरे सपने टूट गये
जैसे भुना हुआ पापड़

बिम्ब विधान—नई कविता में शब्द, गन्ध, रस, स्पर्श आदि के सजीव रोचक नूतन बिम्ब प्रतीकात्मक और सांकेतिक रूप में प्रस्तुत किये गये हैं—

हरिजन गलियों में
लटकी है पेड़ पर
कुहासे से भूतों की सांवली चुनरी
चुनरी में अटकी है कँजी आँख, गंजे सिर
टेढ़े मूँह चाँद की।

प्रतीक विधान—प्रतीक विधान की दृष्टि से नई कविता सबल है। चितकबरी रात को मन के प्रतीक के रूप में जटिल मनःस्थितियों का चित्रण कवि ने इस प्रकार किया है—

चाँदनी सित रात चिकबरी
उसे भूखण्ड की गँजी सतह पर
कोह के खण्डहर
कपोलों पे धसा जो एक मनहूस अंधियारा।

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचनाधार पर कहा जा सकता है कि नई कविता भाव और शिल्प की दृष्टि से अपने महत्त्व को विशेष रूप में प्रस्थापित किए हुए हैं। नई कविता का प्रत्येक कवि अपनी निजी विशिष्टता रखता है।

प्रश्न- 5. साठोत्तरी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियों को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।

अथवा

समकालीन काव्य रचनाओं की मुख्य विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए समीक्षात्मक टिप्पणी कीजिए।

उत्तर—साठोत्तरी कविता का जन्म हिन्दी साहित्य में चीनी आक्रमण के बाद (सन् 1962 में) हुआ। इस कवित में नई कविता के आगे भी कुछ नये परिवर्तन हुए। साठोत्तरी कविता एक ऐसी साहित्यिक रेखा है जहां से हिन्दी कविता को एक ऐसा नया मोड़ मिला जो कथ्य के नवीनतम रुझान और समय की भाषा तथा मुहावारे से जुड़ा है। जिन युवा कवियों ने इस विधा में काव्य रचनायें की उनमें आक्रोश, परम्परा के प्रति खीझ और झुँझलाहट रही है। उनका स्वर शासन के प्रति विद्रोही रहा है।

नई कविता व्यक्ति केन्द्रित थी, जबकि साठोत्तरी कविता समाज केन्द्रित है। इस कविता का प्रतिपाद्य विषय समकालीन संसार है। इसलिए इस कविता के कवियों के विद्रोह के कुछ कारण सम-सामयिक अन्तर्राष्ट्रीय चेतना से जुड़े हुए थे। इसके साथ ही साठोत्तरी कविता के शिल्प में भी एक विशेष नवीनता परिलक्षित होती है।

साठोत्तरी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ या विशेषताएँ

1. मोहभंग—मोहभंग साठोत्तरी कविता का प्रमुख स्वर है। भारतीयों ने अपनी आजादी प्राप्त करके जो मोह और स्वप्न संजाये

थे वे भारत पर चीन और पाकिस्तान के आक्रमण, ताशकन्द घोषणा, राजनीतिक छल-छिद्र, भ्रष्टाचार, झूठे आश्वासन, घृणित स्वार्थ, दैविक प्रकोप, महँगाई और बेरोजगारी के कारण उनको मोहभंग हो गया। यथा—

मैंने इन्तजार किया
अब कोई बच्चा भूखा रहकर
स्कूल नहीं जायेगा
अब कोई छत
बारिश में नहीं टपकेगी
अब कोई किसी की
रोटी नहीं छीनेगा
कोई किसी को नंगा नहीं करेगा।
मगर एक दिन मैं स्तब्ध रह गया॥

एक काँग्रेसी प्रशासन में जनता ने तो आशाएँ और भावनाएँ जगाई थीं वे सब सपनों की भाँति उससे दूर होती गयीं। उसे यदि कुछ मिला तो आश्वासनों के बीच सिर्फ निराशा—

बीस साल धोखा दिया
वही मुझे फिर कहा जायेगा विश्वास करने को
पाप छिपा रखने के लिए एकजुट होगा देश
जितना बड़ा दल होगा उतना ही खायेगा देश को॥

2. रोमानी संस्कारों से मुक्ति—साठोत्तरी कविता रोमानी या छायावादी संस्कारों से मुक्त है। नई कविता में थोड़ा बहुत सौन्दर्य बोध हुआ लेकिन वर्तमान परिवेश में व्याप्त परिस्थितियों ने कवियों के मानस को झकझोर दिया और कह उठा—

बिक्षत स्तम्भों और आरेखित भित्तियों वाली इमारतें—
लटकती रहती हैं।
जहाँ
मशीनों से मथे जा रहे हैं दल- दल में
मैं उस शहर से गुजरता हूँ।

3. राजनैतिक चेतावनी—साठोत्तरी कविता में राजनैतिक चेतना का स्वर मुख्य रूप से मुखरित हुआ है। इस कविता में राजनीति का यथार्थ रूप नग्न होकर उतरा है। नेताओं के झूठे वादों और धोखा देने वाले नारों को कवि रघुवीर सहाय ने इस प्रकार अभिव्यक्ति दी है—

बीस साल
धोखा दिया गया
वही मुझे फिर कहा जायेगा विश्वास करने को
पूछेगा संसद में भोलाभाला मन्त्री
मामला बताओ हम कार्यवाही करेंगे
हाय- हाय करता हुआ, हाँ- हाँ करता हुआ। हें- हें करता हुआ
दल का दल
पाप छिपा रखने के लिए एकजुट होगा
जितना बड़ा दल होगा उतना ही खायेगा देश को।

4. नैराश्य और आक्रोश का स्वर—अनास्था और कुंठा से युक्त उन कवियों के काव्य में विद्रोही स्वर के बाद उत्पन्न आक्रोश में कुछ न कर पाने पर, नैराश्य भी विद्यमान है—

कोई भी जगह नहीं रही
रहने के लायक

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

न मैं आत्महत्या
न औरों का खून

इसी भावभूमि पर आक्रोश स्वर भी विद्यमान है—

क्या दिया तुमने
महज जयहिन्द
फकत फाकाकशी आंकड़े
बस आसमानी आंकड़े और
गुत्थम गुत्थई राशन की कसी कतारें
बेरोजगारी

5. व्यंग्यबोध—वर्तमान परिवेश में व्याप्त विसंगतियों को लक्ष्य करके इस कविता में व्यंग्य किया गया है। इस देश के राजनैतिक ढाँचे और स्वार्थ एवं भ्रष्टाचार के प्रति त्रिनेत्र जोशी की छेड़खानी का एक नमूना देखिए—

मन्त्री
खिल- खिलाता
कर बढ़ाता
भत्ते बनाता
पूँछ हिलाता
फिर आ रहा
मतदान पेटी के पास

6. संघर्षरत भावना—साठोत्तरी कविता में मानव की संघर्षरत स्थितियों का बखूबी चित्रण किया गया है। समाज के व्यवहार औ राजनीति से दु:खी मानव अपने आप को इनसे विमुक्त करने के लिए संघर्ष करता है—

जो हाथों से काम करते हैं
वे गुलाम हैं अभी भी
लगान भरते हैं लिखत देते हैं
और पाई भर जमीन के लिए खून करते हैं।
मुकदमे लड़ते हैं
जेल की रोटियाँ बेलते हैं
नागरिकता सीखते हैं
और उनकी पत्नियाँ अंधेरे के सीलन में
रोते हुए बच्चों को भरपेट पीटती हैं
फिर रो- रोकर प्यार जताती है
कचरे में सनी हुई
पूजा करती है और जीवित रहती हैं।

7. यथार्थ से सीधा साक्षात्कार—साठोत्तरी कविता में यथार्थ से सीधा साक्षात्कार किया गया है। डॉ. बलदेव बंशी का यह कथन इस सम्बन्ध में उचित प्रतीत होता है—''समकालीन कविता ने सहज रूप में और व्यापक परिप्रेक्ष्य में विचार- विवेक, समाज से सम्बद्धता की शक्ति को धारण कर अपेक्षाकृत तेज अर्थों में स्वयं को सज्जित किया है। वैचारिक थोथापन, लक्ष्यहीनता या ढुलमुलपन को छोड़कर वह विषय के साथ सीधा साक्षात्कार करने और लक्ष्य पर चोट करने की धृष्टता के साथ सामने आई है। उसमें वह व्यावहारिक या अभिजात्य विहीनता है जो छद्म एवं यथार्थ को सीधी आंखों देखने में होती है। इसी कारण इसमें अधिक उग्रता है, निर्मम क्रूरता है उकसाने और प्रेरित करने वाली सक्रियता है।'' यथा—

''अगर मैं

एक मामूली सी घटना में
पढ़ सकता हूँ इतिहास
तो मामूली सी भाषा में ढाल सकता हूँ
वज्रपाश''

8. सपाट बयानी—साठोत्तरी कविता की एक महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति उसकी सपाट बयानी है। यह सपाट बयानी उसकी कमजोरी भी है। जीवन के कटुतिक्त, अनुभव, विसंगतियों को इस कविता में बिना किसी सहारे के सपाट रूप में प्रस्तुत किया गया है। यथा—

''मैंने ऐनक के कांच साफ किये
खाँसा और खंकारा
फिर लोकतंत्र और स्वंत्रता और
मानवीय अधिकारों की गरिमा पर
मसीहाई अन्दाज में भाषण किया।''

अपनी सपाट बयानी के कारण भी साठोत्तरी कविता लाक्षणिक एवं व्यंजनात्मक गरिमा से काफी दूर चली गई है। लेकिन वह अपनी इस प्रवृत्ति के कारण जन-जीवन के अधिक निकट आ गई है।

9. अभिव्यंजना शिल्प—साठोत्तरी कविता राजनीति के अधिक निकट होने के कारण इसकी भाषा में राजनीतिक शब्दावली का बाहुल्य विद्यमान है। इस कविता के कवि ने अनुभूत सत्य के संप्रेषण के लिए हर क्षेत्र से शब्दों का चयन किया है। इसलिए भाषा में वैविध्य की प्रधानता है।

उनके शब्द, उनके वाक्य गठन, उनके कथन में एक अजीव साम्य है। उनकी भाषा जीवन की भाषा है।

10. शैली—साठोत्तरी कविता में सपाट बयानी और वर्तमान परिवेश का यथार्थ चित्रण पाया जाता है। इसलिए यह कविता प्रतीक और बिम्बों से मुक्त है। लेकिन कहीं-कहीं उनका प्रयोग भी हुआ है। यथा—

पदाघातों के बीच
दूब सा उगा जीवन
गर्म तारकोल सा बिखरा
और जूतों में लिपटा जीवन,
सन्तों की कीट सा गूंथा-सना जीवन
जय ध्वनि के बीच
हाहाकार और पराजय का जीवन।

निष्कर्ष—इसके समग्र स्वरूप को देखने पर स्पष्ट होता है कि साठोत्तरी कविता में ऐसी नवीन प्रवृत्तियाँ विद्यमान हैं जो नई कविता या उसके समानान्तर विकसित अन्य काव्यधाराओं में नहीं पायी जाती है। वैचारिक और व्यंग्य इसकी अपनी निधियाँ हैं। इस कविता की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि इसके काव्य के सारे उपादनों को छोड़कर कविता का, उसके मूल रूप से जिन्दगी की भाषा में व्यक्त कर, जीवन से सम्बन्धित स्थापित कर दिया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

रश्मिरथी

रामधारी सिंह से दिनकर तक

बिहार राज्य, जिला मुंगेर (अब बेगूसराय), गांव सिमरिया– मिथिलांचल का प्रसिद्ध तीर्थ, उसी के सामान्य से काश्तकार बाबू रवि सिंह जी के घर दूसरे बेटे का जन्म हुआ, 23 सितम्बर, 1908 ई. को नाम पड़ा रामधारी सिंह।

ढाई ही वर्ष के थे ये रामधारी सिंह, कि पिताजी चल बसे। विधवा माँ करने लगीं बच्चों का लालन–पालन, परिवार का संचालन–सहयोग मिला कुछ हितैशी कुटुम्बी–जन का।

परिस्थिति ठीक विपरीत– और पढ़ाई का चाव प्राणों बसा। गाँव से लोअर प्राइमरी कर, मिडिल तक पढ़ने 4 कि.मी. रोज चलकर बारो। फिर मैट्रिक तक प्रतिदिन 15 कि.मी. चलकर मोकामा। बीच में गंगा नदी। सन् 1928 में मैट्रिक। तब गाँव छुटा। पटना विश्वविद्यालय के पटना कॉलेज से इतिहास में प्रतिश्ठा सहित बी.ए.। इतना होते–होते 1932 ई. व्यतीत।

यूँ तो पढ़ने का चाव अन्तिम क्षण तक वैसा ही रहा– पर 1932 ई. के बाद आगे पढ़ने की व्यवस्था के अभाव में नौकरियों की खोज, क्योंकि परिवार के बोझ। पहली नौकरी बरबीघा हाई स्कूल के प्रधानाध्यापक पद पर, 1933–34 ई., फिर निबन्धन विभाग के अवर निबन्धक के रूप में 1934 से 1942 तक। 1943 से 1945 ई तक सांग पब्लिसिटी ऑफिसर फिर जनसंपर्क विभाग के उपनिदेशक पद पर, 1947 से 1950 तक। इसके बाद मुज्फ्फरपुर के लंगट सिंह कॉलेज में हिन्दी प्राध्यापक 1950 से 52 तक।

स्वतंत्रता मिली और पहली संसद् गठित होने लगी तो अपने प्रेरक कवित्व के कारण कांग्रेस की ओर से निर्वाचित होकर, राज्य सभा के सदस्य रूप में 1952 से 1963 तक। 1963 से 1965 ई. तक भागलपुर विश्वविद्यालय के उपकुलपति। अन्ततः, 1965 से 1972 तक भारत सरकार के गृहविभाग में हिन्दी सलाहकार।

24 अप्रैल 1974 को रात्रि में, तिरुपति (आन्ध्र) में भगवान् व्यंकटेश्वर के दर्शनों से लौटकर, मद्रास में शरीर–त्याग।

श्री रामधारी सिंह के दिनकर–तत्व को पोशित–पल्लवित किया तुलसीजी के 'रामचरित मानस' तथा मैथिलीशरण जी गुप्त एवं माखनलालजी चतुर्वेदी की कविताओं ने। उनके मन पर जिनकी छाप पड़ी और जिनसे उन्होंने प्रेरणा ग्रहण की वे घटनाएँ और व्यक्तित्व हैं–अपने देश का स्वतंत्रता–संग्राम, विश्वस्तर पर स्वातन्त्र्य–कामियों के संघर्श, गांधीजी के कार्य और विचार, लेनिन के नायकत्व में निश्यादिल क्रान्ति, भगत सिंह की और गणेश शंकर विद्यार्थी की शहादतें, स्वामी सहजानन्द सरस्वती का किसान आन्दोलन, स्वामी विवेकानन्दज, राजा राममोहन राजी, स्वामी दयानन्दजी सरस्वती, श्रीमती एनी बीसेण्ट, दो–दो विश्वयुद्ध और उनके कारण विचार–जगत् और साहित्य लोक के संघर्श–विवाद्– उनके लगभग पाँच हजार पृश्ठों में प्रकाशित वाङ्मय में इन सब की अनुगूज स्पश्ट रेखांकित की जा सकती है।

कवित्व के धरातल पर रविबाबू, इकबाल और नजरुलइस्लाम से उन्होंने गहरी प्रेरणा ली। इन्हीं के आधार पर भारत जैसे महान राश्ट्र के पाँचवें असली राश्ट्रकवि वे सिद्ध हुए। ('राश्ट्रकवि' कहते किसे है, इसका विवरण कश्प्या पश्भठ 128 पर देखें) उन्हें राश्ट्रीयता का उद्घोशक और क्रान्ति का उद्गाता तो सभी ने माना। उनकी रेणुका, हुंकार, सामधेनी आदि की कविताएँ स्वतन्त्रता–सेनानियों के लिए बड़ी प्रेरक सिद्ध हुई। इसी रूप में उन्हें बहुत अधिक रूप में लोकप्रियता मिली। लेकिन उनका दूसरा–अधिक मानवीय पक्ष, इससे छिप भी गया।

किन्तु, कोमल भावनाओं की जो क्षीण धारा 'रेणुका' में प्रकट हुई थी, 'रसवन्ती' में सुविकसित होकर 'उर्वशी' के रूप में भवनमोहिनी सिद्ध हुई। कहते हैं कि 'उर्वशी' हिन्दी साहित्य का गौरव ग्रन्थ है। 'न भूतो'।

राश्ट्रप्रेम और राश्ट्रीय स्वाभिमान का सबसे ज्वलन्त रूप प्रकट हुआ है उनकी सुविख्यात लम्बी कविता 'परशुराम की प्रतीक्षा' मे, युद्ध और शान्ति की समस्या का द्वन्द्व तो 'कुरुक्षेत्र' में व्यक्त होकर प्रतिश्ठित हो ही चुका है।

उनका गहन अध्ययन एवं सुगम्भीर चिन्तन मार्मिक अभिव्यक्ति पा सका है अधिकतर उनकी गद्य में। गद्य के अप्रतिम

शैलीकार के रूप में उन्होंने वैयक्तिक निबन्ध, साहित्यिक आलोचना, बोध–कथाएँ, संस्मरण, यात्रा–विवरण– सभी कुछ लिखकर अपनी विलक्षण प्रतिभा से हिन्दी साहित्य को समृद्धतर किया है।

'संस्कृति के चार अध्याय' नामक विशाल ग्रन्थ उनकी गहन गवेशणा, सूक्ष्म अन्वेशण, भारतीय संस्कृति से उपाम प्रेम का विशिश्ट उपहार तो है ही, उनकी विलक्षण क्षमताओं का अत्यन्त सजीव प्रमाण भी है।

मनवता के प्रति प्रतिबद्धता दलितों–दुखियों की दुर्दशा पर उत्साहपूर्वक रोश, गहन भारत–प्रेम और भारत–धर्म की परिपूर्णतम अभिव्यक्ति उनके साहित्य के सुन्दरतम लक्षण हैं।

उनकी सर्वप्रथम प्रकाशित रचना, 'बारदोली विजय' थी जो रीवाँ (मध्यप्रदेश) की 'छात्र–सहोदर' नामक पत्रिका में छपी थी। सन् 1929 ई. में पुस्तक रूप में 'प्रणभंग' शीर्शक खण्ड–काव्य प्रकाशित हुआ। गद्य–पद्य मिलाकर उनकी कुल रचनाएँ लगभग पचास हैं।

अनेक देशी–विदेशी भाशाओं में उनकी कविताएँ अनुदित हो चुकी हैं। उनकी बाल–कविताओं और अन्य फुटकर काव्य रचनाओं का रूसी अनुवाद बहुचर्चित एवं सुप्रशंसित हो चुका है।

साहित्य अकादमी और ज्ञानपीठ पुरस्कारों से सम्मानित तथा 'पद्मभूशण' की उपाधि से अलंकश्त दिनकरजी काव्य–गगन के अति देदीप्यमान नक्षत्र हैं।

कथावस्तु

इस पुस्तक का नाम रश्मिरथी है, जिसका अर्थ होता है वह व्यक्ति जिसका रथ रश्मि अर्थात् पुण्य का हो। इस काव्य में रश्मिरथी नाम कर्ण का है क्योंकि उसका चरित्र अत्यन्त पुण्यमय और प्रोज्ज्वल है।

कर्ण महाभारत महाकाव्य का अत्यन्त यशस्वी पात्र है। उसका जन्म पाण्डवों की माता कुन्ती के गर्भ से उस समय हुआ जब कुन्ती अविवाहिता थीं, अतएव, कुन्ती ने लोकलज्जा से बचने के लिए, अपने नवजात शिशु को एक मंजूशा में बन्द करके नदी में बहा दिया। वह मंजूशा अधिरथ नाम के सूत को मिली। अधिरथ के कोई सन्तान नहीं थी। इसलिए उन्होंने इस बच्चे को अपना पुत्र मान लिया। उनकी धर्मपत्नी का नाम राधा था। राधा से पालित होने के कारण ही कर्ण का एक नाम राधेय भी है।

कौरव–पाण्डव का वंश–परिचय यह है कि दोनों महाराज शान्तनु के कुल में उत्पन्न हुए। शान्तनु से कई पीढ़ी ऊपर महाराज कुरु हुए थे। इसलिए कौरव–पाण्डव दोनों कुरुवंशी कहलाते है। शान्तनु का विवाह गंगाजी से हुआ था, जिनसे कुमार देवव्रत उत्पन्न हुए। यही देवव्रत भीश्म कहलाये, क्योंकि चढ़ती जवानी में ही उन्होंने आजीवन ब्रह्मचारी रहने का भीश्म अथवा भयानक प्रतिज्ञा की थी। महाराज शान्तनु ने निशाद–कन्या सत्यवती से भी विवाह किया था, जिससे उन्हें चित्रांगद और विचित्रवीर्य दो पुत्र हुए। चित्रांगद कुमारावस्था में ही एक युद्ध में मारे गये। विचित्रवीर्य के अम्बिका और अम्बालिका नाम की दो पत्नियां थीं, क्षय रोग हो जाने के कारण विचित्रवीर्य भी निःसन्तान ही मरे।

ऐसी अवस्था में वंश चलाने के लिए सत्यवती ने व्यासजी को आमन्त्रित किया। व्यासजी ने नियोग–पद्धति से विचित्रवीर्य की दोनों विधवा पत्नियों से पुत्र उत्पन्न किये। अम्बिका ने धश्तराश्ट्र और अम्बालिका ने पाण्डु जन्मे। मातश्–दोश से धश्तराश्ट्र जन्म से ही अंधे और पाण्डु पीलिया के रोगी थे। अतएव, अम्बिका की प्रेरणा से व्यासजी ने उसकी दासी से तीसरा पुत्र उत्पन्न किया जिसका नाम विदुर हुआ।

राजा धश्तराश्ट्र के सौ पुत्र एक ही पत्नी महारानी गन्धारी से हुए थे। महाराज पाण्डु के दो पत्नियाँ थीं, एक कुन्ती, दूसरी माद्री। परन्तु, ऋशि से मिले शाप के कारण वे स्त्री–समागम से विरत थे। अतएव, कुन्ती ने अपने पति की आज्ञा से तीन पुत्र तीन देवताओं से प्राप्त किये। जैसे कुमारावस्था में कुन्ती ने सूर्य–समागम से कर्ण को उत्पन्न किया था, उसी प्रकार विवाह होने पर उसने धर्मराज से युधिश्ठिर, पवनदेव से भीम और इन्द्र से अर्जुन को उत्पन्न किया। माद्री के एक ही गर्भ दो पुत्र उत्पन्न हुए, एक नकुल, दूसरे सहदेव– ये दोनों भाई भी महाराज पाण्डु के अंश से नहीं, दो अश्विनीकुमारों

के अंश से थे। पाण्डु के मरने पर माद्री सती हो गयी और पाँचों पुत्रों के पालन का भार कुन्ती पर पड़ा। माद्री महाराज शल्य की बहन थी।

प्रथम सर्ग

कौरव और पाण्डव जब छात्रावस्था में थे, तब उन्हें शस्त्रास्त्र की शिक्षा देने के लिए द्रोणाचार्य नियुक्त किये गये। जब कुमारों की शिक्षा पूर्ण हो गयी, तब उनके रण–कौशल का जनता के समक्ष प्रदर्शन करने को एक सार्वजनिक आयोजन किया गया। इसी आयोजन में अचानक कर्ण प्रकट हुआ और चूँकि उस दिन सभा में सबसे अधिक प्रशंसा अर्जुन के अस्त्र–चालन की हुई थी, इसलिए कर्ण ने अपने साथ भिड़ने की चुनौती भी उसे ही दी। किन्तु, कृपाचार्य ने कहा कि जब तक यह विदित नहीं हो जाय कि कर्ण की जाति क्या है तथा वह राजपुत्र है या नहीं, तब तक अर्जुन उसके साथ लड़कर उसे सम्मान नहीं देगा। दुर्योधन को अर्जुन से द्वेश तो था ही उसने सभा के समक्ष ही कर्ण को अंग देश का राजा बना दिया। फिर भीम और दुर्योधन में गाली–गलौज होने लगी, जिसे कृपाचार्य ने रोक दिया।

जब सभा विसर्जित हुई और लोग अपने–अपने घर जाने लगे, तब रास्ते में द्रोणाचार्य ने अर्जुन से कहा कि 'अर्जुन, कर्ण तुम्हारा बैरी और प्रतिबल होगा। मैंने एकलव्य का अँगूठा तो इसलिए कटवा लिया कि तुम्हारे समान धनुर्धर और कोई न हो, किन्तु, इस कर्ण ने साथ क्या बर्ताव करें? एक बात तो ठीक है कि मैं उसे अपना शिश्य नहीं बनाऊँगा।'

जब कश्पाचार्य ने सभा में कर्ण की जाती पूछी थी, उस समय कुन्ती परदे के पीछे रनिवास में बैठी हुई थी। किन्तु, उन्हें इतना साहस नहीं हुआ कि बढ़कर कश्पाचार्य से यह कह दें कि कर्ण की माता मैं ही हूँ। फिर भी, शोक के कारण वे मूर्च्छित हो गयीं और जब घर लौटने लगी, तब रथ तक जाने में भी उनके पाँव डगमगाने लगे।

द्वितीय सर्ग

रंग–ढंग से कर्ण को यह बात ज्ञात हो चुका था कि द्रोणाचार्य निश्छल होकर उसे धनुर्विद्या नहीं सिखायेंगे। इसलिए, शास्त्रास्त्र सीखने को वह उस समय के महा–प्रतापी वीर, परशुराम जी की सेवा में पहुचा। परशुराम संसार से अलग होकर उन दिनों महेन्द्रगिरि पर रहते थे। उनका प्रण था कि 'ब्राह्मणेतर जाति के युवकों को शस्त्रास्त्र की शिक्षा नहीं दूंगा।' किन्तु, जब उन्होंने कर्ण का तेजोद्दीप्त शरीर और उसके कवच–कुण्डल देखे, तब उन्हें स्वयं भासित हुआ कि यह ब्राह्मण का बेटा होगा। कर्ण ने गुरु की इस भ्रान्ति का खण्डन नहीं किया। वह माँ के पेट ही से सुवर्ण के कवच और कुण्डल पहने जन्मा था। शस्त्रास्त्र की शिक्षा तो परशुराम जी ने उसे खूब दी, लेकिन एक दुर्भाग्यपूर्ण घटना ने भण्डाफोड़ कर दिया। बात यह हुई कि एक दिन परशुराम कर्ण की जाँघ पर सिर रखकर सोये हुए थे, इतने में एक कीड़ा उड़ता हुआ आया और कर्ण की जाँघ के नीचे घुसकर घाव करने लगा। कर्ण इस भाव से निश्चल बैठा रहा कि हिलने–डुलने से गुरु की नींद उचट जायेगी। किन्तु, कीड़े ने उसकी जाँघ में ऐसा गहरा घाव कर दिया कि उससे लहू बह चला। पीठ में गर्म लहू का स्पर्श पाते ही परशुराम जग पड़े और सारी स्थिति समझते ही विस्मित हो रहे। उन्हें लगा, इतना धैर्य ब्राह्मण में कहाँ से आ सकता है? अवश्य ही, कर्ण क्षत्रिय अथवा किसी अन्य जाति का युवक है। कर्ण सत्य को और छिपा नहीं सका तथा उसने गुरु के समक्ष सारी बातें स्वीकार कर लीं। इस पर भी परशुराम शान्त नहीं हुए और उन्होंने यह शाप दे डाला कि ब्रह्मास्त्र चलाने की जो शिक्षा मैंने दी है, उसे तू अन्तकाल में भूल जायेगा।

तश्तीय सर्ग

कौरवों ने द्युत के छल से पाण्डवों को तेरह वर्शो तक वनवास झेलने को विवश किया था। इन तेरह वर्शो में से बारह वर्शो तक पाण्डव वनों में खुलकर रह सकते थे किन्तु तेरहवें वर्श उन्हें अज्ञातवास करना था, जिसमें उन्हें कोई पहचान न सके। जब अज्ञातवास भी पूरा हो गया, तब पाण्डव इन्द्रप्रस्थ वापस आये और कौरवों तथा पाण्डवों के बीच सन्धि कराने को भगवान कश्भण हस्तिनापुर गये, जो कौरवों की राजधानी थी। लेकिन सन्धि की कौन कहे, दुर्योधन ने उल्टे भगवन् कश्भण को गिरफ्तार करना चाहा। उस पर भगवान को क्रोध आ गया और भरी सभा में उन्होंने अपना विराट् रूप प्रकट किया। कहते हैं, उनका क्रुद्ध विराट् रूप देखते ही लोग मूर्च्छित हो गये। केवल विदुरजी की चेतना ठीक रही। उन्होंने

धृतराष्ट्र से कहा, 'महाराज आश्चर्य की बात है कि भगवान् अपने विराट् रूप में विराज रहे हैं। इस पर धृतराष्ट्र ने अपने अंधे होने पर पश्चाताप किया। कहते हैं कि पश्चाताप करते ही विराट् रूप देखने तक के लिए उनको दृष्टि मिल गयी।

विराट् रूप देखकर जब भगवान कृष्ण कौरवों की सभा छोड़कर चले, तब उन्हें आदरपूर्वक नगर से कुछ दूर पहुँचाने के लिए उनके साथ कर्ण गया था। भगवान् को गिरफ्तार करने की दुरभिसन्धि में कर्ण का भी हाथ था। अतएव वह लज्जित होकर ही भगवान के सामने आया था। किन्तु, राजनीति–विशारद् कृष्ण ने बाँह पकड़ कर उसे अपने रथ में बिठा लिया और रास्तें में वे उसे समझाने लगे कि 'तू वास्तव में कुन्ती का पुत्र है। अतएव, तुझे चाहिए कि कौरवों को छोड़कर पाण्डवों के पक्ष में आ जाये। तू तो कुन्ती का पहला ही पुत्र है, अतएव, पाण्डवों की ओर से राज्याभिशेक हम तेरा ही करेंगे। सभी पाण्डव तेरे पीछे–पीछे चलेंगे और मैं भी तेरे ही पीछे चलूँगा।'

किन्तु, कर्ण इससे विचलित नहीं हुआ। उसने कहा कि 'जो रहस्य आप बतला रहे हैं, उसकी सूचना मुझे सूर्यदेव से पहले ही मिल चुकी है। किन्तु कुन्ती ने मेरे साथ माता का बर्ताव नहीं किया। जो बात आप आज कह रहे हैं, उसे कुन्ती को उस दिन बतला देना चाहिए था, जिस दिन सबके सामने कृपाचार्य ने मेरी जाति पूछी थी। अब भला कौन विश्वास करेगा कि मैं कुन्ती का ही पुत्र हूँ? इससे तो मुझे और अर्जुन दोनों को कलंक लगने वाला है। इसके सिवा, जरा यह भी तो सोचिये कि दुर्योधन ने मेरे प्रति कैसा निश्छल व्यवहार किया है? अब आज जब उस पर आपदाएँ आयी हैं, मै उसे कैसे छोड़ सकता हूँ? वह मेरा परम मित्र है और विपत्ति में मित्र साथ न देना सबसे बड़ा पाप है। मैं राजा बनना नहीं चाहता, न यही चाहता हूँ कि संसार मुझे युधिश्ठिर के अग्रज रूप में जानकर मेरा सम्मान करे। मैं तो युद्ध के निमित्त तत्पर हूँ, यह इसलिए कि दुर्योधन का मेरा रोम–रोम पर ऋण है और प्राण देकर भी उसे ऋण को चुकाना चाहता हूँ। अतएव, अब युद्ध को रोक रखने का प्रयत्न व्यर्थ है। अब तो कोई शुभ दिन देखकर लड़ाई शुरू करा दीजिये।'

चतुर्थ सर्ग

पाण्डवों को बराबर यह भय लगा था कि जब तक कर्ण प्रकृतिप्रदत्त कांचन कवच और कुण्डल से सुरक्षित है तब तक युद्ध में उसे कोई मार नहीं सकेगा। इसलिए भगवान् ने अर्जुन के देव–पिता इन्द्र से कहा कि किसी प्रकार कर्ण के शरीर से कवच–कुण्डल अलग कर दो। किन्तु, इन्द्र यह काम कैसे करता? निदान उसने कर्ण की उदारता को अपने आक्रमण का माध्यम बनाया और उसके पुण्य के द्वार पर ही उसे लूट लिया।

कर्ण अपने समय का अप्रतिम दानवीर था। वह नित्य प्रति एक पहर तक सूर्य की पूजा करता था और उस समय याचक जो माँगते, कर्ण खुशी–खुशी दे देता था। इन्द्र स्थिति का लाभ उठा कर उससे कवच और कुण्डल का दान माँगने आया। सूर्य उसके पूर्व कर्ण को सावधान कर चुके थे कि आज इन्द्र ब्राह्मण का रूप धरकर तुमसे कवच–कुण्डल माँगने आयेगा, तुम देना नहीं। किन्तु इस चेतावनी का कोई परिणाम नहीं निकला। इन्द्र जब भिक्षुक ब्राह्मण का वेश बनाकर कर्ण के सामने आया और उससे कवच और कुण्डल की याचना की, कर्ण 'नाहीं' न कर सका और सारे भाड्यंत्र से अवगत होते हुए भी उसने कवच–कुण्डल के रूप में अपनी विजय तथा अपने जीवन का दान कर दिया। यह कर्ण के जीवन का सबसे बड़ा दान था।

अपनी लज्जा छिपाने को इन्द्र ने भी कर्ण को एकघ्नी नाम अस्त्र दिया और कहा कि जिस किसी व्यक्ति पर तुम इसे चलाओगे, वह अवश्य मारा जायेगा। किन्तु, एक बार से अधिक तुम इसे नहीं चला सकोगे। यही अस्त्र कर्ण ने दुर्योधन के हठ के कारण घटोत्कच पर चलाया। घटोत्कच तो मर गया, किन्तु एकघ्नी वापस इन्द्र के पास चली गयी।

पंचम सर्ग

जब कृष्ण के समझाने पर कर्ण नहीं माना और वह पाण्डवों के पक्ष में आने को तैयार नहीं हुआ, तब वही प्रस्ताव लेकर कुन्ती उसके पास गयी। कुन्ती को कर्ण के समक्ष जाकर उसे पुत्र कहकर पुकारने का साहस नहीं था। वह प्रतिदिन सोचती थी कि अब कर्ण को सब कुछ बताये बिना काम नहीं चलेगा। किन्तु, कर्ण की ओर जाने का उसे साहस नहीं होता था। आखिरकार जब युद्धाभ्यास को मात्र एक दिन रह गया, त बवह सारी शक्ति समेट कर कर्ण के पास गयी और बोली

कि 'तू मेरा बेटा और पाण्डवों का भाई है, अतएव इस युद्ध में इन्हीं का नेता बन।' कर्ण ने कुन्ती को उससे भी कड़ा उत्तर दिया, जैसा उसने भगवान कृष्ण को दिया था। कुन्ती बेचारी निरूत्तर हो गयी और यह कहकर जाने लगी कि 'सुनती थी कि तू बड़ा ही दानी है, किन्तु, आज माता को ही भीख नहीं मिली।' यह सुनते ही कर्ण वीर–हृदय द्रवित हो गया और उसने कहा कि 'यदि मेरे द्वार से कोई खाली हाथ नहीं जाता है, तो तुम भी निराश नहीं जाओगी। लो, मैं तुम्हें वचन देता हूं कि अर्जुन के सिवा अन्य पाण्डवों को हाथ आया पाकर भी मैं उनका वध नहीं करूँगा। हाँ, अर्जुन हाथ आया तो उसे जीवित छोड़ना मेरे वश की बात नहीं है।'

कुन्ती बोली, 'यह दान भी कोई दान है? मैं छह बेटों की माता बनने को आयी थी, सो अब पाँच भी नहीं रहे, केवल चार बेटों की माता बनकर वापस जा रही हूँ।'

इस पर कर्ण भावुकता में आ गया और बोला, 'छह और चार का हिसाब गलत है माँ, तुम जब तक जिओगी, पाँच बेटों की माता बनी रहोगी। इस युद्ध में यदि अर्जुन ने मुझे मार डाला तो पाँचों पाण्डव ज्यों–के–त्यों बने ही रहेंगे। हाँ, यदि अर्जुन मरा और विजय दुर्योधन की हुई, तो मैं दुर्योधन का पक्ष छोड़कर तुम्हारे पास आ जाऊँगा, जिससे पाण्डवों की संख्या पाँच–की–पाँच ही रह जाय। किन्तु मैं यह व्यर्थ कह रहा हूँ। जिसके रक्षक स्वयं कृष्ण है, उसका विनाश क्यों होगा?

भाश्ठ सर्ग

भीश्म कर्ण से प्रत्यक्षतः घृणा करते थे, जिसका कारण यह था कि दुर्योधन अधिकतर कर्ण के कहने में था। एक प्रकार से दुर्योधन के प्रेम और विश्वास को लेकर भीश्म और कर्ण में भीतर–भीतर प्रतिस्पर्द्धा चलती थी। अतएव भीश्म कभी भी कर्ण से मीठी बात नहीं बोलते थे। युद्धारम्भ के पूर्व उन्होंने कर्ण के बेटे को तो रथी कहा, कर्ण को 'अर्धरथी' कह दिया। इसका कर्ण बुरा मान गया और उसने कहा कि 'अब यह नहीं हो सकता कि आप और मैं एक रण में एक साथ प्रवेश करें, क्योंकि महारथी के रहते अर्धरथी को वीरता का सुयश नहीं मिलेगा। अतएव, उचित यही है कि अकेले आप लड़ लें या मैं युद्ध करूँ। निश्चित हुआ कि पहले भीश्म लड़ेंगे। और भीश्म जब तक लड़ते रहे, कर्ण ने शस्त्र नहीं उठाया। दस दिनों बाद जब भीश्म शरशया पर गिरे तब द्रोणाचार्य के सेनापतित्व में कर्ण ने संग्राम में प्रवेश किया।

भाश्ठ सर्ग का आरम्भ इसी प्रसंग से होता है, जब कर्ण युद्धारम्भ के पूर्व पितामह से आज्ञा लेने को उनके समीप जाता है। भीश्म कहते हैं कि अब युद्ध समाप्त हो जाना चाहिए। किन्तु रणोन्मत्त कर्ण उनका उपदेश नहीं मानता। वह युद्ध में प्रवेश करता और पाण्डवी सेना को तहस–नहस कर डालता है।

इसी प्रसंग में इस बात की विचिकित्सा की गयी है कि महाभारत का युद्ध धर्मयुद्ध था या नहीं, उपसंहार यह निकलता है कि कोई भी युद्ध धर्मयुद्ध नहीं हो सकता। युद्ध के आदि, मध्य और अन्त सब पापयुक्त होते हैं। जब हिंसा आरम्भ हो गयी तब धर्म कहाँ रहा? युद्ध मनुश्य इसलिए करता है कि वह जल्दी अपना लक्ष्य प्राप्त कर ले। किन्तु, लक्ष्य की प्राप्ति को धर्म नहीं कहते। धर्म तो लक्ष्य की ओर सन्मार्ग से चलने का नाम है, धर्म साध्य नहीं, साधन को देखता है। किन्तु, युद्ध में प्रवश्त्त होने पर मनुश्य का ध्यान साधन पर नहीं रहता, वह किसी भी प्रकार विजय चाहने लगता है। और यही आतुरता उसे पाप के पंक में ले जाती है, फिर क्या आश्चर्य कि युद्ध में प्रवश्त्त होने पर, कौरव और पाण्डव, दोनों ने पाप किये, दोनों ने विजय–बिन्दु तक पहले पहुँच जाने को सन्मार्ग का त्याग किया।

इसके बाद, घटोत्कच–वध की कथा आती है। कर्ण का पाण्डव–सेना पर भयानक कोप देखकर भगवान् घटोत्कच को बुलाते हैं। उसके युद्ध में प्रवेश करते ही कौरवों की सेना में हाहाकार मच जाता है और दुर्योधन कर्ण से कहने लगता है कि अर्जुन का मस्तक तो अभी दूर है, एकघ्नी चलाकर तुमने घटोत्कच का तुरंत वध नहीं किया तो, हार तो अभी हुई जाती है।

निदान, कर्ण एकघ्नी का प्रयोग करता है। घटोत्कच की मश्त्यु होती है, कौरवों के बीच हर्शोल्लास छा जाता है और

पाण्डव रोने लगते हैं। परन्तु दो व्यक्ति हैं, जिनका हँसना और रोना विशेश अर्थ रखता है, पाण्डवों की सेना में आर्तनाद है, किन्तु, भगवान कश्भण जी खोलकर हँस रहे हैं। कौरवों की सेना में उल्लास है, परन्तु उनका प्रधान वीर कर्ण ऐसा दिखता है, मानो उसका सर्वस्व लुट गया हो।

सप्तम सर्ग

घटोत्कच वध के बाद द्रोणाचार्य का निधन हुआ। द्रोणाचार्य के बाद कर्ण के सेनापतित्व की बारी आयी।

कर्ण विपरीत परिस्थितियों में लड़ा। कवच–कुण्डल तो वह पहले ही इन्द्र को दे चुका था। इन्द्र ने एकघ्नी नामक जो अस्त्र उसे मिला था, वह भी घटोत्कच, को मारकर उसके पास से चला गया था। फिर कुन्ती को उसने वचन दिया था कि अर्जुन के सिवा और पाण्डवों का वध मैं नहीं करूँगा। इस पर, शल्य को उसने सारथी बनाया। शल्य युधिष्ठिर का मामा था और पाण्डवों ने शल्य को सिखला रखा था कि जब आप कर्ण का रथ हाँकिये तब उसे दुर्वचन कहते रहिये जिससे उसका तेज मन्द होता जाय।

तब भी कर्ण का पाण्डवी सेना पर भयानक आक्रमण हुआ और पाण्डवी पक्ष के वीर जवाब नहीं दे सके। कर्ण आज प्राणपण से लड़ रहा था। उसकी इच्छा थी कि अर्जुन और कश्भण दोनों को बन्दी बनाकर समरभूमि में ही दुर्योधन का जय–तिलक सजा दिया जाय। वह उत्साह से लड़ रहा था। उसी समय धर्मराज युधिष्ठिर उसके सामने पड़े गये। युधिष्ठिर को उसने पकड़ लिया, किन्तु कुन्ती को दिये गये वचन को याद करके उसने उन्हें छोड़ दिया। उस दिन, इसी प्रकार भीम, नकुल और सहदेव भी उसके वश में आ गये। कर्ण उन्हें मार सकता था किन्तु कुन्ती के कारण उसने चारों को जीवित छोड़ दिया।

इस स्थिति से किंचित कुपित होकर, किन्तु, वास्तव में, कर्ण का अपमान करने के लिए शल्य कहता है कि 'तू जो इस प्रकार पाण्डवों को छोड़े जा रहा है, इससे मालूम होता है तू अर्जुन के बाणों से डरकर कायर हो रहा है।' कर्ण कहता है कि 'मैंने चारों पाण्डवों को छोड़ दिया, यह भेद बताने लायक नहीं है। यह तो व्रत की वेदना है जिसे मैं भीतर–भीतर सहूँगा। मैंने इन चारों वीरों को नहीं छोड़ा है, प्रत्युत, पुण्य के सौरभ फूल भगवान् पर चढ़ा दिये हैं।'

इतने में अर्जुन से उसका सामना होता है। अर्जुन को एक बार वह मूर्च्छित कर देता है। किन्तु, अर्जुन मूर्च्छा से जगकर फिर भयानक पराक्रम में प्रवश्त हो जाता है। कर्ण ओर अर्जुन का यह संग्राम ऐसा घनघोर है कि दोनों पक्षों के वीर लड़ना छोड़कर इन्हीं का युद्ध देखने लग जाते हैं।

इसी बीच अश्वसेन सर्प आता है और कर्ण से प्रार्थना करता है कि 'मुझे तू अपने बाण पर चढ़ाकर अर्जुन पर फेंक तो सही, मैं अभी उसका खात्मा किये देता हूँ और तुझे विजय अनायास मिल जाती है।' महाभारत में लिखा है कि कर्ण ने अश्वसेन की सहायता यह कहकर अस्वीकश्त कर दी कि 'साँप की सहायता से यदि एक सौ अर्जुनों का वध होता हो, तो भी मैं यह सहायता स्वीकार नहीं करूँगा। जो पतित, पामर, अनाचारी और मानवता का शत्रु है वह तो मेरा भी शत्रु ठहरा, फिर उसकी सहायता में अपने पुण्य को नश्ट क्यों करूँ?'

इसके बाद भगवान कश्भण कर्ण के शौर्य की प्रशंसा करते हैं और साथ ही साथ अर्जुन को कर्ण के विरुद्ध उत्तेजित भी। इतने में कर्ण को अपनी मश्त्यु का पूर्वाभास होता है और वह काल को धमकाकर शल्य से कहता है कि 'अब मेरा रथ वहाँ ले चलो जहाँ कश्भण और अर्जुन के साथ पाण्डव पक्ष के सभी नामी वीर वर्तमान हों। आज साकार प्रलय के बीच घमासान मचाता हुआ मैं मश्त्यु का वरण करूँगा।'

शल्य रथ को भगवान के सामने ले जाता है। यहीं अभिशाप के कारण कर्ण के रथ के पहिये धरती में धँस जाते हैं और किसी प्रकार निकाले निकलते ही नहीं। कर्ण रथ में नीचे उतरकर उसे निकालने में तत्पर होता है, किन्तु भगवान कृश्ण का संकेत पाकर अर्जुन उसे निःशस्त्र अवस्था में ही, बाणों से बींधने लगता है, यहाँ कर्ण और कृश्ण का थोड़ा संवाद होता है, जिसमें दोनों पक्ष दोनों पक्षों पर दोशारोपण करते हैं। संवाद समाप्त होते–होते कर्ण अपने पुण्यबल का आह्वान करता है और सूर्य की ओर दृश्टि करके वह मृत्यु के लिए तैयार हो जाता है। अर्जुन के लिए यह अच्छा अवसर है। उसका एक बाण आकर कर्ण के गले में लगता है और कर्ण के प्राण तेजोमय रूप में उड़कर सूर्य में समा जाते हैं।

सर्ग का अन्त युधिष्ठिर और कश्मण के संवाद में होता है। युधिष्ठिर कर्ण की मश्त्यु पर हर्श प्रकट करते हैं किन्तु भगवान उदास हो जाते हैं। उनका कहना है कि 'यह विजय चरित्र खोकर हुई है। जीत असल में कर्ण की हुई। यह भूल जाइये कि कर्ण हमारा शत्रु था। वह द्रोण और भीश्म के समान आदर का पात्र है।'

प्रथम सर्ग

'जय हो' जग में जले जहाँ भी, नमन पुनीत अनल को,
जिस नर में भी बसे, हमारा नमन तेज को, बल हो।
किसी वश्न्त पर खिले विपिन में, पर, नमस्य है फूल,
सुधी खोजते नहीं गुणों का आदि, शक्ति का मूल।

ऊँच–नीच का भेद न माने, वही श्रेश्ठ ज्ञानी है,
दया–धर्म जिसमें हो, सबसे वही पूज्य प्राणी है।
क्षेत्रिय वही, भरी हो जिसमें निर्भयता की आग,
सबसे श्रेश्ठ वही ब्राह्मण है, हो जिसमें तप–त्याग।

तेजस्वी सम्मान खोजते नहीं गोत्र बतला के,
पाते हैं जग से प्रशस्ति अपना करतव दिखला के।
हीन मूल की ओर देख जग गलत कहे या ठीक,
वीर खींच कर ही रहते हैं इतिहासों में लीक।

जिसके पिता सूर्य थे, माता कुन्ती सती कुमारी,
उसका पलना हुआ धार पर बहती हुई पिटारी।
सूत–वंश में पला, चखा भी नहीं जननि का क्षीर,
निकला कर्ण सभी युवकों में तब भी अद्भुत वीर।

तन से समशूर, मन से भावुक, स्वभाव से दानी,
जाति–गोत्र का नहीं, शील का, पौरुश का अभिमानी।
ज्ञान–ध्यान, शस्त्रास्त्र, शास्त्र का कर सम्यक् अभ्यास,
अपने गुण का किया कर्ण ने आप स्वयं सुविकास।

अलग नगर के कोलाहल से, अलग पुरी–पुरजन से,
कठिन साधना मं उद्योगी लगा हुआ तन–मन से।
निज समाधि में निरत, सदा निज कर्मठता में चूर,
वन्यकुसुम–सा खिला कर्ण जग की आँखों से दूर।

नहीं फूलते कुसुम मात्र राजाओं के उपवन में,
अमित बार खिलते वे पुर से दूर कुंज–कानन में।
समझे कौन रहस्य? प्रकशति का बड़ा अनोखा हाल,
गुदड़ी में रखती चुन–चुन कर बड़े कीमती लाल।

जलद–पटल में छिपा, किन्तु रवि कब तक रह सकता है?
युग की अवहेलना शूरमा कब तक सह सकता है?
पकर समय एक दिन आखिर उठी जवानी जाग,
फूट पड़ी सबके समक्ष पौरुश की पहली आग।

रंग–भूमि में अर्जुन था जब समाँ अनोखा बाँधे,
बढ़ा भीड़–भीतर से सहसा कर्ण शरासन साधे।
कहता हुआ, 'तालियों से क्या रहा गर्व में फूल?
अर्जुन! तेरा सुयश अभी क्षण में होता धूल।

'तूने जो–जो किया, उसे मैं भी दिखला सकता हूँ,
चहे तो कुछ नयी कलाएँ भी सिखला सकता हूँ।
आँख खोल कर देख, कर्ण के हाथों का व्यापार,
फूले सस्ता सुशय प्राप्त कर, उस नर को धिक्कार।

इस प्रकार कह लगा दिखाने कर्ण कलाएँ रण की,
सभा स्तब्ध रह गयी, गयी रह आँख टँगी जन–मन की।
मन्त्र–मुग्ध–सा मौन चतुर्दिक् जन का पारावार,
गूँज रही थी मात्र कर्ण की धन्वा की टंकार।

Jai Narain Bhartiya Institute (Deemed University) Jodhpur

फिरा कर्ण त्यों 'साधु–साधु' कह उठे सकल नर–नारी,
राजवंश के नेताओं पर पड़ी विपद् अति भारी।
द्रोण, भीश्म, अर्जुन, सब फीके, सब हो रहे उदास,
एक सुयोधन बढ़ा, बोलते हुए, 'वीर! शाबाश!'

द्वन्द्व–युद्ध के लिए पार्थ को फिर उसने ललकारा,
अर्जुन को चुप हो रहने का गुरु ने किया इशारा।
कश्पाचार्य ने कहा– 'सुनो हे वीर युवक अनजान'
भरत–वंश–अवतंस पाण्डु की अर्जुन है संतान।

'क्षत्रिय है, यह राजपुत्र है, यों ही नहीं लड़ेगा,
जिस–तिस से हाथापाई में कैसे कूद पड़ेगा?
अर्जुन से लड़ना हो तो मत गहो सभा मे मौन,
नाम–धाम कुछ कहो, बताओ कि तुम जाति हो कौन?

'जाति! हाय री जाति! कर्ण का हृदय क्षोभ से डोला,
कुपित सूर्य की ओर देख वह वीर क्रोध से बोला
'जाति–जाति रटते, जिनकी पूँजी केवल पाशंड,
मैं क्या जानूँ जाति? जाति हैं ये मेरे भुजदंड।

'ऊपर सिर पर कनक–छत्र, भीतर काले–के–काले,
शरमाते हैं नहीं जगत् में जाति पूछने वाले।
सूत्रपूत्र हूँ मैं, लेकिन थे पिता पार्थ के कौन?
साहस हो तो कहो, ग्लानि से रह जाओ मत मौन।

'मस्तक ऊँचा किये, जाति का नाम लिये चलते हो,
पर, अधर्ममय शोशण के बल से सुख में पलते हो।
अधम जातियों से थर–थर काँपते तुम्हारे प्राण,
छल से माँग लिया करते हो अंगूठे का दान।

'पूछो मेरी जाति, शक्ति हो तो, मेरे भुजबल से,
रवि–समान दीपित ललाट से और कवच–कुण्डल से,
पढ़ो उसे जो झलक रहा है मुझमें तेज–प्रकाश,
मेरे रोम–रोम में अंकित है मेरा इतिहास।

'अर्जुन बड़ा वीर क्षत्रिय है, तो आगे वह आवे,
क्षत्रियत्व का तेज जरा मुझको भी तो दिखलाये।
अभी छीन इस राजपुत्र के कर से तीर–कमान,
अपनी महाजाति की दूँगा मैं तुमको पहचान।

कश्पाचार्य ने कहा 'वश्था तुम क्रुद्ध हुए जाते हो,
साधारण-सी बात, उसे भी समझ नहीं पाते हो।
राजपुत्र से लड़े बिना होता हो अगर अकाज,
अर्जित करना तुम्हें चाहिए पहले कोई राज।'

कर्ण हतप्रभ हुआ तनिक, मन–ही–मन कुछ भरमाया,
सह न सका अन्याय, सुयोधन बढ़कर आगे आया।
बोला– 'बड़ा पाप है करना, इस प्रकार, अपमान,
उस नर का जो दीप रहा हो सचमुच, सूर्य समान।

'मूल जानना बड़ा कठिन है नदियों का, वीरों का,
धनुश छोड़ कर और गोत्र क्या होता रणधीरों का?
पाते हैं सम्मान तपोबल से भूतल पर शूर,
'जाति–जाति' का शोर मचाते केवल कायर क्रूर।

'किसने देखा नहीं, कर्ण जब निकल भीड़ से आया,
अनायास आतंक एक संपूर्ण सभा पर छाया।
कर्ण भले ही सूत्रपुत्र हो, अथवा श्वपच, चमार,
मलिन, मगर, इसके आगे हैं सारे राजकुमार।

'करना क्या अपमान ठीक है इस अनमोल रतन का,
मनवता की इस विभूति का, धरती के इस धन का।
बिना राज्य यदि नहीं वीरता का इसको अधिकार,
तो मेरी यह खुली घोशणा सुने सकल संसार।

'अंगदेश क मुकुट कर्ण के मस्तक पर धरता हूँ।
एक राज्य इस महावीर के हित अर्पित करता हूँ।
रखा कर्ण के सिर पर उसने अपना मुकुट उतार,
गूँजा रंगभूमि में दुर्योधन का जय–जयकार।

कर्ण चकित रह गया सुयोधन की इस परम कश्पा से,
फूट पड़ा मारे कश्तज्ञता के भर उसे भुजा से।
दुर्योधन ने हृदय लगा कर कहा– 'बन्धु! हो शान्त,
मेरे इस क्षुद्रोपहार से क्यों होता उद्भ्रान्त?

'किया कौन–सा त्याग अनोखा, दिया राज यदि तुझको?
अरे, धन्य हो जायँ प्राण, तू ग्रहण करे यदि मुझको।'
कर्ण और गल गया, 'हाय, मुझ पर भी इतना स्नेह!
वीर बन्धु! ळम हुए आज से एक प्राण, दो देह।

'भरी सभा के बीच आज तूने जो मान दिया है,
पहले–पहल मुझे जीवन में जो उत्थान दिया है।
उऋण भला होऊँगा उससे चुका कौन–सा दाम?
कश्पा करें दिनमान कि आऊँ तेरे कोई काम।'

घेर खड़े हो गये कर्ण को मुदित, मुग्ध पुरवासी,
होते ही है लोग शूरता–पूजन के अभिलाशी।
चाहे जो भी कहे द्वेश, ईर्श्या, मिथ्या अभिमान,
जनता निज आराध्य वीर को, पर लेती पहचान।

लगे लोग पूजने कर्ण को कुंकुम और कमल से,
रंग–भूमि भर गयी चतुर्दिक् पुलकाकुल कलकल से।
विनयापूर्ण प्रतिवन्दन में ज्यों झुका कर्ण सविशेश,
जनता विकल पुकार उठी, 'जय महाराज अंगेश।

'महाराज अंगेश!' तीर–सा लगा हृदय में आ के,
विफल क्रोध में कहा भीम ने और नहीं कुछ पा के।
'हय की झाड़े पूँछ, आज तक रहो यही तो काज,
सूत–पुत्र किस तरह चला पायेगा कोई राज?'

दुर्योधन ने कहा– 'भीम! झूठे बकबक करते हो?
कहलाते धर्मज्ञ, द्वेश का विश मन में धरते हो।
बड़े वंश से क्या होता है, खोटे हों यदि काम?
नर का गुण उज्ज्वल चरित्र है, नहीं वंश–धन–धान।

'सचमुच ही तो कहा कर्ण ने, तुम्हीं कौन हो, बोलो,
ज्नमें थे किस तरह? ज्ञात हो, तो रहस्य यह खोलो?
अपना अवगुण नहीं देखता, अजब जगत् का हाल,
निज आँखों से नहीं सूझता, सच है अपना भाल।

कश्पाचार्य आ पड़े बीच में, बोल 'छि:! यह क्या है?
तुम लोगों में बची नाम को भी क्या नहीं हया है?
चलो, चलें घर को, देखो, होने को आयी शाम,
थके हुए होगे तुम सब, चाहिए तुम्हें आराम।'

रंग–भूमि से चले सभी पुरवासी मोद मनाते,
कोई कर्ण, पार्थ का कोई–गुण आपस में गाते।
सबसे अलग चले अर्जुन को लिए हुए गुरु द्रोण,
कहते हुए– 'पार्थ! पहुँचा यह राहु नया फिर कौन?

'जनमें नहीं जगत् में अर्जुन! कोई प्रतिबल तेरा,
टँगा रहा है एक इसी पर ध्यान आज तक मेरा।
एकलव्य से लिया अँगूठा, कही न मुख से आह,
रखा चाहता हूँ निश्कंटक बेटा! तेरी राह।
'मगर, आज जो कुछ देखा, उससे धीरज हिलता है,
मुझे कर्ण में चरम वीरता का लक्षण मिलता है।
बढ़ता गया अगर निश्कंटक यह उद्‌भट भट बाल,
अर्जुन! तेरे लिए कभी यह हो सकता है काल!

'सोच रहा हूँ क्या उपाय, मैं इसके साथ करूँगा,
इस प्रचंडतम धूमकेतु का कैसे तेज हरूँगा?
शिश्य बनाऊँगा न कर्ण को, यह निश्चित है बात,
रखना ध्यान विकट प्रतिभट का, पर तू भी हे तात!'

रंग–भूमि से लिए कर्ण को, कौरव शंख बजाते,
चले झूमते हुए खुशी में गाते, मौज मनाते।
कंचन के युग शैल–शिखर–सम सुगठित, सुघर, सुवर्ण,
गलबाँही दे चले परस्पर दुर्योधन औ' कर्ण।

बड़ी तश्प्ति के साथ सूर्य शीतल अस्ताचल पर से,
चूम रहे थे अंग पुत्र का स्निग्ध–सुकोमल कर से।
आज न था प्रिय उन्हें दिवस का समय सिद्ध अवसान,
विरम गया क्षण एक क्षितिज पर गति को छोड़ विमान।

और हाय, रनिवास चला वापस जब राजभवन को,
सबके पीछे चली एक विकला मसोसती मन को।
उजड़ गये हों स्वप्न कि जैसे हार गयी हो दाँव,
नहीं उठाये भी उठ पाते थे कुन्ती के पाँव।

द्वितीय सर्ग

शीतल, विरल एक कानन शोभित अधित्यका के ऊपर,
कहीं उत्स–प्रस्त्रवण चमकते, झरते कहीं शुभ्र निर्झर।
जहाँ भूमि समतल, सुन्दर है, नहीं दीखते हैं पाहन,
हरियाली के बीच खड़ा है, विस्तश्त एक उटज पावन।
आस–पास कुछ कटे हुए पीले धनखेत सुहाते हैं,
शशक, मूस, गिलहरी, कबूतर घूम–घूम कण खाते हैं।
कुछ तन्द्रिल, अलसित बैठे हैं, कुछ करते शिशु का लेहन,
कुछ खाते शाकल्य, दीखते बड़े तुश्ट सारे गोधन।

हवन–अग्नि बुझ चुकी, गन्ध से वायु, अभी, पर माती है,
भीनी–भीनी सुह के प्राण में मादकता पहुँचाती है,
धूप–धूम चर्चित लगते हैं तरु के श्याम छदन कैसे?
झपक रहे हों शिशु के अलसित कजरारे लोचन जैसे।

बैठे हुए सुखद आतप में मश्ग रोमन्थन करते हैं,
वन के जीव विवर से बाहर हो विश्रब्ध विचरते हैं।
सूख रहे चीवर, रसाल की नन्हीं झुकी टहनियों पर,
नीचे बिखरे हुए पड़े हैं इंगुद–से चिकने पत्थर।

अजिन, दर्भ, पालाश, कमंडलु–एक ओर तप के साधन,
एक ओर हैं टँगे धनुश, तूणीर, तीर, बरछे भीशण।
चमक रहा तश्ण–कुटी–द्वार पर एक परशु आभाशाली,
लौह–दण्ड पर जड़ित पड़ा हो, मानो, अर्ध अंशुमाली।

श्रद्धा बढ़ती अजिन–दर्भ पर, परशु देख मन डरता है,
युद्ध–शिविर या तपोभूमि यह, समझ नहीं कुछ पड़ता है।
हवन–कुण्ड जिसका यह उसके ही क्या हैं ये ध
नुश–कुठार?
जिस मुनि की यह स्त्रुवा, उसी की कैसे हो सकती तलवार?

आयी है वीरता तपोवन में क्या पुण्य कमाने को?
या संन्यास साधना में है दैहिक शक्ति जगाने को?
मन ने तन का सिद्ध–यन्त्र अथवा शस्त्रों में पाया है?
या कि वीर कोई योगी से युक्ति सीखने आया है?

परशु और तप, ये दोनों वीरों के ही होते श्रृंगार,
क्लीव न तो तप ही करता है, न तो उठा सकता तलवार।
तप से मनुज दिव्य बनता है, भाड़ विकार से लड़ता है,
तन की समर–भूमि में लेकिन, काम खड्ग ही करता है।

किन्तु, कौन नर तपोनिष्ठ है यहाँ धनुश धरनेवाला?
एक साथ यज्ञाग्नि और असि की पूजा करनेवाला?
कहता है इतिहास, जगत् में हुआ एक ही नर ऐसा,
रण में कुटिल काल–सम क्रोधी तप में महासूर्य–जैसा।

मुख में वेद, पीठ पर तरकस, कर में कठिन कुठार विमल,
शाप और शर, दोनों ही थे, जिस महान् ऋशि के सम्बल।
यह कुटी है उसी महामुनि परशुराम बलशाली का,
भृगु के परम पुनीति वंशधर, व्रती, वीर, प्रणपाली का।

हाँ–हाँ, वही, कर्ण की जाँघों पर अपना मस्तक धरकर,
सोये हैं तरुवर के नीचे, आश्रम से किंचित हटकर।
पत्तों से छन–छन कर मीठी धूप माघ की आती है,
पड़ती मुनि की थकी देह पर और थकान मिटाती है।

कर्ण मुग्ध हो भक्ति–भाव में मग्न हुआ–सा जाता है,
कभी जटा पर हाथ फेरता, पीठ कभी सहलाता है,
चढ़े नहीं चींटियाँ बदन पर, पड़े नहीं तृण–पात कहीं,
कर्ण सजग है, उचट जाय गुरुवर की कच्ची नींद नहीं।

'वश्द्ध देह, तप से कृश काया, उस पर आयुध–संचालन,
हाय, पड़ा श्रम–भार देव पर असमय यह मेरे कारण।
किन्तु, वश्द्ध होने पर अंगों में है क्षमता कितनी,
और रात–दिन मुझ पर दिखलाते रहते ममता कितनी।

'कहते हैं, 'ओ वत्स! पुश्टिकर भोग न तू यदि खायेगा,
मेरे शिक्षण की कठोरता को कैसे सह पायेगा?
अनुगामी यदि बना कहीं तू खान–पान में भी मेरा,
सूख जायगा लहू, बचेगा हड्डी–भर ढाँचा तेरा।

'जरा सोच, कितनी कठोरता से मैं तुझे चलाता हूँ,
और नहीं लो एक पाव दिन भर में रक्त जलाता हूँ।
इसकी पूर्ति कहाँ से होगी, बना अगर तू संन्यासी,
इस प्रकार तो चबा जायेगी तुझे भूख सत्यानाशी।

'पत्थर–सी हों मांस–पेशियाँ, लोहे–से भुजदण्ड अभय,
नस–नस में हो लहर आग की, तभी जवानी पाती जय।
विप्र हुआ तो क्या, रक्खेगा रोक अभी से खाने पर?
कर लेना घनघोर तपस्या वय चतुर्थ के आने पर।

'ब्राह्मण का है धर्म त्याग, क्या बालक भी त्यागी हों?
जन्म साथ, शिलोञ्छवश्त्ति के ही क्या वे अनुरागी हों?
क्या विचित्र रचना समाज की? गिरा ज्ञान ब्राह्मण–घर में,
मोती बरसा वैश्य–वेश्म में, पड़ा खड्ग क्षत्रिय–कर में।

खड्ग बड़ा उद्धत होता है, उद्धत होते हैं राजे,
इसीलिए तो सदा बनाते रहते वे रण के बाजे।
और करे ज्ञानी ब्राह्मण क्या? असि–विहीन मन डरता है,
राजा देता मान, भूप का वह भी आदर करता है।

'सुनता कौन यहाँ ब्राह्मण की, करते सब अपने मन की,
डुबो रही शोणित में भू को भूपों की लिप्सा रण की।
औ रण भी किसलिए? नहीं जग से दुख–दैन्य भगाने को,
परशोशक, पथ–भ्रान्त मनुज को नहीं धर्म पर लाने को।

'रण केवल इसलिए कि राजे और सुखी हों, मानी हों,
और प्रजाएँ मिलें उन्हें, वे और अधिक अभिमानी हों।
रण केवल इसलिए कि वे कल्पित अभाव से छूट सकें,
बढ़े राज्य की सीमा, जिससे अधिक जनों को लूट सकें।

'रण केवल इसलिए कि सत्ता बढ़े, नहीं पत्ता डोले,
भूपों के विपरीत न कोई, कहीं, कभी, कुछ भी बोले।
ज्यों–ज्यों मिलती विजय, अहं नरपति का बढ़ता जाता है,
और जोर से वह समाज के सिर पर चढ़ता जाता है।

'अब तो है यह दशा कि जो कुछ है, वह राजा का बल है,
ब्राह्मण खड़ा सामने केवल लिए शंख–गंगाजल है।
कहाँ तेज ब्राह्मण में, अविवेकी राजा को रोक सके,
धरे कुपथ पर जमी पाँव वह, तत्क्षण उसको टोक सके।

'और कहे भी तो ब्राह्मण की बात कौन सुन पाता है?
यहाँ रोज राजा ब्राह्मण को अपमानित करवाता है।
चलती नहीं यहाँ पंडित की, चलती नहीं तपस्वी की,
ज्य पुकारती प्रजा रात–दिन राजा जयी यशस्वी की।

'सिर था जो सारे समाज का, वही अनादर पाता है।
जो भी खिलता फूल, भुजा के ऊपर चढ़ता जाता है।
चारों ओर लोभ की ज्वाला, चारों ओर भोग की जय,
पाप–भार से दबी–धँसी जा रही धरा पल–पल निश्चय।

'जब तक भोगी भूप प्रजाओं के नेता कहलायेंगे,
ज्ञान, त्याग, तप नहीं श्रेश्ठता का जब तक पद पायेंगे।
अशन–वसन से हीन, दीनता में जीवन धरने वाले।
सहकर भी अपमान मनुजता की चिन्ता करनेवाले,

'कवि, कोविद, विज्ञान–विशारद, कलाकार, पण्डित, ज्ञानी,
कनक नहीं, कल्पना, ज्ञान, उज्ज्वल चरित्र के अभिमानी,
इन विभूतियों को जब तक संसार नहीं पहचानेगा,
राजाओंसे अधिक पूज्य जब तक न इन्हें वह मानेगा,

'तब तक पड़ी आग में धरती, इसी तरह अकुलायेगी,
चाहे जो भी करे, दुखों से छूट नहीं वह पायेगी।
थकी लोग समझा कर, गहरी लगी ठेस अभिलाशा को,
भूप समझता नहीं और कुछ, छोड़ खड्ग की भाशा को।

'रोक–टोक से नहीं सुनेगा नश्प समाज अविचारी है,
ग्रीवाहर, निश्ठुर कुठार का यह मदान्ध अधिकारी है।
इसीलिए तो मैं कहता हूँ, अरे ज्ञानियों! खड्ग धरो,
डर न सका जिसको कोई भी, भू का वह तुम त्रास हरो।

'नित्य कहा करते हैं गुरुवर, 'खड्ग महाभयकारी है,
इसे उठाने का जग में हर एक नहीं अधिकारी है।
वही उठा सकता है इसको, जो कठोर हो, कोमल भी,
जिसमें हो धीरता, वीरता और तपस्या का बल भी।

'वीर वही है जो कि शत्रु पर जब भी खड्ग उठाता है,
मनवता के महागुणों की सत्ता भूल न जाता है।
सीमित जो रख सके खड्ग को, पास उसी को आने दो,
विप्रजाति के सिवा किसी को मत तलवार उठाने दो।

'जब–जब मैं शर–चार उठा कर करतब कुछ दिखलाता हूँ,
सुनकर आशीर्वाद देव का, धन्य–धन्य हो जाता हूँ।
'जियो, जियो अय वत्स! तीर तुमने कैसा यह मारा है,
छलक उठा वन उधर, इधर फूटी निर्झर की धारा है।

'मैं शंकित था, ब्राह्म वीरता मेरे साथ मरेगी क्या,
परशुराम की याद विप्र की जाति न जुगा धरेगी क्या?
पाकर तुम्हें किन्तु, इस वन में, मेरा हृदय हुआ शीतल,
तुम अवश्य ढोओगे उसको मुझमें है जो तेज, अनल।

'जियो, जियो ब्राह्मणकुमार! तुम अक्षय कीर्ति कमाओगे,
एक बार तुम भी धरती को निःक्षत्रिय कर जाओगे।
निश्चय, तुम ब्राह्मणकुमार हो, कवच और कुण्डल–धारी,
तप कर सकते और पिता–माता किसके इतना भारी?

'किन्तु हाय! 'ब्राह्मणकुमार' सुन प्राण काँपने लगते हैं,
मन उठता धिक्कार, हृदय में भाव ग्लानि के जगते हैं।
गुरु का प्रेम किसी को भी क्या ऐसे कभी खला होगा?
और शिश्य ने कभी किसी गुरु को इस तरह छला होगा?

'पर मेरा क्या दोश? हाय! मैं और दूसरा क्या करता,
पी सारा अपमान, द्रोण के मैं कैसे पैरों पड़ता।
और पाँव पड़ने से भी क्या गूढ़ ज्ञान सिखलाते वे,
एकलव्य–सा नहीं अँगूहा क्या मेरा कटवाते वे?

'हाय, कर्ण, तू क्यों जन्मा था? जन्मा तो क्यों वीर हुआ?
कवच और कुण्डल–भूशित भी तेरा अधम शरीर हुआ?
धँस जाये वह देश अतल में, गुण की जहाँ नहीं पहचान?
जाति–गोत्र के बल से ही आदर पाते हैं जहाँ सुजान?

'नहीं पूछता है कोई तुम व्रती, वीर या दानी हो?
सभी पूछते मात्र यही, तुम किस कुल के अभिमानी हो?
मगर, मनुज क्या करे? जन्म लेना तो उसके हाथ नहीं,
चुनना जाति और कुल अपने बस की तो है बात नहीं।

'मैं कहता हूँ, अगर विधाता नर को मुट्ठी में भरकर,
कहीं छींट दें ब्रह्मलोक से ही नीचे भूमण्डल पर,
तो भी विविध जातियों में ही मनुज यहीं आ सकता है,
नीचे हैं क्यारियाँ बनीं, तो बीज कहाँ जा सकता है?

'कौन जन्म लेता किस कुल में? आकस्मिक ही है यह बात,
छोटे कुल पर, किन्तु यहाँ होते तब भी कितने आघात!
हाय, जाति छोटी है, तो फिर सभी हमारे गुण छोटे,
जाति बड़ी, तो बड़े बनें, रहें लाख चाहे खोटे।'

गुरु को लिए कर्ण चिन्तन में था जब मग्न, अचल बैठा,
तभी एक विशकीट कहीं से आसन के नीचे पैठा।
वज्रदंश्ट्र वह लगा कर्ण के उरु को कुतर–कुतर खाने,
और बनाकर छिद्र मांस में मन्द–मन्द भीतर जाने।

कर्ण विकल हो उठा, दुश्ट भौरे पर हाथ धरे कैसे,
बिना हिलाये अंग कीट को किसी तरह पकड़े कैसे?
पर भीतर उस धँसे कीट तक हाथ नहीं जा सकता था,
बिना उठाये पाँव शत्रु को कर्ण नहीं पा सकता था।

किन्तु, पाँव के हिलते ही गुरुवर की नींद उचट जाती,
सहम गयी यह सोच कर्ण की भक्तिपूर्ण विह्वल छाती।
सोचा, उसने, अतः, कीट यह पिये रक्त, पीने दूँगा,
गुरु की कच्ची नींद तोड़ने का, पर पाप नहीं लूँगा।

Jai Singh Bhati Library (Deemed University)

बैठा रहा अचल आसन से कर्ण बहुत मन को मारे,
आह निकाले बिना, शिला–सी सहनशीलता को धारे।
किन्तु, लहू की गर्म धार जो सहसा आन लगी तन में,
परशुराम जग पड़े, रक्त को देख हुए विस्मित मन में।

कर्ण झपट कर उठा इंगितों में गुरु से आज्ञा लेकर,
बाहर किया कीट को उसने क्षत में से उँगली देकर,
परशुराम–बोले– 'शिव! शिव! तूने यह की मूर्खता बड़ी,
सहता रहा अचल, जाने कब से, ऐसी वेदना कड़ी।'

तनिक लजाकर कहा कर्ण ने, 'नहीं अधिक पीड़ा मुझको,
महाराज, क्या कर सकता है यह छोटा कीड़ा मुझको?
मैंने सोचा, हिला–डुला तो वृथा आप जग जायेंगे,
क्षण भर को विश्राम मिला जो नाहक उसे गँवायेंगे।

'निश्चल बैठा रहा, सोच, यह कीट स्वयं उड़ जायेगा,
छोटा–सा यह जीव मुझे कितनी पीड़ा पहुँचायेगा?
पर, यह तो भीतर धँसता ही गया, मुझे हँसने किया,
लज्जित हूँ इसलिए कि सब–कुछ स्वयं आपने देख लिया।'

परशुराम गंभीर हो गये, सोच न जाने क्या मन में,
फिर सहसा क्रोधाग्नि भयानक भभक उठी उनके तन में।
दाँत पीस, आँखें तरेरकर बोले– 'कौन छली है तू?
ब्राह्मण है या और किसी अभिजन का पुत्र बली है तू?

'सहनशीलता को अपनाकर ब्राह्मण कभी न जीता है,
किसी लक्ष्य के लिए नहीं अपमान–हलाहल पीता है।
सह सकता जो कठिन वेदना, पी सकता अपमान वही,
बुद्धि चलाती जिसे, तेज का कर सकता बलिदान वही।

'तेज–पुंज ब्राह्मण तिल–तिल कर जले, नहीं यह हो सकता,
किसी दशा में भी स्वभाव अपना वह कैसे खो सकता।
कसक भोगता हुआ विप्र निश्चल कैसे रह सकता है।
इस प्रकार की चुभन, वेदना क्षत्रिय ही सह सकता है।

'तू अवश्य क्षत्रिय है, पानी! बता, न तो, फल जायेगा,
परशुराम के कठिन शाप से अभी भस्म हो जायेगा।
'क्षमा, क्षमा, हे देव दयामय!' गिरा कर्ण गुरु के पद पर,
मुख विवर्ण हो गया, अंग काँपने लगे भय से थर–थर।

'सूत–पुत्र मैं शूद्र कर्ण हूँ, करुणा का अभिलाशी हूँ,
जे भी हूँ, पर, देव, आपका अनुचर अन्तेवासी हूँ।
छली नहीं मैं हाय, किन्तु छल का ही तो यह काम हुआ,
आया था विद्या–संचय को, किन्तु, व्यर्थ बदनाम हुआ।

'बड़ा लोभ था, बनूँ शिष्य मैं कार्त्तवीर्य के जेता का,
तपोदीप्त शूरमा, विश्व के नूतन धर्म–प्रणेता का।
पर, शंका थी मुझे, सत्य का अगर पता पा जायेंगे,
महाराज मुझ सूत–पुत्र को कुछ भी नहीं सिखायेंगे।

'बता सका मैं नहीं हँसी से प्रभो! जाति अपनी छोटी,
करें देव विश्वास, भावना और न थी कोई खोटी।
पर इतने से भी लज्जा में हाय, गड़ा–सा जाता हूँ,
मारे बिना हृदय में अपने–आप मरा–सा जाता हूँ।

'छल से पाना मान जगत् में किल्विश है, मल ही तो है,
ऊँचा बना आपके आगे, सचमुच यह छल ही तो है।
पाता था सम्मान आज तक दानी, व्रती, बली होकर,
अब जाऊँगा कहाँ स्वयं गुरु के सामने छली होकर?

'करें भस्म ही मुझे देव! सम्मुख है मस्तक नत मेरा,
एक कसक रह गयी, नहीं पूरा जीवन का व्रत मेरा।
गुरु की कृपा! शाप से जलकर अभी भस्म हो जाऊँगा,
पर, मदान्ध अर्जुन का मस्तक देव! कहाँ मैं पाऊँगा?

'यह तृष्णा, यह विजय–कामना, मुझे छोड़ क्या पायेगी?
प्रभु, अतृप्त वासना मरे पर भी मुझ को भरमायेगी।
दुर्योधन की हार देवता! कैसे सहन करूँगा मैं?
अभय देख अर्जुन को मरकर भी तो रोज मरूँगा मैं?

'परशुराम का शिष्य कर्ण, पर, जीवन–दान न माँगेगा,
बड़ी शान्ति के साथ चरण को पकड़ प्राण निज त्यागेगा।
प्रस्तुत हूँ, दें शाप, किन्तु अन्तिम सुख तो यह पाने दें,
इन्हीं पाद–पद्मों के ऊपर मुझको प्राण गँवाने दें।'

लिपट गया गुरु के चरणों से विकल कर्ण इतना कह कर,
दो कणिकाएँ गिरीं अश्रु की गुरु की आँखों से बह कर।
बोले– 'हाय, कर्ण तू ही प्रतिभट अर्जुन का नामी है?
निश्छल सखा धार्त्तराष्ट्रों का, विश्व–विजय का कामी है?

'अब समझा, किसलिए रात–दिन तू वैसा श्रम करता था,
मेरे शब्द–शब्द को मन में क्यों सीपी–सा धरता था।
देखें अगणित शिष्य, द्रोण को भी करतब कुछ सिखलाया,
पर तुझ–सा जिज्ञासु आज तक कभी नहीं मैंने पाया।

'तू ने जीत लिया था मुझको निज पवित्रता के बल से,
क्या था पता, लूटने आया है कोई मुझको छल से?
किसी और पर नहीं किया, वैसा सनेह मैं करता था,
सोने पर भी धनुर्वेद का ज्ञान कान में भरता था।

'नहीं किया कार्पण्य, दिया जो कुछ था मेरे पास रतन,
तुझमें निज को सौंप शान्त हो, अभी–अभी प्रमुदित था मन।
पापी, बोल अभी भी मुख से, तू न सूत, रथचालक,
परशुराम का शिष्य विक्रमी, विप्रवंश का बालक।

'सूत–वंश में मिला सूर्य–सा कैसे तेज प्रबल तुझको,
किसने लाकर दिये, कहाँ से कवच और कुण्डल तुझको।
सुत–सा रखा जिसे, उसको कैसे कठोर हो मारूँ मैं,
जलते हुए क्रोध की ज्वाला, लेकिन कहाँ उतारूँ मैं।

पद पर बोला कर्ण, 'दिया था जिसको आँखों का पानी,
करना होगा ग्रहण उसी को अनल आज हे गुरु ज्ञानी।
बरसाइये अनल आँखों से, सिर पर उसे सँभालूँगा,
दण्ड भोग जलकर मुनिसत्तम! छल का पाप छुड़ा लूँगा।

परशुराम ने कहा– 'कर्ण! तू बेध नहीं मुझको ऐसे,
तूझे पता क्या सता रहा है मुझको असमंजस कैसे।
पर, तूने छल किया, दण्ड उसका, अवश्य ही पायेगा,
परशुराम का क्रोध भयानक निश्फल कभी न जायेगा।

'मान लिया था पुत्र, इसी से प्राण–दान तो देता हूँ,
पर, अपनी विद्या का अन्तिम चरम तेज हर लेता हूँ।
सिखलाया ब्रह्मास्त्र तुझे जो, काम नहीं वह आयेगा,
है यह मेरा शाप, समय पर उसे भूल तू जायेगा।

कर्ण विकल हो खड़ा हुआ कह, 'हाय! किया यह क्या गुरुवर?
दिया शाप अत्यन्त निदारुण, लिया नहीं जीवन क्यों हर?
वर्षों की साधना, साथ ही प्राण नहीं क्यों लेते हैं?
अब किस सुख के लिए मुझे धरती पर जीने देते हैं?'

परशुराम ने कहा– 'कर्ण! यह शाप अटल है, सहन करो,
जो कुछ मैंने कहा, उसे सिर पर ले सादर वहन करो।
इस महेन्द्र–गिरि पर तुमने कुछ थोड़ा नहीं कमाया है,
मेरा संचित निखिल ज्ञान तूने मुझसे ही पाया है।

'रहा नहीं ब्रह्मास्त्र एक, इससे क्या आता–जाता है?
एक शस्त्र–बल से न वीर, कोई सब दिन कहलाता है।
नयी कला, नूतन रचनाएँ, नयी सूझ नूतन साधन,
नये भाव, नूतन उमंग से, वीर बने रहते नूतन।

'तुम तो स्वयं दीप्त पौरुश हो, कवच और कुण्डल–धारी,
इनके रहते तुम्हें जीत पायेगा कौन सुभट भारी।र
अच्छा लो वर भी कि विश्व में तुम महान् कहलाओगे,
भारत का इतिहास कीर्ति से और धवल कर जाओगे।

'अब जाओ, लो विदा वत्स, कुछ कड़ा करो अपने मन को,
रहने देते नहीं यहाँ पर हम अभिशप्त किसी जन को।
हाय छीनना पड़ा मुझी को, दिया हुआ अपना ही धन,
सोच–सोच यह बहुत विकल हो रहा, नहीं जानें क्यों मन?

'व्रत का, पर निर्वाह कभी ऐसे भी करना होता है।
इस कर से जो दिया उसे उस कर से हरना होता है।
अब जाओ तुम, कर्ण! कृपा करके मुझको निःसंग करो।
देखो मत यों सजल दृश्टि से, व्रत मेरा मत भंग करो।

'आह, बुद्धि कहती कि ठीक था, जो कुछ किया, परन्तु हृदय,
मुझसे कर विद्रोह तुम्हारी मना रहा जाने क्यों, जय?
अनायास गुण–शील तुम्हारे मन में उगते आते है,
भीतर किसी अश्रु–गंगा में मुझे बोर नहलाते है।

'जाओ, जाओ कर्ण! मुझे बिलकुल असंग हो जाने दो,
बैठ किसी एकान्त कुंज में मन को स्वस्थ बनाने दो।
भय है, तुम्हें निराश देखकर छाती कहीं न फट जाये,
फिरा न लूँ अभिशाप, पिघलकर वाणी नहीं उलट जाये।

इस प्रकार कह परशुराम ने फिरा लिया आनन अपना,
जहाँ मिला था, वहीं कर्ण का बिखर गया प्यारा सपना।
छूकर उनका चरण कर्ण ने अर्घ्य अश्रु का दान किया,
और उन्हें जी–भर निहार कर मंद–मंद प्रस्थान किया।
परशुधर के चरण की धूलि लेकर,
उन्हें, अपने हृदय की भक्ति देकर,
निराशा से विकल, टूटा हुआ–सा,
किसी गिरी–शृंग से छूटा हुआ–सा,

चला खोया हुआ–सा कर्ण मन में,
कि जैसे चाँद चलता हो गगन में।

तृतीय सर्ग

हो गया पूर्ण अज्ञात वास, पांडव लौटे वन से सहास,
पावक में कनक–सदृश तपकर वीरत्व लिए कुछ और प्रखर
नस–नस में तेज–प्रवाह लिये,
कुछ और नया उत्साह लिये।
सच है, विपत्ति जब आती है, कायर को ही दहलाती है,
शूरमा नहीं विचलित होते, क्षण एक नहीं धीरज खोते,
विघ्नों को गले लगाते है,
काँटों में राह बनाते हैं।
मुख से न कभी उफ कहते हैं, संकट का चरण न गहते है,
जो आ पड़ता साथ रहते है, उद्योग–निरत रहते हैं,
शूलों का मूल नसाने को,

बढ़ खुद विपत्ति पर छाने को।
है कौन विघ्न ऐसा जग में, टिक सके वीर नर के मग में?
खम ठोंक ठेलता है जब नर, पर्वत के जाते पाँव उखड़।
मनव जब जोर लगाता है,
पत्थर पानी बन जाता है।
गुण बड़े एक से एक प्रखर, हैं छिपे मानवों के भीतर,
मेंहदी में जैसे लाली हो, वर्तिका–बीच उजियाली हो।
बत्ती जो नहीं जलाता है
रोशनी नहीं वह पाता है।
पीसा जाता जब इक्षु–दण्ड, झरती रस की धारा अखण्ड,
मेंहदी जब सहती है प्रहार, बनती ललनाओं का सिंगार।
जब फूल पिरोये जाते है,
हम उनको गले लगाते हैं।
वसुधा का नेता कौन हुआ? भूखण्ड–विजेता कौन हुआ?
अतुलित यश क्रेता कौन हुआ? नव–धर्म प्रणेता कौन हुआ?
जिसने न कभी आराम किया,
विघ्नों में रहकर नाम किया।
जब विघ्न सामने आते हैं, सोते से हमें जगाते हैं,
मन को मरोड़ते हैं पल–पल, तन को झँझोरते हैं
पल–पल।
सत्पथ की ओर लगाकर ही,
आते हैं हमें जगाकर ही।
वाटिका और वन एक नहीं, आराम और रण एक नहीं।
वर्षा, अंधड़, आतप अखंड, पौरुश के हैं साधन प्रचण्ड।
वन में प्रसून तो खिलते हैं,
बागों में शाल न मिलते हैं।
कंकरियाँ जिनकी सेज सुघर, छाया देता केवल अम्बर,
विपदाएँ दूध पिलाती हैं, लोरी आँधियाँ सुनाती हैं।
जो लाक्षा–गृह में जलते हैं,
वे ही शूरमा निकलते हैं।

बढ़कर विपत्तियों पर छा जा, मेरे किशोर! मेरे ताजा!
जीवन का रस छन जाने दे, तन को पत्थर बन जाने दे।
तू स्वयं तेज भयकारी है,
क्या कर सकती चिनगारी है?
वर्शों तक वन में घूम–घूम, बाधा–विघ्नों को चूम–चूम,
सह धूप–घाम, पानी–पत्थर, पांडव आये कुछ और निखर।
सौभाग्य न सब दिन सोता है,
देखें, आगे क्या होता है,
मैत्री की राह बताने को, सबको सुमार्ग पर लाने को,
दुर्योधन को समझाने को, भीशण विध्वंस बचाने को,
भगवान् हस्तिनापुर आये
पांडव का संदेशा लाये।
'दो न्याय अगर तो आधा दो, पर इसमें भी यदि बाधा हो,
ते दे दो केवल पाँच ग्राम, रक्खो अपनी धरती तमाम।
हम वहीं खुशी से खायेंगे,
परिजन पर असि न उठायेंगे।
दुर्योधन वह भी दे न सका, आशिश समाज की ले न सका,
उलटे, हरि को बाँधने चला, जो था असाध्य, साधने चला।
जब नाश मनुज पर छाता है,
पहले विवेक मर जाता है।
हरि ने भीशण हुंकार किया, अपना स्वरूप–विस्तार किया,
डगमग–डगमग दिग्गज डोले, भगवान् कुपित होकर बोले–
'जंजीर बढ़ा कर साध मुझे,
हाँ, हाँ दुर्योधन! बाँध मुझे।
'यह देख, गगन मुझमें लय है, यह देख, पवन मुझमें लय है,
मुझमें विलीन झंकार सकल, मुझमें लय है संसार सकल।
अमरत्व फूलता है मुझमें,
संहार झूलता है मुझमें।
'उदयाचल मेरा दीप्त भाल, भूमंडल वक्षस्थल विशाल,
भुज परिधि–बन्ध को घेरे हैं, मैनाक–मेरु पग मेरे हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

दिपते जो ग्रह नक्षत्र निकर,
सब हैं मेरे मुख के अन्दर।
'दृग हों तो दृश्य अकाण्ड देख, मुझमें सारा ब्रह्माण्ड देख,
चर–अचर जीव, जग, क्षर–अक्षर, नश्वर मनुष्य सुरजाति अमर।
शत कोटि सूर्य, शत कोटि चन्द्र,
शत कोटि सरित, सर, सिन्धु मन्द्र।
'शत कोटि विष्णु ब्रह्मा, महेश, शत कोटि विष्णु जलपति, धनेश,
शत कोटि रुद्र, शत कोटि काल, शत कोटि दण्डधर लोकपाल।
जंजीर बढ़ाकर साध इन्हें,
हाँ–हाँ दुर्योधन! बाँध इन्हें।
'भूलोक, अतल, पाताल देख, गत और अनागत काल देख,
यह देख जगत् का आदि–सृजन, यह देख महाभारत का रण,
मृतकों से पटी हुई भू है,
पहचान, कहाँ इसमें तू है।
'अम्बर में कुन्तल–जाल देख, पद के नीचे पाताल देख,
मुट्ठी में तीनों काल देख, मेरा स्वरूप विकराल देख।
सब जन्म मुझी से पाते हैं,
फिर लौट मुझी में आते हैं।
'जिह्वा से कढ़ती ज्वाल सघन, साँसों में पाता जन्म पवन,
पड़ जाती मेरी दृष्टि जिधर, हँसने लगती है सृष्टि उधर।
मैं जभी मूँदता हूँ लोचन,
छा जाता चारों ओर मरण।
'बाँधने मुझे तो आया है, जंजीर बड़ी क्या लाया है?
यदि मुझे बाँधना चाहे मन, पहले तो बाँध अनन्त गगन।
सूने को साध न सकता है,
वह मुझे बाँध कब सकता है?
'हित–वचन नहीं तूने माना, मैत्री का मूल्य न पहचाना,
तो ले, मैं भी अब जाता हूँ, अन्तिम संकल्प सुनाता हूँ।
याचना नहीं, अब रण होगा,
जीवन–जय या कि मरण होगा।
'टकरायेंगे नक्षत्र–निकर, बरसेगी भू पर वह्नि प्रखर,
फण शेशनाग का डोलेगा, विकरारल काल मुँह खोलेगा।
दुर्योधन! रण ऐसा होगा।
फिर कभी नहीं जैसा होगा।
'भाई पर भाई टूटेंगे, विष–बाण बूँद–से छूटेंगे,
वायस–शृगाल सुख लूटेंगे, सौभाग्य मनुज के फूटेंगे।
आखिर तू भूशायी होगा,
हिंसा का पर दायी होगा।'
थी सभा सन्न, सब लोग डरे चुप थे या थे बेहोश पड़े।
केवल दो नर न अघाते थे, धृतराष्ट्र–विदुर सुख पाते थे।
कर जोड़े खड़े प्रमुदित, निर्भय,
दोनों पुकारते थे 'जय–जय'!
भगवान् सभा को छोड़ चले, करके रण–गर्जन घोर चले,
सामने कर्ण सकुचाया–सा, आ मिला चकित, भरमाया–सा।
हरि बड़े प्रेम से कर धर कर,
ले चढ़े उसे अपने रथ पर।
रथ चला, परस्पर बात चली, शम–दम की टेढ़ी घात चली,
शीतल हो हरि ने कहा, 'हाय, अब शेष नहीं कोई उपाय।
हो विवश हमें, धनु धरना है,
क्षत्रिय–समूह को मरना है।
'मैंने कितना कुछ कहा नहीं? विष–व्यंग कहाँ तक सहा नहीं?
पर, दुर्योधन मतवाला है, कुछ नहीं समझनेवाला है।
चाहिए उसे बस रण केवल,
सारी धरती कि मरण केवल।
'हे वीर! तुम्हीं बोलो अकाम, क्या वस्तु बड़ी थे पाँच ग्राम?
वह भी कौरव को भारी है, मति गई मूढ़ की मारी है।
दुर्योधन को बोधूँ कैसे?
इस रण को अवरोधूँ कैसे?
'सोचो क्या दृश्य विकट होगा, रण में जब काल प्रकट होगा?

बाहर शोणित की तप्त धार, भीतर विधवाओं की पुकार।
निरशन, विशण्ण बिललायेंगे,
बच्चे अनाथ चिल्लायेंगे।
'चिन्ता है, मैं क्या और करूँ? शान्ति को छिपा किस ओट धरूँ?
सब राह बन्द मेरे जाने, हाँ, एक बात यदि तू माने,
तो शान्ति नहीं जल सकती है,
समराग्नि अभी टल सकती है।
'पा तुझे धन्य है दुर्योधन, तू एकमात्र उसका जीवन।
तेरे बल की है आस उसे, तुझसे जब का विश्वास उसे।
तू संग न उसका छोड़ेगा,
वह क्यों रण से मुख मोड़ेगा?
'क्या अघटनीय घटना कराल? तू पृथा–कुक्षि का प्रथम लाल,
बन सूत अनादर सहता है, कौरव के दल में रहता है,
शर–चाप उठाये आठ प्रहर,
पांडव से लड़ने को तत्पर।
'माँ का सनेह पाया न कभी, सामने सत्य आया न कभी,
किस्मत के फेरे में पड़ कर, पा प्रेम बसा दुश्मन के घर।
निज बन्धु मानता है पर को,
कहता है शत्रु सहोदर को।
'पर, कौन दोश इसमें तेरा? अब कहा मान इतना मेरा।
चल होकर संग अभी मेरे, हैं जहाँ पाँच भ्राता तेरे।
बिछुड़े भाई मिल जायेंगे,
हम मिलकर मोद मनायेंगे।
'कुन्ती का तू ही तनय ज्येश्ठ, बल, बुद्धि, शील में परम श्रेश्ठ।
मस्तक पर मुकुट धरेंगे हम, तेरा अभिशेक करेंगे हम।
आरती समोद उतारेंगे,
सब मिलकर पाँव पखारेंगे।
'पद–त्राण भीम पहनायेगा, धर्माधिप चँवर डुलायेगा।
पहरे पर पार्थ प्रवर होंगे, सहदेव–नकुल अनुचर होंगे।
भोजन उत्तरा बनायेगी,
पंचाली पान खिलायेगी।
'आहा! क्या दृश्य सुभग होगा! आनन्द–चमत्कृत जग होगा।
सब लोग तुझे पहचानेंगे, असली स्वरूप में जानेंगे।
खोयी मणि को जब पायेगी,
कुन्ती फूली न समायेगी।
'रण अनायास रुक जायेगा, कुरुराज स्वयं झुक जायेगा।
संसार बड़े सुख में होगा, कोई न कहीं दुःख से होगा।
सब गीत खुशी के गायेंगे,
तेरा सौभाग्य मनायेंगे।
'कुरुराज्य समर्पण करता हूँ, सौराज्य समर्पण करता हूँ।
यश मुकुट मान, सिंहासन ले, बस एक भीख मुझको दे दे।
कौरव को तज रण रोक सखे,
भू का हर भावी शोक सखे।'
सुन–सुन कर कर्ण अधीर हुआ, क्षण एक तनिक गंभीर हुआ,
फिर कहा, 'बड़ी यह माया है, जो कुछ आपने बताया है।
दिनमणि से सुनकर वही कथा,
मैं भोग चुका हूँ ग्लानि–व्यथा।
'जब ध्यान जन्म का धरता हूँ, उन्मन यह सोचा करता हूँ,
कैसे होगी वह माँ कराल, निज तन से जो शिशु को निकाल,
धाराओं में धर आती है,
अथवा जीवित दफनाती है?
'सेवती मास दस तक जिसको पालती उदर में रख जिसको
जीवन का अंश खिलाती है, अन्तर का रुधिर पिलाती है।
आती फिर उसको फेंक कहीं,
नागिन होगी, वह नारि नहीं।
'हे कृश्ण! आप चुप ही रहिए, इस पर न अधिक कुछ भी कहिए
सुनना न चाहते तनिक श्रवण, जिस माँ ने मेरा किया जनन,
वह नहीं नारि कुलपाली थी,
सर्पिणी परम विकराली थी।
'पत्थर–समान उसका हिय था, सुत से समाज बढ़ कर प्रिय था,

मेदी में आग लगा करके, मेरा कुल–वंश छिपा करके,
दुश्मन का उसने काम किया,
माताओं को बदनाम किया।
'माँ का पय भी न पिया मैंने, उलटे, अभिशाप लिया मैंने।
वह तो यशस्विनी बनी रही, सबकी भौं मुझ पर तनी रही।
कन्या वह रही अपरिणीता,
जो कुछ बीता, मुझ पर बीता।
'मैं जाति–गोत्र से हीन, दीन, राजाओं के सम्मुख मलीन,
जब रोज अनादर पाता था, कह 'क्षुद्र' पुकारा जाता था।
पत्थर की छाती फटी नहीं,
कुन्ती तब भी तो कटी नहीं।
'मैं सूत–वंश में पलता था, अपमान–अनल में जलता था,
सब देख रही थी दश्श्य पश्था, माँ की ममता, पर हुई वश्था।
छिप कर भी तो सुधि ले न सकी,
छाया अंचल की दे न सकी।
'पा पाँच तनय फूली–फूली, दिन–रात बड़े सुख में भूली,
कुन्ती गौरव में चूर रही, मुझ पतित पुत्र से दूर रही।
क्या हुआ कि अब अकुलाती है?
किस कारण मुझे बुलाती है?
'क्या पाँच पुत्र हो जाने पर, सुत के धन–धाम गँवाने पर,
या महानाश के छाने पर, अथवा मन के घबराने पर,
नारियाँ सदय हो जाती हैं?
बिछुड़े को गले लगाती हैं?
'कुन्ती जिस भय से भरी रही, तज तुझे दूर हट खड़ी रही,
वह पाप अभी भी है मुझमें, वह शाप अभी भी है मुझमें।
क्या हुआ कि वह डर जायेगा?
कुन्ती को काट न खायेगा?
'सहसा क्या हाल विचित्र हुआ? मैं पुण्य–चरित्र हुआ?
कुन्ती का क्या चाहता हृदय? मेरा सुख या पाण्डव की जय?
यह अभिनन्दन नूतन क्या है?
केशव! यह परिवर्तन क्या है?
'मैं हुआ धनुर्धर जब नामी, सब लोग हुए हित के कामी,
पर, ऐसा भ था एक समय, जब यह समाज निश्ठुर निर्दय,
किंचित् न स्नेह दर्शाता था,
विशव्यंग्य सदा बरसाता था।
'उस समय सुअंक लगा करके, अंचल के तले छिपा करके,
चुम्बन से कौन मुझे भर कर, ताड़ना–ताप लेती थी हर?
राधा को छोड़ भजूँ किसको?
जननी है वही, तजूँ किसको?
'हे कश्भण! जरा यह भी सुनिये, सब है कि झूठ, मन में गुनिये।
धूलों में था मैं पड़ा हुआ, किसका सनेह पा बड़ा हुआ।
किसने मुझको सम्मान दिया,
नश्पता दे महिमावान किया?
'अपना विकास अवरुद्ध देख, सारे समाज को क्रुद्ध देख,
भीतर जब टूट चुका था मन, आ गया अचानक दुर्योधन।
निश्छल, पवित्र अनुराग लिये,
मेरा समस्त सौभाग्य लिये।
'कुन्ती ने केवल जन्म दिया, राधा ने माँ का कर्म किया,
पर कहते जिसे असल जीवन, देने आया वह दुर्योधन।
वह नहीं भिन्न माता से है,
बढ़ कर सोदर भ्राता से है।
'राजा रंक से बना करके, यश, मान, मुकुट पहना करके,
बाँहों पर मुझे उठा करके, सामने जगत् के ला करके,
करतब क्या–क्या न किया उसने?
मुझको नव–जन्म दिया उसने।
'है ऋणी कर्ण का रोम–रोम, जानते सत्य यह सूर्य–सोम,
तन, मन, धन दुर्योधन का है, यह जीवन दुर्योधन का है।
सुरपुर से भी मुख मोड़ूँगा,
केशव! मैं उसे न छोड़ूँगा।
'सब है, मेरी है आस उसे, मुझ पर अटूट विश्वास उसे,

हाँ, सच है मेरे ही बल पर, ठाना है उसने महासमर।
पर, मैं कैसा पापी हूँगा,
दुर्योधन को धोखा दूँगा?
'रह साथ सदा खेला, खाया, सौभाग्य–सुयश उससे पाया,
अब जब विपत्ति आने को है, घनघोर प्रलय छाने को है,
तज उसे भाग यदि जाऊँगा,
कायर, कृतघ्न कहलाऊँगा।
'मैं भी कुन्ती का एक तनय, जिसको होगा इसका प्रत्यय?
संसार मुझे धिक्कारेगा, मन में वह यही विचारेगा,
फिर गया तुरत, जब राज मिला,
यह कर्ण बड़ा पापी निकला।
मैं ही न सहूँगा विशम डंक, अर्जुन को भी होगा कलंक,
सब लोग कहेंगे, डरकर ही, अर्जुन ने अद्‌भुत नीति गही।
चल चाल कर्ण को फोड़ लिया,
संबंध अनोखा जोड़ लिया।
'कोई न कहीं भी चूकेगा, सारा जग मुझपर थूकेगा,
तप, त्याग, शील, जप, योग, दान, मेरे होंगे मिट्टी–समान।
लोभी लालची कहाऊँगा,
किसको, क्या मुख दिखलाऊँगा?
'जो आज आप कह रहे आर्य, कुन्ती के मुख से कृपाचार्य,
सुन वही, हुए लज्जित होते हम क्या रण को सज्जित होते?
मिलता न कर्ण दुर्योधन को,
पाण्डव न कभी जाते वन को।
'लेकिन, नौका तट छोड़ चली, कुछ पता नहीं, किस ओर चली।
यह बीच नदी की धारा है, सूझता न कूल–किनारा है।
ले लील भले यह धार मुझे,
लौटना नहीं स्वीकार मुझे।
'धर्माधिराज का ज्येश्ठ बनूँ? भारत में सबसे श्रेश्ठ बनूँ?
कुल की पोशाक पहन करके सिर उठा चलूँ कुछ तन करके?
इस झूठ–झूठ में रस क्या है?
केशव! यह सुयश सुयश क्या है?
'सिर पर कुलीनता का टीका, भीतर जीवन का रस फीका,
अपना न नाम जो ले सकते, परिचय न तेज से दे सकते,

ऐसे भी कुछ नर होते हैं,
कुल को खाते और खोते हैं।
'विक्रमी पुरुश लेकिन, सिर पर चलता न छत्र पुरखों का धर
अपना बल–तेज जगाता है, सम्मान जगत् से पाता है।
सब उसे देख ललचाते हैं,
कर विविध यत्न अपनाते हैं।
'कुल–गोत्र नहीं साधन मेरा, पुरुशार्थ एक बस धन मेरा,
कुल ने तो मुझको फेंक दिया, मैंने हिम्मत से काम लिया।
अब वंश चकित भरमाया है,
खुद मुझे खोजने आया है।
'लेकिन, मैं लौट चलूँगा क्या? अपने प्रण से विचलूँगा क्या?
रण में कुरुपति का विजय–वरण, या पार्थ–हाथ कर्ण का मरण।
हे कश्मण! यही मति मेरी है,
तीसरी नहीं गति मेरी है।
'मैत्री की बड़ी सुखद छाया, शीतल हो जाती है काया,
धिक्कार–योग्य होगा वह नर, जो पाकर भी ऐसा तरुवर,
हो अलग खड़ा कटवाता है,
खुद आप नहीं कट जाता है।
'जिस नर की बाँह गही मैंने, जिस तरु की छाँह गही मैंने,
उस पर न वार चलने दूँगा, कैसे कुठार चलने दूँगा?
जीते जी उसे बचाऊँगा,
या आप स्वयं कट जाऊँगा।
'मित्रता बड़ा अनमोल रतन, कब इसे तोल सकता है धन?
धरती की तो है क्या बिसात? आ जाय अगर बैकुण्ठ हाथ,
उसको भी न्योछावर कर दूँ

कुरुपति के चरणों पर धर दूँ।
'सिर लिये स्कन्ध पर चलता हूँ उस दिन के लिए मचलता हूँ,
यदि चले वज्र दुर्योधन पर ले लूँ बढ़कर अपने ऊपर।
कटवा दूँ उसके लिए गला,
चाहिए मुझे क्या और भला?
'सम्राट् बनेंगे धर्मराज, या पायेगा कुरुराज ताज,
लड़ना भर मेरा काम रहा, दुर्योधन का संग्राम रहा।
मुझको न कहीं कुछ पाना है,
केवल ऋण मात्र चुकाना है।
'कुरुराज्य चाहता मैं कब हूँ, साम्राज्य चाहता मै कब हूँ?
क्या नहीं आपने भी जाना? मुझको न आज तक पहचाना?
जीवन का मूल्य समझता हूँ,
धन को मैं धूल समझता हूँ।
'धनराशि जोगना लक्ष्य नहीं, साम्राज्य भोगना लक्ष्य नहीं,
भुजबल से कर संसार–विजय, अगणित समृद्धियों का संचय,
दे दिया मित्र दुर्योधन को,
तृष्णा छू भी न सकी मन को।
'वैभव–विलास की चाह नहीं, अपनी कोई परवाह नहीं,
बस, यही चाहता हूँ केवल, दान की देव–सरिता निर्मल,
करतल से झरती रहे सदा,
निर्धन को भरती रहे सदा।
'तुच्छ है, राज्य क्या है केशव? पाता क्या नर कर प्राप्त विभव?
चिन्ता प्रभूत, अत्यल्प हास, कुछ चाकचिक्य, कुछ क्षण विलास,
पर वह भी यहीं गँवाना है,
कुछ साथ नहीं ले जाना है।
'मुझ–से मनुष्य जो होते हैं, कंचन का भार न ढोते हैं।
पाते हैं धन बिखराते को, लाते हैं रतन लुटाने को।
जग से न कभी कुछ लेते हैं,
दान ही हृदय का देते हैं।

'प्रासादों के कनकाभ शिखर, होते कबूतरों के ही घर,
महलों में गरुड़ न होता है, कंचन पर कभी न सोता है।
बसता वह कहीं पहाड़ों में,
शैलों की फटी दरारों में।
'होकर समृद्धि–सुख के अधीन, मानव होता नित तपः क्षीण,
सत्ता, किरीट, मणिमय आसन, करते मनुष्य का तेज–हरण।
नर विभव–हेतु ललचाता है,
पर वही मनुज को खाता है।
'चाँदनी, पुष्पछाया में पल, नर भले बने सुमधुर, कोमल,
पर, अमृत क्लेश का पिये बिना, आतप, अन्धड़ में जिये बिना,
वह पुरुष नहीं कहला सकता,
विघ्नों को नहीं हिला सकता।
'उड़ते जो झंझावातों में, पीते जो वारि प्रपातों में,
सारा आकाश अयन जिनका, विषधर भुजंग भोजन जिनका,
वे ही फणिबन्ध छुड़ाते हैं,
धरती का हृदय जुड़ाते हैं।
'मैं गरुड़, कृष्ण! मै पक्षिराज, सिर पर न चाहिए मुझे ताज,
दुर्योधन पर है विपद् घोर, सकता न किसी विधि उसे छोड़।
रणखेत पाटना है मुझको,
अहिपाश काटना है मुझको।
'संग्राम–सिन्धु लहराता है, सामने प्रलय घहराता है,
रह–रहकर भुजा फड़कती है, बिजली–सी नसें कड़कती है,
चाहता तुरत मैं कूद पड़ूँ,
जीतूँ कि समर में डूब मरूँ।
'अब देर नहीं कीजै केशव! अवसेर नहीं कीजै केशव!
धनु की डोरी तन जाने दें, संग्राम तुरंत ठन जाने दें!
ताण्डवी तेज लहरायेगा,
संसार ज्योति कुछ पायेगा।
'पर, एक विनय है मधुसूदन! मेरी यह जन्म–कथा गोपन,
मत कभी युधिष्ठिर से कहिए, जैसे हो, इसे दबा रहिए।

वे इसे जान यदि पायेंगे,
सिंहासन को ठुकरायेंगे।
'साम्राज्य न कभी स्वयं लेंगे, सारी सम्पत्ति मुझे देंगे,
मैं भी न उसे रख पाऊँगा, दुर्योधन को दे जाऊँगा।
पाण्डव वंचित रह जायेंगे,
दुख से न छूट वे पायेंगे।
'अच्छा, अब चला, प्रमाण आर्य! हों सिद्ध समर के शीघ्र कार्य,
रण में ही अब दर्शन होगा, शर से चरण–स्पर्शन होगा।
जय हो, दिनेश नभ में विहरें,
भूतल में दिव्य प्रकाश भरें।'

'रथ से राधेय उतर आया, हरि के मन में विस्मय छाया,
बोले कि 'वीर! शत बार धन्य, तुझ–सा न मित्र कोई अनन्य।
तू कुरुपति का ही नहीं प्राण,
नरता का है भूशण महान्।'

चतुर्थ सर्ग

'जीवन का अभियान दान–बल से अजस्त्र चलता है,
उतनी बढ़ती ज्योति, स्नेह जितना अनल्प जलता है।
और दान में रोकर या हँस कर हम जो देते हैं,
अहंकारवश उसे स्वत्व का त्याग मान लेते हैं।

यह न स्वत्व का त्याग, दान तो जीवन का झरना है,
रखना उसको रोक, मश्त्यु के पहले ही मरना है।
किस पर करते कश्पा वश्क्ष, यदि अपना फल देते हैं?
गिरने से उसको संभाल, क्यों रोक नहीं लेते हैं।

ऋतु के बाद फलों का रुकना डालों का सड़ना है,
मोह दिखाना देव वस्तु पर आत्मघात करना है।
देते तरु इसलिए कि रेशों में मत कीट समायें,
रहें डालियाँ स्वस्थ और फिर नये–नये फल जायें।

सरिता देती वारि कि पाकर उसे सुपूरित घन हो,
बरसे मेघ, भरे फिर सरिता, उदित नया जीवन हो।
आत्मदान के साथ जगज्जीवन का ऋजु नाता है,
जो देता जितना बदले में उतना ही पाता है।
दिखलाना कार्पण्य आप, अपने धोखा खाना है,
रखना दान अपूर्ण, रिक्ति निज का ही रह जाना है।
व्रत का अन्तिम मोल चुकाते हुए न जो रोते हैं,
पूर्ण–काम जीवन से एकाकार वही होते हैं।

जो नर आत्मदान से अपना जीवन–घट भरता है,
वही मश्त्यु के मुख में भी पड़कर न कभी मरता है।
जहाँ कहीं है ज्योति जगत् में, जहाँ कहीं उजियाला,
वहाँ खड़ा है कोई अन्तिम मोल चुकानेवाला।

व्रत का अन्तिम मोल राम ने दिया, त्याग सीता को,
जीवन की संगिनी, प्राण की मणि को, सुपुनीता को,
दिया अस्थि देकर दधीचि ने, शिवि ने अंग कतर कर,
हरिचन्द्र ने कफन माँगते हुए सत्य पर अड़ कर।
ईसा ने संसार–हेतु शूली पर प्राण गँवा कर,
अन्तिम मूल्य दिया गाँधी ने तीन गोलियाँ खाकर।
सुन अन्तिम ललकार मोल माँगते हुए जीवन की
सरमद ने हँसकर उतार दी त्वचा समूचे तन की।

हँसकर लिया मरण ओठों पर, जीवन का व्रत पाला,
अमर हुआ सुकरात जगत् में, पीकर विश का प्याला।
मरकर भी मनसूर नियति की सह पाया न ठिठोली,
उत्तर में सौ बार चीख कर बोटी–बोटी बोली।

दान जगत् का प्रकश्त धर्म है, मनुज व्यर्थ डरता है,

एक रोज तो हमें स्वयं सब–कुछ देना पड़ता है।
बचते वही, समय परे जो सर्वस्व दान करते है,
ऋतु का ज्ञान नहीं जिनको, वे देकर भी मरते हैं।

वीर कर्ण, विक्रमी, दान का अति अमोघ व्रतधारी,
पाल रहा था बहुत काल से एक पुण्य–प्रण भारी।
रवि–पूजन के समय सामने जो याचक आता था,
मुँहमाँगा वह दान कर्ण से अनायास पाता था।

फहर रही थी मुक्त चतुर्दिक् यश की विमल पताका,
कर्ण नाम पड़ गया दान को अतुलनीय महिमा का।
श्रद्धा–सहित नमन करते सुन नाम देश के ज्ञानी,
अपना भाग्य समझ भजते थे उसे भाग्यहत प्राणी।

तब कहते हैं, एक बार हटकर प्रत्यक्ष समर से,
किया नियति ने वार कर्ण पर, छिपकर, पुण्य–विवर से।
व्रत का निकश दान था, अबकी चढ़ी निकश पर काया,
कठिन मूल्य माँगने सामने भाग्य देह धर आया।

एक दिवस जब छोड़ रहे थे दिनमणि मध्य गगन को,
कर्ण जाह्नवी–तीर खड़ा था मुद्रित किये नयन को
कटि तक डूबा हुआ सलिल में किसी ध्यान में रत–सा,
अम्बुधि में आकंठ निमज्जित कनक–खचित पर्वत–सा।

हँसती थी रश्मियाँ रजत से भर कर वारि विमल को,
हो उठती थीं स्वयं स्वर्ण छू कवच और कुंडल को।
किरण–सुधा पी कमल मोद में भरकर दमक रहा था,
कदली के चिकने पातों पर पारद चमक रहा था।

विहग लता–वीरुध–वितान में तट पर चहक रहे थे,
धूप, दीप, कर्पूर, फूल, सब मिल कर महक रहे थे।
पूरी कर पूजा–उपासना ध्यान कर्ण ने खोला,
इतने में ऊपर तट पर खर–पात कहीं कुछ डोला।

कहा कर्ण ने, 'कौन उधर है? बन्धु, सामने आओ,
मैं प्रस्तुत हो चुका, स्वस्थ हो, निज आदेश सुनाओ।
अपनी पीड़ा कहो, कर्ण सबका विनीत अनुचर है,
यह विपन्न का सखा तुम्हारी सेवा में तत्पर है।

'माँगो, माँगो दान, अन्न या वसन, धाम या धन दूँ?
अपना छोटा राज्य या कि यह क्षणिक, क्षुद्र जीवन दूँ?
मेघ भले लौटें उदास हो किसी रोज सागर से,
याचक फिर सकते निराश पर, नहीं कर्ण के घर से।

'पर का दुःख हरण करने में ही अपना सुख माना,
भाग्यहीन मैंने जीवन में और स्वाद क्या जाना।
आओ, उऋण बनूँ तुमको भी न्यास तुम्हारा देकर,
उपकृत करो मुझे, अपनी संचित निधि मुझसे लेकर।

'अरे कौन है भिक्षु यहाँ पर और कौन दाता है।
अपना ही अधिकार मनुज नाना विधि से पाता है।
कर पसार कर जब भी तुम मुझसे कुछ ले लेते हो,
तृप्त भाव से हेर मुझे क्या चीज नहीं देते हो?

'दीनों का सन्तोष, भाग्यहीनों की गद्‌गद वाणी,
नयन कोर में भरा लबालब कृतज्ञता का पानी,
हो जाना फिर हरा युगों से मुरझाये अधरों का,
पाना आशीर्वचन, प्रेम, विश्वास अनेक नरों का।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

'इससे बढ़कर और प्राप्ति क्या जिस पर गर्व करें हम?
पर को जीवन मिले अगर तो हँस कर क्यों न मरें हम?
मोल–तोल कुछ नहीं, माँग लो जो कुछ तुम्हें सुहाये,
मुँहमाँगा ही दान सभी को हम हैं देते आये।

'गिरा गहन सुन चकित और मन–ही–मन–कुछ भरमाया,
लता–ओट से एक विप्र सामने कर्ण के आया।
कहा कि 'जय हो, हमने भी है सुनी सुकीर्ति कहानी,
नहीं आज कोई त्रिलोक में कहीं आप–सा दानी।

'नहीं फिराते एक बार जो कुछ मुख से कहते हैं,
प्रण–पालन के लिए आप बहु भाँति कष्ट सहते हैं।
आश्वासन से ही अभीत हो सुख विपन्न पाता है,
कर्ण–वचन सर्वत्र कार्यवाचक माना जाता है।

'लोग दिव्य शत–शत प्रमाण निश्ठा के बतलाते हैं,
शिवि–दधीचि–प्रह्लाद कोटि में आप गिने जाते हैं।
सबका है विश्वास, मृत्यु से आप न डर सकते हैं,
हँस कर प्रण के लिए प्राण न्योछावर कर सकते हैं।

'ऐसा है तो मनुज–लोक, निश्चय, आदर पायेगा।
स्वर्ग किसी दिन भीख माँगने मिट्टी पर आयेगा।
किन्तु भाग्य है बली, कौन, किससे, कितना पाता है,
यह लेखा नर के ललाट में ही देखा जाता है।

'क्षुद्र पात्र हो मग्न कूप में जितना जल लेता है,
इससे अधिक वारि सागर भी उसे नहीं देता है।
अतः, व्यर्थ है देख बड़ों को बड़ी वस्तु की आशा,
किस्मत भी चाहिए, नहीं केवल ऊँची अभिलाशा।'

कहा कर्ण ने, 'वृथा भाग्य से आप डरे जाते हैं,
जो है सम्मुख खड़ा, उसे पहचान नहीं पाते हैं।
विधि ने था क्या लिखा भाग्य में, खूब जानता हूँ मैं,
बाँहों को, पर, कहीं भाग्य से बली मानता हूँ मैं।

'महाराज, उद्यम से विधि का अंक उलट जाता है,
किस्मत का पाशा पौरुश से हार पलट जाता है।
और उच्च अभिलाशाएँ तो मनुज मात्र का बल हैं,
जगा–जगा कर हमें वही तो रखती नित चंचल हैं।

'आगे जिसकी नजर नहीं, वह भला कहाँ जायेगा?
अधिक नहीं चाहता, पुरुश वह कितना धन पायेगा?
अच्छा, अब उपचार छोड़, बोलिये, आप क्या लेंगे,
सत्य मानिये, जो माँगेंगे आप, वही हम देंगे।

'मही डोलती और डोलता नभ में देव–निय भी,
कभी–कभी डोलता समर में किंचित् वीर–हृदय भी।
डोले मूल अचल पर्व का, या डोले ध्रुवतारा,
रच डोले, पर नहीं डोल सकता है वचन हमारा।'

भली–भांति कस कर दाता को, बोला नीच भिखारी,
'धन्य–धन्य, राधेय! दान के अति अमोघ व्रतधारी।
ऐसा है औदार्य, तभी तो कहता प्रति याचक है,
महाराज का वचन सदा, सर्वत्र क्रियावाचक है।

'मैं सब–कुछ पा गया प्राप्त कर वचन आपके मुख से,
अब तो मैं कुछ लिये बिना भी जा सकता हूँ सुख से।
क्योंकि माँगना है जो कुछ उसको कहते डरता हूँ,
और साथ ही, एक द्विधा का भी अनुभव करता हूँ।

'कहीं आप दे सके नहीं, जो कुछ मैं धन माँगूँगा,
मैं तो भला किसी विधि अपनी अभिलाशा त्यागूँगा,
किन्तु आपकी कीर्ति–चाँदनी फीकी हो जायेगी,
निश्कलंक विधु कहाँ दूसरा फिर वसुधा पायेगी?

'है सुकर्म, क्या संकट में डालना मनस्वी नर को?
प्रण से डिगा आपको दूँगा क्या उत्तर जग भर को?
सब कोसेंगे मुझे कि मैंने पुण्य मही को लूटा,
मेरे ही कारण अभंग प्रण महाराज का टूटा।

'अतः, विदा दें मुझे, खुशी से मैं वापस जाता हूँ।'
बोल उठा राधेय, 'आपको मैं अद्भुत पाता पाता हूँ।
सुर हैं, या कि यक्ष हैं अथवा हरि के मायाचर हैं,
समझ नहीं पाता कि आप नर हैं या योनि इतर है।

'भला कौन–सी वस्तु आप मुझ नश्वर से माँगेंगे,
जिसे नहीं पाकर, निराश हो, अभिलाशा त्यागेंगे?
गो, धरती, धन, धाम वस्तु जितनी चाहें दिलवा दूँ,
इच्छा हो तो शीश काट कर पद पर यहीं चढ़ा दूँ।

'या यदि साथ लिया चाहें जीवित, सदेह मुझको ही,
तो भी वचन तोड़कर हूँगा नहीं विप्र का द्रोही।
चलिये साथ चलूँगा मैं साकल्य आपका ढोते,
सारी आयु बिता दूँगा चरणों को धोते–धोते।

'वचन माँग कर नहीं माँगना दान बड़ा अद्भुत है,
कौन वस्तु है, जिसे न दे सकता राधा का सुत है?
विप्रदेव! माँगिये छोड़ संकोच वस्तु मनचाही,
मरूँ अयश की मृत्यु, करूँ यदि एक बार भी 'नाही'।'

सहम गया सुन शपथ कर्ण की, हृदय विप्र का डोला,
नयन झुकाये हुए भिक्षु साहस समेट कर बोला,
'धन की लेकर भीख नहीं मैं घर भरने आया हूँ,
और नहीं नृप को अपना सेवक करने आया हूँ।

'यह कुछ मुझको नहीं चाहिए, देव धर्म को बल दें,
छेना हो तो मुझे कृपा कर कवच और कुण्डल दें।'
'कवच और कुण्डल!' विद्युत छू गयी कर्ण के तन को,
पर, कुछ सोच रहस्य, कहा उसने गंभीर कर मन को।

'समझा, तो यह और न कोई, आप, स्वयं सुरपति हैं,
देने को आये प्रसन्न हो तप में नयी प्रगति हैं।
धन्य हमारा सुयश आपको खींच मही पर लाया,
स्वर्ग भीख माँगने आज, सच ही, मिट्टी पर आया।

'क्षमा कीजिये, इस रहस्य को तुरत न जान सका मैं,
छिप कर आये आप, नहीं इससे पहचान सका मैं।
दीन विप्र ही समझ कहा–धन, धाम, धरा लेने को,
था क्या मेरे पास, अन्यथा, सुरपति को देने को?

'केवल गन्ध जिन्हें प्रिय, उनको स्थूल मनुज क्या देगा?
और व्यामवासी मिट्टी से दान भला क्या लेगा?
फिर भी, देवराज भिक्षुक बनकर यदि हाथ पसारें,
जो भी हो, पर इस सुयोग को, हम क्यों अशुभ विचारें?

'अतः, आपने जो माँगा है, दान वही मैं दूँगा,
शिवि–दधीचि की पंक्ति छोड़कर जग में अयश न लूँगा।
पर, कहता हूँ, मुझे बना निस्त्राण छोड़ते हैं क्यों?
कवच और कुण्डल ले करके प्राण छोड़ते हैं क्यों?

'यह शायद, इसलिए कि अर्जुन जिये, आप सुख लूटें,
व्यर्थ न उसके शर अमोघ मुझ पर टकरा कर टूटें।
उधर करें बहु भाँति पार्थ की स्वयं कश्मण रखवाली,
और इधर मैं लड़ूँ लिये यह देव कवच से खाली।

'तनिक सोचिये, वीरों का यह योग्य समर क्या होगा?
इस प्रकार से मुझे मार कर पार्थ अमर क्या होगा?
एक बाज का पंख मोड़ कर करना अभय अपर को,
सुर को शोभे भले, नीति यह नहीं शोभती नर को।

'यह तो निहत शरम पर चढ़ आखेटक पद पाना है,
जहर पिला मश्गपति को उस पर पौरुश दिखलाना है।
यह तो साफ समर से होकर भीत विमुख होना है,
जय निश्चित हो जाय, तभी रिपु के सम्मुख होना है।

'देवराज! हम जिसे जीत सकते न बाहु के बल से,
क्या है उचित उसे मारें हम न्याय छोड़कर छल से?
हार–जीत क्या चीज? वीरता की पहचान समर है।
सच्चाई पर कभी हार कर भी न हारता नर है।

'और पार्थ यदि बिना लड़े ही जय के लिए विकल है,
तो कहता हूँ इस जय का भी एक उपाय सरल है।
कहिये उसे, सोने की मेरी एक मूर्ति बनवाये,
और काट कर उसे, जगत् में कर्णजयी कहलाये।

'जीत सकेगा मुझे नहीं वह और किसी विधि रण में,
कर्ण–विजय की आश तड़प कर रह जायेगी मन में।
जीते जूझ समर वीरों ने सदा बाहु के बल से,
मुझे छोड़ रक्षित जनमा था कौन कवच–कुण्डल से?

'मैं ही था अपवाद, आज वह भी विभेद हरता हूँ,
कवच छोड़ अपना शरीर सबके समान करता हूँ।
अच्छा किया कि आप मुझे समतल पर लाने आये,
हर तनुत्र दैवीय, मनुज सामान्य बनाने आये।

'अब न कहेगा जगत, कर्ण को ईश्वरीय भी बल था,
जीता वह इसलिए कि उसके पास कवच–कुण्डल था।
महाराज! किस्मत ने मेरी की न कौन अवहेला?
किस आपत्ति–गर्त में उसने मुझको नहीं धकेला?

'जनमा जानें कहाँ, पला पद–दलित सूत के कुल में,
परिभव सहता रहा विफल प्रोत्साहन हित व्याकुल मैं।
द्रोणदेव से हो निराश वन में भश्गुपति तक धाया,
बड़ी सचित की पर, बदले में शाप भयानक पाया।

'और दान, जिसके कारण ही हुआ ख्यात मैं जग में,
आया है बन विघ्न सामने आज विजय के मग में।
ब्रह्मा के हित उचित मुझे क्या इस प्रकार छलना था?
हवन डालते हुए यज्ञ में मुझको ही जलना था?

'सबको मिली स्नेह की छाया, नयी–नयी सुविधाएँ,
नियति भेजती रही सदा, पर, मेरे हित विपदाएँ,
मन–ही–मन सोचता रहा हूँ, यह रहस्य भी क्या है,
खोज खोज घेरती मुझी को क्यों बाधा–विपदा है।

'और कहें यदि, पूर्व जन्म के पापों का यह फल है,
तो फिर विधि ने दिया मुझे क्यों कवच और कुण्डल है?
समझ नहीं पड़ती विरचिं की बड़ी जटिल है माया,
सब–कुछ पाकर भी मैंने यह भाग्य–दोश क्यों पाया?

'जिससे मिलता नहीं सिद्ध फल मुझे किसी भी व्रत का,
उलटा हो जाता प्रभाव मुझपर आ धर्म सुगत का।
गंगा में ले जन्म, वारि गंगा का पी न सका मैं,
किये सदा सत्कर्म, छोड़ चिन्ता पर जी न सका मैं।

'जानें क्या मेरी रचना में था उद्देश्य प्रकृति का,
मुझे बना आगार शूरता का, करुणा का, धृति का,
देवोपम गुण सभी दान कर जाने, क्या करने को,
दिया भेज भू पर केवल बाधाओं से लड़ने को।

'फिर कहता हूँ, नहीं व्यर्थ राधेय यहाँ आया है,
एक नया सन्देश विश्व के हित वह भी लाया है।
स्यात, उसे भी नया पाठ मनुजों को सिखलाना है,
जीवन–जय के लिए कहीं कुछ करतब दिखलाना है।

'वह करतब है यह कि शूर जो चाहे कर सकता है,
नियति–भाल पर पुरुश पाँव निज बल से धर सकता है।
वह करतब है यह कि शक्ति बसती न वंश या कुल में,
बसती है वह सदा वीर पुरुशों के वक्ष वक्षस्थल में।

'वह करतब है यह कि विश्व ही चाहे रिपु हो जाये,
दगा धर्म दे और पुण्य चाहे ज्वाला बरसाये।
पर मनुश्य तब भी न कभी सत्पथ से टल सकता है,
बल से अन्धड़ को धकेल वह आगे चल सकता है।

'वह करतब है यह कि युद्ध में मारो और मरो तुम,
पर कुपन्थ में कभी जीत के लिए न पाँव धरो तुम।
वह करतब है यह कि सत्य–पथ पर चाहे कट जाओ,
विजय–तिलक के लिए करों में कालिख पर न लगाओ।

'देवराज! छल, छद्म, स्वार्थ, कुछ भी न साथ लाया हूँ,
मैं केवल आदर्श, एक उनका बनने आया हूँ।
जिन्हें नहीं अवलम्ब दूसरा छोड़ बाहु के बल को,
धर्म छोड़ भजते न कभी जो किसी लोभ से छल को।

'मैं उनका आदर्श जिन्हें कुल का गौरव ताड़ेगा,
'नीचवंशजन्मा' कहकर जिनको जग धिक्कारेगा।
जो समाज की विशम वह्नि में चारों ओर जलेंगे,
पग–पग पर झेलते हुए बाधा निःसीम चलेंगे।

'मैं उनका आदर्श, कहीं जो व्यथा न खोल सकेंगे,
पूछेगा जग, किन्तु पिता का नाम न बोल सकेंगे।
जिनका निखिल विश्व में कोई कहीं न अपना होगा,
मन में लिए उमंग जिन्हें चिर–काल कल्पना होगा।

'मैं उनका आदर्श, किन्तु जो तनिक न घबरायेंगे,
निज चरित्र–बल से समाज में पद विशिश्ट पायेंगे।
सिंहासन ही नहीं, स्वर्ग भी जिन्हें देख नत होगा,
धर्म हेतु धन–धाम लुटा देना जिनका व्रत होगा।

'श्रम से नहीं विमुख होंगे, जो दुख से नहीं डरेंगे,
सुख के लिए पाप से जो नर संधि न कभी करेंगे।
कर्ण–धर्म होगा धरती पर बलि से नहीं मुकरना,
जीना जिस अप्रतिम तेज से, उसी शान से मरना।

'भुज को छोड़ न मुझे सहारा किसी और सम्बल का,
बड़ा भरोसा था, लेकिन इस कवच और कुण्डल का।
पर उनसे भी आज दूर सम्बन्ध किये लेता हूँ।
देवराज! लीजिय खुशी से महादान देता हूँ।

'यह लीजिये कर्ण का जीवन और जीत कुरुपति की,
कनक–रचित निःश्रेणि अनूपम निज सुत की उन्नति की।
हेतु पाण्डवों के भय का, परिणाम महाभारत का,
अन्तिम मूल्य किसी दानी जीवन के दारुण व्रत का।

'जीवन देकर जय खरीदना, जंग में यही चलन है,
विजय दान करता न प्राण को रख कर कोई जन है।
मगर, प्राण रखकर प्रण अपना आज पालता हूँ मैं,
पूर्णाहूति के लिए विजय का हवन डालता हूँ मैं।

'देवराज! जीवन में आगे और कीर्ति क्या लूँगा?
इससे बढ़कर दान अनूपम भला किसे, क्या दूँगा?
अब जाकर कहिये कि 'पुत्र! मैं वृथा नहीं आया हूँ,
अर्जुन! तेरे लिए, कर्ण से विजय माँग लाया हूँ।

'एक विनय है और, आप लौटें जब अगर भुवन को,
दे दे यह सूचना सत्य के हित में, चतुरानन को।
'उद्वेलित जिसके निमित्त पृथ्वीतल का जन–जन है,
कुरुक्षेत्र में अभी शुरू भी हुआ नहीं वह रण है।

'दो वीरों ने किन्तु, लिया कर आपस में निपटारा,
हुआ जयी राधेय और अर्जुन इस रण में हारा।'
यह कह, उठा कृपाण कर्ण ने त्वचा छील क्षण भर में,
कवच और कुण्डल उतार, धर! दिया इन्द्र के कर में।

चकित, भीत चहचहा उठे कुंजों में विहग विचारे,
दिशा सन्न रह गयी देख यह दृश्य भीति के मारे।
सह न सके आघात, सूर्य छिप गये सरक कर घन में,
'साधु, साधु!' की गिरा मन्द्र गूँजी गम्भीर गगन में।

अपना कृत्य विचार, कर्ण का करतब देख निराला,
देवराज का मुखमण्डल पड़ गया ग्लानि से काला।
विलन्न कवच को लिये किसी चिन्ता में पगे हुए–से।
ज्यों–के–त्यों रह गये इन्द्र जड़ता में ठगे हुए–से

'पाप हाथ से निकल मनुज के सिर पर जब छाता है,
तब सत्य ही, प्रदाह प्राण का सहा नहीं जाता है।
अहंकारवश इन्द्र सरल नर को छलने आये थे,
नहीं त्याग के महातेज–सम्मुख जलने आये थे।

किन्तु, विशिख जो लगा, कर्ण की बलि का आन हृदय में,
बहुत काल तक इन्द्र मौन रह गये मग्न विस्मय में।
झुका शीश आखिर वे बोले, 'अब क्या बात कहूँ मैं?
करके ऐसा पाप मूक भी कैसे, किन्तु रहूँ मैं?

'पुत्र! सत्य ही तूने पहचाना, मैं ही सुरपति हूँ,
पर, सुरत्व को भूल निवेदित करता तुझे प्रणति हूँ।
देख लिया, जो कुछ देखा था कभी न अब तक भू पर,
आज तुला पर भी नीचे है मही, स्वर्ग है ऊपर।

'क्या कह करूँ प्रबोध? जीभ काँपती, प्राण हिलते हैं,
माँगूँ क्षमादान, ऐसे तो शब्द नहीं मिलते हैं।
दे पावन पदधूलि कर्ण! दूसरी न मेरी गति है,
पहले भी थी भ्रमित, अभी भी फँसी भँवर में मति है।

'नहीं जानता था कि छद्म इतना संहारक होगा,
छान कवच–कुण्डल का– ऐसा हृदय–विदारक होगा।
मेरे मन का पाप मुझी पर बनकर धूम घिरेगा,
वज्र भेद कर तुझे, तुरत मुझ पर भी आन गिरेगा।

'तेरे महातेज के आगे मलिन हुआ जाता हूँ,
कर्ण! सत्य ही, आज स्वयं को बड़ा क्षुद्र पाता हूँ।
आह! खली थी कमी नहीं मुझको यों लघुता मेरी,
दानी! कहीं दिव्य है मुझसे आज छाँह भी तेरी।

'तृष्ण–सा विवश डूबता, उगता, बहता, उतराता हूँ,
शील–सिन्धु की गहराई का पता नहीं पाता हूँ।
घूम रहा मन–ही–मन लेकिन, मिलता नहीं किनारा,
हुई परीक्षा पूर्ण, सत्य ही नर जीता, सुर हारा।

'हाँ, पड़ पुत्र–प्रेम में आया था छल ही करने को,
जान–बूझ कर कवच और कूण्डल तुझसे हरने को।
वह छल हुआ प्रसिद्ध, किसे, क्या मुख अब दिखलाऊँगा,
आया था बन विप्र, चोर बनकर वापस जाऊँगा।

'वन्दनीय तू कर्ण, देखकर तेज निम्न अति तेरा,
काँप उठा था आते ही देवत्वपूर्ण मन मेरा।
किन्तु, अभी तो तुझे देख मन और डरा जाता है,
हृदय सिमटता हुआ आप–ही–आप मरा जाता है।

'दीख रहा तू मुझे ज्योति के उज्ज्वल शैल अचल–सा,
कोटि–कोटि जन्मों के संचित महापुण्य के फल–सा।
त्रिभुवन में जिन अगणित योगियों का प्रकाश जगता है,
उनके पुंजीभूत रूप–सा तू मुझको लगता है।

'खड़े दीखते जगन्नियन्ता पीछे मुझे गगन में,
बड़े प्रेम से लिये तुझे ज्यातिर्मय आलिंगन में।
दान, धर्म, अगणित व्रत–साधन, योग, यज्ञ, तप तेरे,
सब प्रकाश बन खड़े हुए हैं तुझे चतुर्दिक् घेरे।

'मही मग्न हो तुझे अंक में लेकर हहलाती है,
मस्तक सूँघ स्वत्व अपना यह कहकर जतलाती है,
'इसने मेरे अमित मलिन पुत्रों का दुख मेटा है,
सूर्यपुत्र यह नहीं, कर्ण मुझ दुखिया का बेटा है।

'तू दानी, मैं कुटिल प्रवंचक, तू पवित्र, मैं पापी,
तू देकर भी सुखी और मैं लेकर भी परितापी।
तू पहुँचा है जहाँ कर्ण, देवत्व न जा सकता है,
इस महान पद को कोई मानव ही पा सकता है।

'देख न सकता अधिक और मैं कर्ण, रूप यह तेरा,
काट रहा है मुझे जागकर पाप भयानक मेरा।
तेरे इस पावन स्वरूप में जितना ही पगता हूँ,
उतना ही मैं और अधिक बर्बर–समान लगता हूँ।

'अतः कर्ण! कर कृपा यहाँ से तुरत मुझे जाने दे,
अपने इस दुर्द्धर्श तेज से त्राण मुझे पाने दे।
मगर, विदा देने के पहले एक कृपा यह कर तू,
मुझ निष्ठुर से भी कोई ले माँग सोच कर वर तू।

कहा कर्ण ने, 'धन्य हुआ मैं आज सभी कुछ देकर,
देवराज! अब क्या होगा वरदान नया कुछ लेकर?
बस, आशिश दीजिये, धर्म में मेरा भाव अचल हो,
बड़ी छत्र हो, बड़ी मुकुट हो, बड़ी कवच–कुण्डल हो।

देवराज बोले कि 'कर्ण! यदि धर्म तुझे छोड़ेगा,
निज रक्षा के लिए नया सम्बन्ध कहाँ जोड़ेगा?
और धर्म को तू छोड़ेगा भला पुत्र! किस य से,
अभी–अभी रक्खा जब इतना ऊपर उसे विजय से?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

'धर्म नहीं, मैंने तुझसे जो वस्तु हरण कर ली है,
छल से कर आघात तुझे जो निस्सहायता दी है,
उसे दूर या कम करने की है मुझको अभिलाशा,
पर, स्वेच्छा से नहीं पूजने देगा तू यह आशा।

'तू माँगे कुछ नहीं, किन्तु मुझको अवश्य देना है,
मन का कठिन बोझ थोड़ा–सा हल्का कर लेना है।
ले अमोघ यह अस्त्र, काल को भी यह खा सकता है,
इसका कोई वार किसी पर विफल न जा सकता है।

'एक बार ही मगर, काम तू इससे ले पायेगा,
फिर यह तुरत लौट कर मेरे पास चला जायेगा।
अतः वत्स! मत इसे चलाना कभी वश्था चंचल हो,
लेना काम तभी जब तुझको और न कोई बल हो।

'दानवीर! जय हो, महिमा का गान सभी जन गायें,
देव और नर दोनों ही, तेरा चरित्र अपनायें।'
दे अमोघ शर–दान सिधारे देवराज अम्बर को,
व्रत का अन्तिम मूल्य चुका कर गया कर्ण निज घर को।

पंचम सर्ग

'आ गया काल विकराल शान्ति के क्षय का,
निर्दिश्ट लग्न धरती पर खण्ड–प्रलय का।
हो चुकी पूर्ण योजना नियति की सारी,
कल ही होगा आरम्भ समर अति भारी।

कल जैसे ही पहली मरीचि फूटेगी,
रण में शर पर चढ़ महामृत्यु छूटेगी।
संहार मचेगा, तिमिर घोर छायेगा,
सारा समाज दृश्गवंचित हो जायेगा।

जन–जन स्वजनों के लिए कुटिल यम होगा,
परिजन, परिजन के हित कृतान्त–सम होगा।
कल से भाई, भाई के प्राण हरेंगे,
नर ही नर के शोणित में स्नान करेंगे।

सुध–बुध खो, बैठी हुई समर–चिन्तन में,
कुन्ती व्याकुल हो उठी सोच कुछ मन में।
'हे राम! नहीं क्या यह संयोग हटेगा?
सचमुच ही क्या कुन्ती का हृदय फटेगा?

'एक ही गोद के लाल, कोख के भाई,
सत्य ही लड़ेंगे हो, दो ओर लड़ाई?
सत्य ही, कर्ण अनुजों के प्राण हरेगा,
अथवा, अर्जुन के हाथों स्वयं मरेगा?

'दो में जिसका उर फटे, फटूँगी मैं ही,
जिसकी भी गरदन कटे, कटूँगी मैं ही,
पार्थ को कर्ण, या पार्थ कर्ण को मारे,
बरसेंगे किस पर मुझे छोड़ अंगारे?

चिन्ताकुल, उलझी हुई व्यथा में, मन से,
बाहर आयी कुन्ती, कढ़ विदुर–भवन से।
सामने तपन को देख, तनिक घबरा कर,
सितकेशी, सम्भ्रममयी चली सकुचा कर।

उड़ती वितर्क–धागे पर, चंग–सरीखी,
सुधियों की सहती चोट प्राण पर तीखी।
आशा–अभिलाशा–भरी, डरी, भरमायी,
कुन्ती ज्यों–त्यों जाह्नवी–तीर पर आयी।

Jai Vijay Bharati Institute (Deemed University) Jaipur

दिनमणि पश्चिम की ओर क्षितिज के ऊपर,
थे घट उँड़ेलते खड़े कनक के भू पर।
ललिमा बहा अग–जग को नहलाते थे,
खुद भी लज्जा से लाल हुए जाते थे।

राधेय सान्ध्य–पूजा में ध्यान लगाये,
था खड़ा विमल जल में, युग बाहु उठाये।
तन में रवि का अप्रतिम तेज जगता था,
दीपित ललाट अपरार्क–सदृश लगता था।

मानो, युग–स्वर्णिम–शिखर–मूल में आकर,
हो बैठ गया सचमुच ही, सिमट विभाकर।
अथवा मस्तक पर अरुण देवता को ले,
हो खड़ा तीर पर गरुड़ पंख निज खोले।

या दो अर्चियाँ विशाल पुनीत अनल की,
हों सजा रही आरती विभा–मण्डल की,
अथवा अगाध कंचन में कहीं नहा कर,
बेबाक–शैल हो खड़ा बाहु फैला कर।

सुत की शोभा को देख मोद में फूली,
कुन्ती क्षण–भर को व्यथा–वेदना भूली।
भर कर ममता–पय से निष्पलक नयन को,
वह खड़ी सींचती रही पुत्र के तन को।

आहट पाकर जब ध्यान कर्ण ने खोला,
कुन्ती को सम्मुख देख विनत हो बोला,
'पद पर अन्तर का भक्ति–भाव धरता हूँ,
राधा का सुत मैं, देवि! नमन करता हूँ।

'हैं आप कौन? किसलिए यहाँ आयी हैं?
मेरे निमित्त आदेश कौन लायी हैं?
यह कुरुक्षेत्र की भूमि, युद्ध का स्थल है,
अस्तमित हुआ चाहता विभामण्डल है।

'सूना, औघट यह घाट, महाभयकारी,
उस पर भी प्रवया आप अकेली नारी।
है कौन? देवि! कहिये, क्या कर्म करूँ मैं?
क्या भक्ति–भेंट चरणों पर आन धरूँ मैं?

सुन गिरा गूढ़ कुन्ती का धीरज छूटा,
भीतर का क्लेश अपार अश्रु बन फूटा।
विगलित हो उसने कहा काँपते स्वर से,
'रे कर्ण! बेध मत मुझे निदारुण शर से।

'राधा का सुत तू नहीं, तनय मेरा है,
जो धर्मराज का, वही वंश तेरा है।
तू नहीं सूत का पुत्र, राजवंशी है,
अर्जुन–समान कुरुकुल का ही अंशी है।

'जिस तरह तीन पुत्रों को मैंने पाया,
तू उसी तरह था प्रथम कुक्षि में आया।
पा तुझे धन्य थी हुई गोद यह मेरी,
मैं ही अभागिनी पश्था जननि हूँ तेरी।

'पर, मैं कुमारिका थी, जब तू आया था,
अनमोल लाल मैंने असमय पाया था।
अतएव हाय! अपने दुधमुँहे तनय से,
भागना पड़ा मुझको समाज के भय से।

Jai Vishwa Bharati Institute (Deemed University)

'बेटा, धरती पर बड़ी दीन है नारी,
अबला होती, सचमुच योशिता कुमारी।
है कठिन बन्द करना समाज के मुख को,
सिर उठा न पा सकती पतिता निज सुख को।

'उस पर भी बाल अबोध, काल बचपन का,
सूझा न शोध मुझको कुछ और पतन का।
मंजूशा में धर तुझे, वज्र कर मन को,
धारा में आयी छोड़ हृदय के धन को।

'संयोग, सूतपत्नी ने तुझको पाला,
उन दयामयी पर तनिक न मुझे कसाला।
ले चल, मै उनके दोनों पाँव धरूँगी,
अग्रजा मान कर सादर अंक भरूँगी।

'पर एक बात सुन, जो कहने आयी हूँ,
आदेश नहीं, प्रार्थना साथ लायी हूँ।
कल कुरुक्षेत्र में जो संग्राम छिड़ेगा,
क्षत्रिय–समाज पर कल जो प्रलय घिरेगा,

'उसमें न पाण्डवों के विरुद्ध हो लड़ तू,
मत उन्हें मार, या उनके हाथों मर तू।
मेरे ही सुत मेरे सुत को ही मारें,
हो क्रुद्ध परस्पर ही प्रतिशोध उतारें।

'यह विकट दृश्य मुझसे न सहा जायेगा,
अब और न मुझसे मूक रहा जायेगा।
जो छिपकर थी अब तक कुरेदती मन को,
बतला दूँगी यह व्यथा समग्र भुवन को।

'भागी थी तुझको छोड़ कभी जिस भय से,
फिर कभी न हेरा तुझको जिस संशय से।
उस जड़ समाज के सिर पर कदम धरूँगी,
डर चुकी बहुत, अब और न अधिक डरूँगी।

'बाजी तो मैं थी हार चुकी कब को ही,
लेकिन, विरंचि निकला कितना निर्मोही।
तुझ तक न आज तक दिया कभी भी आने,
यह गोपन जन्म–रहस्य तुझे बतलाने।

'पर, पुत्र! सोच अन्यथा न तू कुछ मन में,
यह भी होता है कभी–कभी जीवन में।
अब दौड़ वत्स! गोदी में वापस आ तू,
आ गया निकट विध्वंस, न देर लगा तू।

'जा भूल द्वेश के जहर, क्रोध के विश को,
रे कर्ण! समर में अब मारेगा किस को?
पाँचों पाण्डव है अनुज, बड़ा तू ही है,
अग्रज बन रक्षा–हेतु खड़ा तू ही है।

'नेता बन, कर में सूत्र समर का ले तू,
अनुजों पर छत्र विशाल बाहु का दे तू।
संग्राम जीत, कर प्राप्त विजय अति भारी,
जयमुकुट पहन, फिर भोग सम्पदा सारी।

'यह नहीं किसी भी छल का आयोजन है,
रे पुत्र! सत्य ही मैंने किया कथन है।
विश्वास न हो तो शपथ कौन मैं खाऊँ?
किसको प्रमाण के लिए यहाँ बुलवाऊँ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

'वह देख, पश्चिमी तट के पास गगन में,
देवता दीपते जो कनकाभ वसन में,
जिनके प्रताप की किरण अजय अद्भुत है,
तू उन्हीं अंशुधर का प्रकाशमय सुत है।'

रुक पृथा पोंछने लगी अश्रु अंचल से,
इतने में आयी गिरा गगन–मण्डल से,
'कुन्ती का सारा कथन सत्य कर जानो,
माँ की आज्ञा बेटा! अवश्य तुम मानो।'

यह कह दिनेश चट उतर गये अम्बर से,
हो गये तिरोहित मिलकर किसी लहर से।
मानो, कुन्ती का भार भयानक पाकर,
वे चले गये दायित्व छोड़ घबराकर।

डूबते सूर्य को नमन निवेदित करके,
कुन्ती के पद की धूलि शीश पर धरके।
राधेय बोलने लगा बड़े ही दुख से,
'तुम मुझे पुत्र कहने आयी किस मुख से?

'क्या तुम्हें कर्ण से काम? सूत है वह तो,
माता के तन का मल, अपूत है वह तो।
तुम बड़े वंश की बेटी, ठकुरानी हो,
अर्जुन की माता, कुरुकुल की रानी हो।

'मैं नाम–गोत्र से हीन, दीन, खोटा हूँ,
सारथीपुत्र हूँ, मनुज बड़ा छोटा हूँ।
ठकुरानी! क्या लेकर तुम मुझे करोगी?
मल को पवित्र गोदी में कहाँ धरोगी?

'है कथा जन्म की ज्ञात, न बात बढ़ाओ,
मत छेड़–छेड़ मेरी पीड़ा उकसाओ,
हूँ खूब जानता, किसने मुझे जना था,
किसके प्राणों पर मैं दुर्मार बना था।

'सह विविध यातना मनुज जन्म पाता है,
धरती पर शिशु भूखा–प्यासा आता है।
माँ सहज–स्नेह से ही प्रेरित अकुला कर,
पय–पान कराती उर से उसे लगा कर।

'मुख चूम जन्म की क्लान्ति हरण करती है,
दृग से निहार अंग में अमृत भरती है।
पर मुझे अंक में उठा न ले पायीं तुम,
पय का पहला आहार न दे पायीं तुम।

'उलटे, मुझको असहाय छोड़ कर जल में,
तुम लौट गयीं इज्जत के बड़े महल में।
मैं बचा अगर तो अपने आयुर्बल से,
रक्षा किसने की मेरी काल–कवल से?

'क्या कोर–कसर तुमने कोई भी की थी?
जीवन के बदले साफ मृत्यु ही दी थी।
पर, तुमने जब पत्थर का किया कलेजा,
असली माता के पास भाग्य ने भेजा।

'अब जब सब कुछ हो चुका, शेष दो क्षण हैं,
आखिरी दाँव पर लगा हुआ जीवन है,
तब प्यार बाँध करके अंचल के पट में,
आयी हो निधि खोजती हुई मरघट में।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

'अपना खोया संसार न तुम पाओगी,
राधा माँ का अधिकार न तुम पाओगी।
छीनने स्वत्व उसका तो तुम आयी हो,
पर, कभी बात यह भी मन में लायी हो?

'उसको सेवा, तुमको सुकीर्ति प्यारी है,
तुम ठकुरानी हो, वह केवल नारी है।
तुमने तो तन से मुझे काढ़ कर फेंका,
उसने अनाथ को हृदय लगा कर सेंका।

'उमड़ी न स्नेह की उज्ज्वल धार हृदय से,
तुम सूख गयीं मुझको पाते ही भय से।
पर, राधा ने जिस दिन मुझको पाया था,
कहते हैं, उसको दूध उतर आया था।

'तुमने जनकर भी नहीं पुत्र कर जाना,
उसने पाकर भी मुझे तनय निज माना।
अब तुम्हीं कहो, कैसे आत्मा को मारूँ?
माता कह उसके बदले तुम्हें पुकारूँ?

'है वश्था बल हे देवि! मुझे पाने का,
मैं नहीं वंश में फिर वापस जाने का।
दी बिता आयु सारी कुलहीन कहा कर,
क्या पाऊँगा अब उसे आज अपना कर?

'यद्यपि जीवन की कथा कलंकमयी है,
मेरे समीप लेकिन, वह नहीं नयी है।
जो कुछ तुमने है कहा बड़े ही दुख से,
सुन उसे चुका हूँ मैं केशव के मुख से।

'जानें, सहसा तुम सबने क्या पाया है,
जो मुझ पर इतना प्रेम उमड़ आया है।
अब तक न स्नेह से कभी किसी ने हेरा,
सौभाग्य किन्तु, जग पड़ा अचानक मेरा।

'मैं खूब समझता हूँ कि नीति यह क्या है,
असमय में जन्मी हुई प्रीति यह क्या है।
जोड़ने नहीं बिछुड़े–वियुक्त कुलजन से,
फोड़ने मुझे आयी हो दुर्योधन से।

'सिर पर आकर जब हुआ उपस्थित रण है,
डिल उठा सोच परिणाम तुम्हारा मन है।
अंक में न तुम मुझको भरने आयी हो,
कुरुपति को कुछ दुर्बल करने आयी हो।

'अन्यथा स्नेह की वेगमयी यह धारा,
तट को मरोड़, झकझोर, तोड़ कर कारा,
भुज बढ़ा खींचने मुझे न क्यों आयी थी?
पहले क्यों यह वरदान नहीं लायी थी?

'केवशव पर चिन्ता डाल, अभय हो रहना,
इस पार्थ भाग्यशाली का भी क्या कहना!
ले गये माँग कर, जनक कवच–कुण्डल को,
जननी कुण्ठित करने आयी रिपु–बल को।

'लेकिन, यह होगा नहीं देवि! तुम जाओ,
जैसे भी हो, सुत का सौभाग्य मनाओ।
दें छोड़ भले ही कभी कश्मण अर्जुन को,
मैं नहीं छोड़नेवाला दुर्योधन को।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

'कुरुपति का मेरे रोम–रोम पर ऋण है,
आसान न होना उससे कभी उऋण है।
छल किया अगर, तो जग में यश लूँगा।
प्राण ही नहीं, तो उसे और क्या दूँगा।

'हो चुका धर्म के ऊपर न्योछावर हूँ,
मैं चढ़ा हुआ नैवेद्य देवता पर हूँ।
अर्पित प्रसून के लिए न यों ललचाओ,
पूजा की वेदी पर मत हाथ बढ़ाओ।'

राधेय मौन हो रहा व्यथा निज कह के,
आँखों से झरने लगे अश्रु बह–बह के।
कुन्ती के मुख में वश्था जीभ हिलती थी,
कहने को कोई बात नहीं मिलती थी।

अम्बर पर मोती–गुँथे चिकुर फैला कर,
अंजन उँड़ेल सारे जग को नहला कर।
साड़ी में टाँके हुए अनन्त सितारे,
थी घूम रही तिमिरांचल निशा पसारे।

थी दिशा स्तब्ध, नीरव समस्त अग–जग था,
कुजों में अब बोलता न कोई खग था,
झिल्ली अपना स्वर कभी–कभी भरती थी,
जल में जब–जब मछली छप–छप करती थी।

इस सन्नाटे में दो जन सरित–किनारे,
थे खड़े शिलावत् मूक, भाग्य के मारे।
था सिसक रहा राधेय सोच यह मन में,
क्यों उबल पड़ा असमय विश कुटिल वचन में?

क्या कहे और, यह सोच नहीं पाती थी,
कुन्ती कुत्सा से दीन मरी जाती थी।
आखिर, समेट निज मन को कहा पश्था ने,
'आयी न वेदी पर का मैं फूल उठाने।

'पर के प्रसून को नहीं, नहीं पर–धन को,
थी खोज रही मैं तो अपने ही जन को,
पर, समझ गयी, वह मुझको नहीं मिलेगा,
बिछुड़ी डाली पर कुसुम न आन खिलेगा।

'तब जाती हूँ क्या और सकूँगी कर मैं?
दूँगी आगे क्या भला और उत्तर मैं?
जो किया दोश जीवन भर दारुण रहकर,
मेटूँगी क्षण में उसे बात क्या कहकर?

'अभिलाश लिये तो बहुत बड़ी आयी थी,
पर, आस नहीं अपने बल की लायी थी।
था एक भरोसा यही कि तू दानी है,
अपनी अमोघ करुणा का अभिमानी है।

'थी विदित वत्स! तेरी यह कीर्ति निराली,
लौटता न कोई कभी द्वार से खाली।
पर मैं अभागिनी ही अंचल फैलाकर,
जा रही रिक्त बेटे से भीख न पाकर।

'फिर भी तू जीता रहे, न अपयश जाने,
संसार किसी दिन तुझे पुत्र! पहचाने।
अब आ, क्षण भर मैं तुझे अंक में भर लूँ,
आखिर बार तेरा आलिंगन कर लूँ।'

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University)

माँ ने बढ़कर जैसे ही कण्ठ लगाया,
हो उठी कण्टकित पुलक कर्ण की काया।
संजीवन–सी छू गयी चीज कुछ तन में,
बह चला स्निग्ध प्रस्त्रवण कहीं से मन में।

पहली वर्शा में मही भींगती जैसे,
भींगता रहा कुछ काल कर्ण भी वैसे।
फिर कण्ठ छोड़ बोला चरणों पर आकर,
मैं धन्य हुआ बिछुड़ी गोदी को पाकर।

'पर, हाय, स्वत्व मेरा न समय पर लायीं,
मता, सचमुच, तुम बड़ी देर कर आयीं।
अतएव, न्यास अंचल का ले न सकूँगा,
पर, तुम्हें रिक्त जाने भी दे न सकूँगा।

'की पूर्ण सभी की, सभी तरह अभिलाशा,
जाने दूँ कैसे लेकर तुम्हें निराशा?
लेकिन, पड़ता हूँ पाँव, जननि! हठ त्यागो,
बन कर कठोर मुझसे मुझको मत माँगो।

'केवल निमित्त संगर का दुर्योधन है,
सच पूछो तो यह कर्ण–पार्थ का रण है।
छीनो सुयोग मत, मुझे अंक में लेकर,
यश, मुकुट, मान, कुल, जाति, प्रतिश्ठा देकर।

अर्जुन से लड़ना छोड़ कीर्ति क्या लूँगा?
क्या स्वयं आप अपने को उत्तर दूँगा?
मेरा चरित्र फिर कौन समझ पायेगा?
सारा जीवन ही उलट–पलट जायेगा।

'तुम दान–दान रट रहीं, किन्तु क्या माता,
पुत्र ही रहेगा सदा जगत् में दाता?
दुनिया तो उससे सदा सभी कुछ लेगी,
पर, क्या माता भी उसे नहीं कुछ देगी?

'मैं एक कर्ण अतएव, माँग लेता हूँ,
बदले में तुमको चार कर्ण देता हूँ।
छोड़ूँगा मैं तो कभी नहीं अर्जुन को,
तोड़ूँगा कैसे स्वयं पुरातन प्रण को?

'पद, अन्य पाण्डवों पर मैं कश्पा करूँगा,
पकर भी उनका जीवन नहीं हरूँगा।
अब जाओ हर्शित–हृदय सोच यह मन में,
पालूँगा जो कुछ कहा, उसे मैं रण में।'

कुन्ती बोली, 'रे हठी, दिया क्या तू ने?
निज को लेकर ले नहीं लिया क्या तू ने?
बनने आयी थी छह पुत्रों की माता,
रह गया वाम का, पर, वाम ही विधाता।

'पाकर न एक को, और एक को खोकर,
मैं चली चार पुत्रों की माता होकर।'
कह उठा कर्ण, 'छह और चार को भूलो,
माता, यह निश्चय मान मोद में फूलो।

'जीते जो भी यह समर झेल दुख भारी,
लेकिन होगी माँ! अन्तिम विजय तुम्हारी।
रण में कट–मर कर जो भी जानि सहेंगे,
पाँच के पाँच ही पाण्डव किन्तु रहेंगे।

'कुरुपति न जी कर निकला अगर समर से,
या मिली वीरगति मुझे पार्थ के कर से,
तुम इसी तरह गोदी की धनी रहोगी,
पुत्रिणी पाँच पुत्रों की बनी रहोगी।

'पर, कहीं काल का कोप पार्थ पर बीता,
वह मरा और दुर्योधन ने रण जीता,
मैं एक खेल फिर जग को दिखलाऊँगा,
जय छोड़ तुम्हारे पास चला आऊँगा।

'जग में जो भी निर्दलित, प्रताड़ित जन हैं,
जो भी निहीन हैं, निन्दित है निर्धन हैं,
यह कर्ण उन्हीं का सखा, बन्धु सहचर है,
विधि के विरुद्ध ही उसका रहा समर है।

'सच है कि पाण्डवों को न राज्य का सुख है,
पर, केशव जिनके साथ, उन्हें क्या दुख है?
उनसे बढ़कर मैं क्या उपहार करूँगा?
है कौन त्रास, केवल मैं जिसे हरूँगा?

'हाँ, अगर पाण्डवों की न चली इस रण में,
वे हुए हतश्री किसी तरह जीवन में,
राधेय न कुरुपति का सह–जेता होगा,
वह पुनः निःस्व दलितों का नेता होगा।

'है अभी उदय का लग्न, दृश्य सुन्दर है,
सब ओर पाण्डु–पुत्रों की कीर्ति प्रखर है।
अनुकूल ज्योति की घड़ी न मेरी होगी,
मैं आऊँगा जब रात अँधेरी होगी।

'यश, मान, प्रतिष्ठा, मुकुट नहीं लेने को,
आऊँगा कुल को अभय दान देने को।
परिभव, प्रदाह, भ्रम, भय, हरने आऊँगा,
दुख में अनुजों को भुज भरने आऊँगा।

'भीषण विपत्ति में उन्हें जननि! टपनाकर,
बाँटने दुःख आऊँगा हृदय लगाकर।
तन में नवीन आभा भरने आऊँगा,
किस्मत को फिर ताजी करने आऊँगा।

'पर नहीं, कृष्ण के कर की छाँह जहाँ है,
रक्षिका स्वयं अच्युत की बाँह जहाँ है,
उस भाग्यवान का भाग्य क्षार क्यों होगा?
सामने किसी दिन अन्धकार क्यों होगा?

'मैं देख रहा हूँ कुरुक्षेत्र के रण को,
नाचते हुए मनुजों पर महामरण को।
शोणित से सारी मही विलिप्त लथपथ है,
जा रहा किन्तु, निर्बाध पार्थ का रथ है।

'है काट रहे हरि आप तिमिर की कारा,
अर्जुन के हित बह रही उलट कर धारा।
शप पाश व्यर्थ रिपु का दल फैलाता है,
वह जाल तोड़ हर बार निकल जाता है।

'मैं देख रहा हूँ जननि! कि कल क्या होगा।
इस महासमर का अन्तिम फल क्या होगा।
लेकिन, तब भी मन तनिक न घबराता है,
उत्साह और दुगना बढ़ता जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

बज चुका काल का पटह, भयानक क्षण है,
दे रहा निमन्त्रण सबको महामरण है।
छाती के पूरे पुरुश प्रलय झेलेंगे,
झंझा की उलझी लटें खींच खेलेंगे।

'कुछ भी न बचेगा शेश अन्त में जाकर,
विजयी होगा सन्तुश्ट तत्व क्या पाकर,
कौरव विलीन जिस पथ पर हो जायेंगे,
पाण्डव क्या उससे भिन्न राह पायेंगे?

'है एक पन्थ कोई जीते या हारे,
खुद मरे या कि, बढ़कर दुश्मन को मारे।
एक ही देश दोनों को जाना होगा,
बचने का कोई नहीं बहाना होगा।

'निस्सार द्रोह की क्रिया, व्यर्थ यह रण है,
खोखला हमारा और पार्थ का प्रण है,
फिर भी जानें किसलिए न हम रुकते हैं,
चाहता जिधर को काल उधर झुकते हैं।

'लेकिन, चिन्ता यह वश्था, बात जाने दो,
जैसा भी हो कल का प्रभात आने दो।
दीखती किसी भी तरफ न उजियाली है,
सत्य ही, आज की रात बड़ी काली है।

'चन्द्रमा–सूर्य तम में जब छिप जाते हैं,
किरणों के अन्वेशी जब अकुलाते हैं
तब धूमकेतु, बस, इसी तरह आता है,
रोशनी जरा मरघट में फैलाता है।'

हो रहा मौन राधेय चरण को छूकर,
दो बिन्दु अश्रु के गिरे दृगों से चूकर।
बेटे का मस्तक सूँघ, बड़े ही दुख से,
कुन्ती लौटी कुछ कहे बिना ही मुख से।

षष्ठ सर्ग

'गिरि का उदय गौरवाधार, गिर जाय श्रृंग ज्यों महाकार,
अथवा सूना कर आसमान, ज्यों गिरे टूट रवि भासमान।
कौरव–दल का कर तेजहरण,
त्यों गिरे भीश्म आलोकवरण।
कुरुकुल का दीप्त ताज गिरा, थक कर बूढ़ा जब बाज गिरा,
मूलुंठित पितामह को विलोक, छा गया समर में महाशोक।
कुरुपति ही धैर्य न खोता था,
अर्जुन का मन भी रोता था।
धो–धो कर तेज नया दमका, दूसरा सूर्य सिर पर चमका,
कौरवी तेज दुर्जेय उठा, रण करने को राधेय उठा।
सबके रक्षक गुरु आर्य हुए,
सेना–नायक आचार्य हुए।
राधेय, किन्तु जिनके कारण, था अब तक किये मौन धारण,
उनका शुभ आशिश पाने को, अपना सद्धर्म निभाने को,
वह शर–शया की ओर चला,
पग–पग हो विनय–विभोर चला।
छू भीश्मदेव के चरण युगल, बोला वाणी राधेय सरल,
'हे तात! आपका प्रोत्साहन, पा सका नहीं जो लांछित जन,
यह वही सामने आया है,
उपहार अश्रु का लाया है।
'आज्ञा हो तो अब धनुश धरूँ, रण में चलकर कुछ काम करूँ,
देखूँ है कौन प्रलय उतरा, जिससे डगमग हो रही धरा।
कुरुपति को विजय दिलाऊँ मैं,

या स्वयं वीरगति पाऊँ मैं।

'अनुचर के दोश क्षमा करिये, मस्तक पर वरद पाणि धरिये,

आखिरी मिलन की वेला है, मन लगता बड़ा अकेला है।

मद–मोह त्यागने आया हूँ,

पद–धूलि माँगने आया हूँ।

भीश्म ने खोल निज सजल नयन, देखे कर्ण के आर्द्र लोचन,

बढ़ खींच पास में लाकर के, छाती से उसे लगा करके,

बोले 'क्या तत्व विशेश बचा।

बेटा, आँसू ही शेश बचा?

'मैं रहा रोकता ही क्षण–क्षण, पर हाय, हठी यह दुर्योधन,

अंकुश विवेक का सह न सका, मेरे कहने में रह न सका,

क्रोधान्ध, भ्रान्त, मद में विभोर,

ले ही आया संग्राम घोर।

'अब कहो, आज क्या होता है? किसका समाज यह रोता है?

किसका गौरव, किसका सिंगार, जल रहा पंक्ति के आर–पार?

किसका वन–बाग उजड़ता है?

यह कौन मारता–मरत है?

'फूटता द्रोह–दव का पावक, हो जाता सकल समाज नरक,

सबका वैभव, सबका सुहाग, जाती डकार यह कुटिल आग।

जब बन्धु विरोधी होते हैं।

सारे कुलवारी रोते हैं

'इसलिए, पुत्र! अब भी रुककर, मन में सोचो, यह महासमर,

किस ओर तुम्हें ले जायेगा? फल अलभ कौन दे पायेगा?

मानवता ही मिट जायेगी?

फिर विजय सिद्धि क्या लायेगी?

'ओ मेरे प्रतिद्वन्द्वी मानी! निश्छल, पवित्र, गुणमय, ज्ञानी,

मेरे मुख से सुन परुश वचन, तुम वश्था मलिन करते थे मन।

मैं नहीं निरा अवशंसी था,

मन–ही–मन बड़ा प्रशंसी था।

सो भी इसलिए कि दुर्योधन, पा सदा तुम्हीं से आश्वासन,

मुझको न मानकर चलता था, पग–पग पर रूठ मचलता था।

अन्यथा पुत्र! तुमसे बढ़कर,

मैं किसे मानता वीर प्रवर?

'पार्थोपम रथी, धुनर्धारी, केशव–समान रणभट भारी,

धर्मज्ञ, धीर, पावन–चरित्र, दीनों–दलितों के विहित मित्र,

अर्जुन को मिले कश्भण जैसे,

तुम मिले कौरवों को वैसे।

'पर हाय, वीरता का सम्बल, रह जायेगा धनु ही केवल?

या शान्ति–हेतु शीतल, शुचि श्रम भी कभी करेंगे वीर परम?

ज्वाला भी कभी बुझायेंगे?

या लड़कर ही मर जायेंगे?

'चल सके दुर्योधन पर यदि वश, बेटा! लो जग में नया सुयश,

लड़ने से बढ़ यह काम करो, आज ही बन्द संग्राम करो।

यदि इसे रोक तुम पाओगे,

जग के त्राता कहलाओगे।

'जा कहो वीर दुर्योधन से, कर दूर द्वेश–विश को मन से,

वह मिले पाण्डवों से जाकर, मरने दे मुझे शान्ति पाकर।

मेरा अन्तिम बलिदान रहे,

सुख से सारी सन्तान रहे।'

'हे पुरुश सिंह! कर्ण ने कहा, 'अब और पन्थ क्या शेश रहा?

संकटापन्न जीवन–समाज, है बीच सिन्धु में महायान,

इस पार शान्ति उस पार विजय,

अब क्या हो भला नया निश्चय।

'जय मिले बिना विश्राम नहीं, इस समय सन्धि का नाम नहीं,

आशिश दीजिए, विजय कर रण, फिर देख सकूँ ये भव्य चरण।

जलयान सिन्धु से तार सकूँ,
सबको मैं पार उतार सकूँ।
'कल तक था पथ शान्ति का सुगम, पर हुआ आज वह अति दुर्गम,
अब उसे देख ललचाना क्या? पीछे को पाँव हटाना क्या।
जय को कर लक्ष्य चलेंगे हम,
अरि–दल का गर्व दलेंगे हम।
'हे महाभाग, कुछ दिन जीकर देखिये और यह महासमर,
मुझको भी प्रलय मचाना है, कुछ खेल नया दिखलाना है,
इस दम तो मुख मोड़िये नहीं,
मेरी हिम्मत तोड़िये नहीं।
'करने दीजिए स्वव्रत पालन, अपने महान् प्रतिभट से रण,
अर्जुन का शीश उड़ाना है, कुरुपति का हृदय जुड़ाना है,
करने की पिता! अमर मुझको,
है बुला रहा संगर मुझको।
गांगेय निराशा में भर कर बोले– 'तब हे नरवीर, प्रवर?
जो भला लगे वह काम करो, जाओ, रण में लड़ नाम करो।
भगवान् शमित विश तूर्ण करें,
अपनी इच्छाएँ पूर्ण करें।'
भीष्म का चरण–वन्दन करके
ऊपर सूर्य को नमन करके
छेवता वज्र–धनुधारी–सा,
केशरी अजेय मृगचारी–सा,
राधेय समर की ओर चला,
करता गर्जन घनघोर चला।
पाकर प्रसन्न आलोक नया, कौरव–सेना का शोक गया,
आशा की नवल तरंग उठी, जन–जन में नयी उमंग उठी,
मानो, बाणों का छोड़ शयन,
आ गये स्वयं गंगानन्दन।
सेना समग्र हुंकार उठी, 'जय–जय राधेय!' पुकार उठी,
उल्लास मुक्त हो छहर उठा, रण–जलधि घोष में घहर उठा,
बज उठी समर–भेरी भीषण,
हो गया शुरू संग्राम गहन।
सागर–सा गर्जित, क्षुभित घोर, विकराल दण्डधर–सा कठोर,
आरिदल पर कुपित कर्ण टूटा, धनु पर चढ़ महामरण छूटा।
ऐसी पहली ही आग चली,
पाण्डव की सेन भाग चली।
झंझा की घोर झकोर चली, डालों को तोड़–मरोड़ चली,
पेड़ों की जड़ टूटने लगी, हिम्मत सेवकी छूटने लगी,
ऐसा प्रचण्ड तूफान उठा,
पर्वत का भी हिल प्राण उठा।
पलावन का पा दुर्जय प्रहार, जिस तरह काँपती है कगार,
या चक्रवात में यथा कीर्ण, उड़ने लगते पत्ते विशीर्ण,
त्यों उठा काँप थर–थर अरिदल,
मच गयी बड़ी भीषण हलचल।
सब रथी व्यग्र बिलखाते थे, कोलाहल रोक न पाते थे,
सेना को यों बेहाल देख, सामने उपस्थित काल देख।
गरजे अधीर हो मधुसूदन,
बोले पार्थ से निगूढ़ वचन।
'हे अचिर सैन्य को अभयदान, अर्जुन! अर्जुन! हो सावधान,
तू नहीं जानता है यह क्या, करता न शत्रु पर कर्ण दया?
दाहक प्रचण्ड इसका बल है,
यह मनुज नहीं कालानल है।
'बड़वानल, यम या कालपवन, करते जब कभी कोप भीषण,
सरा सर्वस्व न लेते हैं, उच्छिष्ट छोड़ कुछ देते हैं।
पर, इसे क्रोध जब आता है,
कुछ भी न शेष रह पाता है।
'यह महामत्त मानव–कुंजर, कैसे अशंक हो रहा विचर,
कर को जिस ओर बढ़ाता है, पथ उधर स्वयं बन जाता है।
तू नहीं शरासन तानेगा,

अंकुश किसका यह मानेगा?'
'अर्जुन! विलम्ब पातक होगा, शैथिल्य प्राण–घातक होगा,
उठ जाग वीर! मूढ़ता छोड़, धर धनुश–बाण अपना कठोर।
तू नहीं जोश में आयेगा,
आज ही समर चुक जायेगा।'
केशव का सिंह दहाड़ उठा, मानो चिंग्घार पहाड़ उठा।
बाणों की फिर लग गयी झड़ी, भागती फौज हो गयी खड़ी।
जूझने लगे कौन्तेय–कर्ण,
ज्यों लड़ें परस्पर दो सुपर्ण।
एक ही वश्न्त के दो कुड्मल, एक ही कुक्षि के दो कुमार,
एक ही वंश के दो भूशण, विभ्राट, वीर, पर्वताकार।
बेधने परस्पर लगे सहज–सोदर शरीर में प्रखर बाण,
दोनों की किंशुक देह हुई, दोनों के पावक हुए प्राण।
अन्धड़ बन कर उन्माद उठा, दोनों दिशि जयजयकार हुई।
दोनों पक्षों के वीरों पर, मानो भैरवी सवार हुई।
कट–कट कर गिरने लगे क्षिप्र रुण्डों से मुण्ड अलग होकर,
बह चली मनुज के शोणित की धारा पशुओं के पग धोकर।
लेकिन, था कौन हृदय जिसका, कुछ भी यह देख दहलता था?
था कौन नरों की लाशों पर, जो नहीं पाँव धर चलता था?
है कथा, द्रोण की छाया में यों पाँच दिनों तक युद्ध चला,
क्या कहें, धर्म पर कौन रहा, या उसके कौन विरुद्ध चला?
था किया भीश्म पर पाण्डव ने जैसे छल–छद्मों से प्रहार,
कुछ उसी तरह निश्छलता से हत हुआ वीर अर्जुन–कुमार।
फिर भी, भावुक, कुरुवश्द्ध भीश्म, थे युग पक्षों के लिए शरण,
कहते हैं, होकर विकल, मश्त्यु का किया उन्होंने स्वयं वरण।
अर्जुन–कुमार की कथा, किन्तु अब तक भी हृदय हिलाती है,
सभ्यता नाम लेकर उसका अब भी रोती पछताती है।
पर हाय, युद्ध अन्तक–स्वरूप, अन्तक–सा ही दारुण कठोर,
देखता नहीं ज्यायान्–युवा देखता नहीं बालक–किशोर।
सुत के बध की सुन कथा पार्थ का, दहक उठा शोकार्त्त हृदय,
फिर किया क्रुद्ध होकर उसने तब महा लोम–हर्शक निश्चय,
'कल अस्तकाल के पूर्व जयद्रथ को न मार यदि पाऊँ मैं,
सौगन्ध धर्म की मुझे, आग में स्वयं कूद जल जाऊँ मैं।
तब कहते हैं अर्जुन के हित, हो गया प्रकश्ति–क्रम विपर्यस्त,
माया की सहसा शाम हुई, असमय दिनेश हो गये अस्त।
ज्यों–त्यों करके इस भाँति वीर अर्जुन का वह प्रण पूर्ण हुआ,
सिर कटा जयद्रथ का, मस्तक निर्दोश पिता का चूर्ण हुआ।
हाँ, यह भी हुआ कि सात्यकि से जब निपट रहा था भूरिश्रवा,
पार्थ ने काट ली अनाहूत, शर से उसकी दाहिनी भुजा।
औ' भूरिश्रवा, अनशन करके जब बैठ गया लेकर मुनि–व्रत,
सात्यकि ने मस्तक काट लिया, जब था वह निश्चित योग–निरत।
है वश्था धर्म का किसी समय, करना विग्रह के साथ ग्रथन,
करुणा से कलुषा धर्म विमल, है मलिन पुत्र हिंसा का रण।
जीवन के परम ध्येय–सुख–को सारा समाज अपनाता है,
देखना यही है, कौन वहाँ तक किस प्रकार से जाता है।
है धर्म पहुँचना नहीं, धर्म तो जीवन भर चलने में है।
फैला कर पथ पर स्निग्ध ज्योति दीपक समान जलने में है।
यदि कहें विजय, तो विजय प्राप्त हो जाती परतापी को भी,
सत्य ही, पुत्र, दारा, धन, जन, मिल जाते हैं पापी को भी।
इसीलिए ध्येय में नहीं, धर्म तो सदा निहित, साधन में है,
वह नहीं किसी भी प्रधन–कर्म, हिंसा, विग्रह या रण में है।
तब भी जो नर चाहते, धर्म, समझे मनुश्य संहारों को
गूँथना चाहते वे, फूलों के साथ तप्त अंगारों को।
वासना–वह्नि से जो निकला, कैसे हो वह संयुग कोमल?
देखने हमें देगगा वह क्यों करुणा का पन्थ सुगम शीतल?
जब लोम सिद्धि का आँखों पर, माँड़ी बन कर छा जाता है,
तब वह मनुश्य से बड़े–बड़े दुश्चिन्त्य कश्त्य करवाता है।
फिर क्या विस्मय, कौरव–पाण्डव भी नहीं धर्म के साथ रहे?
जो रंग युद्ध का है, उससे, उनके भी अलग न हाथ रहे।
दोनों ने कालिख छुई, शीश पर जय का तिलक लगाने को

सत्पथ से दोनों डिगे, दौड़कर विजय–बिन्दु तक जाने को।
इस विजय–द्वन्द्व के बीच युद्ध के दाहक कई दिवस बीते,
पर, विजय किसे मिल सकती थी, जबतक थे द्रोण–कर्ण जीते।
था कौन सत्य–पथ पर डटकर, जो उनसे योग्य समर करता?
धर्म से मार कर जगत् में, अपना नाम अमर करता?
'है कहाँ पार्थ? है कहाँ पार्थ? राधेय गरजता था क्षण–क्षण।
करता क्यों नहीं प्रकट होकर, अपने विकराल प्रतिभट से रण?
क्या इन्हीं मूलियों से मेरी रणकला निपट रह जायेगी?
या किसी वीर पर भी अपना, वह चमत्कार दिखलायेगी?
'हो छिपा जहाँ भी पार्थ, सुने, अब हाथ समेटे लेता हूँ,
सबके समक्ष द्वैरथ–रण की, मैं उसे चुनौती देता हूँ।
हिम्मत हो तो वह बढ़े, व्यूह से निकल जरा सम्मुख आये,
दे मुझे जन्म का लाभ और साहस हो तो खुद भी पाये।
पर, चतुर पार्थ–सारथी आज, रथ अलग नचाये फिरते थे,
कर्ण के साथ द्वैरथ–रण से, शिश्य को बचाये फिरते थे।
चिन्ता थी, एकघ्नी कराल, यदि द्विरथ–युद्ध में छूटेगी,
पार्थ का निधन होगा, किस्मत, पाण्डव–समाज की फूटेगी।
नटनागर ने इसलिए, युक्ति का नया योग सन्धान किया,
एकघ्निहव्य के लिए घटोत्कच का हरि ने आह्वान किया।
बोले 'बेटा! क्या देख रहा? हाथ से विजय जाने पर है,
जब सबका भाग्य एक तेरे कुछ करतब दिखलाने पर है।
'यह देख कर्ण की विशिख–वर्शिट कैसी कराल झड़ लाती है?
गो के समान पाण्डव–सेना भय–विकल भागती जाती है।
तिल भर भी भूमि न कहीं, खड़े हों जहाँ लोग सुस्थिर क्षण–भर,
सारी रण–भू पर बरस रहे, एक ही कर्ण के बाण प्रखर।
'यदि इसी भाँति सब लोग मश्त्यु के घाट उतरते जायेंगे,
कल प्रात कौन सेना लेकर पाण्डव संगर में आयेंगे?
है बड़ी विपद् की घड़ी कर्ण का निर्भय, गाढ़ प्रहार रोक।
बेटा! जैसे भी बने, पाण्डवी सेना का संहार रोक।
फूटे ज्यों वह्निमुखी पर्वत, ज्यों उठे सिन्धु में प्रलय–ज्वार,
कूदा रण में त्यों महाघोर गर्जन कर दानव किमाकार।
सत्य ही, असुर के आते ही रण का वह क्रम टूटने लगा,
कौरवी अनी भयभीत हुई, धीज उसका छूटने लगा।
है कथा, दानवों के कर में थे बहुत–बहुत साधन कठोर,
कुछ ऐसे भी, जिन पर, मनुश्य का चल पाता था नहीं जोर।
उन अगम साधनों के मारे कौरव सेना चीत्कार उठी,
ले नाम कर्ण का बार–बार व्याकुल कर हाहाकार उठी।
लेकिन, अजस्त्र–शर–वर्शिट निरत अनवरत युद्ध–रत धीर कर्ण
मन–ही–मन था हो रहा स्वयं इस रण से कुछ विस्मित, विवर्ण
बाणों से तिल–भर भी अविद्ध था कहीं नहीं दानव का तन,
पर, हुआ जा रहा था वह पशु पल–पल कुछ और अधिक भीशण।
जब किसी तरह भी नहीं रुद्ध, हो सकी महादानव की गति,
सारी सेना को विकल देख, बोला कर्ण से स्वयं कुरुपति,
'क्या देख रहे हो सखे! दस्यु ऐसे क्या कभी मरेगा यह?
दो घड़ी और जो देर हुई, सबका संहार करेगा यह।
'है वीर! थ्वलपते हुए सैन्य का, अचिर किसी विधि त्राण करो।
अब नहीं अन्य गति, आँख मूँद, एकघ्नी का सन्धान करो।
अरि का मस्तक है दूर, अभी अपनों के सीस बचाओ तो,
जो मरण–पाश है पड़ा, प्रथम, उसमें से हमें छुड़ाओ तो।'
सुन सहम उठा राधेय, मित्र की ओर फेर निज चकित नयन,
झुक गया विवशता में कुरुपति का अपराधी, कातर आनन।
मन–ही–मन बोला कर्ण, 'पार्थ! तू वय का बड़ा बली निकला,
या यह कि आज फिर एक बार मेरा ही भाग्य छली निकला।'
रहता आया था मुदित कर्ण जिसका अजेय सम्बल लेकर,
था किया प्राप्त जिसको उसने इन्द्र को कवच–कुण्डल देकर
जिसकी करालता में जय का, विश्वास अभय हो पलता था,
केवल अर्जुन के लिए जिसे राधेय जुगाये चलता था,
वह काल–सर्पिणी की जिह्वा, वह अटल मश्त्यु की सगी स्वसा,

घातकता की वाहिनी, शक्ति यम की प्रचण्ड वह अनल–रसा,
लपलपा आग–सी एकघ्नी तूणीर छोड़ बाहर आयी,
चाँदनी मन्द पड़ गयी, समर में दाहक उज्ज्वता छायी।
कर्ण ने भाग्य को ठोंक उसे, आखिर दानव पर छोड़ दिया,
विह्वल हो कुरुपति को विलोक, फिर किसी ओर मुख मोड़ लिया।
उस असुर प्राण को बेध, दशशिट सबकी क्षण भर त्रासित करके,
एकघ्नी ऊपर लीन हुई, अम्बर को उद्भासित करके।
पा धमक, धरा धँस उछल पड़ी, ज्यों गिरा दस्यु पर्वताकार,
'हा!हा!' की चारों ओर मची, पाण्डव–दल में व्याकुल पुकार।
नरवीर युधिष्ठिर, नकुल, भीम् रह सके कहीं कोई न धीर,
जो जहाँ खड़े थे, लगे वहीं करने कातर क्रन्दन गभीर।
सारी सेना थी चीख रही, सब लोग व्यग्र बिलखाते थे,
पर बड़ी विलक्षण बात! हँसी नटनागर रोक न पाते थे।
टल गयी विपद् कोई सिर से या मिली कहीं मन–ही–मन जय?
क्या हुई बात? क्या देख हुए केशव इस तरह विगत संशय?
लेकिन समर को जीत कर,
निज वाहिनी को प्रीत कर,
वलयित गहन गुंजार से,
पूजित परम जयकार से,
राधेय संगर से चला, मन में कहीं खोया हुआ,
जय–घोश की झंकार से आगे कहीं सोया हुआ।
हारी हुई पाण्डव–चमू में हँस रहे भगवान् थे,
पर जीत कर भी कर्ण के हारे हुए–से प्राण थे।
क्या, सत्य ही, जय के लिए केवल नहीं बल चाहिए?
कुछ बुद्धि का भी घात, कुछ छल–छद्म–कौशल चाहिए?
क्या भाग्य का आघात है।
कैसी अनोखी बात है?
मोती छिपे आते किसी के आँसुओं के तार में,
हँसता कहीं अभिशाप ही आनन्द के उच्चार में।
मगर, यह कर्ण की जीवन–कथा है,
नियति का, भाग्य का इंगित वश्था है।

मुसीबत को नहीं जो झेल सकता,
निराशा से नहीं जो खेल सकता।
पुरुश क्या, श्रृंखला को तोड़ करके,
चले आगे नहीं जो जोर करके?

सप्तम सर्ग

'रथ सजा, भेरियाँ धमक उठीं, गहगहा उठा अम्बर विशाल,
कूदा स्पन्दन पर गरज कर्ण ज्यों उठे गरज क्रोधान्ध काल।
बज उठे रोर कर पटह कम्बु, उल्लसित वीर कर उठे हूह,
उच्छल सागर–सा चला कर्ण के लिये क्षुब्ध सैनिक समूह।

अंगार–वशिट पा धधक उठे जिस तरह शुश्क कानन का तृण,
सकता न रोक शस्त्रों की गति पुंजित जैसे नवनीत मसृण।
यम के समक्ष जिस तरह नहीं चल पाता बद्ध मनुज का वश,
हो गयी पाण्डवों की सेना त्यों ही बाणों से बिद्ध, विवश।

भागने लगे नरवीर छोड़ वह दिशा जिधर भी झुका कर्ण,
भागे जिस तरह लवा का दल सामने देख रोपण सुपर्ण।
'रण में क्यों आये आज?' लोग मन–ही–मन में पछताते थे,
दूर से देखकर भी उसको, भय से सहमे सब जाते थे।

काटता हुआ रण–विपिन क्षुब्ध, राधेय गरजता था क्षण–क्षण।
सुन–सुन निनाद की धमक शत्रु का, व्यूह लरजता था क्षण–क्षण।
अरि की सेना को विकल देख, बढ़ चला और कुछ समुत्साह,
कुछ और समुद्वेलित होकर, उमड़ा भुज का सागर अथाह।

गरजा अशंक हो कर्ण, 'शल्य! देखो कि आज क्या करता हूँ,
कौन्तेय–कश्मण, दोनों को ही, जीवित किस तरह पकड़ता हूँ।
बस, आज शाम तक यहीं सुयोधन का जय–तिलक सजा करके,
लौटेंगे हम, दुन्दुभि अवश्य जय की, रण–बीच बजा करके।

इतने में कुटिल नियति प्रेरित पड़ गये सामने धर्मराज,
टूटा कृतान्त–सा कर्ण, कोक पर पड़े टूट जिस तरह बाज।
लेकिन, दोनों का विशम युद्ध क्षण भर भी नहीं ठहर पाया,
सह सकी न गहरी चोट, युधिष्ठिर की मुनि–कल्प मृदुल काया।

भागे वे रण को छोड़, कर्ण ने झपट दौड़कर गहा ग्रीव,
कौतुक से बोला, 'महाराज! तुम तो निकले कोमल अतीव।
हाँ, भीरु नहीं, कोमल कहकर ही, जान बचाये देता हूँ।
आगे की खातिर एक युक्ति भी सरल बताये देता हूँ।

हैं विप्र आप, सेविये धर्म तरु–तले कहीं, निर्जन वन में,
क्या काम साधुओं का, कहिये, इस महाघोर, घातक रण में?
मत कभी क्षात्रता के धोखे रण का प्रदाह झेला करिये,
जाइये, नहीं फिर कहीं गरुड़ की झपटों से खेला करिये।'

भागे विपन्न हो समर छोड़ ग्लानि में निमज्जित धर्मराज,
सेचते, 'कहेगा क्या मन में जानें यह शूरों का समाज?
प्राण ही हरण करके रहने क्यों नहीं हमारा ग्रास दिया?
आमरण ग्लानि सहने को ही पापी ने जीवन–दान दिया।'

समझे न हाय, कौन्तेय! कर्ण ने छोड़ दिये, किसलिए प्राण,
गरदन पर आकर लौट गयी सहसा, क्यों विजयी की कृपाण?
लेकिन, अदृश्य ने लिखा, कर्ण ने वचन धर्म का पाल दिया,
खड्ग का छीन कर ग्रास, उसे माँ के अंचल में डाल दिया।

कितना पवित्र यह शील! कर्ण जब तक भी रहा खड़ा रण में,
चेतनामयी माँ की प्रतिमा घूती रही तब तक मन में।
सहदेव, युधिष्ठिर, नकुल, भीम को बार–बार वश में लोकर,
कर दिया मुक्त हँस कर उसने भीतर से कुछ इंगित पाकर।

देखता रहा सब शल्य, किन्तु जब इसी तरह भागे पवितन,
बोला, होकर वह चकित, कर्ण की ओर देख, यह परुश वचन,
'रे सूतपुत्र! किसलिए विकट यह कालपृश्मठ धनु धरता है?
मरना नहीं है तो फिर क्यों, वीरों को घेर पकड़ता है?

'संग्राम–विजय तू इसी तरह सन्ध्या तक आज करेगा क्या?
मरेगा अरियों को कि उन्हें दे जीवन स्वयं मरेगा क्या?
रण का विचित्र यह खेल, मुझे तो समझ नहीं कुछ पड़ता है,
कायर! अवश्य कर याद पार्थ की, तू में नही मन डरता है।'

हँसकर बोला राधेय, 'शल्य, पार्थ की भीति उसको होगी,
क्षयमान् क्षणिक, भंगुर शरीर पर मृशा प्रीति जिसको होगी।
इस चार दिनों के जीवन को, मैं तो कुछ नहीं समझता हूँ,
करता हूँ वही, सदा जिसको भीतर से सही समझता हूँ।

'पर ग्रास छीन अतिशय बुभुक्षु अपने इन बाणों के मुख से,
होकर प्रसन्न हँस देता हूँ, चंचल किस अन्तर के सुख से,
यह कथा नहीं अन्तःपुर की, बाहर मुख से कहने की है,
यह व्यथा धर्म के वर–समान, सुख–सहित, मौन सहने की है।

'सब आँख मूँद कर लड़ते हैं, जय इसी लोक में पाने को,
पर, कर्ण जूझता है कोई, ऊँचा सद्धर्म निभाने को,
सबके समेत पंकित सर में, मेरे भी चरण पड़ेंगे क्या?
ये लोभ मृत्तिकामय जग के, आत्मा का तेज हरेंगे क्या?

'यह देह टूटने वाली है, इस मिट्टी का कब तक प्रमाण?
मृत्तिका छोड़ ऊपर नभ में भी तो ले जाना है विमान।
कुछ जुटा रहा सामान खमण्डल में सोपान बनाने को
ये चार फूल फेंके मैंने, ऊपर की राह सजाने को।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University)

'ये चार फूल हैं मोल किन्हीं कातर नयनों के पानी के,
ये चार फूल प्रच्छन्न दान हैं किसी महाबल दानी के।
ये चार फूल मेरा अदश्मट था हुआ कभी जिनका कामी,
ये चार फूल पाकर प्रसन्न हँसते होंगे अन्तर्यामी।

'समझोगे नहीं शल्य इसको, यह करतब नादानों का है,
यह खेल जीत से बड़े किसी मकसद के दीवानों का है।
जानते स्वाद इसका वे ही, जो सुरा स्वप्न की पीते हैं,
दुनिया में रह कर भी दुनिया से अलग खड़े जो जीते हैं।'

समझा न, सत्य ही, शल्य इसे बोला– प्रलाप यह बन्द करो,
हिम्मत हो तो लो करो समर, बल हो तो अपना धनुश धरो।
लो, वह देखो, वानरी ध्वजा दूर से दिखाई पड़ती है,
पार्थ के महारथ की घर्घर आवाज सुनाई पड़ती है।

'क्या वेगवान है अश्व! देख विद्युत् शरमायी जाती है,
आगे सेना छँट रही, घटा पीछे से छायी जाती है।
राधेय! काल यह पहुँच गया, सायक सन्धानित पूर्ण करो,
थे विकल सदा जिसके हित, वह लालसा समर की पूर्ण करो।'

पार्थ को देख उच्छल–उमंग–पूरित उर–पारावार हुआ,
दम्भोलि नाद कर कर्ण कुपित अन्तक–सा भीमाकार हुआ।
बोला 'विधि ने जिस हेतु पार्थ! हम दोनों का निर्माण किया,
जिस लिए प्रकृति के अनल–तत्व का हम दोनों ने पान किया।

'जिस दिन के लिए किये आये, हम दोनों वीर अथक साधन,
आ गया भाग्य से आज जन्म–जन्मों का निर्धारित वह क्षण।
आओ हम दोनों विशिख–वह्नि पूजित हो जयजयकार करें,
मर्मच्छेदन से एक–दूसरे का जी–भर सत्कार करें।

'पर, सावधान, इस मिलन–बिन्दु से अलग नहीं होना होगा,
हम दोनों में से किसी एक को आज यहीं सोना होगा।
हो गया बड़ा अतिकाल, आज निर्णय अन्तिम कर लेना है,
शत्रु का या कि अपना मस्तक, काट कर यहीं पर देना है।

कर्ण का देख यह दर्प पार्थ का, दहक उठा रविकान्त–हृदय,
बोला, 'रे सारथि–पुत्र! किया तू ने, सत्य ही योग्य निश्चय।
पर कौन रहेगा यहाँ? बात यह अभी बताये देता हूँ,
धड़ पर से तेरा सीस मूढ़! ले अभी हटाये देता हूँ।

यह कह अर्जुन ने तान कान तक धनुश, बाण सन्धान किया,
अपने जानते विपक्षी को हत ही उसने अनुमान किया।
पर, कर्ण झेल वह महा विशिख, कर उठा काल–सा अट्टहास,
रण के सारे स्वर डूब गये, छा गया निनद से दिशाकाश।

बोला, 'शाबाश, वीर अर्जुन! यह खूब गहन सत्कार रहा,
पर, बुरा न मानो, अगर आन कर मुझ पर वह बेकार रहा।
मत कवच और कुण्डल विहीन, इस तन को मृदुल कमल समझो,
साधना–दीप्ति वक्षस्थल को, अब भी दुर्भेद्य अचल समझो।

'अब लो मेरा उपहार, यही यमलोक तुम्हें पहुँचायेगा,
जीवन का सारा स्वाद तुम्हें बस, इसी बार मिल जायेगा।
कह इस प्रकार राधेय अधर को दबा रौद्रता में भरके,
हुंकार उठा घातिका शक्ति विकराल शरासन पर धरके।

सँभलें जब तक भगवान्, नचाये इधर–उधर किंचित् स्यन्दन,
तब तक रथ में ही, विकल, बिद्ध मूर्च्छित हो गिरा पृथानन्दन।
कर्ण का देख यह समर–शौर्य संगर में हाहाकार हुआ,
सब लगे पूछने, 'अरे, पार्थ का क्या सचमुच संहार हुआ?'

पर नहीं, मरण का तट छूकर, हो उठा अचिर अर्जुन प्रबुद्ध,
क्रोधान्ध गरज कर लगा कर्ण के साथ मचाने द्विरथ–युद्ध।
प्रावश्ट्–से गरज–गरज दोनों, करते थे प्रतिभट पर प्रहार,
थी तुला–मध्य सन्तुलित खड़ी, लेकिन दोनो की जीत–हार।

इस ओर कर्ण मार्तण्ड–सदश्श, उस ओर पार्थ अन्तक–समान,
रण के मिस, मानो, स्वयं प्रलय, हो उठा समर में मूर्तिमान।
जूझना एक क्षण छोड़, सारी सेना विस्मय–विमुग्ध,
अपलक होकर देखने लगी दो शितिकण्ठों का विकट युद्ध।

है कथा, नयन का लोभ नहीं, संवश्त कर सके स्वयं सुरगण,
भर गया विमानों से तिल–तिल कुरु भू पर
कलकल–नदित–गगन।
थी रुकी दिशा की साँस, प्रकश्ति के निखिल रूप तन्मय–गभीर,
ऊपर स्तम्भित दिनमणि का रथ, नीचे नदियों का अचल नीर।

इतने में शर के लिए कर्ण ने देखा जो अपना निशंग,
तरकस में से फुंकार उठा, कोई प्रचण्ड विशाक्त भुजंग,
कहता कि 'कर्ण! मैं अश्वसेन विश्रुत भुजंगों का स्वामी हूँ।
जन्म से पार्थ का शत्रु परम, तेरा बहुविधि हितकामी हूँ।

'बस, एक बार कर कश्पा धनुश पर चढ़ शरव्य तक जाने दे,
इस महाशत्रु को अभी तुरत स्यन्दन में मुझे सुलाने दे।
कर वमन गरल जीवन भर का संचित प्रतिशोध उतारूँगा,
तू मुझे सहारा दे, बढ़कर मैं अभी पार्थ को मारूँगा।'

राधेय जरा हँसकर बोला, 'रे कुटिल! बात क्या कहता है?
जय का समस्त साधन नर की अपनी बाँहों में रहता है।
उस पर भी साँपों से मिल कर मैं मनुज, मनुज से युद्ध करूँ?
जीवन भर जो निश्ठा पाली, उससे आचरण विरुद्ध करूँ?

'तेरी सहायता से जय तो मैं अनायास पा जाऊँगा,
आने वाली मानवता को, लेकिन, क्या मुख दिखलाऊँगा?
संसार कहेगा, जीवन का सब सुकश्त कर्ण ने क्षार किया,
प्रतिभट के वध के लिए सर्प का पापी ने साहाय लिया।

'रे अश्वसेन! तेरे अनेक वंशज हैं छिपे नरों में भी,
सीमित वन में ही नहीं, बहुत बसते पुर–ग्राम–घरों में भी।
ये नर–भुजंग मानवता का पथ कठिन बहुत कर देते हैं,
प्रतिबल के वध के लिए नीच सहाय सर्प का लेते हैं।

'ऐसा न हो कि इन साँपों में मेरा उज्ज्वल नाम चढ़े,
पाकर मेरा आदर्श और कुछ नरता का यह पाप बढ़े।
अर्जुन है मेरा शत्रु, किन्तु वह सर्प नहीं, नर ही तो है,
संघर्श सनातन नहीं, शत्रुता इस जीवन भर ही तो है।

'अगला जीवन किसलिए भला, तब हो द्वेशान्ध बिगाड़ूँ मैं?
साँपों की जाकर शरण, सर्प बन क्यों मनुश्य को मारूँ मैं?
जा भाग, मनुज का सहज शत्रु मित्रता न मेरी पा सकता,
मैं किसी हेतु भी यह कलंक अपने पर नहीं लगा सकता।

काकोदर को कर विदा कर्ण, फिर बढ़ा समर में गर्जमान,
अम्बर अनन्त झंकार उठा, हिल उठे निर्जरों के विमान!
तूफान उठाये चला कर्ण बल से धकेल अरि के दल को,
जैसे प्लावन की धार बहाये चले सामने के जल को।

पाण्डव–सेना भयभीत भागती हुई जिधर भी जाती थी,
अपने पीछे दौड़ते हुए वह आज कर्ण को पाती थी।
रह गयी किसी के भी मन में जय की किंचित भी नहीं आस,
आखिर, बोले भगवान् सभी को देख व्यग्र, व्याकुल हताश।

Jai Jaiswal Bhagalpur Institute Deemed University

'अर्जुन! देखो, किस तरह कर्ण सारी सेना पर टूट रहा,
किस तरह पाण्डवों का पौरुश होकर अशंक वह लूट रहा।
देखो किस तरफ, उधर उसके ही बाण दिखाई पड़ते हैं,
बस, जिधर सुनो, केवल उसके हुंकार सुनाई पड़ते हैं।

'कैसी करालता! क्या लाघव! कितना पौरुश! कैसा प्रहार!
किस गौरव से यह वीर द्विरद कर रहा समर–वन में विहार।
व्यूहों पर व्यूह फटे जाते, संग्राम उजड़ता जाता है,
ऐसी तो नहीं कमल–वन में भी कुंजर धूम मचाता है।

'इस पुरुश–सिंह का समर देख मेरे तो हुए निहाल नयन,
कुछ बुरा न मानो, कहता हूँ मैं आज एक चिर–गूढ़ वचन।
कर्ण के साथ तेरा बल भी मैं खूब जानता आया हूँ,
मन–ही–मन तुझसे बड़ा वीर पर इसे मानता आया हूँ।

'औ' देख चरम वीरता आज तो यही सोचता हूँ मन में,
है भी कोई, जो जीत सके, इस अतुल धनुर्धर को रण में?
मैं चक्र सुदर्शन धरूँ और गाण्डीव अगर तू तानेगा,
तब भी, शायद ही, आज कर्ण आतंक हमारा मानेगा।

'यह नहीं देह का बल केवल, अन्तर्नभ के भी विवस्वान्,
हैं किये हुए मिलकर इसको इतना प्रचण्ड जाज्वल्यमान।
सामान्य पुरुश यह नहीं, वीर यह तपोनिश्ठ व्रतधारी है,
मश्त्तिका–पुंज यह मनुज ज्योतियों के जग का अधिकारी है।

'कर हरा काल–सा घोर समर, जय का अनन्त विश्वास लिये
है घूम रहा निर्भय, जाने, भीतर–क्या दिव्य प्रकाश लिये।
जब भी देखो, तब आँख गड़ी सामने किसी अरिजन पर है,
भूल ही गया है, एक शीश इसके अपने भी तन पर है।

'अर्जुन! तुम भी अपने समस्त विक्रम–बल का आह्वान करो,
अर्जित असंख्य विद्याओं का हो सजग हृदय में ध्यान करो।
जो भी हो तुममें तेज, चरम पर उसे खींच लाना होगा,
तैयार रहो, कुछ चमत्कार तुमको भी दिखलाना होगा।

दिनमणि पश्चिम की ओर ढले देखते हुए संग्राम घोर,
गरजा सहसा राधेय न जाने, किस प्रचण्ड सुख में विभोर।
'सामने प्रकट हो प्रलय! फाड़ तुझको मैं राह बनाऊँगा,
जाना है तो तेरे भीतर संहार मचाता जाऊँगा।

'क्या धमकाता है काल? अरे, आ जा, मुट्ठी में बन्द करूँ,
छुट्टी पाऊँ, तुझको समाप्त कर दूँ, निज को स्वच्छन्द करूँ।
ओ शल्य! हयों को तेज करो, ले चलो उड़ाकर शीघ्र वहाँ,
गोविन्द–पार्थ के साथ डटे हों चुनकर सारे वीर जहाँ।

'हो शस्त्रों का झन–झन निनाद, दन्तावल हों चिंघार रहे,
रण को कराल घोशित करके हों समरशूर हुंकार रहे।
कटते हों अगणित रुण्ड–मुण्ड, उठता हो आर्त्तनाद क्षण–क्षण,
झनझना रही हों तलवार, उड़ते हों तिरम विशिख सन–सन।

'संहार देह धर खड़ा जहाँ अपनी पैंजनी बजाता हो,
भीशण गर्जन में जहाँ रोर ताण्डव का डूबा जाता हो।
ले चलो जहाँ फट रहा व्योम, मच रहा जहाँ पर घमासान,
साकार ध्वंस के बीच पैठ छोड़ना मुझे हैं आज प्राण।

'समझ में शल्य की कुछ भी न आया
हयों को जोर से उसने भगाया।
निकट भगवान् के रथ आन पहुँचा,
अगम, अज्ञात का पथ आन पहुँचा।

अगम की राह, पर सचमुच, अगम है,
अनोखा ही नियति का कार्यक्रम है।
न जाने न्याय भी पहचानती है,
कुटिलता ही कि केवल जानती है?

रहा दीपित सदा शुभ धर्म जिसका,
चमकता सूर्य–सा था कर्म जिसका,
अबाधित दान का आधार था जो,
धरित्री का अतुल शृंगार था जो,

क्षुधा जागी उसी की हाय, भू को,
कहें क्या मेदिनी मानव प्रसू को?
रुधिर के एक में रथ को जकड़ कर
गयी वह बैठ चक्के को पकड़ कर।

लगाया जोर अश्वों ने न थोड़ा,
नहीं लेकिन, मही ने चक्र छोड़ा।
वृथा साधन हुए जब सारथी के,
कहा लाचार हो उसने रथी से।

'बड़ी राधेय! अद्भुत बात है यह।
किसी दुश्चिंत का ही घात है यह।
जरा–सी कीच में स्यन्दन फँसा है,
मगर रथ–चक्र कुछ ऐसा धँसा है,

'निकाले से निकलता ही नहीं है,
हमारा जोर चलता ही नहीं है,
जरा तुम भी इसे झकझोर देखो,
लगा अपनी भुजा का जोर देखो।'

हँसा राधेय कर कुछ याद मन में,
कहा, 'हाँ सत्य ही सारे भुवन में,
विलक्षण बात मेरे ही लिए है,
नियति का घात मेरे ही लिए है।

'मगर, है ठीक, किस्मत ही फँसे जब,
धरा ही कर्ण का स्यन्दन ग्रसे जब,
सिवा राधेय के पौरुष प्रबल से,
निकाले कौन उसको बाहुबल से?'

उछलकर कर्ण स्यन्दन से उतर कर,
फँसे रथ–चक्र को भुज–बीच भर कर,
लगा ऊपर उठाने जोर करके,
कभी सीधा, कभी झकझोर करके।

मही डोली, सलिल–आगार डोला,
भुजा के जोर से संसार डोला।
न डोला, किन्तु, जो चक्का फँसा था,
चला वह जा रहा नीचे धँसा था।

विपद् में कर्ण को यों ग्रस्त पाकर,
शरासनहीन, अस्त–व्यस्त पाकर,
जगा कर पार्थ को भगवान् बोले–
'खड़ा है देखता क्या मौन भोले?

'शरासन तान, बस अवसर यही है,
घड़ी फिर और मिलने को नहीं है।
विशिख कोई गले के पार कर दे,
अभी ही शत्रु का संहार कर दे।'

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

श्रवण का विश्वगुरु की देशना यह,
विजय के हेतु आतुर एशणा यह,
सहम उट्ठा जरा कुछ पार्थ का मन,
विनय में ही, मगर, बोला अकिंचन।

'नरोचित, किन्तु, क्या यह कर्म होगा?
मलिन इससे नहीं क्या धर्म होगा?'
हँसे केशव, 'वश्था हठ ठानता है।
अभी तू धर्म को क्या जानता है?

'कहूँ जो, पाल उसको, धर्म है यह।
हनन कर शत्रु का, सत्कर्म है यह।
क्रिया को छोड़ चिन्तन में फँसेगा,
उलटकर काल तुझको ही ग्रसेगा।'

भला क्यों पार्थ कालाहार होता,
वश्था क्यों चिन्तना का भार होता?
सभी दायित्व हर पर डाल करके,
मिली तो शिश्टि उसको पाल करके,

लगा राधेय को शर मारने वह,
विपद् में शत्रु को संहारने वह,
शरों से बेधने तन को, बदन को,
दिखाने वीरता निःशस्त्र जन को।

विशिख सन्धान में अर्जुन निरत था,
खड़ा राधेय निःसम्बल, विरथ था,
खड़े निर्वाक् सब जन देखते थे,
अनोखे धर्म का रण देखते थे।

नहीं जब पार्थ को देखा सुधरते,
हृदय में धर्म का टुक ध्यान धरते।
समय के योग्य धीरज को सँजोकर,
कहा राधेय ने गम्भीर होकर।

'निरोचित धर्म से कुछ काम तो लो!
बहुत खेले, जरा विश्राम तो लो।
फँसे रथचक्र को जब तक निकालूँ,
धनुश धारण करूँ, प्रहरण सँभालूँ,

'रुको तब तक, चलाना बाण फिर तुम,
हरण करना, सको तो, प्राण फिर तुम।
नहीं अर्जुन! शरण मैं माँगता हूँ,
समर्थित धर्म से रण माँगता हूँ।

'कलंकित नाम मत अपना करो तुम,
हृदय में ध्यान इसका भी धरो तुम।
विजय तन की घड़ी भर की दमक है,
इसी संसार तक उसकी चमक है।

'भुवन की जीत मिटती है भुवन में,
उसे क्या खोजना गिर कर पतन में?
शरण केवल उजागर धर्म होगा,
सहारा अन्त में सत्कर्म होगा।'

उपस्थित देख यों न्यायार्थ अरि को,
निहारा पार्थ ने हो खिन्न हरि को।
मगर, भगवान किंचित् भी न डोले,
कुपित हो वज्र–सी यह बात बोले–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

'प्रलापी! ओ उजागर धर्म वाले!
बड़ी निश्ठा बड़े सत्कर्म वाले!
मरा, अन्याय से अभिमन्यु जिस दिन,
कहाँ पर सो रहा था धर्म उस दिन?

'हलाहल भीम को जिस दिन पड़ा था,
कहाँ पर धर्म यह उस दिन धरा था?
लगी थी आग जब लाक्षा–भवन में,
हँसा था धर्म हीं तब क्या भुवन में?

'सभा में द्रौपदी को खींच लाके,
सुयोधन की उसे दासी बता के,
सुवामा–जाति को आदर दिया जो,
बहुत सत्कार तुम सबने किया जो,

'नहीं वह और कुछ, सत्कर्म ही था,
उजागर, शीलभूशित धर्म ही था।
जुए में हारकर धन–धाम जिस दिन,
हुए पाण्डव यती निश्काम जिस दिन,

'चले वनवास को तब धर्म था वह,
शकुनियों को नहीं अपकर्म था वह।
अवधि कर पूर्ण जब, लेकिन, फिरे वे,
असल में, धर्म से ही थे गिरे वे।

'बड़े पापी हुए जो ताज माँगा,
किया अन्याय, अपना राज माँगा।
नहीं धर्मार्थ वे क्यों हारते हैं,
अघी हैं, शत्रु को क्यों मारते हैं?

'हमीं धर्मार्थ क्या दहते रहेंगे?
सभी कुछ मौन हो सहते रहेंगे?
कि देंगे धर्म को बल अन्य जन भी?
तजेंगे क्रूरता–छल अन्य जन भी?

'न दी क्या यातना इन कौरवों ने?
किया क्या–क्या न निर्घिन कौरवों ने?
मगर, तेरे लिए सब धर्म ही था,
दुरित निज मित्र का सत्कर्म ही था।

'किये का जब उपस्थित फल हुआ है,
ग्रसित अभिशाप से सम्बल हुआ है,
चला है खोजने तू धर्म रण में,
मश्भा किल्विश बताने अन्य जन में।

'शिथिल कर पार्थ किंचित भी न मन तू।
न धर्माधर्म में पड़ भीरु बन तू।
कड़ा कर वक्ष को, शर मार इसको,
चढ़ा सायक, तुरत संहार इसको।'

हँसा राधेय, 'हाँ अब देर भी क्या?
सुशोभन कर्म में अवसेर भी क्या?
कश्पा कुछ और दिखलाते नहीं क्यों?
सुदर्शन ही उठाते हैं नहीं क्यों?

'कहा जो आपने, सब कुछ सही है,
मगर, अपनी मुझे चिन्ता नहीं है।
सुयोधन–हेतु ही पछता रहा हूँ,
बिना विजयी बनाये जा रहा हूँ।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

'वश्था है पूछना किसने किया क्या,
जगत् में धर्म को सम्बल दिया क्या।
सुयोधन था खड़ा कल तक जहाँ पर,
न हैं क्या आज पाण्डव ही वहाँ पर?

'उन्होंने कौन–सा अपधर्म छोड़ा?
किये से कौन कुत्सित कर्म छोड़ा?
गिनाऊँ क्या? स्वयं सब जानते हैं,
जगद्गुरु आपको हम मानते हैं।

'शिखण्डी को बनाकर ढाल अर्जुन,
हुआ गांगेय का जो काल अर्जुन,
नहीं वह और कुछ, सत्कर्म ही था।
हरे! कह दीजिये, वह धर्म ही था।

'हुआ सात्यकि बलि का त्राण जैसे,
गये भूरिश्रवा के प्राण जैसे,
नहीं वह कश्त्य नरता से रहित था,
पतन वह पाण्डवों का धर्म–हित था।

'कथा अभिमन्यु की तो बोलते हैं,
नहीं पर, भेद यह क्यों खोलते हैं?
कुटिल भाई यन्त्र से रण से विरत कर,
महाभट द्रोण को छल से निहत कर,

'पतन पर दूर पाण्डव जा चुके हैं,
चतुर्गुण मोल बलि का पा चुके हैं।
रहा क्या पुण्य अब भी तोलने को।
उठ मस्तक, गरज कर बोलने को?

'वश्था है पूछना, था दोश किसका?
खुल पहले गरल का कोश किसका?
जहर अब तो सभी का खुल रहा है,
हलाहल से हलाहल धुल रहा है।

'जहर की कीच में ही आ गये जब,
कलुश बन कर कलुश पर छा गये जब,
दिखाना दोश फिर क्या अन्य जन में,
अहं से फूलना क्या व्यर्थ मन में?

'सुयोधन को मिले जो फल किये का,
कुटिल परिणाम द्रोहानल पिये का,
मगर, पाण्डव जहाँ अब चल रहे हैं,
विकट जिस वासना में जल रहे हैं,

'अभी पातक बहुत करवायेगी वह,
उन्हें जानें कहाँ ले जायेगी वह।
न जानें, वे इसी विश से जलेंगे,
कहीं या बर्फ में जाकर गलेंगे।

'सुयोधन पूत या अपवित्र ही था,
प्रतापी, वीर, मेरा मित्र ही था।
किया मैंने वही, सत्कर्म था जो,
निभाया मित्रता का धर्म था जो।

'नहीं किंचित्, मलिन अन्तर्गगन है,
कनक–सा ही हमारा स्वच्छ मन है,
अभी भी शुभ्र उर की चेतना है,
अगर है तो, यही बस वेदना है।

Jai Vijay Bharati Institute (Deemed University) Jaipur

'वधूजन को नहीं रक्षण दिया क्यों?
समर्थन पाप का उस दिन किया क्यों?
न कोई योग्य निश्कशति पा रहा हूँ,
लिये यह दाह मन में जा रहा हूँ।

'विजय दिलवाइये केशव! स्वजन को।
शिथिल, सचमुच, नहीं कर पार्थ! मन को।
अभय हो वैधता जा अंग अरि का,
द्विधा का प्राप्त है जब संग हरि का।

'मही! ले सौपता हूँ आप रथ मैं,
गगन में खोजता हूँ अन्य पथ मैं।
भले ही लील ले इस काट को तू,
न पा सकती पुरुश विम्राट् को तू,

'महानिर्वाण का क्षण आ रहा है, नया आलोक–स्यन्दन आ रहा है। तपस्या से बने हैं यन्त्र जिसके, कसे जप–योग से हैं तन्त्र जिसके, जुते हैं कीर्तियों के वाजि जिसमें, चमकती है किरण की गजि जिसमें, हमारा पुण्य जिसमें झूलता है, विभा के पद्म–सा जो फूलता है।

'रचा मैंने जिसे निज पुण्य–बल से, दया से, दान से, निश्ठा अचल से, हमारे प्राण–सा ही पूत है जो, हुआ सद्धर्म से उद्भूत है जो, न तत्वों की तनिक परवाह जिसको, सुगम सर्वत्र ही है राह जिसको, गगन में जो अभय हो घूमता है, विभा की ऊर्मियों पर झूमता है।

'अहा! आलोक–स्यन्दन आन पहुँचा,
हमारे पुण्य का क्षण आन पहुँचा।
विभाओं सूर्य की! जय–गान गाओ,
मिलाओ, तार किरणों के मिलाओ।
'प्रभा मण्डल! भरो झंकार बोलो।
जगत की ज्योतियों! निज द्वार खोलो।
तपस्या रोचिभूशित ला रहा हूँ,
चढ़ा मैं रिश्म–रथ पर आ रहा हूँ।
गगन में बद्ध कर दीपित नयन को,
किये था कर्ण जब सूर्यस्थ मन को,
लगा शर एक ग्रीवा में सँभल के।
उड़ी ऊपर प्रभा तन से निकल के।
गिरा मस्तक मही पर छिन्न होकर।
तपस्या–धाम तन से भिन्न होकर।
छिटक कर जो उड़ा आलोक तन से,
हुआ एकात्म वह मिलकर तपन से।
उठी कौन्तेय की जयकार रण में,
मचा घनघोर हाहाकार रण में।
सुयोधन बालकों–सा रो रहा था।
खुशी से भीम पागल हो रहा था।
फिरे आकाश से सुरयान सारे,
नतानन देवता नभ से सिधारें।
छिपे आदित्य होकर आर्त्त घन में,
उदासी छा गयी सारे भुवन में।
युधिश्ठिर प्राप्त कर निस्तार भय से,
प्रफुल्लित हो बहुत, दुर्लभ विजय से,
दृगों में मोद के मोती सजाये,
बड़े ही व्यग्र हरि के पास आये।
कहा, 'केशव! बड़ा था त्रास मुझको,
नहीं था यह कभी विश्वास मुझको,
कि अर्जुन यह विपद् भी हर सकेगा,
किसी दिन कर्ण रण में मर सकेगा।
'इसी के त्रास में अन्तर पगा था,
हमें वनवास में भी भय लगा था।
कभी निश्चिन्त मैं क्या हो सका था?
न तेरह वर्श सुख से सो सका था।
'बली योद्धा, बड़ा विकराल था वह।

हरे! कैसा भयानक काल था वह?
मुशल विश में बुझे थे, बाण क्या थे।
शिल निर्मोघ ही थी, प्राण क्या थे।
'मिला कैसे समय निर्भीत है यह?
हुई सौभाग्य से ही जीत है यह।
नहीं यदि आज ही वह काल सोता,
न जानें क्या समर का हाल होता?'
उदासी में भरे भगवान् बोले,
'न भूलें आप केवल जीत को ले।
नहीं पुरुशार्थ केवल जीत में है।
विभा का सार शील पुनीत में है।
'विजय, क्या जानिये, बसती कहाँ है?
विभा उसकी अजय हँसती कहाँ है?
भरी वह जीत के हुंकार में है?
छिपी अथवा लहू की धार में है?
'हुआ जाने नहीं क्या आज रण में?
मिला किसको विजय का ताज रण में?
किया क्या प्राप्त? हम सबने दिया क्या?
चुकाया मोल क्या? सौदा लिया क्या?
'समस्या शील की, सचमुच गहन है।
समझ पाता नहीं कुछ क्लान्त मन है।
न हो निश्चिन्त कुछ अवधानता है।
जिसे तजना, उसी को मानता है।
'मगर, जो हो, मनुज सुवरिश्ठ था वह।
धनुर्धर ही नहीं, धर्मिश्ठ था वह।
तपस्वी, सत्यवादी था, व्रती था।
'हृदय का निश्कपट, पावन क्रिया का,
दलित– तारक, समुद्धारक त्रिया का।
बड़ा बेजोड़ दानी था, सदय था,
युधिश्ठिर! कर्ण का अद्भुत हृदय था।

'किया किसका नहीं कल्याण उसने?
दिये क्या–क्या न छिपकर दान उसने?
जगत् के हेतु ही सर्वस्व खोकर,
मरा वह आज रण में निःस्व होकर।
'उगी थी ज्योति जग को तारने को।
न जनमा था पुरुश वह हारने को।
मगर, सब कुछ लुटा कर दान के हित,
सुयश के हेतु, नर–कल्याण के हित।
'दया कर शत्रु को भी त्राण देकर,
खुशी से मित्रता पर प्राण देकर,
गया है कर्ण भू को दीन करके,
मनुज–कुल को बहुत बलहीन करके,
'युधिश्ठिर, भूलिये, विकराल था वह,
विपक्षी था, हमारा काल था वह।
अहा! वह शील में कितना विनत था?
दया में, धर्म में कैसा निरत था।
'समझ कर द्रोण मन में भक्ति भरिये,
पितामह की तरह सम्मान करिये।
मनुजता का नया नेता उठा है।
जगत् से ज्योति का जेता उठा है।'

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जैन विश्वभारती संस्थान

(मान्य विश्वविद्यालय)

लाडनूँ–341306 (राजस्थान)

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

स्नातक (बी.ए.) तृतीय वर्ष

विषय : हिन्दी साहित्य

प्रथम पत्र : आधुनिक काव्य

संवर्ग

संवर्ग–1	आधुनिक हिन्दी कविता
संवर्ग–2	रश्मिरथी
संवर्ग–3	हरिऔध, गुप्त, प्रसाद, महादेवी वर्मा, पंत
संवर्ग–4	मुक्तिबोध, रघुवीर सहाय, शमशेरसिंह, त्रिलोन
संवर्ग–5	धूमिल, सर्वेश्वर दयाल, अज्ञेय, नरेश मेहता, रस निष्पत्ति

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

विशेषज्ञ समिति

1. **प्रो. नन्दलाल कल्ला**
   पूर्व आचार्य, हिन्दी विभाग
   जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राज.)

2. **प्रो. वेदप्रकाश शर्मा**
   पूर्व आचार्य, हिन्दी विभाग
   महाराजा गंगासिंह विश्वविद्यालय, बीकानेर (राज.)

3. **प्रो. जगमालसिंह**
   पूर्व आचार्य, हिन्दी विभाग
   मेघालय विश्वविद्यालय, मेघालय (आसाम)

4. **डॉ. ममता खाण्डल**
   सहायक आचार्या, जैन विश्वभारती संस्थान,
   लाडनूँ (राज.)

5. **डॉ. आनन्दप्रकाश त्रिपाठी**
   निदेशक, दूरस्थ शिक्षा निदेशालय
   जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूँ (राज.)

6. **डॉ. समणी मल्लि प्रज्ञा**
   प्राचार्या, कालू कन्या महाविद्यालय
   जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूँ (राज.)

लेखक

कैलाश भट्ट 'आकाश'

संपादक

प्रोफेसर नन्दलाल कल्ला

कापीराइट

जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं (राज.)

संस्करण : 2017

मुद्रित प्रतियां : 1100

प्रकाशक :

जैन विश्वभारती संस्थान,

लाडनूं–341 306 (राज.)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अनुक्रम

इकाई	संदर्भ/ लेखक पृष्ठ संख्या	
इकाई- 1	**भूमिका** (आधुनिक हिन्दी कविता का विकास)	1
इकाई- 2	**रामधारीसिंह दिनकर**	32
इकाई- 3	**अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'** (महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ एवं प्रश्नोत्तर)	128
इकाई- 4	**मैथिलीशरण गुप्त** (महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ एवं प्रश्नोत्तर)	143
इकाई- 5	**जयशंकर प्रसाद** (महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ एवं प्रश्नोत्तर)	153
इकाई- 6	**महादेवी वर्मा** (महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ एवं प्रश्नोत्तर)	164
इकाई- 7	**सुमित्रानन्दन पन्त** (महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ एवं प्रश्नोत्तर)	181
इकाई- 8	**गजानन माधव मुक्तिबोध** (महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ एवं प्रश्नोत्तर)	192
इकाई- 9	**रघुवीर सहाय** (महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ एवं प्रश्नोत्तर)	201
इकाई- 10	**शमशेर बहादुरसिंह** (महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ एवं प्रश्नोत्तर)	207
इकाई- 11	**त्रिलोचन** (महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ एवं प्रश्नोत्तर)	211
इकाई- 12	**धूमिल** (महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ एवं प्रश्नोत्तर)	214
इकाई- 13	**सर्वेश्वर दयाल सक्सेना** (महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ एवं प्रश्नोत्तर)	219
	दीर्घ कविता	
इकाई- 14	**सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्सायन 'अज्ञेय'** (महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ एवं प्रश्नोत्तर)	224
इकाई- 15	**नरेश मेहता** (महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ एवं प्रश्नोत्तर)	231
	दीर्घ कविता	
इकाई- 16	**रस अवयव और रस निष्पत्ति** (महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर)	235
इकाई- 17	**आधुनिक काव्य का प्रवृत्तिगत इतिहास से सम्बन्धित निबन्धात्मक प्रश्नोत्तर**	246
रश्मिरथि		259—312

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun